गुलेरी साहित्यालोक

अमर साहित्यकार गुलेरी का वहि:-
साक्ष्य और अत.साक्ष्य द्वारा लेखा
जोखा . गु ले री सा हि त्या लो क


किताब घर
गांधी नगर दिल्ली-110031

गुलेरी साहित्यलोक

सम्पादक

डॉ० मनोहरलाल

प्रकाशक किताबघर,
मेन बाज़ार, गांधी नगर
दिल्ली-११००३१

प्रथम संस्करण १९८४

आवरण इमरोज़

मूल्य ९२ रुपये

मुद्रक चोपड़ा प्रिंटर्स, मोहन पार्क,
नवीन शाहदरा, दिल्ली ११००३२

GULERI SAHITYAALOK (Hindi)
Edited by Dr Manohar Lal Price 92.00

इतिहास - पुरुष की अमर थाती

भावी पीढ़ियों को

स म र्पि त

अपनी बात

प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी मनीषी साहित्यकार थे। उनका पाण्डित्य असाधारण था और प्रतिभा विचक्षण। वह बहुज्ञ थे, विद्या व्यसनी थे। अनेक विषम परिस्थितियों में भी उन्होंने जीवन को उदारता, सहिष्णुता और अदम्य साहस के साथ जिया था। उनकी कृतियों में उनका व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित है, उन पर वैयक्तिकता की छाप है। कोई उनकी कृतियों में उनकी आत्माभिव्यक्ति का अन्वेषण करना चाहे तो कर सकता है। वह पूरे द्विवेदी-युग के महान आधार-स्तम्भ ही दिखाई पड़ते हैं। मात्र पल्लवग्राही पाण्डित्य का आश्रय लेकर चलने वालों के लिए गुलेरी जी को समझना आसान नहीं है। उनकी कृतियों को पढ़ते समय सावधान और सतर्क रहना बहुत जरूरी है। प्रस्तुत पुस्तक का सम्पादन करते समय इस बात को बराबर ध्यान में रखा गया है। इसमें अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखी आलोचना तथा उनके समग्र कृतित्व का उत्तम प्रतिनिधित्व करने वाली उनकी मौलिक रचनाएं सकलित की गई हैं।

इस पुस्तक का **प्रथम खण्ड** (१) साहित्यकार, (२) कहानीकार, (३) भाषाविद् तथा (४) सस्मृतियां—इन उपखण्डों में विभाजित है। इनके अन्तर्गत गुलेरी जी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर लिखे लेखों को विषयानुसार वरीयता में रखने का प्रयास किया गया है जिससे उनके गहन कृतित्व की विभिन्न कोटियों को समझने में सहायता मिल सके। 'साहित्यकार' में जीवनी, जन्मकुण्डली, कृतित्व, निबन्धकार, समीक्षक तथा सस्कृतनिष्ठ साहित्य-सृजन के साथ-साथ उनके कृतित्व के अन्यान्य पक्षों पर विश्लेषण करने वाले लेख हैं तो 'कहानीकार' में उनके समकालीन वयोवृद्ध साहित्यकार प० मुकुटधर पाण्डेय के लेख के साथ साथ गुलेरी जी की कहानी-कला, प्रेम का स्वरूप, आचलिकता, मनोविज्ञान तथा कहानियों की विश्लेषणात्मक व्याख्या द्वारा एक अच्छी बहस का एक ही स्थान पर सयोजन किया गया है।

'उसने कहा था' को जहां शिल्प तथा सवेदना की दृष्टि से हिन्दी की ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कहानी बताया जाता रहा है वहीं कुछ आलोचकों ने गुलेरी जी की

कहानियां की संरचनात्मक दुर्बलताओं के कारण उनके कहानीकार को नकारने का साहस भी किया है। इस तरह उठाए गए प्रश्न गुलेरी जी के पुनर्मूल्यांकन की गुहार भी लगाते हैं। इस पुस्तक में ऐसी बहुविध विचारोत्तेजक सामग्री को एक स्थान पर सजो देने के पीछे भी मेरा यही लक्ष्य रहा है कि नए सिरे से चिंतन मनन करने का अवसर प्राप्त हो।

गुलेरी जी व्याकरणाचार्य थे और भाषाशास्त्री भी। उन्होंने हिन्दी-जगत को पुरानी हिन्दी जैसा अनूठा ग्रंथ देकर हिन्दी के जन्म तथा उसके वास्तविक स्वरूप के विषय में अपनी जो मौलिक मान्यताएं स्थापित की हैं उन्हें विद्वज्जन प्रमाण के रूप में उद्धृत करते हैं। इससे उनके तलस्पर्शी गुरुत्व का बोध होता है। भाषाविद शीर्षक में उनके ऐसे ही अगाध पाण्डित्य का परिचय कराने वाले शोध लेख रखे गए हैं।

सस्मृतियां में उन विद्वानों के प्रामाणिक संस्मरण है जो गुलेरी जी के निकट सम्पर्क में रहे हैं। यहां इतिहासपुरुष गुलेरी जी को जानने के लिए बाह्य साक्ष्यों पर आधारित संस्मरणों को भी स्थान दिया गया है।

इस पुस्तक के **द्वितीय खण्ड** में गुलेरी जी के उपलब्ध कृतित्व का प्रतिनिधित्व करने वाली विशिष्ट रचनाएं ही दी जा सकी हैं। उनकी शेष कृतियां का कलेवर भी एक बड़े ग्रंथ से कम नहीं है। अभी बहुत सारी रचनाएं तो उपलब्ध भी नहीं हैं। उन्होंने जो कुछ छद्मनामों से लिखा है उसे ईमानदारी से छानबीन करके प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करना अब भी शेष है। यह काम जितना महत्त्वपूर्ण है उतना जटिल भी। शोधार्थियों को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

इस खण्ड में गुलेरी जी का कृतित्व—कहानी, निबंध, भाषा विज्ञान, लोक और कला, काव्य तथा विविध इन कोटियों में विभाजित किया गया है। उनकी इतिहास विषयक अधिसंख्य कृतियां गुलेरी ग्रंथ १ में आ गई है इसलिए उन सबको यहां रखना उचित नहीं समझा। मात्र देवकुल निबंध ही प्रतिनिधित्व के रूप में लिया गया है। गुलेरी जी पाण्डित्य तथा बहुज्ञता से मण्डित होते हुए भी अपनी कहानियों में आम बोलचाल की भाषा के सहज सरल रचनाकार के रूप में सामने आए हैं। इनमें उनकी बहुमुखी प्रतिभा तथा व्यक्तित्व की प्रत्येक विशिष्टता का संधान किया जा सकता है। इस दृष्टि से उनका ठीक ठीक मूल्यांकन होना अभी शेष है। इस ग्रंथ में इन मुद्दों को उजागर भी किया गया है।

गुलेरी जी की कहानियों के जो संकलन उपलब्ध है उनके पाठ की प्रामाणिकता को लेकर मेरे मन में बराबर प्रश्न चिह्न बना रहा है। इस संदर्भ में उसने कहा था चर्चा का विषय रही है। उपलब्ध संकलनों तथा अन्यान्य पाठ्य

पुस्तको मे इस कहानी का पाठ खण्डित ही नहीं, पर्याप्त भ्रष्ट भी छपा है। यहा तक कि कई सम्पादकों ने इसमे आए गीत को अश्लील मानकर, कहानी से निकाल भी दिया और कुछ न इसे रखा तो इसके पाठ की शुद्धता एव प्रामाणिकता की ओर विशेष ध्यान नही दिया। प्रस्तुत ग्रथ मे पहली बार 'सरस्वती' मे छपे पाठ को ज्यो का त्यो प्रस्तुत किया जा रहा है, वर्तनी भी सरस्वती-सम्पादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की ही रखी है। द्विवेदी जी ने अपने सम्पादन मे भाषा को परिमार्जित तथा परिष्कृत करने और वर्तनी को शुद्ध करने के लिए, समय की चाल से वर्तनी मे भी परिवर्तन कर दिए थे। इसी तरह मूलपाठ मे कतिपय शब्दो तथा वाक्याशो को अश्लील जानकर, उन्होने हटाया भी था। इन परिवर्तित स्थलों के स्पष्टीकरण के लिए गुलेरी जी द्वारा प्रस्तुत पाठ को, उनकी हस्त-लिखित प्रति के पाठ की सहायता से आवश्यकता एव सदर्भ के अनुसार 'उसने कहा था' की पाद टिप्पणियो मे 'गुलेरी' नाम मे ज्यों का त्यों दे दिया गया है। इससे अनुसधित्सु लाभ उठा सकेंगे।

गुलेरी जी के व्यक्तिव्यजक ललित निबन्ध—'कछुआ धरम' तथा 'मारेसि मोंहि कुठाऊ' प्रासगिकता की दृष्टि से आज भी उतने ही ताजा हैं। लगता है किसी ने आज की परिस्थितियो के सदर्भ मे इन्हें आज ही लिखा हैं।

'भाषा' के अन्तर्गत उनकी पुरानी हिन्दी सम्बन्धी मान्यताओ तथा भाषा की सरचना की परिचायक कृतिया तथा टिप्पणिया है। 'विज्ञान' शीर्षक म उनका लम्बा लेख 'आँख' उनके वैज्ञानिक अध्ययन तथा अभिरुचि का द्योतक है। इस शताब्दी के आरभ मे विज्ञान पर ऐसा गभीर तथा सर्वांगीण प्रतिपादन विस्मय की बात है। काश ! ज्ञानेन्द्रियो का ऐसा तलस्पर्शी वर्णन करने का समय उन्हे मिला होता ! 'लोक और कला' मे उनकी सगीत, लोकतत्त्व तथा चित्रकला सम्बन्धी कृतिया उनके इतिहास बोध, तथ्यान्वेषण तथा तथ्याख्यान की सूचक हैं। 'काव्य' के अन्तर्गत उनकी उन्ही विशिष्ट काव्यकृतियो को रखा गया है जो राष्ट्रीय भावना की पक्षधर हैं। 'विविध' मे उनके अन्यान्य विषयों पर लिखे लेखों तथा टिप्पणियो को एक स्थान पर एकत्र कर दिया गया है।

'बुद्धू का काटा' कहानी पर एक विशिष्ट लेख विलम्ब से मिलने के कारण 'कहानीकार' शीर्षक के अन्तर्गत यथास्थान नही जा सका। अत उस 'परिशिष्ट' मे रख दिया गया है। पाठक अपनी सुविधा से इसे पृष्ठ १३० पर 'गुलेरी जी की पहली कहानी ' सुखमय जीवन' के बाद पढ़ सकते है। वैसे परिशिष्ट मे शीर्षस्थ विद्वानो की सम्मतियां, तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित चुनीदा श्रद्धाजलिया तथा गुलेरी जी की समग्र रचनाओं की अकारादि क्रम से सूची जोड दी गई है।

इस पुस्तक मे सकलित गुलेरी-कृतित्व को पुरानी पत्र-पत्रिकाओं मे से सजोने के लिए मुझे सर्वश्री चिरजीलाल पालीवाल, चिरजीव पुस्तकालय,

आगरा; कल्याणसहाय पारीक, पुस्तकाध्यक्ष, मारवाडी पुस्तकालय, दिल्ली; विद्यानिवास मिश्र, आगरा तथा मुरारीलाल केडिया, वाराणसी का अन्यतम सहयोग मिला है। मैं इन महानुभावों के प्रति हृदय से आभारी हू।

गुलेरी जी की जन्मकुण्डली उनके वशज डॉ० पीयूष गुलेरी के सौजन्य से प्राप्त हुई है, इसके लिए उनका भी कृतज्ञ हू।

'गुलेरी साहित्यालोक' को वर्तमान रूप दे पाने के लिए जिन-जिन विद्वानो ने अपने लेखो को सकलित कर लेने की स्वीकृति-अनुमति प्रदान करके अनुग्रहीत किया है उनके प्रति मैं विशेष रूप से आभारी हू। उनके अप्रतिम सहयोग से गुलेरी जी की कृतियो को समझने मे आसानी हो गई है, ऐसा मेरा विश्वास है।

गुलेरी जी की कृतियो मे आए सस्कृत-कृतित्व को स्पष्ट करने के लिए डॉ० वाचस्पति उपाध्याय, रीडर, सस्कृत-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, श्री सन्तराम वत्स्य तथा श्री कृष्ण विकल ने मेरा विशेष मार्ग-दर्शन किया है। श्री विकल जी ने 'गुलेरी-साहित्यालोक' की पाण्डुलिपि को व्यवस्थित करके सम्पादन कार्य मे मेरा अन्यतम सहयोग दिया है। आप महानुभावों के प्रति औपचारिक धन्यवाद प्रदर्शित करके उऋण हो पाना मेरे लिए सभव कहा है!

मेरे सम्पादन के इस प्रयास मे त्रुटिया रह जाना अस्वाभाविक नही है। इस सदर्भ मे विद्वानो तथा साहित्य-प्रेमी पाठको के परामर्शों का मैं सर्वदा स्वागत करूगा।

मैं, इस पुस्तक के प्रकाशक प० जगतराम जी द्विवेदी तथा श्री सत्यव्रत जी द्विवेदी का विशेष आभारी हू, जिन्होंने मुझे इस असाधारण प्रातिभ को हिंदी-जगत् के सम्मुख वर्तमान रूप मे प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित किया तथा ग्रथ को सुचारु ढग से एव पूरी लगन से छपवाया।

और अत मे, मैं उन सब विद्वानों के प्रति पुन आभार प्रकट करता हू जिनके ग्रथों तथा रचनाओ की सहायता से मेरा यह प्रयास साकार हो पाया है।

—मनोहरलाल

हिंदी विभाग,
श्रीराम कॉलेज ऑफ कामर्स,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली.
विजयादशमी, २०४० विक्रमी

विषय-सूची

प्रथम खंड

साहित्यकार

कहानीकार

परिशिष्ट

प्रथम खंड

चंद्रधर शर्मा गुलेरी के साहित्य की समीक्षा

साहित्यकार * कहानीकार * भाषाविद् * संस्मृतियां

साहित्यकार

- ☐ जीवनवृत्त
- ☐ जन्मकुंडली
- ☐ साहित्य-परिचय
- ☐ निबंधकार
- ☐ ललित निबंधकार
- ☐ सहजधर्मी समीक्षक
- ☐ संस्कृतनिष्ठ साहित्य
- ☐ कांगड़ा-चित्रकला
- ☐ राय कृष्णदास के नाम पत्र

परिशिष्ट

प्रथम खंड

चंद्रधर शर्मा गुलेरी के साहित्य की समीक्षा

साहित्यकार * कहानीकार * भाषाविद् * संस्मृतियां

साहित्यकार

- जीवनवृत्त
- जन्मकुंडली
- साहित्य-परिचय
- निबंधकार
- ललित निबंधकार
- सहजधर्मी समीक्षक
- संस्कृतनिष्ठ साहित्य
- कांगड़ा-चित्रकला
- राय कृष्णदास के नाम पत्र



बायें से खड़े बाबू श्यामसुंदर दास, रामनारायण मिश्र, रामचंद्र शुक्ल
बैठे हुए जगन्नाथदास रत्नाकर, कामताप्रसाद गुरु महावीर प्रसाद द्विवेदी, लज्जाशंकर झा, चंद्रधर शर्मा गुलेरी

जीवन-वृत्त

□ डॉ० पीयूष गुलेरी

प० चंद्रधर शर्मा गुलेरी के पूर्वज श्री पुरोहित नारायण गुलेर (कांगड़ा) के निवासी थे। वह वद वेदाग, तथा धर्मशास्त्र के विलक्षण विद्वान थे। उनके घर तीन पुत्र हुए—शिवराम, शिवदत्त और चेतराम।

प० चद्रधर शर्मा गुलेरी के पिता प० शिवराम का जन्म सन् १८३४ ई० मे गुलेर मे हुआ। उन्होने काशी के प्रकाण्ड सस्कृतज्ञ श्री विश्वराम जी से शिक्षा ग्रहण की और हिमालय से आए तीन महात्माओं को शास्त्रार्थ म पराजित किया। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर जयपुर के महाराजा सवाई रामसिंह ने उन्हें अपने यहा 'प्रधान पण्डित' नियुक्त करके धर्मव्यवस्था देने वाली 'मान-मदिर सभा' का अध्यक्ष बना दिया। अब प० शिवराम जयपुर म ही बस गए।

राजसम्मानप्राप्त महान सस्कृतज्ञ धर्म-व्यवस्थापक, दार्शनिक, वैयाकरणाचार्य तथा लब्धप्रतिष्ठ विद्वान प० शिवराम शास्त्री के घर तृतीय पत्नी स अमर कहानीकार प० चद्रधर शर्मा गुलेरी का जन्म शनिवार, २५ आषाढ, स० १९४० वि०, तदनुसार ७ जुलाई, सन् १८८३ ई० को जयपुर मे हुआ। जन्मलग्न मे कर्क राशि का स्वामी चद्र होने से पिता ने इनका नाम 'चद्रधर' रख दिया।

बालक चद्रधर मे शैशव ही से अद्भुत प्रतिभा के लक्षण प्रकट होने लगे। बुद्धि बडी प्रखर थी। घर का वातावरण सस्कृतमय था। इन्होंने चार-पाच वर्ष की आयु म ही सस्कृत बोलने का अच्छा अभ्यास कर लिया। यह अभ्यास माता न करवाया। पाच छ वर्ष की अवस्था म इन्ह सस्कृत के तीन चार सौ श्लोक और अष्टाध्यायी के दो अध्याय एव कई सूत्र कण्ठस्थ थे। स्मरणशक्ति इतनी प्रखर थी कि घर मे आए अतिथियो को 'अमरकोष' सस्वर सुनाते थे। नौ-दस वर्ष की अल्प आयु मे ही मातृभाषा की भाति सस्कृत मे वार्तालाप करते थे। बालक चद्रधर ने एक बार सस्कृत म एक छोटा-सा भाषण देकर 'भारत-धर्म महामण्डल' के सदस्यों को भी चमत्कृत किया था। उस समय इनकी अवस्था दस वर्ष की थी।

प्रारम्भिक शिक्षा

बालक चद्रधर ने सन् १८९३ ई० मे महाराज कॉलज, जयपुर मे प्रवेश लिया। इस प्रकार इनकी अग्रेजी-शिक्षा का श्रीगणेश हुआ। सन् १८९७ ई० मे द्वितीय श्रेणी म मिडिल की। सन् १८९९ ई० मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी म प्रथम स्थान प्राप्त किया। इसी वर्ष कलकत्ता विश्वविद्यालय से ऐंट्रेस मे मैट्रिक की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी मे ही उत्तीर्ण की। इसके लिए महाराजा जयपुर ने जयपुर राज्य की ओर से स्वर्ण-पदक तथा अन्यान्य पुरस्कार प्रदान किए।

गुलेरी जी ने एफ० ए० की परीक्षा मे—तर्कशास्त्र, ग्रीक तथा रोमन इतिहास, भौतिकी, रसायन शास्त्र, सस्कृत, गणित विषय लिए। उन्होने एफ० ए० की परीक्षा मे अग्रेजी-गद्य के पर्चे मे कलकत्ता के सभी कॉलेजो मे दूसरा स्थान प्राप्त किया था।

सन् १९०२ ई० मे जब कर्नल सर स्विण्टन जेक्ब तथा कैप्टन ए०ए फ० गैरेट जयपुर की वेधशाला के जीर्णोद्धार के लिए नियुक्त हुए तो उन्हे ऐसे व्यक्ति की तलाश थी जो सस्कृत का प्रकाण्ड पडित, ज्योतिष-शास्त्र का वेत्ता तथा पश्चिम की दो-तीन भाषाओ मे भी पारगत हो। इस कार्य मे विदेशियो की सहायता के लिए युवक चद्रधर शर्मा को चुना गया। उन्होने जयपुर के ज्योतिष-यत्रालय के जीर्णोद्धार मे सहायता की तथा सम्राट्-सिद्धात जैसे दुर्बोध ज्योतिष-ग्रथ का अग्रेजी मे अनुवाद किया। इसके साथ-साथ यत्रो को स्थिर तथा निश्चित करने और उनके परीक्षण मे योगदान दिया।[1]

गुलेरी जी की योग्यता, कर्मठता, निष्ठा, अद्भुत ज्ञान तथा अमूल्य सहायता से प्रभावित होकर दोनो विदेशी विद्वानो ने उन्हे सस्तुति-पत्र प्रदान किए थे। उन्होंने दोनो विदेशी विद्वानों की 'जयपुर आब्जर्वेटरी एण्ड इट्स बिल्डर्स' पुस्तक लिखने मे सहायता की थी। इसके लिए जयपुर राज्य ने उन्हे तीन सौ रुपये की पुस्तकें प्रदान कर सम्मानित किया था।

सन् १८९७ ई० मे गुलेरी जी का जयपुर के श्री जवाहरलाल जैन से परिचय हुआ। वह 'जैन वैद्य' नाम से प्रसिद्ध थे। वह विद्यानुरागी, हिंदी-प्रेमी तथा सजग काग्रेस कार्यकर्ता थे। उनका अनेक सामाजिक और साहित्यिक सस्थाओ से सम्बध था। उन दोनों ने मिलकर हिन्दी सेवा का व्रत लिया और सन् १९००ई० मे जयपुर मे 'नागरी भवन' स्थापित किया। उन्होने सन् १९०२ ई०मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा प्रथम श्रेणी मे, सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करके, उत्तीर्ण की। विषय थ— अग्रेजी, दर्शनशास्त्र तथा सस्कृत। इस परीक्षा परिणाम

१ द जयपुर आब्जर्वेटरी एण्ड इट्स बिल्डर्स की प्रस्तावना

की उपलब्धि के लिए उन्हे जयपुर राज्य ने तीन सौ रुपये की पुस्तको तथा अन्यान्य पुरस्कारो से सम्मानित किया। उन्होने फिर एक बार जयपुर राज्य का स्वर्णपदक भी जीता। उन्हे विश्वविद्यालय की ओर से जयपुर का नार्थब्रुक रजतपदक प्रदान कर वर्ष का सर्वोत्तम छात्र घोषित किया गया।[1]

गुलेरी जी दर्शन-शास्त्र मे एम०ए० करने के इच्छुक थे परन्तु एक आकस्मिक घटना के कारण पूरी परीक्षा न दे सके। हुआ यह कि परीक्षा के एक दिन पहले भी वह रात को देर तक पढते रहे। नीद पूरी नही हुई और परीक्षा भवन मे तद्रा की अवस्था मे सारा समय बिताकर चले आए। गुलेरी जी के शब्दो मे—"मैंने दर्शनशास्त्र मे एम० ए० की तैयारी थी, परीक्षा की आवश्यक्ता से भी बढकर विषय का अनुशीलन किया किंतु अस्वस्थता के कारण परीक्षा न दे सका।"[2]

सन् १६०४ ई० मे गुलेरी जी जयपुर राज्य के आग्रह से खेतडी-नरेश जयसिंह के शिक्षक और अभिभावक बनकर मेयो कॉलेज, अजमेर चले गए। इस प्रकार उनका एम० ए० करने का विचार पूरा न हो सका।

विवाह

कोई बीस-बाईस वर्ष की अवस्था मे गुलेरी जी का विवाह पद्मावती से हुआ।[3] उनके विवाह की बडी अद्भुत कहानी है। जब गुलेरी जी बी० ए० पास कर चुके तो पिता ने उनका सम्बन्ध गरली मे निश्चित कर दिया। शिवराम जी विवाह करने अपने गाव गुलेर गए हुए थे। विवाह की तैयारिया पूरी हो गई थी। दुर्भाग्यवश कन्या के पिता का देहात हो गया। प० शिवराम जी असमजस मे पड गए। वह चद्रधर जी को अविवाहित लेकर जयपुर लौटना नही चाहते थे। कारण, उन्हे जयपुर राज्य की ओर से विवाह के लिए पाच सौ रुपये की सहायता मिली हुई थी। वह विवाह किए बिना लौटने मे अपमान समझ रहे थे, इसलिए शीघ्र ही हरिपुर-निवासी कवि रैणा की पुत्री पद्मावती से उनका विवाह बडी धूमधाम से सम्पन्न किया।

परिवार

गुलेरी जी के दो भाई—सोमदेव और जगद्धर तथा एक बहिन विद्या देवी थी। गुलेरी जी की चार सतानें हुई—योगेश्वर, शक्तिधर, अदिति और विजया।

१ निबध-रत्नावली प्रस्तावना श्यामसुन्दर दास
२. गुलेरी जी की पर्मनन्त फाइल, मेयो कॉलिज, अजमेर।
३ (क) श्री सतीश धर गुलेरी जी का विवाह सन् १८६६ ई० मे हुआ था · देखें ५ मई, १६०५ ई० की गुलेरी जी की डायरी, सदर्भ · गिरिराज · ६ जुलाई, १६८३ ई०।
(ख) सारिका . ३४२, १ अक्तूबर, १६२३, पृ० ५-६.
—सम्पादक

श्री योगेश्वर जी का विवाह शकुन्तला देवी—नेहरन पुखर (कागडा) से हुआ। इनका यौवनकाल ही मे देहात हो गया। आप प्राध्यापक थे। इनके तीन पुत्र हुए—सुधीर, जयधर और विद्याधर। दुर्भाग्यवश सुधीर और जयधर का किशोरावस्था ही मे देहावसान हो गया। विद्याधर एक अध्यापक के रूप मे सरकारी सेवा मे है।

श्री शक्तिधर पिता जैसे ही मेधावी थे। उन्होंने अग्रेजी मे एम० ए० प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण किया और प्रयाग विश्वविद्यालय से प्राचीन लिपियो पर शोध कर रहे थे। उन्होंने गुलेरी जी की कहानियो को 'गुलेरी जी की अमर कहानिया' मे सकलित किया। दुर्भाग्यवश वह भी दीर्घजीवी नही हुए। बेटी अदिति का बाल्यकाल ही मे स्वर्गवास हो गया। विजया का विवाह पालमपुर तहसील (कागडा) के श्री श्यामचरण बेदवा से हुआ। विवाह के कुछ समय पश्चात् ही विजया का भी देहात हो गया था।

आज गुलेरी जी का कुल उनके एकमात्र पौत्र श्री विद्याधर से दीप्त है।

अजमेर-प्रवास

गुलेरी जी ने सन् १६०४ ई० मे एक अभिभावक और शिक्षक के रूप मे शिक्षा क्षेत्र मे प्रवेश किया था। यही से उनका कार्यक्षेत्र विस्तृत होने लगा। वह सफल अभिभावक रहे। राजा जयसिंह भी अपने गुरु प० चद्रधर जी की भाति अद्वितीय प्रातिभ थ। उनके कुशल निर्देशन और व्यावहारिक जीवन-दर्शन से राजा *जयसिंह मे विनय और सौजन्य का समन्वय हुआ।* मेयो कॉलिज के प्रिंसिपल और जयपुर हाउस के मोतमिद सभी गुलेरी जी की योग्यता और सदाचार की मुक्तकठ से प्रशसा करते थे। वह कुशल शिक्षक, सहृदय मित्र, विनम्र सेवक और महान् सहयोगी माने जाने लगे। हृदय से सब उनका आदर किया करते थे।

सन् १६०७ ई० मे प० चद्रधर जी को जयपुर भवन का मोतमिद नियुक्त किया गया। वह अनुशासन के हामी थे। बडी कडाई से नियमो का पालन करते और करवाते थे। वह स्वभाव से जितने नम्र थे, नियम पालन करवाने मे उतने ही कठोर भी। इस सदर्भ म एक घटना इस प्रकार है—एक राजकुमार किसी पेड के नीचे छिपकर मदिरापान कर रहा था। अकस्मात् गुरुदेव—गुलेरी जी उधर से आ निकले। भयातुर राजकुमार जैसे ही बोतल फेंककर भागने लगा, ठोकर खाकर गिर पडा। इस बीच गुलेरी जी दूर निकल गए। उसकी घिग्घिया बध रही थी, बार-बार यही पूछ रहा था—'गुरुदेव ने मुझे देखा तो नही ?"

गुलेरी जी ने जयपुर क समस्त सामतो की बडी देखभाल की। मेयो

कॉलेज मे कश्मीर-नरेश हरिसिंह, प्रतापगढ-नरेश रामसिंह, ठाकुर रामसिंह (आर्मी मिनिस्टर, जयपुर) गाजोगढ के ठाकुर कुशलसिंह, रोहेट के ठाकुर दलपत सिंह प्रभृति शिष्यो पर उनकी बडी कृपा थी।[1]

गुलेरी जी सन् १९१६ ई० तक मोतमिद रहे। उनकी अध्यापन मे विशेष रुचि थी। वह जब जयपुर भवन के अधीक्षक थे तब मेयो कॉलेज म अवैतनिक रूप से अध्यापन कार्य भी करते थे।

३ जुलाई, १९१६ ई० को गुलेरी जी ने मेयो कॉलज मे सस्कृत-विभागाध्यक्ष का पद सभाला।

हिन्दू विश्वविद्यालय मे

मेयो कॉलेज, अजमेर मे गुलेरी जी की कार्य-दक्षता और योग्यता की धाक के कारण उनका यश-सौरभ दूर-दूर तक फैल गया। उन दिनो महामना प० मदनमोहन मालवीय हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी के लिए घूम-घूमकर धन एकत्र कर रहे थे। इस बीच उनका गुलेरी जी से परिचय हुआ था। उन्होने इस काम के लिए मालवीय जी की बडी सहायता की। मालवीय जी देश क कोने-कोने से चोटी के विद्वानो को बुलाकर हिंदू विश्वविद्यालय मे लाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। वह गुलेरी जी की विद्वत्ता तथा साहित्यिक पैठ से प्रभावित थे और उन्ह काशी विश्वविद्यालय मे लाने का प्रयत्न करन लगे। उनके प्रयत्न से बाद मे वह हिंदू विश्वविद्यालय के प्राच्य विभाग (आरियण्टल लर्निंग) के प्राचार्य तथा पुरातन इतिहास और धर्म की मनीन्द्र चद्र नदी चेयर के प्रोफेसर नियुक्त हुए।

गुलेरी जी ने काशी पहुचकर प्राच्य विभाग का पुनर्गठन किया। विभाग के लिए भवन-निर्माण और छात्रावास की योजनाए बनाई। उस समय सस्कृत-प्राध्यापको के वेतनमान दूसरे विषयो के प्राध्यापकों से अपेक्षाकृत न्यून थे। उन्होंने सभी विभागो के समान वेतनमान करवाए। प्राचीन इतिहास और धर्म-सम्बन्धी विषयो का उचित विभाजन करके उनके शिक्षण की व्यवस्था की। कुछ ही दिनो मे उन्होन प्राच्य विभाग का कायाकल्प कर दिया।

बेटी अदिति का देहात हो गया । अभी काशी पहुचकर अपने को अच्छी तरह व्यवस्थित भी नही कर पाए थे कि मध्यम भ्राता — श्री सोमदेव जी के आकस्मिक देहात का दारुण समाचार मिला । इसे सुनकर जैसे उनपर पहाड टूट पडा हो । उन्हे भारी मन से जयपुर जाना पडा । गुलेरी जी के लिए भ्रातृ-वियोग असह्य था । वह व्याकुल और शोक-सतप्त रहने लगे । उनका मन ससार से विरक्त हो गया । सोमदेव जी के देहात के लगभग अढाई मास बाद उनकी छोटी भाभी (श्री जगद्धर की प्रथम पत्नी श्रीमती जयदेवी) का काशी मे स्वर्गवास हो गया ।

इन दिनो गुलेरी जी को भयकर पीलिया हो गया । सूखकर काटा हो गए । परन्तु कुछ समय के अनन्तर धीरे-धीरे शरीर मे शक्ति आने लगी और पहले जैसे हृष्ट पुष्ट हो गए । उन्हे पीलिया हो जाने का मुख्य कारण मानव-स्वभाव की कुटिल प्रवृत्ति थी । किसी ईर्ष्यालु ने उनके मान-सम्मान से चिढकर कोई चीज खिला दी थी, परिणामत पीलिया हो गया । इस बीच उनकी भतीजी स्वर्ग सिधार गई और सोमदेव जी का एक बालक भी चल बसा । अब वह पूरी तरह शोक-सागर मे डूब गए ।

गुलेरी जी के अन्तिम रोग की एक विचित्र कहानी है । अपने देहावसान से सोलह दिन पूर्व अपनी भाभी (श्रीमती जयदेवी) के अन्तिम सस्कार के लिए मणिकर्णिका घाट (काशी) पर गए थे । उनका शरीर कुछ ढीला था । अत उन्होने गगाजल का आचमन ही किया, गगा-स्नान नही । तब पण्डित पद्मनाभ[1] (भाभी के भाई) ने क्रोधित होकर कहा — "क्या तुम नहाओगे नही ? जान पडता है तू ब्रह्मराक्षस है ।"

पद्मनाभ महाक्रोधी ब्राह्मण था । गुलेरी जी सनातनी थे । यदि उन्हे श्मशान घाट पर नहाना होता तो वस्त्रो सहित नहाते । उन्हे पद्मनाभ की बात से बडा क्षोभ हुआ । उन्होने कहा—"अरे चाण्डाल ! जो तू मेरे प्राण लेना चाहता है तो ले ।"[1] और वह गगा मे कूद गए । उस दिन से उन्हे हल्का ज्वर रहने लगा किंतु उन्होने विश्वविद्यालय के कार्य मे ढील नही आने दी । भाभी के उत्तर-कृत्य भी किए और दु ख के घट भी पिए । वह नगे सिर-पैर विश्वविद्यालय जाते, यहा तक कि वह अपने भोजन के प्रति भी उदासीन रहने लगे । अब उन्हे तेज ज्वर रहने लगा । चिकित्सा शुरू हुई परन्तु मर्ज बढता ही गया । ज्वर १०४° हुआ, १०५° हुआ और फिर १०७° हो गया । डॉक्टरो ने नगा करके बर्फ पर लिटाने की सलाह दी । उन्हे बर्फ की सिल्लियो पर लिटाया गया । बाद मे जब बिस्तर पर लिटाने लगे तो होश मे आ गए । वह 'हटो' कहकर पार्श्व मे

१. स्व० रायकृष्ण दास ने इस व्यक्ति का नाम नित्यानद भी बताया है ।—सम्पादक ।

२. श्री रायकृष्णदास से १४ ६ १९६६ को भारत कला भवन, काशी मे भेंटवार्ता ।

पडे कुशासन पर जा बैठे। कुछ क्षणो के लिए ध्यान लगा। "विजयचद्र (गुलेरी जी के शिष्य) गीता सुनाओ।" इतना कहकर वहीं लेट गए। प्रलाप चल रहा था—'राजनि कमल * आदि।' टीकाओ का खण्डन हो रहा था। पक्ष के समर्थन के लिए तर्क दिए जा रहे थे। वह 'शतपथब्राह्मण' पर एक जर्मन विद्वान की टीका का खण्डन कर रहे थे।

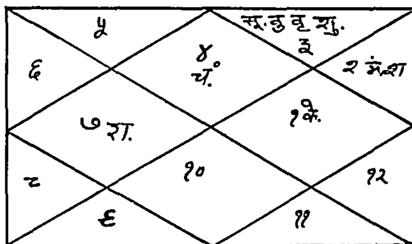
रोती हुई आवाज म विजयचन्द्र न विराट रूप दर्शन का पाठ आरम्भ किया। फिर गुलेरी जी अपनी पुत्री से बोले—"विजया! रुद्राक्ष ले आ।" भोली लडकी रुद्राक्ष की माला उठा लाई। गुलेरी जी अन्तिम हँसी हँसे और पुत्र से कहा—"योगा (योगेश्वर)! जा मेरे कैशबक्स मे अनविधे रुद्राक्ष रखे हैं, सिरहाने से चाबी ले ले।"[1] योगेश्वर जी रुद्राक्ष ल आए। विजयचद्र जी न गुलेरी जी के सकेत पर रुद्राक्ष उनकी चोटी म बाध दिया। वह कुछ समय तक निश्चेष्ट पडे रहे। उनकी पुत्री न टैम्परेचर लिया। १०९° से भी ऊपर था। गुलेरी जी न आखें खोल दी। गऊदान हुआ, स्वर्णदान हुआ और न जाने क्या-क्या हुआ।

गुलेरी जी ने नत्र बद कर लिए। विजयचद्र जी न झुककर जोर से उनके कान मे कहा—"ऊ नम शिवाय।" यह गुलेरी जी का प्रिय मत्र था। उन्होंने जोर से एक हिचकी ली और सदैव के लिए आखें खोल दी। उस समय प्रात के चार बज रहे थे। इस प्रकार हिंदी ससार का यह भास्कर १२ सितम्बर, सन् १९२२ ई० को अस्त हो गया। वह उस समय उनतालीस वर्ष, दो महीने और पाच दिन के थे।

१ गुलेरी जी के अन्तिम क्षण नया समाज पृष्ठ ४३०, ६ जून १९५० ई०

गुलेरी जी की जन्म-कुण्डली

□ प० रत्नलाल रत्नाम्बर



गुलेरी जी का जन्म-लग्न और जन्मराशि एक ही है। चद्रमा, कर्क (लग्न) का स्वामी लग्न मे स्थित है। फलस्वरूप जातक की कुलीनता, सुयश और सत्यता का द्योतक है। यह प्रकाड पाडित्य, अनुसधित्सुवृत्ति दाता तथा जातक को पडित-समाज का मडनभूत बनाता है।

एकादश भाव मे मगल एव शनि की युति और मिथुन राशि, बारहवें भाव मे सूर्य, बुध, वृहस्पति तथा शुक्र की चतुर्ग्रही भी विशेप द्रष्टव्य है।

बुधादित्य योग के अतिरिक्त चारो ग्रहो का एक ही स्थान होना—वृहस्पति और शुक्र—देवाचार्य और असुराचार्य—का एक स्थान मे होना दो विरोधी प्रवृत्तियो की उपस्थिति का द्योतक है।

दूसरे स्थान मे सिंह स्थिर राशि है और सूर्य उसका स्वामी है। तीसरे

स्थान मे तुला द्विस्वभाव राशि है और बुध उसका स्वामी है ।

कर्क लग्न चर राशि है और वहा स्वक्षेत्री चद्रमा बैठा है । जातक सुदर्शन, स्वस्थ मन वाला और निर्भीक होना चाहिए ।

चतुर्थ स्थान में राहु (छायाग्रह) है । यद्यपि इसकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, तथापि सुखस्थान म होने तथा पितृस्थान पर इसकी पूर्ण दृष्टि होने के कारण यह 'पितृहन्ता' है । माता को वैधव्य देने वाला है ।

सप्तम भाव का स्वामी शनि, मगल के साथ युति के कारण शनि के वायु प्रकृति और मगल के अग्नि प्रकृति वाला होने के कारण सघर्ष पैदा करता है । यह पत्नी का स्थान है । ग्रह स्थिति बताती है कि पत्नी कर्कशा होनी चाहिए । पत्नी द्वारा पति की पग-पग पर अवमानना होने का योग है ।

पचमेश मगल के, शनि के साथ होने के कारण पत्नी को बार-बार गर्भपात होने का योग है । साथ ही पत्नी टोने-टोटके मे विश्वास करने वाली, अल्प-शिक्षित, असहिष्णु तथा प्रतिकार की भावना वाली होनी चाहिए ।

ग्रहमालिका समन्वित रूप मे जातक में तीन मुख्य गुणो की सृष्टि करने वाली है—१ मौलिकता, २ स्वतत्र विचारधारा और ३. प्रतिभा ।

नवमेश गुरु बारहवे भाव मे है । यह ग्रह उच्चाभिलाषी है । मिथुन मे स्थिर होकर अगली राशि अपनी उच्चराशि कर्क का अभिलाषी है । यह यात्रा मे सिद्धि और यश प्रदान करने वाला है ।

उपर्युक्त योग से गुरु स्वस्थान से अन्यत्र ले जाकर, किसी पवित्र स्थान, विद्याकेद्र मे जातक की अवस्थिति करवाकर और गुरुत्व प्रदान करता है ।

चतुर्थ राहु, दशम केतु मार्ग मे भय उत्पन्न करने वाले हैं ।

दशमेश और अष्टमेश का एकादश भवन मे और एकादशेश का द्वादश मे होना भी किसी पुण्यतीर्थ मे परलोक गमन का योग बनाता है ।

यदि एकादशेश द्वादश मे हो और दशमेश एकादश मे हो तो जातक की कीर्ति दिग्दिगत म फैलती है और वह भी छोटी अवस्था मे ही । यह जातक मध्यावस्था मे ही काल कवलित होगा ।

शनि की दृष्टि कर्क राशि मे स्थित चद्रमा पर पडने से, शुक्र के कारकत्व के खो देने मे तथा सप्तमेश और अष्टमेश की मगल के साथ युति होने से जहा राज्य से सम्मान मिलने का योग बनता है, वही यह योग दशमेश होकर मगल-शनि के साथ वृष राशिगत होने से पीलिया, रक्तचाप, जिगरदोष, विषसचार आदि मृत्यु का कारण भी बनाता है ।

जातक रूढियो का विरोधी, विश्वस्त लोगो द्वारा वचित, नेत्र-रोगी तथा हकलाने वाला सिद्ध होता है ।

गुलेरी-साहित्य : एक परिचय

□ डॉ० मनोहरलाल

प्राय कहा जाता है कि गुलेरी जी ने बहुत थोडा (मात्र तीन कहानिया) लिख-कर बहुत अधिक ख्याति अर्जित की है। किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। उन्होंने सन् १६०० मे १६२२ ई० पर्यन्त प्रचुर साहित्य लिखा तथा हिंदी के लेखकों का मार्गदर्शन करके हिंदी की सेवा करने मे कोई कसर उठाकर नही रखी। उनकी रचनाओं पर बाद मे लेखकों का ध्यान क्यों नही गया, यह आश्चर्य की बात है। सभवत इसका मुख्य कारण उनकी समग्र रचनावली का पुस्तकाकार न छप पाना हो। साथ ही यह भी सत्य है कि गुलेरी जी के कृतित्व का आस्वाद वही ले पाएगा जो बहुपठित, बहुश्रुत तथा बहुज्ञ होगा। मात्र पल्लवग्राही पाण्डित्य के सहारे चलने वालों के हाथ कुछ न लगेगा। विषयो की दुरूहता, शैली की अर्थ गर्भित वक्रता, गूढ प्रसगोद्भावना तथा भाषा-शिल्प की विशिष्टता आदि कुछ ऐसी विशेषताए हैं जिनके कारण उनकी रचनावली दुरूह लगती है। कारण, वह सस्कृत, पाली, अपभ्रश, मराठी, गुजराती पजाबी, बगला, अग्रेजी, लेटिन, फ्रेंच प्रभृति भाषाओं के ज्ञाता थे। ज्योतिष, मनोविज्ञान, दर्शन, भाषाशास्त्र, भाषा-विज्ञान, काव्यशास्त्र, इतिहास, पुरातत्व, चित्रकला तथा सगीत पर भी उनका अचूक अधिकार था। ये विशेषताए उनके समग्र कृतित्व मे सम्प्रेषित हुई है, इसका प्रमाण उनके निबध, कहानिया, कविताए तथा अन्यान्य टिप्पणिया है। उन्होने अपने साहित्यिक जीवन के दो दशको मे 'समालोचक', 'सरस्वती', 'मर्यादा', 'भारतमित्र', 'इन्दु', 'वैश्योपकारक', 'प्रतिभा' तथा 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' आदि मे खूब लिखा, और बहुत अच्छा लिखा।

गुलेरी जी का समग्र कृतित्व उनकी मृत्यु के लगभग ६० वर्ष बाद तक भी एक प्रामाणिक ग्रथावली का रूप धारण नहीं कर पाया। यह बडी शोचनीय बात है। बाबू श्यामसुदर दास ने अपने २०-८-३३ के पत्र मे गुलेरी जी के अनन्य मित्र प० झाबरमल्ल शर्मा को गुलेरी-कृतित्व के सदर्भ मे लिखा था—' गुलेरी

जी के लेखों का संग्रह कोई १००० पृष्ठों मे (क्राउन अठ पेजी) पूरा होगा, इसके लिए लगभग २००० रुपयों की आवश्यकता होगी। सभा मे द्रव्य का बडा अभाव हो रहा है। कोई बड़ा काम उठाने का साहस नही होता।"[1]

काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने स० २००० वि० मे श्री कृष्णानद के सम्पादकत्व मे गुलेरी-ग्रथ (पहला खण्ड—पहला भाग इतिहास) में उनकी कुछ गद्य रचनाए छापी और प्रस्तावना मे लिखा —"गुलेरी जी की समस्त कृतियो मे चार कोटिया लक्ष्य हैं—इतिहास, भाषा, रचना और आलोचना। इस ग्रथ मे इनकी कृतियों का सग्रह इन कोटियो के अनुसार चार भागो मे सम्पादित है। पहले दो भाग वैज्ञानिक हैं और पिछले दो साहित्यिक। अत यह सग्रह दो खण्डो मे विभाजित है। पहले खण्ड मे स्थित पहले और दूसरे भाग में छोटे-बड़े प्रबध तथा टिप्पणिया हैं, दूसरे खण्ड मे स्थित तीसरे भाग मे कुछ स्फुट कविताए, वस्तुप्रधान एव भावप्रधान निबध तथा कहानिया हैं और चौथे भाग मे आलोचनात्मक निबध तथा टिप्पणिया है। गुलेरी जी का विस्तृत चरित एक पृथक् अर्थात् तीसरे खण्ड मे उपस्थित होगा।"[2]

सभा ने स० २००५ वि० मे आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के सम्पादकत्व मे 'पुरानी हिंदी' प्रबध प्रकाशित किया था। गुलेरी जी के अनन्य मित्र प०झाबरमल्ल शर्मा ने उनके शेष कृतित्व का सकलन तथा सम्पादन 'गुलेरी गरिमा-ग्रथ' नामक ग्रथ के रूप मे किया है। शर्मा जी जीते जी इस ग्रथ को प्रकाशित देखना चाहते थे पर ऐसा सभव न हो सका। सक्षेप मे, इस समय गुलरी जी की पुस्तकाकार कृतिया हैं—'गुलेरी जी की अमर कहानिया', 'गुलेरी-ग्रथ' तथा 'पुरानी-हिंदी'।

इधर डॉ० विद्याधर शर्मा गुलेरी ने 'गुलेरी जी की अमर कहानिया' का नया सस्करण भी निकाला है। इसमें गुलेरी जी के पुत्र योगेश्वर शर्मा गुलेरी की कहानिया भी सकलित कर ली गई हैं। इन्होने गुलेरी जी की कुछ हिंदी-सस्कृत कविताओं को 'प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और उनकी कविताए' पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित किया है।

काव्य

गुलेरी जी पहले कवि है, बाद मे निबन्धकार, कथाकार या अनुसधित्सु, कुछ भी। उन्होंने ब्रज, खडीबोली, राजस्थानी तथा सस्कृत में भी कविताए लिखी है। अग्रेजी तथा सस्कृत काव्य का ब्रज और खडीबोली में अनुवाद भी किया है।

१. प० झाबरमल्ल शर्मा अभिनदन ग्रथ, पृ० ७६
२. गुलेरी-ग्रथ सपादक : कृष्णानद, प्रस्तावना, पृ० ४

उनकी प्रथम ब्रज कविताएं—'स्वागतश्री-कुसुमांजलि' (रचनाकाल १ जनवरी, १९०२ ई०) है। शेष हैं—'एशिया की विजयादशमी', 'भारत की जय', 'बेनाक बर्न', 'आह्निकनिका', 'झुकी कमान', 'स्वागत', 'रवि', 'सोऽहम्' तथा 'प्राकृत के कुछ सुभाषित'। ये कविताएं 'समालोचक', 'सरस्वती' तथा 'मर्यादा' में छपी थीं। राष्ट्रीय संग्राम की पीठिका को लेकर लिखी। इनमें से अधिकांश कविताओं में राष्ट्रीय जागरण तथा उद्बोधन का आदर्श स्वर मुखर है। इनमें स्वदेश तथा स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम, ब्रिटिश साम्राज्य की निन्दा, आक्रोश, ग्लानि तथा व्यंग्य के साथ-साथ भारत के गौरवमय अतीत का मार्मिक वर्णन है। हां, प्रसंगाद्-भावना की जटिलता तथा संस्कृतनिष्ठ भाषा शैली के कारण दुरूह अवश्य है। प्रथम कविता में रीतिकालीन शैली में लार्ड कर्जन की प्रशस्ति की गई है। इसमें लार्ड कर्जन को 'प्रजापालक प्रभु' तथा विक्टोरिया को 'मात सविता शक्ति-श्री विक्टोरिया' कहा गया है।

'एशिया की विजयदशमी' का संदर्भ सन् १९०४ ई० की विजयादशमी है। इसमें जापान की रूस पर विजय का आदर्श मानकर देशवासियों को जागृत किया गया है। 'भारत की जय' में धर्मनिरपेक्षता, भारत की अखण्ड एकता, भिन्नता में अभिन्नता तथा साम्प्रदायिक संगठन का स्वर ओजस्वी तथा प्रेरक शब्दावली में प्रस्तुत किया गया है। 'बेनाक बर्न' स्कॉटलैण्ड के कवि 'राबर्ट बर्न' की इसी शीर्षक की अंग्रेजी कविता का अनुवाद है। इसमें राष्ट्र प्रेम मुखर है। सन् १३१४ ई० में राबर्ट ब्रूस ने एडवर्ड द्वितीय को पराजित करने के लिए जिन शब्दों में अपनी सेना को ललकारा था, उसी को गुलेरी जी ने मूल को ध्यान में रखकर अनुवाद में उतारा है। कवि-कथन है कि स्वतन्त्रता के लिए युद्ध-भूमि में लड़कर शत्रु का मुकाबला करना तथा वीरगति पाना ही जीवन की सार्थकता है। 'आह्निकनिका' में स्वतन्त्रता की देवी का 'अग्नि शिखा' के रूप में आह्वान करके स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम जगाया गया है। 'झुकी कमान' का स्वर भी 'जन-जागरण' का है। इसमें 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की भावना कूट-कूटकर भरी पड़ी है। 'स्वागत' युवराज जार्ज पंचम की भारत-यात्रा का सशक्त आक्रोश भरा तीखा व्यंग्य है। इसमें कवि का आक्रोश ज्वालामुखी की तरह लावा उगल रहा है। कवि ने अंग्रेजों की शोषणमूलक नीति, निर्दयता तथा निरंकुशता का पर्दाफाश करके युवराज का जी भरकर उपहास उड़ाते हुए उनकी शासन नीति को 'सिंह का खेल' कहा है। यह कविता अपनी मुहावरे-दानी तथा सहजरस के कारण बड़ी आकर्षक बन पड़ी है। 'रवि' बड़ी क्लिष्ट कविता है। इसमें खगोलशास्त्र तथा ज्योतिष के परिवेश में १२ राशियों तथा ऋतु चक्र का सांगोपांग वर्णन छान्दोग्योपनिषद्, ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के संदर्भ में है। इस कविता में कूट शैली का प्रयोग करके सूर्यवंशी राजाओं की स्तवना

पर तीखी चोट भी की है। इसमे ज्योतिष तथा खगोलशास्त्र का सहारा लेकर तारा भौतिकी, गणित-फलित ज्योतिष की दोनो शाखाओं, सायन और निरयन दोनो पद्धतियों, चलन-कलन गणितीय विधियों तथा भारत विद्या (इंडोलोजी) के परिप्रेक्ष्य मे विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की है। सूर्य स्तवन और सूर्यवंशी राजाओं की निंदा के लिए यह कविता दस्तावेज है। 'सोऽहम्' शुद्ध खडीबोली मे लम्बी कविता है। इसका प्रतिपाद्य 'मातृभाषा-प्रेम' है। कवि ने एक अंग्रेजी भक्त युवक के मन मे 'जिसे न भाषा-माया व्यापी, है जग मे वह पूरा पापी' भाव जगाकर उसके अंग्रेज आफिसर से भी मातृभाषा की भूरि भूरि प्रशंसा कराई है। राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति प्रेम इस कविता का उद्देश्य है। 'प्राकृत के कुछ सुभाषित' श्वेताम्बर जैन कवि जयवल्लभ के 'वज्जालग्ग' के चुने हुए ३८ सुभाषितों का खडीबोली मिश्रित ब्रज मे उल्था है। एक मात्र राजस्थानी कविता 'अमल की तारीफ' म अमल (नशे) की चर्चा है।

गुलेरी जी की 'प्रजापरिषद् स्थापना' के अतिरिक्त शिवार्चनम्', ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति', 'राजराजेश्वर का स्वागत', 'राजराजेश्वर को आशीर्वाद','महिमाआशी प्राय' तथा 'आशिष' संस्कृत कविताएं भी हैं। इनमे कवि का प्रतिपादन पढकर काफी निराश होना पडता है। 'राजराजेश्वर का स्वागत' तथा 'राजराजेश्वर को आशीर्वाद' कविताएं 'जार्ज पंचम' को निवेदित हैं तथा इनमे राजप्रशस्ति के लिए चारणों का स्वर अपनाया गया है।

गुलेरी जी के हिन्दी संस्कृत काव्य को पढकर उनके अच्छे कवि होने का बोध होता है। काव्य मे मुख्य स्वर राष्ट्रीयता का है। पर आश्चर्य होता है कि उनकी जो कलम हिन्दी कविताओं मे ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति विष उगल रही है वही संस्कृत कविताओं मे मधु पोषण क्यो करने लगती है! इतना होते हुए भी उनके काव्य मे भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग के सन्धि काल की प्रवृत्तियों का सहज ही संधान किया जा सकता है। संक्षेप मे, गुलेरी जी का राष्ट्र तथा राष्ट्रभाषा प्रेम स्तुत्य है।

कहानियां

गुलेरी जी मूलत कहानीकार के रूप मे जाने जाते है। उनकी मात्र तीन कहानियां उपलब्ध हैं— सुखमय जीवन', 'बुद्धू का कांटा' तथा 'उसने कहा था'। 'सुखमय जीवन' पहली बार 'भारत मित्र' (१९११ ई०) मे प्रकाशित हुई थी। 'बुद्धू का कांटा' कब किस पत्र पत्रिका म प्रकाशित हुई इसका कुछ पता नही चल पाया। विद्वानो ने इसके सन् १९११ से १९१५ ई० के बीच रचे जाने का अनुमान लगाया है। लेकिन गुलेरी जी के निधन पर श्री दुलारेलाल भार्गव ने 'माधुरी' के २७ सितम्बर, १९२२ ई० के अंक मे 'गुलेरी जी का गोलोकगमन'

शीर्षक के अन्तर्गत 'उसने कहा था' की चर्चा न करके मात्र 'बुद्धू का काँटा' का ही उल्लेख किया था। उन्हीं के शब्दों में —"उनकी कहानियाँ बहुत अच्छी होती थीं। उनकी 'बुद्धू का काँटा' शीर्षक कहानी लोगों ने बहुत पसंद की थी।" स्पष्ट है कि यह कहानी यहीं न कहीं छपी अवश्य थी।

गुलेरी जी की इन तीनों कहानियों को सन् १९३० ई० में उनके पुत्र श्री शक्तिधर गुलेरी ने 'गुलेरी जी की अमर कहानियाँ' नाम से संकलित तथा संपादित करके छपवाया था। बाद में इसके कुछ संस्करण सरस्वती प्रेस, वाराणसी से छपे। इस संकलन की प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें 'उसने कहा था' का प्रामाणिक पाठ नहीं लिया गया। श्री शक्तिधर गुलेरी ने न तो 'सरस्वती' में प्रकाशित पाठ को अपनाया और न ही गुलेरी जी द्वारा तैयार की गई मूल पाण्डुलिपि के पाठ को। कहानी में आए तथाकथित अश्लील गीत का भ्रष्ट पाठ इस संदर्भ में विशेषतः उल्लेखनीय रहा है।

जब 'गुलेरी जी की अमर कहानियाँ' सरस्वती प्रेस ने छापना बंद कर दी तो श्री श्रीकांत व्यास ने सन् १९७३ ई० में 'गुलेरी की अमर कहानियाँ' नाम से लिपि प्रकाशन, दिल्ली से पुनः प्रथम संस्करण निकाला। पर पाठ श्री शक्तिधर गुलेरी वाला ही लिया। बाद में डॉ० विद्याधर शर्मा गुलेरी ने इन तीन कहानियों में अपने पिता स्व० योगेश्वर शर्मा गुलेरी की पाँच कहानियाँ मिलाकर सन् १९८१ में कृष्णा ब्रदर्स अजमेर से पुनः 'गुलेरी की अमर कहानियाँ' का प्रथम संस्करण निकाला। 'उसने कहा था' का परम्परा से चला आ रहा भ्रष्ट पाठ इस पुस्तक में भी ज्यों-का-त्यों अपना लिया गया। और फिर इस परम्परा का सांगोपांग निर्वाह राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर की मासिक पत्रिका 'मधुमती' के 'गुलेरी शती विशेषांक' (जनवरी-फरवरी १९८३ ई०) में भी किया गया।

प्रस्तुत ग्रंथ में पहली बार 'उसने कहा था' का प्रामाणिक पाठ, मूल पाण्डुलिपि तथा 'सरस्वती' में छपे पाठ के आधार पर, प्रस्तुत किया जा रहा है। डॉ० विद्याधर ने अपने संकलन में गुलेरी जी द्वारा रचित 'पनघट' नामक चौथी कहानी होने का स्वर भी उठाया पर अपने मत की पुष्टि में प्रमाण नहीं दिए। इस संदर्भ में अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ है कि यह तथाकथित 'पनघट' 'बुद्धू का काँटा' का ही तीसरा खण्ड है।

गुलेरी जी की कहानियाँ सामाजिक हैं। इनमें उनका निजी जीवन तथा व्यक्तित्व व्याप्त है। इनकी केन्द्रीय संवेदना—'प्रेम तथा कर्तव्य-भावना' है। 'सुखमय जीवन' की विवरणात्मकता में नारी के रूप के प्रति लिप्सा, आकर्षण तथा मांसल रोमांस है। इसमें लेखक का छात्र-जीवन अनुस्यूत है। इसमें वर्णित प्रेम उतना अन्तर्मुखी नहीं है जितना 'उसने कहा था' में। 'बुद्धू का काँटा' का

सारा वातावरण उनकी आत्माभिव्यक्ति, आत्मचरित तथा उनके पैतृक गाव गुलेर की लोक संस्कृति का सजीव जीवंत दस्तावेज है। इस कहानी की आंचलिकता उल्लेखनीय है। सारा वातावरण भाषा को भी आंचलिक परिवेश मे ढालता है। इनमे नायक का अव्यक्त प्रेम नारीत्व के परिप्रेक्ष्य म नायक की हीनभावना को उजागर करता है। नायिका इतनी वाचाल तथा शोख है कि सैक्स को लेकर साहसभरी पहल करन स नही चूकती। और 'उसन कहा था' क प्रेम तथा कर्तव्य का तो कहना ही क्या ! यह कहानी किशोरावस्था के भाव-प्रवण प्रेम को कर्तव्य की पराकाष्ठा तक पहुचाती है। किशोरावस्था का सहज आकर्षण पवित्र प्रेम मे परिणत होकर भावो के ससार मे डूबता उतराता, विशुद्ध कर्तव्य भावना का रूप धारण करके जिस चरम स्थिति पर जा टिकता है, उसकी परिणति मात्र अ त्म याग, उत्सर्ग, देशप्रेम, नि स्वार्थता तथा निष्कपटता मे बडे स्वाभाविक ढग से हुई है। यही कारण है कि लहनासिंह का उज्ज्वल चरित्र पाठक के हृदय की वस्तु बन जाता है। कहानी महज घटनाओ, सयोगो तथा इतिवृत्तात्मक प्रसगो की गठजोड नही, बल्कि सूक्ष्म रूप स प्रवाहित प्रेम और कर्तव्य-भावना की अन्त सलिला के गुम्फ्न का बेजोड उदाहरण है। कहानी और कहानीकार पेट म दाढी वाले बालक की तरह एकदम प्रौढ हैं। इस कहानी म यथार्थवाद है, मर्यादा है, भावुकता है और प्रेम का स्वर्गीय रूप है।

गुलेरी जी की कहानियो की वर्णनात्मकता, भाषा, कथ्य, सवाद, नाटकीयता तथा प्रतिपादन शैली मे अनूठा हास्य-व्यग्य रह रहकर गुदगुदाता है, विनोद की फुलझडिया छोडता है। हास्य साध्य नही, साधक बन जाता है। 'बुद्धू का काटा' का वाक्चातुर्य तथा वाक्चापल्य भाषा की शक्ति का बडा प्रभावोत्पादक बनाता है। इन कहानियो का हिंदी कहानी के विकास मे महत्त्वपूर्ण स्थान है।

निबध

गुलेरी जी की गणना द्विवेदी युग के सशक्त निबधकारो मे की जाती है। उनकी निबध की कोटि म आन वाली शताधिक रचनाए 'समालोचक', 'सरस्वती', 'मर्यादा', 'इदु', 'प्रतिभा', तथा 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' मे छपी हैं। इनके विषय पौराणिक, वैदिक, इतिहास, सस्कृति, विज्ञान, भाषा, पुरातत्त्व, कला, दशन, भाषा विज्ञान तथा भाषाशास्त्र हैं। उनका पहला श्रेष्ठ निबध 'सोऽहम्' सबसे पहले 'समालोचक' क (अगस्त, १९०३ ई०) के अक मे छपा था। कविताओ की तरह इनके निबध भी सारगभित प्रसगोद्भावना तथा खोजपूर्ण नई मान्यताओं की स्थापना करने वाले है। इनके विशद कृतित्व मे शुद्ध निबध कही जान वाली कृतिया मात्र दर्जन भर हैं, शेष शोधलेख तथा टिप्पणिया भर हैं। इस दृष्टि से उनके उल्लेख्य भावप्रधान, ललित तथा व्यक्तिव्यजक निबधो

के शीर्षक हैं — कछुआ धरम मारेसि मोहि कुठाउ काशी देवकुल अमगल के स्थान म मगल शब्द जय जमुना मैया जी की सगीत पुरानी पगडी यायघण्ट आत्मघात साप के काटे का विलक्षण उपाय देवाना प्रिय तथा राजाओ की नीयत मे बरकत ।

वद म पृथिवी की गति जयसिंह प्रकाश पृथ्वीराज विजय महाकाव्य सस्कृत की टिपरारी पुरानी हिंदी आख सिंहलद्वीप म महाकवि कालिदास का समाधिस्थल पचमहाशब्द अवतिसुदरी तथा पाणिनि की कविता उनके शोधपूर्ण आलोचनात्मक निबध है। ध्यातव्य है कि जब मर्यादा (सन् १६११ १२) म गुलेरी जी के पुराने राजाओ की गाथाए पृथु वैन्य का अभिषेक मनु ववस्वत राजसूय वाजपेय शुन शेप की कहानी सुक या की वैदिक कहानी तथा सौत्रामणी का अभिषेक शीर्षक ऐतिहासिक वैदिक शोधलेख छपे तो श्री रायकृष्णदास जी न अपने २५ ४ १६१२ के पत्र म उन्ह लिखा—

इधर मर्यादा की एक सख्या म आपके कई वदिक लख निकल थे। क्या आपका इरादा कोई वैदिकैतिहासिक पुस्तक लिखने का है ? यदि हो तो बडे ही हर्ष का विषय है। यदि नही है तो हमारी आपसे प्राथना है कि वैदिक ग्रथो को मथ कर जरूर नये नये तत्व निकालिए। यह काम आप ही लोगो का है इसलिए गुलेरी जी महाराज हाथ जोडकर आपसे हमारी प्राथना है कि जरूर वदिक साहित्य से नई नई ऐतिहासिक बाता को निकालकर दरिद्रिनी हिंदी को धनवती बनाइये। यदि आप कहे कि अभी हिंदी मे वसे पाठक नही तो निवेदन है कि वसे पाठक बनाने से बनगे। चुपचाप बठ रहकर प्रतीक्षा करने से वैसे पाठक कही आपसे-आप पदा होगे ? यत्नाद सिद्धि न दैवत ।

यह पत्र गुलेरी जी की शोध प्रक्रिया का भी परिचय करवाता है। उनके निबधो को समझने के लिए खूब परिपक्व बुद्धि होनी चाहिए। उनके निबधो म जो अनेक सकेत गर्भित रहते है उन्हे वही समझ सकता है जिसन सकतित ग्रथस्थल देखे हो। इस दृष्टि स उनके— चाणूर अध्र पथु व य का अभिषेक महर्षि च्यवन का रामायण शशुनाक मूर्तिया तुतातित कुमारिल पूर्ण पात्र चारणो और भाटो का झगडा अधिक सतति होन पर स्त्री का पुनर्विवाह मनोरजक श्लोक काकपद' तथा कालिदास के समय म हूण प्रभृति लख उल्लेख्य है। मारेसि मोहि कुठाउ तथा कछुआ धरम समय समय पर पाठ्य पुस्तको म स्थान पाते रहे है।

गुलेरी जी की गद्यशैली मे सहजता भावभगिमा का चटपटापन सस्कृत की छाया मुहावरेदानी व्यग्य विनोद के साथ साथ अरबी फारसी अग्रजी तथा हिमाचली पहाडी का सटीक प्रयोग है। इतिवृत्त की स्थिति मे वदिक तथा

पौराणिक पद सहज ही उद्धरण बनकर उनकी विशिष्ट शैली बन जाते हैं। अर्थ-गर्भित वक्रता, गम्भीरता तथा पाण्डित्यपूर्ण हास्य इनके निबन्धों की विशेषता है। भाषा मे वेग, स्फूर्ति, चलतापन, नाटकीयता, सवादात्मकता तथा विचार-तत्त्व की गरिमा है। उनके विचार मौलिक तथा स्वाधीन चितक एव दार्शनिक होने के सूचक हैं। समग्र रचनावली मे बहुभाषाविद् तथा असाधारण प्रातिभ होने के कारण पडिताऊपन भी झलकता है। उनकी गद्यशैली के दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१. "हमारे यहा पूजी शब्दो की है, जिससे हमे काम पडा, चाहे और बातो मे हम ठग गए, पर हमारी शब्दो की गाठ नही कतरी गई। राज के और धन के गठकटे यहा कई आए, पर शब्दो की चोरी (महाभारत के ऋषियो की कमलनाल की तात की चोटी की तरह) किसी न न की। यही नही जो आया उससे हमने कुछ ले लिया। बकौल शेक्सपीयर जो मेरा धन छीनता है, वह कूडा चुराता है, *पर जो मेरा नाम चुराता है वह सितम ढाता है, आर्यसमाज ने मर्मस्थल पर* वह मार की है कि सिर नीचा कर दिया है। गैरो को गाठ का कुछ न दिया पर इन्होने तो अच्छे अच्छे शब्द छीन लिए। इसी से कहते है कि 'मारेसि मोहि कुठाउ' अच्छे-अच्छे पद यो ही सफाई से ले लिए हैं कि इस पुरानी जमी हुई दूकान का दिवाला निकल गया।" —मारेसि मोहि कुठाउ से

२ "चद्रवश की वश-परम्पराओ के आदिकमल वासुदेव कृष्ण को जो अपना पूर्वज मानते हैं, वे किस मुह से गाने-बजाने की निंदा करते है। कृष्णचद्र ने न केवल स्वय गीतागीत गाया, प्रत्युत उसके कारण गाए हुए पचगीत आज भी सस्कृत-साहित्य के प्रियतम रत्नो मे से हैं। मनुष्यो और देवताओ पर ही उसका व्यामोहन नही चलता था—पशु-पक्षी, तरु, लता, नदी, पर्वत – सब उस धुन मे मस्त थे।" —संगीत से

टिप्पणिया

'गद्य की कसौटी निबध है।' यह बात गुलेरी जी के निबधो की अपेक्षा उनकी पचासो टिप्पणियो पर भी खरी उतरती है। इस क्षेत्र मे भी उन्होने गागर मे सागर भरकर नये-नये खोजपूर्ण तथ्य जुटाए हैं। इन टिप्पणियो के शीर्षक कुतूहल जगाने वाले तथा रोचक हैं। इन टिप्पणियो मे अन्यान्य पत्र-पत्रिकाओ मे छपे लेखो पर प्रतिक्रियाए भी हैं। विशेषकर 'मनोरमा', 'प्रतिभा' तथा 'सरस्वती' की सामग्री पर उन्होने अधिक तीखी टिप्पणिया की हैं। यथा—'खोज की खाज', 'कलकत्ते का अशोकारिष्ट', 'अनुवादो की बाढ', 'आर्य हिंदी' तथा 'जालहस की सुभाषित मुक्तावली' तथा 'चद की षट्भाषा' ऐसी ही टिप्पणिया

है। इनके अतिरिक्त कुछ शीर्षक हैं—'चारण', 'छट्ट', 'सवाई', 'तुतातिल = कुमारिल', 'पूर्ण पात्र', 'विरामण की सरवण की', 'खूब तमाशा', 'हूण', 'यत्नक', 'वेलावित्त', 'रड्डा छद', 'बनारसी ठग', 'मनोरजक श्लोक', 'वाक्पद', 'श्रद्धा', 'वसिर की हिंदी', 'सुगतेता = मृगनेत्रा', 'पूत्कार = पुकारना', 'पोथी पढ-पढ जग मुआ', 'असूर्यम्पश्या राजदारा', 'अशोक शास्त्री', जोडा हुआ सोना', झख मारना', 'धर्म म उपमा' लायलपुर के बछडे', 'हलवाई', घडी के पुर्जे', 'दूध व पैगम्बर', 'नौरगशाह के नौरग', 'कस्तूरी मृग', ब्रह्मचारी को पान खिलाना', 'होली की ठिठोली वा एप्रिल फूल', 'हा हा ता ता, 'पानी पीकर रह जाती है', 'उलूतु ध्वनि = हुर्रा', तथा 'विवाह की लाटरी' आदि।

कुछ बानगी देखिए—

१ ' महाविरा पुराना है। काम भी अच्छा है। बडे-बडे करते हैं।"

—झख मारना से

२ 'विवाह एक लाटरी है। गाय-बजाय कर, आख मूदकर, काठ मे पाव दिया जाता है। आगे चलकर किसी को वह काठ सोने का कगण बन जाता है, किसी को काठ ही बना रहता है, किसी को लोहे की बेडी और किसी को जलते अगारो की माला बन जाता है। दो न्यारे दृश्यो को मिलाकर एक बनाने का काम है।"

—विवाह की लाटरी से

३ "मेरे एक अन्य मित्र हिंदी के लेखक है। लेखक तो क्या है, छठे सवार है, बुझी हुई ज्वालामुखी है, खून लगाकर शहीद बनते हैं, पर है कुछ ढठोल।"

—ब्रह्मचारी को पान खिलाना से

जीवनी-लेखक

गुलेरी जी न अपने समय के चार महानुभावो के दु खद निधन पर श्रद्धाजलि-स्वरूप जीवनीपरक लेख भी लिखे थे। इन लेखो मे उन्होने दिवगतो के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर बडी सटीक टिप्पणिया प्रस्तुत की हैं। य लेख है – 'आचार्य सत्यव्रत सामश्रमी', 'राय ससारचद्र सेन बहादुर (एम०बी०ओ०, सी०आई०ई०, प्रधानमत्री, जयपुर)', 'मनीषी समर्थदान जी' तथा 'महामहोपाध्याय कविराजा मुरारीदान जी'।

ध्यातव्य है कि इन लेखो मे गुलेरी जी न अपने तथा अपने वश-विषयक भी कुछ महत्त्वपूर्ण सकेत किए हैं। 'मनीषी समर्थदान जी' मे लिखा है कि बाल्यावस्था मे 'काव्यप्रकाश' स्व० महामहोपाध्याय प० दुर्गाप्रसाद जी से पढा था। ये चारो लेख उस युग की साहित्यिक चेतना को रेखाकित करने मे बडे सक्षम है।

संपादक

गुलेरी जी 'समालोचक' के अतिरिक्त 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के सम्पादक-मण्डल में भी रहे। एक सुधी सम्पादक के नाते वह समय पर लेखकों से लेख लिखवाने के लिए डटा किए रहते थे। उन्होंने 'समालोचक' में सर्वश्री श्यामसुन्दरदास, मिश्रबंधु, रामचन्द्र शुक्ल, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, राय-कृष्णदास, बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी तथा महेन्द्रुलाल प्रभृति विद्वानों के लेख छापे थे। उन्होंने प० माधवप्रसाद मिश्र के विषय में एक पत्र में आचार्य शुक्ल को लिखा था—"मिश्र जी बिना किसी अभिनिवेश के लिख नहीं सकते। यदि हमें उनसे लेख पाने हैं तो सदा एक-न-एक टंटा उनसे छेड़ ही रखना करें।" गुलेरी जी जब १९२० में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के सम्पादक-मण्डल में आए तो उन्होंने अपनी 'पुरानी हिंदी' पुस्तक लेखों के रूप में छापी और 'पत्रिका' के लिए ओझा जी तथा श्यामसुन्दरदास जी के साथ 'अशोक की धर्मलिपियां' का सम्पादन किया जो धाराप्रवाह छपता रहा। उनके द्वारा पत्रिका का अन्तिम सम्पादित अंक २२ अक्तूबर, १९२२ का था।

गुलेरी जी सभा की 'देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला' तथा 'सूर्यकुमारी पुस्तकमाला' के भी सम्पादक थे। 'सूर्यकुमारी पुस्तकमाला' का उनके द्वारा सम्पादित प्रथम ग्रंथ था—विवेकानन्द ग्रंथावली--१ (ज्ञानयोग)। उन्होंने इस माला की 'करुणा', 'शशांक' तथा 'बुद्धचरित' पुस्तकों का सम्पादन भी किया था। कालान्तर में 'गुलेरी-ग्रंथ' इसी माला का अठारहवां पुष्प बनकर छपा।

छद्म नाम

गुलेरी जी ने चंद्रधर, चंद्रधर शर्मा तथा चंद्रधर शर्मा गुलेरी के अतिरिक्त कुछ छद्म नामों से भी लिखा है। उनके नाम के साथ 'गुलेरी' (गुलेर के आधार पर) पहली बार 'द जयपुर आब्जर्वेटरी एण्ड इट्स बिल्डर' के सह-सम्पादक के रूप में जुड़ा था। उन्होंने 'समालोचक' में 'चिट्ठी वाला' तथा 'एक चिट्ठी वाला' और 'अनाम' से, 'प्रतिभा' में 'कण्ठा' और 'शब्द कौस्तुभ का कण्ठा' और 'मर्यादा' में 'एक ब्राह्मण' छद्म नामों से लिखा है। उनके प्रसिद्ध निबन्ध 'कछुआ धरम' तथा 'मारेसि मोहिं कुठाउं', 'कण्ठा' तथा 'शब्द कौस्तुभ का कण्ठा' नामों से छपे थे। उनके 'बी० ए०', 'जिम्मकड', 'विवेचक', 'ललन' तथा 'समालोचक' छद्म नाम भी बताए जाते हैं।

पत्र-लेखक

गुलेरी जी सधे हुए पत्र-लेखक भी थे। उनके पत्रों में सहजता, स्पष्टवादिता

तथा विविधता है। उनके पत्र यत्र-तत्र विद्वानों के संग्रहों तथा उनके वंशजों आदि के पास हैं। ये पत्र नितांत व्यक्तिगत होते हुए पारिवारिक, सामाजिक तथा साहित्यिक परिवेश की भी अच्छी झांकी प्रस्तुत करते हैं। इस दृष्टि से सर्वश्री दीनदयालु शर्मा, रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुंदरदास, जगन्नाथदास रत्नाकर, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, मैथिलीशरण गुप्त, केदारनाथ पाठक, रायकृष्णदास, झावरमल्ल शर्मा, नानकचंद एवं रामलाल (चचेरे भाई) तथा श्रीमती चांद कुंवर (प्रतापगढ की राजमाता) आदि को लिखे पत्र बड़े उपादेय हैं। इन पत्रों का सुष्ठु संपादन तथा पुस्तकाकार छपना आधुनिक हिंदी साहित्य के उन्नयन के इतिहास की अंतरंगता को स्पष्ट करने में समर्थ है।

अंग्रेजी में

गुलेरी जी के 'ऑन शिव भागवत इन पातंजलि', 'ए पोइम बाई भास', 'ककातिका मान्क्स', 'दि रियल आर्थर ऑफ जयमंगला', 'ए कमेन्टरी ऑन वात्स्यायन कामसूत्रा' और 'ए साउन्ड मोलाराम' आदि लेख अंग्रेजी में भी छपे हैं।

वहुमुखी प्रतिभा के धनी निवंधकार

□ आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र

प० चद्रधर शर्मा गुलेरी के नाम मे 'चद्रधर' शब्द होने से या 'शर्मा' होने से या कागडा के 'गुलेर' स्थान का होने से, न जाने किस कारण मेरा आकर्षण उनके प्रति विशेष हो गया। उनकी शैली हिंदी मे सबसे निराली है। वैसी भाषा, वैसी व्यजकता, वैसी मुहावरेदानी कही किसी मे देखने को नही मिली। उनकी कहानी पहले पढी या 'पुरानी हिंदी' निबध पढा, यह भी स्मरण नही रहा। पर स्मरण है, पता भर चल जाए, गुलेरी जी ने कुछ कही लिखा है तो मैं सारा काम छोड़कर उसे पाने और पढने को लालायित हो जाया करता था। उनके लेख या टिप्पणी मे नई बात होती थी। जो स्थापना पहले की होती थी उससे भिन्न स्थापना वह प्राय. किया करते थे। नया शोध, नई खोज उनकी सबसे बडी विशेषता है। उनकी सारी उपलब्धियों पर विचार करना यहा सभव नहीं। उस पर स्वतत्र ग्रथ ही लिखा जा सकता है। उनके व्यक्तिव्यजक निबधो को पढकर समझने मे थोड़ी भी सावधानी न रखी जाए तो फिर कुछ का कुछ समझा जा सकता है। उनकी भाषा-शैली पर दृष्टि न रहे तो अर्थ का अनर्थ हो जा सकता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने माना है कि गद्य की कसौटी निबध है। इसकी सत्यता उनके निबधो से तो प्रमाणित होनी ही चाहिए। गुलेरी जी के निबधो से तो सबसे अधिक सिद्ध होती है। आचार्य शुक्ल को समझना अपेक्षाकृत सरल है। पर गुलेरी जी के निबधो के समझने मे विशेष कठिनाई होगी। जिसकी बुद्धि परिपक्व है उसे शुक्ल जी को समझने मे प्रयास करने की अपेक्षा नही। पर परिपक्वबुद्धि होकर भी जो बहुश्रुत नही है उसे गुलेरी जी के निबध केवल शैली की विशेषता दिखाकर रह जाएगे। उनमे जो अनेक सकेत गर्भित हैं उन्हें तभी समझा जा सकता है जब उनके सकेतित ग्रथस्थल देखे गए हों। 'अमगल के स्थान मे मगल शब्द' मे व्याकरण की ऐसी-ऐसी बातें दी गई हैं कि वैयाकरण के लिए

उसमे जैसी सहजता है वैसी सबके लिए नही।

'घनआनद' की एक पक्ति मे, मैं कई दिनो से उलझा था उसका ठीक अर्थ ही नही समझ मे आ रहा था। उन्होने लिखा है कि —

तिहारे निहारे बिन प्रानिन करत होरा,
बिरह-अगारनि मगारि हिय होरी सो।

नागरी प्रचारिणी सभा से जो 'रसखानि और घनानद' 'मनोरजन पुस्तकमाला' मे बाबू अमीरसिंह के सपादकत्व मे प्रकाशित किया गया है उसमे 'मगारि' के बदले 'मगरि' पाठ है और 'मगरि' को मगरी, मगली, छोकडी बताया गया है। पर यह छोकडी मुझे जचती नही थी। सयोग से मैं बनारस के एक प्रकाशक से मिलने हेतु गया। उसी दिन होली जलने वाली थी। वह जयपुर के थे। मुझसे पूछने लगे कि आपके मुहल्ले मे होली कितने बजे मगलेगी। मैं दो क्षणो के लिए चुप रह गया तो उन्होने समझा कि मैंने जो कहा है वह जयपुर की बोली है, अतः उन्होने विनम्रतापूर्वक कहा कि हमारे यहा होली जलने को 'होली मगलना' कहते हैं। मुझे गुलेरी जी का उक्त निबध याद आया जिसमे यह मुहावरा दिया गया है। बस, फिर क्या था! मैं समझ गया कि 'मगलना' से ही 'मगरना' बना है। 'मगरना' का अर्थ जलना और 'मगारना' का अर्थ जलाना हुआ। उक्त निबध मे तो 'चूल्हा' जलाने के प्रसग मे अनेक प्रयोगो की चर्चा की गई है।

मैंने विधिवत् हिंदी का एक ही ग्रथ गुरुमुख से पढा है, जिसका नाम 'रामचरितमानस' है। इसमे अवधी भाषा-क्षेत्र के बहुतसे प्रयोग हैं। जो उन्हे न जाने वह अवसर-विशेष पर समुचित अर्थ कर ही नही सकता। यहा केवल उसी प्रयोग की चर्चा करनी है जिसका सबध गुलेरी जी से है। मानस के मेरे गुरु थे स्वर्गीय लाला भगवानदीन जी, जिन्होने स्वय रामचरितमानस एक महात्मा से पढा था। यह महात्मा भाषा के अच्छे मर्मज्ञ थे। लाला जी का प्राचीन हिंदीकाव्य मे गहरा प्रवेश था। उन्होने निम्नलिखित अर्द्धाली का जो अर्थ मुझे बताया था वह उसके प्रचलित अर्थ से भिन्न था—

'दसन गहहु तिन कठकुठारी। परिजन सहित सग निज नारी।

इसके पहले चरण का अर्थ अधिकतर लोग यही करते हैं—दातो मे तिनका ग्रहण कर लो और गले मे कुठार लटका लो। यह सकेतित करो कि मैं पशु की भाति आपकी शरण मे हू। तिनका दात मे इसी स दबाकर आया हू और कुठारी या कुल्हाडी इसलिए लटका ली है कि आप चाहे मारिए, चाहे छोडिए। लोगो के ध्यान मे परशुराम का प्रसग आ जाता है —

'कर कुठार आगे यह सीसा।'

पर बात ऐसी नही है। 'कठकुठार' कहते हैं, गले के चारो ओर घूमी हुई

रस्सी, कपड़ा, लोहे का तौक आदि । जो इस प्रकार गले में कपड़ा लपेटे वह 'कठ्ठुठारी' कहलाता है । लाला जी स्वयं गले में दुपट्टा लपेटे रहते थे । वैसे ही जैसे मालवीय जी महाराज । गुलेरी जी भी वैसे ही दुपट्टा लपेटे रहते थे । कदाचित् इन्हें इसीसे इसका ठीक अर्थ भी लग सका । जब 'पुरानी हिंदी' लेख में अपभ्रंश के भीतर झांकती हिंदी का उदाहरण उन्होंने दिया तो उसमें एक पंक्ति यह आई—

कंठे पाग निवेश जाहु शरण श्रीमल्लदेव विभुम् ।

प्राचीनकाल में शरणागति को संकेतित करने के लिए (यदि दुपट्टा न हो) तो पगड़ी को ही खोलकर गले से लपेट लेते थे । यह संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश की परंपरा में चला आ रहा है । इसीलिए गुलेरी जी ने उसके समानांतर रामचरितमानस की उक्त अर्द्धाली उद्धृत कर दी है । जो परंपरा से परिचित न होंगे, वे अपनी कल्पना भिड़ाएंगे । इधर हिंदी में प्राचीन ग्रंथों या ग्रंथावलियों के पाठशोध का शौक बहुतों को चर्राया है । पर परंपरा से परिचित न होने के कारण वे पाठ भी ऊटपटांग देते हैं और अर्थ भी । एक स्थान पर कहीं 'साढ़े तीन' वज्र आ जाने पर एक सज्जन संकट में पड़ गए । उन्होंने देखा कि हनुमान इस प्रसंग में उपस्थित हैं । बस, फिर क्या था, उन्हींकी लंबी लांगूल को साढ़े तीन बार घुमा दिया । पर वास्तविकता यह है कि (परंपरा कहती है) दधीचि की हड्डी से वज्र बने । मनुष्य अपने हाथ से साढ़े तीन हाथ का होता है । एक-एक हाथ की हड्डी से एक एक वज्र । एक वज्र विष्णु का धनुष है । दूसरा शिव का पिनाक और तीसरा उन्हींका गांडीव जो अर्जुन का उन्होंने (शिव के) किरात (वेश) से युद्ध करने पर युद्धकौशल से प्रसन्न होकर उन्हें (अर्जुन को) दिया था । इंद्र का वज्र ही वस्तुत आधा वज्र है । पूरा वज्र हड्डी के धनुष दंड को बीच में से तोड़ देने से दो-दो बन सकते थे । पिनाक के दो टुकड़े हुए पर कैसे, क्या हुए उनका वज्रादि के रूप में उपयोग हुआ या नहीं, राम जाने । पर साढ़े तीन वज्रों की यही कथा प्रचलित है । किसी पुराण में होगी । अस्तु । बात गुलेरी जी की चलती थी और गुलेला दूसरों को लगने लगा ।

मैं इतिहास का भी अध्येता रहा हूं । भारत का प्राचीन इतिहास बी० ए० में लिया ही था । फिर तो विश्वविद्यालयों में बी० ए० में भी 'प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति' का एक विषय आ गया । एम० ए० में तो यह विषय पहले आ गया । यहां आने से पहले इसको संभालने वाले या तो इतिहास से एम० ए० करने वाले होते थे या संस्कृत से एम० ए० करने वाले । इसलिए इस विषय की ओर मेरी अभिरुचि पहले से ही थी । जब संस्कृत में एम० ए० का अध्ययन कर रहा था अर्थात् उसके उत्तरार्द्ध में था तभी सुना कि विशारदता का

एक नाटक 'दवीचद्रगुप्तम्' खडित मिला है। देखा है, गुलेरी जी ने उसके आधार पर अद्भुत काम कर डाला है, जिसको इतिहास वालो को भी मानना पडा। आधी बात तो पक्की ही मान ली गई। चद्रगुप्त द्वितीय के पहल उसका भाई रामगुप्त भी कुछ समय के लिए राजगद्दी पर था, पर शराब मे चूर रहने वाला था। खासेल क आक्रमण के समय उसन अपनी रानी ध्रुवदेवी को शत्रु के यहा भेजने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था। पर उसके बदले चन्द्रगुप्त देवी का रूप धारण करके गया और अत म प्रकट होकर शत्रु को मार डाला। गुलेरी जी न *'कच' मुद्रा के नाम से प्रसिद्ध मुद्राओ के सबध म,* इसी *प्रसग मे लिखा था कि* 'राम' शब्द को पढन की भूल से कच पढा गया है। इसे तो ऐतिहासिको ने नही माना। पर रामगुप्त का गद्दी पर बैठना अब सभी न स्वीकार कर लिया है। अर्थात् वह केवल साहित्य म ही नही, भाषाविज्ञान या शब्दानुशासन मे ही नही, भारतीय इतिहास म भी पूरा अभिनिवश रखते थे और ऐसा कि अपनी स्थापनाओ को मनवा लेते थे। प्रसाद जी ने 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक इसी रामगुप्त के 'प्राक्ट्य' को आधार बनाकर लिखा है।

कौन कह सकता है कि ऐसा सर्वतोमुखी प्रातिभ अल्प वय मे इस लोक से *उठ गया। जो उठने के पहले काशी विश्वविद्यालय के 'प्राच्यविद्या विभाग'* मे महाविद्यालय का प्राचार्य भी था, 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' ऐसी उच्च स्तर की शोधपत्रिका का सपादक भी था, जिसने बडे ही मनोरजक और गभीरता से भरे निबध भी अनेक लिख डाले थे और जिसने कुछ अपने ढग की कहानिया भी लिखी थी। 'उसने कहा था' के जोड की दूसरी कहानी फिर कभी नही लिखी जा सकी। 'मैने कहा' और 'तूने कहा' लिखने वाले भी सामने आए, पर नकल और असल मे आकाश पाताल का अतर बना ही रहा।

गुलेरी जी तेजस्वी तो थे ही, मनस्वी भी थे। पहले सस्कृत के अध्यापकों को *सेंट्रल हिंदू कॉलेज या आर्ट्स कॉलेज के ऑफिस मे जाकर और वही रजिस्टर* पर हस्ताक्षर करके वेतन लेना पडता था। ये तो प्राचार्य (प्रिंसिपल) थे, इसलिए इन्हे तो कभी कोई कठिनाई नही हुई। कार्यालय म स्थान ही कितना था। एक बार प्राचार्य महोदय उस समय वहा पहुच गए जब सस्कृत के बेचारे प्राध्यापक अधिक सख्या मे वेतन लेने गए थे। गुलेरी जी ने देखा कि बडे बडे विद्वानो की मौलि-माला जिनके चरणो मे लोटने को लालायित रहती है। ऐसे-ऐसे पडित यहा कार्यालय के किरानी के सामने खडे है, उन्होने उनसे निवेदन किया कि आप सब अपनी गद्दी पर चलिए। वेतन वही जाएगा। तब से सस्कृत के विद्वानो को उनकी गद्दी पर ही नियत तिथि पर वेतन मिलने *लगा था, उन्हे कार्यालय नहीं* जाना पडता था।

गया। उनके परिवार या संबध मे किसी की[1] मृत्यु हुई थी। उस समय वह ज्वर मे थे। शवयात्रा मे जान पर स्नान के लिए विवश किया गया। मैं नाम किसी का लिखना नही चाहता[2] कि किसने हठधर्मिता की। पर 'अवश्यभावी' होनी थी। उन्हें 'सन्निपात' हो गया और वह बच न सके। उनके काशीवास से हाहाकार मच गया। मैं किसी की मृत्यु पर रोता नही रहा। पर दो की मृत्यु पर रो पडा हूं—एक प० चद्रधर शर्मा गुलेरी के निधन पर और दूसरे श्री चद्रशेखर 'आजाद' के वीरगति ग्रहण करने पर। ऐसे पडित और ऐसे वीर धरित्री पर थोडे समय, अत्यल्प काल तक ही रह पाते हैं। पर जिनसे भूमि का भार ही बढता है उन्हे लबी वय मिलती है। तेजस्वी का तेज, जीवन-ज्योति मे प्रखरता से जलकर शीघ्र समाप्त हो जाता है। मद दीपक देर तक जलता रहता है। अपने को ही भरपूर प्रकाशित करने मे समर्थ नहीं होता, अन्यो को भला वह क्या प्रकाशित करेगा।

१ भरजाई श्रीमती जयदेवी अर्थात् भाई श्री जगद्धर की प्रथम पत्नी। —सपादक

२ डॉ० पीयूष गुलेरी के मतानुसार, श्रीमती जयदेवी के भाई पडित पद्मनाभ ने उन्हे नहाने के लिए विवश किया था जबकि स्व० रायकृष्णदास ने इस अवसर पर गुलेरी जी को नहाने के लिए विवश करने वाले गुलेरी जी क रिश्तेदार का नाम 'नित्यानद' बताया है। देखें इसी पुस्तक मे रायकृष्णदास जी का लेख। —सपादक

ललित निबंधकार

□ डॉ० विजयेन्द्र स्नातक

बीसवी शताब्दी के प्रथम चरण मे जिन कृती-साहित्यकारो ने हिंदी भाषा और साहित्य को समृद्ध बनाने मे उल्लेखनीय योग दिया उनमे पडित चद्रधर शर्मा गुलेरी का अन्यतम स्थान है। गुलेरी जी के प्रदेय का आकलन उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा के आधार पर ही करना होगा। वशानुगत वैदुष्य और पाडित्य का सस्कार दुर्लभ होता है। किंतु गुलेरी जी को यह सस्कार अपने पिता श्री पडित शिवराम शास्त्री से सहज सुलभ था। उनके पिता 'महामहोपाध्याय' उपाधि से विभूषित तो थे ही, जयपुर और काशी के विद्वत्समाज मे भी उनका सम्मान था। गुलेरी जी ने सस्कृत भाषा की प्राचीन परपरा से व्याकरण, कोश, साहित्य, दर्शन आदि का ज्ञान प्राप्त किया था। तत्कालीन विद्वानो मे कठस्थ विद्या को प्राथमिकता दी जाती थी, फलत गुलेरी जी ने सस्कृत के कोश और व्याकरण विषय पर ग्रथो को कठस्थ कर उनका सपूर्ण ज्ञान भी हस्तामलकवत् स्वायत्त किया।

गुलेरी जी की ख्याति का कारण बडा विचित्र है। हिंदी-जगत् उन्हे एक कहानीकार के रूप मे ही अधिक जानता है। 'उसने कहा था' कहानी पिछले साठ पैंसठ वर्षों से हिंदी के कथा सकलनो म स्थान पा रही है और गुलेरी जी की पहचान यह कहानी ही बन गई है। उनके देहावसान के बाद तो दो अन्य कहानिया भी यत्र-तत्र पुन प्रकाशित हुई जिन्हे कथा सग्रहो मे भी स्थान मिला, किंतु जो ख्याति, यश और प्रचार 'उसने कहा था' कहानी न पाया वैसा कोई दूसरी कहानी नही पा सकी। कहना न होगा कि एक कहानी के द्वारा इतना व्यापक यश-प्रसार हिंदी म अन्य किसी लखक का नही हुआ। कहानी की *मार्मिकता न प्रथम महायुद्ध की स्मृति को पाठक के मन मे जिस रोमाच के साथ* उद्धुत किया वह रोमाच होन के साथ बलिदान की भावना भी जगाती है। किशोरावस्था का प्यार किस प्रकार प्रणय-कथा मे पर्यवसित होकर, स्मृति मे

ही जीवित रहकर गुदगुदाता रहा यह जिस शैली से कहानी मे व्यजित हुआ है वह अद्भुत है और विलक्षण होने के साथ एक सैनिक के बलिदान को भी पूर्ण त्याग के साथ उभारता है।

'उसने कहा था' कहानी से जहा गुलेरी जी को साधारण हिंदी पाठक पहचान सका वहा इस पहचान से एक हानि भी हुई, उनका समग्र योगदान ओझल हो गया और पाठक कहानी तक ही उनके प्रदेय से सतुष्ट बना रहा। 'उसने कहा था' के वट-वृक्ष के नीचे मानो गुलेरी जी के कृतित्व-पक्ष के अन्य पक्ष पनप नही सके। वस्तुत गुलेरी जी तो बहुमुखी प्रतिभा के धनी, सर्जक साहित्य-कार, प्राच्यविद्या विशारद तथा भाषावैज्ञानिक महापडित थे। उनके द्वारा इन विधाओं मे जो कार्य हुआ उसका अनुसधान की प्रविधि से न तो आकलन ही हुआ और न ही हिंदी जगत् को पूरी तरह ज्ञान है। यदि उनके सपूर्ण कृतित्व का विधिवत् अनुशीलन-आकलन किया जाए तो निस्सदेह उनका प्रदेय अत्यत मूल्यवान एव उपादेय सिद्ध होगा। वह मात्र ३६ वर्ष की अल्पायु मे ही दिवगत हुए किंतु उनकी सर्जनक्षमता के स्तर को देखकर विमुग्ध हुए बिना नही रहा जाता।

भाषा के क्षेत्र मे गुलेरी जी का योगदान अप्रतिम है। वह स्वय तो पालि, प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश आदि के पडित थे ही, उन्होंने इन भाषाओं के पुनरुद्धार के लिए जो किया उसकी ओर अभी तक विद्वानो का ध्यान नही गया है। हिंदी भाषा के सबध मे उन्होंने बीसवी शती के प्रथम शतक मे जो लेख लिखे वे इस तथ्य के साक्षी हैं कि वह हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने की दिशा मे प्रामाणिक सामग्री सकलित कर रहे थे। हिंदी भाषा के सबध मे उनकी ये टिप्पणिया उल्लेखनीय है—पुरानी हिंदी, डिंगल, सुगतेता = मृगनेना, पूत्कार = पुकारना, श्रद्धा, छट्ट, यत्रक, वैदिक भाषा मे प्राकृतपन, रड्डा छद, उलूलू ध्वनि = हुर्रा, यूनानी प्राकृत, तुतातित = कुमारिल, आर्ष हिंदी, क्रियाहीन हिंदी और बेसिर की हिंदी। इनमे गुलेरी जी ने हिंदी की प्राचीन रूप-पद्धति को प्रकाशित करते हुए उसके प्रयोग और नव्य स्वरूप को उद्घाटित किया है। 'पुरानी हिंदी' लेख तो हिंदी मे चर्चित रहा है, शेष रचनाओं से हिंदी-जगत् अद्यावधि प्राय: अपरिचित ही है।

गुलेरी जी वस्तुत सच्चे अनुसधाता थे। उन्होंने जिन विषयो का चयन किया उनमे अधिकाश प्राच्यविद्या अथवा साहित्य से सबद्ध है। कुछ वैदिक विषय भी उन्होंने चुने हैं। वैदिक भाषा और वेद सबधी विषयों मे उनकी गहरी रुचि थी। यह उनके दो दर्जन से अधिक लेखों से ज्ञात होता है। शोधदृष्टि का पता तो इसी से चलता है कि उन्होंने पाणिनि की कविता विषयक टिप्पणिया लिखी हैं। शुष्क वैयाकरण को ललित कविता से जोडना गुलेरी जी जैसे अनु-

सघाता के लिए ही सभव है। 'वेद मे पृथिवी की गति', 'ब्रह्मदेवता', 'अश्वमेध', 'राजसूय', 'वाजपेय', 'मनुर्वैवस्वत', 'सौत्रामणि का अभिषेक', 'देवकुल', 'श्री-श्री श्री श्री', 'चारण', 'सवाई', 'पचमहाशब्द', सिंहलद्वीप म महाकवि कालिदास का समाधिस्थान', 'कालिदास की दशभाषा', 'चाणूर अध्र', 'आत्मघात', 'अवन्ति-सुदरी', 'आख', 'पृथ्वीराज विजय-महाकाव्य', 'जयसिंह प्रकाश', 'सस्कृत की टिपरारी' तथा 'महर्षि च्यवन का रामायण' आदि कृतिया उनकी जिज्ञासा तथा अनुसधान-प्रवृत्ति की ही परिचायक है।

गुलेरी जी के समग्र लेखन पर दृष्टिपात करन पर यह तथ्य उभरकर उजागर होता है कि ललित शैली के निबध-लेखको म उनका श्रेष्ठतर स्थान है, जिसे हिंदी-जगत् भूल रहा है। उन्होंने ललित निबधो का प्रणयन उस समय किया था जब भारतेन्दुयुगीन निबध लेखका की परपरा समाप्त हो गई थी। ललित निबधो एव टिप्पणियो मे 'घटाघर', 'जय जमुना मैया की', 'हा हा ता ता', 'मारेसि मोहिं कुठाउ', 'घडी के पुर्जे', 'अक्ल बनाम नस्ल', 'बनारसी ठग', 'पुरानी पगडी', 'पोथी पढ-पढ जग मुआ', 'ढेले चुन लो', 'काशी', 'कछुआ धरम', 'जोडा हुआ सोना', 'विवाह की लाटरी', 'अमगल के स्थान मे मगल शब्द' आदि उल्लेख्य हैं।

निबध मे आलोचना को स्थान दने वालो मे भी गुलेरी जी का उच्च स्थान है। उन्होन जयपुर स 'समालोचक' पत्र का पाच वर्षो तक सपादन किया और उसमे समीक्षाए भी लिखी। उन्होंने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का भी सपादन किया और उसमे भी समालोचनात्मक लख लिखे। इस प्रकार वह निबध के सभी प्रकारो को स्वीकार कर, हिंदी निबध के उन्नायको मे स्थान पाने योग्य ललित निबधकार हैं।

प्राच्य विद्या महार्णव महापडित श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की रचना-शैली की प्रधानता उसकी व्यावहारिकता मे है। भाषा मे विचित्र चलतापन है। छोटे-छोटे एव स्पष्ट वाक्य, मुहावरो का उपयुक्त प्रयोग, अवसर व विषयानुरूप शब्द-योजन उनके गद्य के आकर्षण-प्रसाधन हैं। विषय-प्रतिपादन की क्षमता उनम अपूर्व थी। इतिवृत्त निरूपण मे उन्होन स्थल-स्थल पर प्राचीन वैदिक तथा पौरा-णिक पदों और प्रमाणो द्वारा अपन कथन का समर्थन किया है। सामाजिक तथा आलोचनात्मक निबधो की लखशैली चुलबुली तथा चटपटी है। मुहावरो का इतना सुदर निर्वाह हुआ है कि अभिव्यजन का समस्त कौतुक उनके प्रयोग पर आश्रित दृष्टिगत होता है। शैली की इस विशिष्टता और अर्थगभित वक्ता के कारण उनकी रचनाओ मे वैयक्तिकता की छाप लग गई है।

सहजधर्मी समीक्षक

□ प्रभाकर माचवे

उनतालीस वर्ष की अल्पायु में दिवगत सस्कृत-पडित, पुरातत्त्वज्ञ, कथाकार, सत्समालोचक, बहुभाषाविद, शोधकार्यरत प्रतिभाशाली व्यक्ति के सस्मरण से मेरे मन मे एक युग उभर आता है। जब विद्या का मान था, और जिसे अग्रेजी मे 'लिबरल एजुकेशन' कहते है, उस प्रकार के विविध विषयग्राही और उदार अध्ययन की परपरा थी। गुलेरी जी हिंदी मे 'उसने कहा था' कहानी के लिए ही विशेष माने जाते हैं, जो कि गल्प-लेखन की शैली मे एक प्रतिमान उपस्थित करती है—विशेषत बोली का प्रयोग सवादो मे जिस सहजता से प्रयुक्त किया गया है और जैसा अमृतसर के बाजार का वर्णन बहुत कम शब्दो मे चित्रवत् गुलेरी जी उपस्थित करते है, उसकी मिसाल मिलनी बहुत मुश्किल है।

मैंने बहुत पहले उनका 'कछुआ धरम' निबध पढा था, जिसका असर मेरे मन पर रहा होगा। इसीसे जब इलाहाबाद से 'प्रतीक' निकला तो उसमे मैंने एक 'कछुआ' नामक कविता भी लिखी थी। आज जब गुलेरी जी के निबधो की विषय-सूची पढता हू तो उसका मनोहारी विषयवैविध्य मुझे बहुत आकर्षित करता है। हिंदी मे गभीरता और परिहास विजल्पितम् के मानो दो कक्ष बन गए हैं। आजकल हमारे तरुण और किशोर समीक्षक जब अनावश्यक गुरुगभीरता का लबादा ओढे 'दुनिया के अन्देशे से दुबले' होने का स्वाग भरते है तो मुझे बहुत हँसी आती है। दूसरी ओर हिंदी मे हास्य के नाम पर चुटकुलेबाजी और फूहडपन न उसकी साहित्यिक सांकेतिकता और सोफियानापन नष्ट कर दिया है। झूठी गभीरता और झूठा, फूहड, खोखला ठहाका दोनो मस्तिष्क के भीतर के खालीपन को व्यक्त करते है। दुर्भाग्य से हमारे तथाकथित अर्द्धसाहित्यिक पत्रो के अस्सी प्रतिशत से अधिक पन्ने इसी प्रकार के चर्वित-चर्वण, उबाऊ और अर्थशून्य शब्द-व्यायाम से अटे पडे हैं। जब मैंने सन् १९५० ई० मे 'खरगोश के सीग' पुस्तक मे कुछ परिहासपूर्ण व्यक्तिगत ललित निबध

लिखे तो हमारे मित्रगण मुझे 'विदूषक' कहने लगे (शमशेरबहादुर सिंह ने श्रीकांत वर्मा के पत्र 'कृति' में मुझे यह उपाधि सन साठ में ही दी थी) परंतु बर्नार्ड शॉ ने एक जगह लिखा है कि गंभीर से गंभीर बातें भी मैं अत्यंत अगंभीर शैली में कहता हूं। यही मेरी सिफत है। गुलेरी जी जैसे कुछ गद्य लेखक हिंदी में थे जिन्होंने भारतेंदु मंडल के बाद उस परंपरा को आगे विकसित किया। वही हास परिहासमय ललित निबंध हम बाद में विनोद शर्मा, भ्रमरानंद 'कुट्टिचातन' आदि उपनामों से लिखने वाले साप्रतिक लेखकों की शैली में मिलता है। गंभीरता और अगंभीरता का यह मिश्रण बहुत कम लोगों के हाथों सध पाता है।

एक ओर गुलेरी जी अत्यंत जटिल और कठिन शोधपरक विषयों पर टिप्पणियां लिखते हैं तो दूसरी ओर वह काव्यशास्त्र के विनोद अंश को भी नहीं भूलते। यह एक स्वस्थ चिंतन की परंपरा है। एक ओर 'वैदिक षष्ठ तप गोदानम' 'वेद में पृथिवी की गति' 'पाणिनि की कविता', 'सिंहलद्वीप में महाकवि कालिदास का समाधिस्थान' 'जालहस की सुभाषित मुक्तावली' और 'चन्द की षटभाषा' 'भारद्वाजगृह्यसूत्र', 'डिंगल' 'वैदिक भाषा में प्राकृतपन', 'मनुवैवस्वत' जैसे लेख हैं तो दूसरी ओर 'घटाघर', 'हा हा ता ता', 'बेसिर की हिंदी', 'ढल चुन लो', 'मख मारना' 'बनारसी ठग' 'ब्रह्मचारी को पान खिलाना', 'उलूक ध्वनि—हूरा' ऐसे भी शीर्षक हैं। मनोविज्ञान के जानकार बताते हैं कि बुद्धि जितनी ही तीव्र होगी, उतनी ही उसकी गति सर्वगामी होगी। प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी अनेक विषयों और भाषाओं के ज्ञाता अल्प वय में ही हो गए थे। योरोपीय और भारतीय पंडितों के साथ निकट से काम करने का उन्हें मौका मिला था और उनमें राजस्थान में रहने से एक ठेठ माटी का रंग और बनारसी रसियापन भी था। ऐसा विविध-आयामी संगम कम ही विद्वानों में पाया जाता है। संस्कृतज्ञों में एक प्रा० प० गाड थे जिन्होंने संस्कृत के गहरे विद्वान होने पर अनेक ऐसे छोटे छोटे विषयों को उठाया है जैसे 'प्राचीन भारत में खाने की वस्तुएं', 'ताम्बूल का इतिहास' या 'कई तरह के खेल' आदि। प० हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत 'प्राचीन भारत में कला विनोद' या प० मोतीचन्द्र कृत 'प्राचीन भारतीय वेशभूषा' आदि पुस्तकें हिंदी में अपवाद हैं। अधिकांश संस्कृतज्ञ हिंदी में दर्शन या भाषाविज्ञान तक ही सीमित रहे हैं, जबकि संस्कृत में किस विषय पर लिखा नहीं गया है।

मनुष्य जितनी ही ऊंचाई पर जाएगा, उसे नीचे की चीजें छोटी-छोटी नजर आएंगी। प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने दुनिया-जहान देखा, कई प्रतिष्ठित पदों पर काम किया। अल्पायु में ही उन्हें इस संसार की अनित्यता का बोध हो चुका था। इसी कारण से उनकी कविताओं, कहानियों और निबंधों के भीतर

एक मानवीय करुणा की अंतर्धारा है। निस्संगता के साथ-साथ सब रंगों में रस लेने का एक अपनापन है, एक गहराई के साथ-साथ पानी में दिखने वाली पारदर्शिता और निश्छलता है। इसी कारण से उनके निबंध आज भी अपूर्व आनंद देते हैं। उनकी संपादकीय टिप्पणियों की भांति बाद में 'सरस्वती' में श्री नारायण चतुर्वेदी की अनेक दशकों तक विविध विषयों पर लिखी टिप्पणियों तथा स्व० ललित विलोचन शर्मा की 'बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्' के 'साहित्य' पत्र में लिखी टिप्पणियों से गुलेरी जी के गुरुत्व की याद आती है। और भी कई ऐसे संपादक होंगे। आजकल तो ऐसे साहित्य-रसिकों का अभाव होता जा रहा है। मेरे जैसा मूर्ख जरा हर विषय में रोड़ा अड़ाता है तो उसे हमारे मित्र 'घिघियाते-घिघयाते बन गए घोंघा' (अज्ञेय की हम पर तुक्तक) कहते हैं। खैर, किसी के कहने न कहने से क्या आता-जाता है! अपना स्वभाव छोड़कर कहां जाएंगे, उनका यह दुरनिक्रम है, हमारा सहज भाव है।

स्व० पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी सहजधर्मी थे। उन्हें प्रणाम!

संस्कृतनिष्ठ साहित्य

□ सतराम वत्स्य

यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि गुलेरी जी मूलत संस्कृत और संस्कृति के क्षेत्र के व्यक्ति थ। किंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह आधुनिक युग के लिए हिंदी की उपयोगिता को नकारते थे या वैदिक युग की पुन स्थापना करना चाहते थे। संस्कृत-उपासना उनकी पारिवारिक परपरा थी।

कुछ तो गुलेरी जी की समग्र रचनाओं की अनुपलब्धता के कारण और कुछ उनके कृतित्व की मूल चेतना के वैदिक-पौराणिक वाड्मय पर आधारित होने के कारण हिंदी के पाठकों और आलोचकों ने उनके संस्कृतनिष्ठ साहित्य की उपेक्षा की है।

कहा जाता है कि गुलेरी जी ने चार-पाच वर्ष की अवस्था मे ही संस्कृत मे बात करना सीखकर 'अष्टाध्यायी' तथा 'अमरकोष' को लगभग कठस्थ कर लिया था। साथ ही दस वर्ष की अल्प वय म 'भारत धर्म महामडल' के वार्षिकोत्सव पर संस्कृत मे भाषण देकर विद्वन्मडली को आश्चर्यचकित भी किया था। अभी तीस वर्ष के भी नहीं हुए थे कि मेयो कॉलेज, अजमेर मे संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुए। उन्होंने वेद-वेदाग, महाकाव्यो तथा संस्कृत की अमर कृतियो का गहन अध्ययन किया था। दर्शन-शास्त्र पर भी उनकी गहरी पकड थी। यद्यपि उनकी संस्कृत-शिक्षा प्राचीन भारतीय पद्धति के अनुसार हुई थी तथापि अपन असाधारण अग्रेजी ज्ञान द्वारा उन्होने पश्चिम की आधुनिक अनुशीलन और अनुसधान पद्धतियो का प्रभूत ज्ञान प्राप्त किया था। यह मणि-काचन सयोग सुफलदायक सिद्ध हुआ। उन्होंने हिंदी साहित्य के प्राचीन और अर्वाचीन ग्रथो का अवधानपूर्वक अध्ययन और मनन किया था। संस्कृत के साथ-साथ पालि, प्राकृत और अपभ्रश का भी उन्हे पूर्ण ज्ञान था। अगरेजी के अतिरिक्त लैटिन, फ्रेंच और जर्मन भाषाओ के भी वह ज्ञाता थे।

गुलेरी जी के ज्ञान-क्षेत्र का आकलन करें तो वह वैदिक-पौराणिक वाड्मय

के मननशील अध्येता, संस्कृत-साहित्य के महारथी, हिंदी साहित्य के मर्मज्ञ, बहुभाषाविद्, पुरातत्त्ववेत्ता, धर्मकांड और न्यायशास्त्र के सुधी विद्वान, इतिहास-समाजशास्त्र के तलस्पर्शी ज्ञाता, मूर्तिशास्त्र और लिपिविज्ञान के विचक्षण विज्ञाता भी थे। वेद के मर्मज्ञ, तुलनात्मक अनुसंधान, कहानी-लेखन, निबंध लेखन, पत्र-लेखन, पत्रकारिता, अनुवाद, कविता, आलोचना, पाठालोचन, चित्रकला आदि कितने ही क्षेत्रों में उनकी गहरी पैठ थी। फारसी का भी उन्हें कार्यकारी ज्ञान था। उन्होंने इतिहास के क्षेत्र में पुस्तकों के अलावा पुरानी मुद्राओं, मूर्तियों, ताम्रपत्रों, शिलालेखों तथा पत्थरों की बहियों की छानबीन भी की थी।

संस्कृत के पंडितों के बारे में प्रायः यह समझा लिया जाता है कि वह गतानुगतिक होते हैं। मैं मानता हूं कि यह स्थापना भ्रांतिमूलक है और श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी जी के बारे में तो नितांत भ्रममूलक। उन्होंने अंत्यजों के वैदिक कर्मकांड में सम्मिलित होने के उदाहरण ब्राह्मण और सूत्र ग्रंथों से दिए हैं, और अंत में अपना मंतव्य प्रकट करते हुए कहा है—"इन कथाओं से यह सिद्ध होता है कि सभी प्रजा यज्ञ में सम्मिलित होती थी, राजा को सबमें अपनापन की बुद्धि होती थी। जो लोग अंत्यजों को वैदिक धर्म से दूर समझते हों, वे इस आख्यान को ध्यान से पढ़ें।"[1]

स्त्रियों के बारे में भी हमारा भूतकाल उज्ज्वल रहा है। 'अवंति सुंदरी' लेख में लिखते हैं कि 'अवंति सुंदरी' राजशेखर की पत्नी थी और वह काव्यशास्त्र की इतनी विदुषी थी कि 'काव्य मीमांसा' ग्रंथ में राजशेखर ने उसके मत को तीन जगह उद्धृत किया है।

श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी यह स्वीकार नहीं करते थे कि हम ज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में अपने पूर्वजों से आगे नहीं बढ़ सकते। अपनी चुटीली भाषा-शैली में लिखते हैं—"पिछले हजार दो हजार वर्षों से हिंदू सभ्यता में धर्म के नाम पर यह कुसंस्कार घुस गया है कि पहले जो कुछ हो गया वैसा अब नहीं हो सकता, अब गिरने के दिन हैं, चढ़ने के नहीं। प्रचलित धर्म और समाज के शोक-संगीत की टेक यही है कि न पहले का-सा समय है, न राजा, न ऋषि, न विद्या और न संपत्ति। वर्तमान आंदोलनों में भी आगे उन्नति करने की प्रवृत्ति को दबाकर यह रोग बढ़ता जा रहा है कि प्राचीन समय फिर लौट आवे तो हम निहाल हो जायं। जिस बुद्धि ने हिंदू सभ्यता की जड़ों में अवसर्पिणीकाल और कलियुग के तेल की सिंचाई की है, उसने बड़ा अनर्थ किया है, सारे समाज को उत्साहशून्य बना दिया है। और देशों में पिता पुत्र से यह आशा करता है कि वह मुझसे सब बातों में बढ़कर हो, पर यहां वह यही कहता है कि हमारी चाल निबाह लोगे तो बहुत है, हमसे बढ़कर क्या हो सकते हो। जहां पलने से लेकर बैकुंठी तक यही

1. गुलेरी-ग्रंथ : भाग-1, पृ० ६६, नागरी प्रचारिणी सभा, सं० २००० वि०

मनहूस शोर मचा रहता है कि जो पीछे गया अच्छा, आगे आवेगा वह बुरा-ही-बुरा होगा, वहा उन्नति की क्या आशा की जा सकती है ? यह बारहमासी आत्म-ग्लानि, यह निराशामय आत्मवचना, यह दुर्भाग्यजनक आत्मघर्षण, पहले न था। पहले लोग अपने पूर्वजो को बराबरी का समझते थे और यह असभव नही मानते थे कि हम उनसे बढकर हो सकते हैं। कम-से-कम उन पर यह निराशा का उन्माद और जन्म भर का सियापा तो नही चढा था कि हम गिरते ही जायगे।"[1]

यद्यपि उन्होने पाश्चात्यो की आधुनिक अनुसधान-पद्धतियो से प्रेरणा ग्रहण की थी तथापि पाश्चात्यो से अभिभूत होकर उनकी शोधो या आलोचनाओ को यथावत् स्वीकार नहीं करते थे। वह उनकी त्रुटियो और भ्रातियो का तर्कसम्मत ढग से निराकरण करते थे।

'बौद्धो के काल मे भारतवर्ष' नामक पुस्तक प्रो० रिस डेविड्स ने अग्रेजी मे लिखी थी। उसकी स्थापनाओ का युक्तिपूर्वक खडन करने के बाद अत मे वह लिखते है—"उन्नतिमत्त पाश्चात्य अपनी दशा को और देशो के इतिहास मे पढने का उद्योग करते हैं। यूरोपीय क्लर्जी ने राजाओ पर पीछे प्रभाव डाला और उनके और राजाओ के बीच इस बात पर लडाइया हुई, यही बात भारतवर्ष मे ढढना चाहते है। अपनी छठी शताब्दी की सभ्यता से बढकर सभ्यता यहा नही दिखाना चाहते और ब्राह्मण तो गालिया देने को हैं ही।"[1]

इससे स्पष्ट पता चलता है कि वह अगरेज इतिहासकारो के मन की निगूढ भावनाओ को कितनी अच्छी तरह समझते थे।

श्री चद्रधर शर्मा गुलेरी के सस्कृत-कृतित्व को निम्न विभागो मे बाटा जा सकता है—

१ सस्कृत मे उनकी मौलिक रचनाए, इसके अतर्गत उनकी छदोबद्ध स्फुट काव्य-रचनाए आती हैं।

२ सस्कृत वाङ्मय के तत्-तत् स्थलो का अनुवाद, इसके अतर्गत उनके निम्न लेख आते हैं—

(१) पृथु वैन्य का अभिषेक।
(२) मनु वैवस्वत।
(३) सुकन्या की वैदिक कहानी।
(४) शुन शेप की कहानी।
(५) पुराने राजाओं की गाथाए।
(६) वाजपेय।

१ गुलेरी-ग्रंथ भाग-१ पृ० १०४

(७) राजसूय।
(८) सौत्रामणी का अभिषेक।
(९) अश्वमेध।
(१०) वज्जालग्गम्।

३ कुछ संस्कृत शब्दों और संस्कृत ग्रंथों की विशिष्ट आलोचना है

(१) चाणूर अंध्र।
(२) पुरानी पगड़ी।
(३) तुतातित = कुमारिल।
(४) पंचमहाशब्द।
(५) देवानां प्रिय।
(६) मृगनेत्रा = मृगनक्षत्रा।
(७) वैदिक पष्ठतर गोदानम्।
(८) असूर्यम्पश्या राजदारा।
(९) उलूलू ध्वनि = हूर्रा।

और ग्रंथों में हैं—

(१) महर्षि च्यवन का रामायण।
(२) कादंबरी में उत्तरार्ध का कर्ता।
(३) कादंबरी और दशकुमारचरित के उत्तरार्ध।
(४) विक्रमोर्वशी की मूलकथा।
(५) भारद्वाज गृह्यसूत्र।
(६) बृहद्देवता।

गुलेरी जी ने कई जगह संस्कृत पद्यों का हिंदी पद्यानुवाद भी किया है—

(क) शुनःशेप की कहानी, (ख) पुराने राजाओं की गाथाएं, (ग) वाजपेय और (घ) राजसूय आदि लेखों में इसके नमूने देखे जा सकते हैं।

श्वेताम्बर जैन कवि जयवल्लभ के 'वज्जालग्गम्' के सुभाषितों में शब्द-लाघव, सारतत्त्व और नीतिमत्ता से आकर्षित होकर उन्होंने उसके चुने हुए पैंतीस सुभाषितों का प्राकृत से हिंदी में पद्यानुवाद किया था।

'वज्जालग्गम्' संग्रह कवि जयवल्लभ की मौलिक कृति न होकर, उपलब्ध सुभाषितों में से चयन किया गया संग्रह है। इसकी विशेषता यह है कि कवि ने वर्गीकरण करके इसे प्रस्तुत किया है।

इस अनुवाद के संबंध में वक्तव्य देते हुए श्री गुलेरी जी ने लिखा है—

"कवि का यह दावा है कि—

शृंगारयुत, रसीली, कामिनी-मनभामिनी मिठास भरी।
प्राकृत कविता रहत, संस्कृत को कौन है पढ़ता ?

" 'मैं उन गाथाओं का, मिलते हुए आर्या या गीति छंदो में, अनुवाद कर रहा हू । मेरे पास एक हस्तलिखित प्रति थी । अनुवाद जहा तक बन पडा, मूल प्राकृत से किया है । भाषा, भाव, श्लेष आदि को निभाने का यत्न किया गया है । एक जर्मन विद्वान का सपादन किया हुआ मूल, सस्कृत-छाया सहित, 'बिब्लोथिका-इडिका' में भी छपने लगा है । उसकी सस्कृत-छाया दोष-रहित नहीं है । आज उसी 'वज्जालग्गम्' की कुछ गाथाओं के नमूने 'सरस्वती' के पाठकों को भेंट किए जाते है । कही-कही टिप्पणी भी दिए देता हू ।' "[1]

ऐतरेय ब्राह्मण, ऋग्वेद, महाभारत, कौटिल्य अर्थशास्त्र, मनुस्मृति, सूत्र-ग्रंथों, वेदों, स्मृतियों, महाभारत और अन्यान्य सस्कृत-ग्रंथों से जो अनुवाद किया गया है, वह मात्र शब्दानुवाद है । वैदिक वाक्य-रचना की शैली दिखाने के लिए उसी तरह के हिंदी पदन्यास का औचित्य तो युक्तिसगत लगता है किंतु सभी जगह लकीर का फकीर बनना खटकता है ।

मूल पाठ को गुलेरी जी ने छोड दिया है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

कलि शयानो भवति, सजिहानस्तु द्वापर ।
उत्तिष्ठन् भवति त्रेता, कृत सपद्यते यदा ॥

इसका गुलेरी जी द्वारा किया गया अनुवाद यों है—

सोता कलि कहाता है द्वापर स्थान छोडता ।
त्रेता वह खडा जो हो, चलता कृत ही बने ॥[2]

इसमें लालित्य तो नाम को भी नहीं है । 'द्वापर स्थान छोडता' अशुद्ध भी है 'द्वापर स्थान छोडता' में तो मूल को सभवत ठीक से समझा ही नहीं गया है ।

गद्य के अनुवाद में भी 'मक्षिका स्थाने मक्षिकापात' का केवल एक उदाहरण इस प्रकार है—

"न मुझे कोई मनुष्य दे सकता है (सारी को) भुवन के पुत्र विश्वकर्मन्, तैने मुझे दे डाला ! मैं समुद्र के जल में डूब जाऊगी, कश्यप को भी दी हुई तेरी प्रतिज्ञा (सारी पृथ्वी देने की) व्यर्थ है ।"[3]

'वज्जालग्गम्' के सुभाषितो मे से एक सुभाषित यह है—

भाता दोष दिखाना, कवि-रचना मे उसी सुजन का है ।
जो काट कुपद को झट, सुदर पद दूसरा धर दे ।[4]

१ सरस्वती पृ० २८८, दिसम्बर, १६१६ ई०, सपादक महावीरप्रसाद द्विवेदी
२ गुलेरी ग्रथ, पृ० २४
३. वही, पृ० ३५
४. प्राकृत के कुछ सुभाषित ७, मूल २६, सरस्वती पृ० २८८, दिसबर, १६१६ ई०

इसका संस्कृत पाठ भी देख लिया जाए—

न शोभते दूषयन् कविजनरचितानि विविधकाव्यानि।
यो भङ्क्त्वा अपदम् अन्यपद सुन्दर ददाति ॥[1]

और प्राकृत पद्य इस प्रकार है—

सो सोइ दूसतो कइयणरइयाइ विविहकव्वाइ।
जो भजिऊण अवय (कुवय) अन्नपय सुदर देइ ॥

इसमे पहली बात तो यह है कि एक जर्मन विद्वान के संपादित किए हुए 'वज्जालग्गम्' की संस्कृत-छाया मे जो दोष गुलेरी जी ने दिखाया है, वह उनकी संस्कृत छाया मे भी है।

अंतिम पद मे 'सुदर पद दूसरा घर दे' इस अंश मे 'धर दे' प्रयोग भी खटकने वाला है।

मैं सुभाषित की चुनौती को न तो सही मानता हू और न स्वीकारता हू। क्या इसे यो नही किया जा सकता—

शोभा देता कविकृत विविध काव्य म दोष दिखाना।
उसको, जो सदोषपद को निज प्रतिभा से निर्दोष करे॥

'वज्जालग्गम्' का श्री गुलेरी जी द्वारा रचित पहला पद्य भी द्रष्टव्य है—

मोती जैसी कविता, स्वभाव विमला, सुवर्ण-जटिता, तब।
खिलती है, जब पडती, श्रोता के कर्ण-छिद्रो मे॥[3]

× × ×

मुक्ताफलमिव काव्य स्वभावविमल सुवर्णसघटितम्।
श्रोतृकर्णकुहरे प्रपतित (प्रकटित) प्रकट भवति॥[4]

इसमे भाव यह है कि सुवर्णा के कर्णाभरण मे जटित शुभ्र मोती जैसे शोभा पाता है, वैसे ही सुष्ठु वर्णविन्यास वाला विमल काव्य भी श्रोता के कर्णकुहरो मे पडकर प्रसार पाता है।

किंतु श्री गुलेरी जी के पद्यानुवाद मे खिलती है' और 'कर्ण-छिद्रो मे' ये प्रयोग खटकने वाले हैं। छिद्रा की जगह मूल का 'कुहर' शब्द ज्यो का त्यो भी रहने दिया जाता तो पद निर्दोष रह जाता।

१ वज्जालग्गम ३/२६ पृ० १०, प्राकृत ग्रथ परिषद् अहमदाबाद १९६९ ई०
२ वही ३।२६ पृ० १०
३ प्राकृत के कुछ सुभाषित १ सरस्वती पृ० २८८ दिसबर, १९१९ ई०
४ वज्जालग्गम पृ० ४ ५

" 'मैं उन गाथाओ का, मिलते हुए आर्या या गीति छदो मे, अनुवाद कर रहा हू । मेरे पास एक हस्तलिखित प्रति थी । अनुवाद जहा तक बन पडा, मूल प्राकृत से किया है । भाषा, भाव, श्लेष आदि को निभाने का यत्न किया गया है । एक जर्मन विद्वान का सपादन किया हुआ मूल, सस्कृत-छाया सहित, 'बिब्लोथिका-इडिका' मे भी छपने लगा है । उसकी सस्कृत-छाया दोष-रहित नही है। आज उसी 'वज्जालग्गम्' की कुछ गाथाओ के नमूने 'सरस्वती' के पाठकों को भेंट किए जाते हैं । कही-कही टिप्पणी भी दिए देता हू ।'"[1]

ऐतरेय ब्राह्मण, ऋग्वेद, महाभारत, कौटिल्य-अर्थशास्त्र, मनुस्मति, सूत्र-ग्रथों, वेदो, स्मृतियो, महाभारत और अन्यान्य सस्कृत-ग्रथों से जो अनुवाद किया गया है, वह मात्र शब्दानुवाद है । वैदिक वाक्य-रचना की शैली दिखाने के लिए उसी तरह के हिंदी पदन्यास का औचित्य तो युक्तिसगत लगता है किंतु सभी जगह लकीर का फकीर बनना खटकता है ।

मूल पाठ को गुलेरी जी ने छोड दिया है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

कलि शयानो भवति, सजिहानस्तु द्वापर ।
उत्तिष्ठन् भवति त्रेता, कृत सपद्यते चरा ॥

इसका गुलेरी जी द्वारा किया गया अनुवाद यो है—

सोता कलि कहाता है द्वापर स्थान छोडता ।
त्रेता वह खडा जो हो, चलता कृत ही बने ॥[2]

इसमे लालित्य तो नाम को भी नही है । 'द्वापर स्थान छोडता' अशुद्ध भी है 'द्वापर स्थान छोडता' म तो मूल को सभवत ठीक से समझा ही नही गया है ।

गद्य के अनुवाद मे भी 'मक्षिका स्थाने मक्षिकापात' का केवल एक उदाहरण इस प्रकार है—

"न मुझे कोई मनुष्य दे सकता है (सारी को) भुवन के पुत्र विश्वकर्मन्, तैने मुझे दे डाला । मैं समुद्र के जल मे डूब जाऊगी, कश्यप को भी दी हुई तेरी प्रतिज्ञा (सारी पृथ्वी देने की) व्यर्थ है ।"[3]

'वज्जालग्गम्' के सुभाषितो मे से एक सुभाषित यह है—

श्याता दोष दिखाना, कवि-रचना मे उसी सुजन का है ।
जो काट कुपद को झट, सुदर पद दूसरा धर दे ।[4]

१. सरस्वती पृ० २८८, दिसम्बर, १९१९ ई०, सपादक महावीरप्रसाद द्विवेदी
२ गुलेरी ग्रथ, पृ० २४
३ वही, पृ० ३५
४. प्राकृत के कुछ सुभाषित ७, सूत्र २६, सरस्वती पृ० २८८, दिसबर

इसका सस्कृत पाठ भी देख लिया जाए—

> स शोभते दूयपम् कविजनरचितानि विविधकाव्यानि।
> यो भङ्क्त्वा अपदम् अन्यपद सुन्दर ददाति ॥[1]

और प्राकृत पद्य इस प्रकार है—

> सो सोइ दूसतो कइयणरइयाइ विविहकव्वाइ।
> जो भजिऊण अवय (कुवय) अन्नपय सुदर देइ ॥

इसमे पहली बात तो यह है कि एक जर्मन विद्वान के सपादित किए हुए ज्जालग्गम्' की सस्कृत-छाया मे जो दोप गुलेरी जी ने दिखाया है, वह उनकी स्कृत छाया मे भी है।

अतिम पद मे 'सुदर पद दूसरा धर दे' इस अश मे 'धर दे' प्रयोग भी खटकने ाला है।

मैं सुभापित की चुनौती को न तो सही मानता हू और न स्वीकारता हू। ाया इसे यों नही किया जा सकता—

> शोभा देता कविकृत विविध काव्य म दोप दिखाना।
> उसको, जो सदोपपद को निज प्रतिभा से निर्दोप करे।।

'वज्जालग्गम्' का श्री गुलेरी जी द्वारा रचित पहला पद्य भी द्रष्टव्य है—

> मोती जैसी कविता, स्वभाव विमला, सुवर्ण जटिता, तव।
> खिलती है, जब पहनी, श्रोता के कर्ण-छिद्रो मे ॥[3]
>
> × × ×
>
> मुक्ताफलमिव काव्य स्वभावविमल सुवर्णमघटितम्।
> श्रोतृकर्णकुहरे प्रपतित (प्रकटित) प्रकट भवति ॥[4]

इसमे भाव यह है कि सुवर्णा के कर्णाभरण मे जटित शुभ्र मोती जैस शोभा पाता है, वैस ही सुष्ठु वर्णविन्यास वाला विमल काव्य भी श्रोता के कर्णकुहरों म पडकर प्रसार पाता है।

किन्तु श्री गुलेरी जी के पद्यानुवाद मे 'खिलती है' और 'कर्ण छिद्रों मे' के प्रयोग खटकने वाले हैं। 'छिद्र' की जगह मूल का 'कुहर' शब्द जों-का-त्यों रहने दिया जाता तो पद निर्दोप रह जाता।

१ वज्जालग्गम ३/२६ पृ० १०, प्राकृत ग्रथ परिषद् अहमदाबाद, १९६९ ई०
२ वही ३।२६ पृ० १०
३ प्राकृत के कुछ सुभाषित १ सरस्वती पृ० २८८, दिसबर, १९१९ ई०
४ वज्जालग्गम पृ० ४५

कर्ण-छिद्रों मे पडकर खिलने का बिंब बनता नहीं। खिलना शोभा पाने के अर्थ मे प्रयुक्त है। अगर 'कर्णावलबी' पद होता तो कर्णकटु दोष से बचा जा सकता था।

'गुलेरी-ग्रथ' मे प्रकाशित उनके लघुकलेवर लेखों (टिप्पणियों) को जब मैंने बहुत पहले पढा था तब मै समझ नहीं सका था कि वे इतने छोटे क्यों हैं। सपादक ने भी उनके प्रकाशन का विवरण नहीं दिया है। बाद मे समझ सका कि जब कोई विचार उनके मानस क्षितिज पर कौंधता था (या समकालीन साहित्य-जगत् म जो प्रश्न उठाए जाते थे) उनके सबध म वह अपनी प्रतिक्रिया को लेखनी-बद्ध कर लेते थे। इस तरह की कुछ टिप्पणियों के सबध मे जब उन्ह लगता कि कुछ और कहना बाकी रह गया है तो वह अगले अक मे उसे भी लिख डालते। उदाहरणस्वरूप 'कादबरी के उत्तरार्ध का कर्ता' और इसके बाद 'कादबरी और दशकुमारचरित के उत्तरार्ध'। इस सभावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि पाठकों की प्रतिक्रिया से भी नय विचार-बिंदु उभर आत होगे। किंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि उनका समग्र लेखन पत्रकारिता के स्तर का है। उनकी प्रौढ रचनाए— 'आख', 'देवकुल', 'शैशुनाक मूर्तिया', 'अवति सुदरी' 'पुराने राजाओं की गाथाए', 'पुरानी पगडी', 'कछुआ धरम' तथा 'मारेसि मोहि कुठाउ' आदि अनुपम है। उन पर श्री गुलेरी जी का अगाध पाडित्य तो प्रकट होता ही है, शोध की सही दिशा का भी ज्ञान होता है।

'चाणूर अध्र' विष्णुसहस्रनाम' मे आया शब्द है। पूरा नाम है—चाणूराध्र-निषूदन। कुल दस पक्तियों के इस लेख मे ८६ पक्तिया पाद-टिप्पणिया हैं।

इससे मिलती जुलती स्थिति 'महर्षि च्यवन का रामायण' की है। इसके पाच पृष्ठों के मूल कथ्य के लिए ग्यारह पृष्ठों की पाद टिप्पणिया हैं। हमारे हिमाचल प्रदेश का ग्राम देवता 'चानो' यही चाणूर है।

पुरानी पोथियों के सबध म लिखते समय पोथी के आकार प्रकार और लेखन के विषय म जानकारी किस तरह दी जानी चाहिए, इसका मानक नमूना 'जयसिंहप्रकाश' (रघुवश का हिंदी कविता मे पुराना अनुवाद) मे देखा जा सकता है।

देवकुल' निबध का प्रारभ बाण के जिस श्लोक से हुआ है, उसका उत्तरार्द्ध यो है— सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव' अर्थात् पताका वाले देवकुलो की तरह भास ने अपने पताकायुक्त नाटकों स यशलाभ किया। किंतु वह आगे लिखते हैं कि 'देवमदिरो से विपरीत इनमे (देवकुलों से अभिप्राय है) झडे, आयुध, ध्वजाए या कोई बाहरी चिह्न न होता था। इनम कौनसी बात ठीक है 'सपताकैर्देवकुलैरिव' या बाहरी चिह्नों का अभाव। इस तरह के 'देवकुल' पालमपुर और जयसिंह पुर जनपद (कागडा) मे देखे जा सकते है जो 'देहरिया'

कहलाते हैं। कुजद्वार से पैदल चलकर जयसिंह पुर की सीमा मे प्रवेश करते ही ये सडक के दोनो ओर बडी सख्या मे विद्यमान हैं।

मौलिक पद्य रचनाए चद्रधर शर्मा गुलेरी की मौलिक सस्कृत पद्य-रचनाए अगुलियों पर गिनी जा सकती है। इनमे भी तीन कविताए जार्ज पचम की प्रशस्ति मे लिखी गई है।

'स्वागतम्' कविता विवाह मे कन्यादान से पूर्व वर के स्वागत आदि किए जाने वाले कर्मकाड की पद्धति पर विरचित है। इसमे राजराजेश्वर (जार्ज पचम) का सारस्वत पुष्पाजलि से स्वागत करते हुए विष्टर, पाद्य, अर्घ, आचमन, मधुपर्क, गो, आशिष शीर्षको के अतर्गत पद्य प्रस्तुत है।

दूसरी जार्ज पचम स्तुति 'महिमा, आशी प्रद' के शीर्षक से प्रस्तुत है।

इसमे कहा गया है कि भारतीयो को जो पद इससे पूर्व स्वप्न मे भी नही मिले थे, उनके देने वाले राजेन्द्र की क्यो न वदना करें। उसके (जार्ज पचम के) सौ वर्ष जीने की कामना करते हुए, उन्हें अपने मानस पीठ पर आसीन किया गया है।

तीसरी कविता भी 'राजराजेश्वर को आशीर्वाद' के रूप मे प्रस्तुत की गई है। उन्हे आर्यधर्म का त्राता स्वीकार करते हुए, उनकी विजय की कामना की गई है।

भारतीयो के हृदय रूपी देहली—दिल्ली मे उनका हर्षोल्लास से स्वागत करते हुए उनका राज्य सदा स्थिर रहे, यह कामना की है।

आगे के पद्य मे उनको द्विजभूत, द्विजपति और द्विजावनिप की उपाधियो से विभूषित किया गया है।

इसके बाद ब्रिटिश और भारतीयो के नयनानद कारक जार्ज पचम को बाहरी और भीतरी अधकार का नाशक माना है।

तत्पश्चात् भगवान् से प्रार्थना की गई है कि हम (भारतीय) सदा के लिए आपको अपना स्वामी स्वीकार करते हैं।

अत म इद्रप्रस्थ मे इद्रस्वरूप (जार्ज पचम) को शाति, समृद्धि और विद्या का प्रसारकर्ता स्वीकार किया गया है।

सौ पहरो का दिन, सौ दिनो का महीना और सौ महीनों का वर्ष, ऐसे सौ वर्ष के दीर्घायुष्य की कामना जार्ज पचम के लिए की गई है। इस प्रकार जार्ज पचम की स्तुति करते समय गुलेरी जी आवश्यकता से अधिक भावाविभूत हुए से लगते हैं।

चौथी कविता शिव स्तुतिपरक है। सभवत चद्रधर के इष्ट चद्रमौलि ही हैं। यह सुदर रचना है। अनुप्रास की छटा दर्शनीय है। भक्त का दैन्य और अकिचनकारित्व मनोहर रूप स अभिव्यक्त हुआ है।

पाचवी कविता 'ग्रीष्म' है। चार पद्यों की इस कविता मे ग्रीष्म का वर्णन मनोहारी है।

कुछ इधर-उधर बिखरे हुए स्फुट पद्य भी गुलेरी जी के मिलते हैं। मुरारि तथा महिषासुरमर्दिनी और भगवान परशुराम की स्तुति मे उन्होंने एक-एक पद्य रचा है।

उन्होने अपने पत्रो मे भी यत्र-तत्र स्वरचित पद्यो का निवेश किया है।

कांगड़ा-चित्रकला और गुलेरी जी

□ डॉ० मनोहरलाल

कागडा-कलम का जन्म कालजयी कथाकार प० चद्रधर शर्मा गुलेरी के पैतृक गाव 'गुलेर' मे, महाराजा दलीप सिह (सन् १६६५-१७३० ई०) के समय हुआ। गुलेर के स्थानीय दरबारी कवि उत्तम ने अपने प्रबध काव्य 'दलीप-रजनी' मे गुलेर के इतिहास का विस्तृत तथा सागोपाग वर्णन किया है।

यद्यपि गुलेरी जी के कार्यक्षेत्र अजमेर, जयपुर, इलाहाबाद, वाराणसी तथा कलकत्ता रहे हैं तथापि वह अपने पैतृक गाव (गुलेर) आते-जाते रहते थे। गुलेर-नरेश महाराजा बलदेव सिह उन्हें अपना गुरु मानते थे। महाराजा के निजी सग्रहालय के चित्रों तथा हस्तलिखित ग्रथों का गुलेरी जी ने समय-समय पर अध्ययन भी किया था। वह सन् १६१८ ई० मे कागडा-कलम के कतिपय चित्रों को आधार बनाकर लेख लिखने के लिए प्रयत्नशील थे। जब कागडा शैली के कुछ चित्र उनके मझले भाई श्री सोमदेव शर्मा गुलेरी ने प० झाबरमल्ल शर्मा (कलकत्ता) को बेचने के लिए दे दिए तो कुछ दिन बाद गुलेरी जी ने उन चित्रों को लौटा देने के लिए प० झावरमल्ल शर्मा को अपने ५ जनवरी, १६१८ के पत्र मे लिखा था—' कागडा-शैली के कुछ चित्र मध्यम ने आपको बेचने के लिए दिए थे। उनके सबध मे एक लेख मुझको लिखना है। उनमे से एक की पृष्ठ पर कुछ हिसाब लिखा है जो लेख मे काम आवेगा। अतएव मुझे आप उन चित्रों को लौटा दें। लेख मे भी एक-आध चित्र छपवाना है। फिर बाकी, यदि हुआ तो लौटा दूगा।"

गुलेरी जी प्रख्यात वैयाकरणाचार्य भी थे। प्राय वैयाकरणाचार्यों को शुष्क तथा नीरस कहा जाता है। उन्होंने अनेक स्थलो पर (दबी जबान से ही सही) इस बात को स्वीकारा भी है। यह अलग बात है कि उनकी कृतियों मे, व्याकरण जैसे शुष्क तथा रूखे विषयों मे भी हास्य का दखल रहता है और वह अपनी कृतियों मे व्याकरण के पंडितों पर लगाए जाने वाले ऐसे दोषारोपण के खडन के

लिए भी प्रयत्नशील रहते हैं। यही कारण था कि इस उद्देश्य से वह कभी-कभी उपस्थित परिस्थिति में हास्य की तरंग पैदा कर चुटकी भी लिया करते थे। उनका अगरेजी में लिखित 'ए साइड मौलाराम' लेख भी इस बात का अपवाद नही है। यह लेख 'रूपम्' (अप्रैल, १९२० ई०) की दूसरी संख्या में छपा था।

वाराणसी के विश्वविख्यात कला-समीक्षक स्व० रायकृष्णदास की गुलेरी जी के साथ प्रगाढ मैत्री थी। साहित्य रचना में समानधर्मी होने के कारण दोनो विद्वान एक दूसरे के प्रशंसक भी थे। कभी रायकृष्णदास के मन मे यही यह रहा होगा कि संस्कृत साहित्य और व्याकरण का पुरोधा गुलेरी चित्रकला के बारे में क्या जाने ! गुलेरी जी ने कुछ कुछ इसी बात को लेकर 'ए साइड मौलाराम' लेख लिखा था। वह अपने कृतित्व में पुरानी स्थापित मान्यताओं का पुनर्मूल्यांकन करके नई स्थापना करने में भी दक्ष थे। वह इस कवि-कर्म के लिए सप्रमाण तथा सोदाहरण तर्क भी जुटाते थे। बस, सरकार (रायकृष्णदास) को चौंकाने तथा उनके विनोदार्थ लिखे इस लेख के विषय में उन्होंने अपने १ अक्तूबर, १९२० ई० के पत्र में अपने को चित्रकला समीक्षा का 'अनधिकारी' तथा अपनी कृति को 'अनधिकार चर्चा' की संज्ञा देते हुए राय साहब को लिखा—

एक अनधिकारी ने 'रूपम्' की दूसरी संख्या में मौलाराम के एक चित्र के बारे में कुछ अनधिकार चर्चा की है। आप उस पर हँसे होंगे कि चितेरी के विषय से कोरे वैयाकरण का यह साहस ! आपके विनोद के लिए वह लिखा गया था।'

स्पष्ट है कि प० झाबरमल्ल शर्मा को लिखे पत्र के अनुसार कांगड़ा-शैली के वे चित्र एकाधिक थे और गुलेरी जी ने उनमें से एक को ही अपने लेख का विषय बनाया था। पर 'रूपम्' में मौलाराम के जिस चित्र को लेकर लेख लिखा गया, यह वह चित्र नहीं था जिसकी पृष्ठ पर लिखे हिसाब का लेख में उपयोग किए जाने का संकेत उन्होंने प० झाबरमल्ल शर्मा को दिया था। बहुत संभव है, इस संदर्भ में उनका कोई दूसरा लेख अन्यत्र छपा हो।

गुलेरी जी द्वारा स्व० रायकृष्णदास को गुलेर से लिखे २० नवबर, १९१८ ई० के पत्र से ज्ञात होता है कि *उन दिनों वह अपने पिता का चातुर्वार्षिक श्राद्ध* करने गुलेर गए हुए थे। बहुत संभव है, उन्हें अपनी इस गुलेर-यात्रा में गुलेर-दरबार से ये सब चित्र उपलब्ध हुए हों जिनका उल्लेख उन्होंने प० झाबरमल्ल शर्मा को लिखे अपने ७ जनवरी, १९१८ ई० के पत्र में किया।

गुलेरी जी ने जिस एक चित्र के पृष्ठ पर जिस हिसाब की चर्चा की है, वह भी मौलाराम की चित्रशैली होने का प्रमाण है। पहाड़ी चित्रकला के मर्मज्ञ विद्वान श्री किशोरीलाल वैद्य ने अपनी पुस्तक 'पहाड़ी-चित्रकला' में लिखा है—"मौलाराम

बहुमुखी प्रतिभा का धनी था, जिसका परिचय हमे उसकी चित्रकला तथा काव्य-कृतियों से मिलता है। उसने अनेक चित्रो का सकलन भी कर रखा था जिसमे अपनी कलाकृतियो के अतिरिक्त उसके साथियो तथा उसके शिष्यो के चित्र भी रहे होंगे। अनेक चित्रों के ऊपर अथवा पृष्ठ पर कुछ पद्यात्मक पक्तिया लिखी गई हैं, जिनसे मौलाराम द्वारा उनके चित्राकन का सीधा पता चलता है।'[१]

गुलेरी जी ने अपने लेख मे मौलाराम का जन्म सन् १७६० ई० तथा निधन सन् १८३३ ई० दिया है। उन्होने स्पष्ट किया है कि किसी राजनीतिक षड्यत्र के कारण औरगजेब के भतीजे सलीम को सुरक्षा की दृष्टि से गढवाल-नरेश फतेहसिंह (श्रीनगर-दरबार) की शरण लेनी पडी तो उनके साथ आए दो कलाकार शामदास और केहरदास यही रह गए और उन्ह पचास गावो का दीवान बना दिया गया। उन्हें पाच रुपये प्रतिदिन के हिसाब से भत्ता भी दिया जाने लगा। (ये दोनो पिता पुत्र थे) उन्ही से यह पुश्तैनी कला मौलाराम को मिली। मौलाराम उन्ही की चौथी पीढी (?) का था। उसकी कला से सिद्ध है कि वह जन्मजात कलाकार था। वह हिंदी तथा फारसी का कवि भी था। उसकी उपलब्ध पाडुलिपिया तथा चित्रावली औरगजेब के युग के इतिहास का जीवत दस्तावेज है। मौलाराम का औरगजेब के युग के इतिहास की परिगणना तथा सुरक्षा मे बडा योगदान है। गुलेरी जी ने लिखा है कि कुमार स्वामी ने 'राजपूत पेंटिंग' मे इस चित्रकार की कला की अच्छी चर्चा की है।

गुलेरी जी ने आगे लिखा है कि कुमार स्वामी ने मौलाराम के सन् १७७५ ई० के एक चित्र तथा उस पर लिखित एक दोहे का उल्लेख किया है। अपने लेख मे गुलेरी जी ने दोहा तो उद्धृत नही किया। हा, उसका भावार्थ भर देते हुए लिखा है—हजारो और लाखो या अरबो रुपयो के स्वर्ण और गावो का क्या मूल्य? मौलाराम तो अपने जीवन की सार्थकता सद्भाव, कीर्तिस्व तथा कुशल-क्षेम और कल्याण मे ही समझता है। इस चित्र का नाम 'मोर प्रिया' है। इसमे नवयौवना नायिका मोर से खेल रही है। वैसे चित्र के ऊपर दिए दोहे का पाठ इस प्रकार है—

कहा हजार कहा लक्ष है, अरब खरब धन ग्राम।
समझै 'मौलाराम' तो, सरब सुदेह इनाम॥[२]

गुलेरी जी ने मौलाराम के जिस चित्र को आधार बनाकर अपना लेख तैयार किया है उससे मौलाराम का कवि कर्म तथा कला कर्म दोनो ही लक्षित है। इस

१ पहाडी चित्रकला किशोरीलाल वैद्य, पृ० १४५, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९६९ ई०

२. गढ़वाल की दिवगत विभूतिया भक्त दर्शन, पृ० ७४ द्वितीय सस्करण —सपादक

चित्र का रचनाकाल सन् १७६५ ई० है। उस समय मौलाराम ३५ वर्ष का था। चित्र का विषय 'चद्रमुखी नायिका' है। वह बाग मे भ्रमणार्थ निकली कि उसके मुह को चद्रमा समझकर चकोर उस पर झपट पडा। वह अपने दुपट्टे से उसे हटाती हुई बच निकलती है। इस चित्र का सामाजिक सदर्भ —'धृष्ट नायक' की लपटता है, जिसका उसे चकोर के प्रतीक अर्थ मे शिकार होना पडता है। मौलाराम ने इस चित्र के साथ एक सवैया भी अपने हस्तलेख में लिखा है जो खडित हो गया है। गुलेरी जी ने इस सवैय पर टिप्पणी भी की है। यह सवैया यो है—

> बाग बिलोकन कू नवला निकसी मुखचद्र दिखावत ही।
> लखी सग च (कोर)······ ··सब्द कठोर सुनावत ही॥
> उझकि-उझकि फिरकी-सी फिरि चहु आशहि······।
> कवि 'मौलाराम' चली हटी के दुपटा पट चोट बचावत ही॥

इस पर गुलेरी जी की टिप्पणी है—"सचमुच इस छद के मूल मधुर शब्दो को यहा प्रस्तुत कर पाना कठिन कार्य है तथापि नीचे दिए गए इस छद के भावानुवाद मे छद के कथ्य को स्पष्ट करते हैं—एक नवयुवती बाग देखने के लिए निकली। ज्यो ही उसने अपना सुदर मुखचद्र बाहर निकाला (दिखाया), एक ढीठ चकोर उस पर झपटा और अपनी कठोर वाणी सुनाकर उसे दग्ध करने लगा। वह नवेली बडी शालीनता और फुर्ती से पक्षी के अप्रासगिक दुर्व्यवहार से बचती हुई फिरकी की तरह घूम गई। 'मौलाराम' कहता है कि नायिका ने मौका सभाला और वह अपने दुपट्टे के छोर से पक्षी पर हल्का-सा प्रहार करती हुई, उसे चकमा देकर पीछे मुड गई।"

गुलेरी जी ने स्पष्ट किया है कि इस नायिका की वेशभूषा कागडा चित्रकला की नायिकाओं की वशभूषा जैसी है। गढवाल तथा कागडा-कलम मे ऐसा साम्य है। उन्होंने मौलाराम द्वारा चित्रित इस सुदर नायिका के पीले दुपट्टे तथा चकोर को प्रताडित करती हुई के चित्रित अनुभावो की भूरि भूरि प्रशसा की है। स्पष्ट है कि मौलाराम के नायिकाभेद-सबधी चित्र बडे महत्त्व के है।

कागडा, गुलेर तथा गढवाल के रजवाडो के परस्पर बडे मधुर सबध थे। मौलाराम के जीवनकाल मे गुलेर मे महाराजा प्रकाशचद (सन् १७६०-१७९० ई०), महाराजा भूपसिंह (सन् १७९०-१८११ ई०), सिक्ख शासन (सन् १८११-१८२० ई०) तथा महाराजा समशेरसिंह (सन् १८२० ई०) का राज्य था।

ध्यातव्य है कि मौलाराम को गढवाल के महाराजा प्रदीपशाह (सन् १७१७-१७७२ ई०), ललितशाह (सन् १७७२-१७८० ई०), जयकृतशाह (सन् १७८०-१७८५ ई०) तथा प्रद्युम्नशाह (सन् १७८५-१८०३ ई०) का दरबारी होने का अवसर मिला। इन्हे कागडा के महाराजा ससारचद के दरबार मे भी समय-

समय पर सम्मान प्राप्त होता रहा था और वह अपने कागडा-प्रवास के दिनो मे गुलेर, डाडासीबा, सुजानपुर, सिरमौर तथा मडी-सुकेत के राजदरबारो से भी जुडे रहे। उनके गुलेर-नरेश समशेरसिंह की स्तुति म 'समशेर-जग चद्रिका' तथा 'ज्वालामुखी' की स्तुति मे 'ज्वाला-महिमा ग्रथ इसका प्रमाण है। गढवाल-नरेश ललितशाह के पुत्र प्रद्युम्नशाह का विवाह गुलेर राजवश के अजबसिंह की बेटी के साथ हुआ था। इस घटना का प्रभाव गढवाल-कलम पर पडना स्वाभाविक था। दोनो राजवशो के चितरेगे तथा कृतियो का आदान-प्रदान भी हुआ होगा। दहेज मे कागडा-शैली के चित्र अवश्य ही गढवाल गए होगे और यदि मौलाराम का जन्म सन् १७८० ई० के आसपास मान लिया जाए तो वह अवश्य ही गुलेर के आरभिक चितरेरा—पडित सेऊ तथा उसके दोनो पुत्रो (मानकू और नैनसुख) तथा महाराजा ससारचद के दरबारी चितरेरा —खुशाला, कुशनलाल, फत्तू और पुरखू —से भी मिले होगे, उनके चित्रो का अध्ययन भी किया होगा।

गुलेरी जी का मौलाराम की चित्रकला के सदर्भ मे लिखना विशद अध्ययन तथा इतिहास-ज्ञान का सूचक है। यह लेख कागडा-चित्रकला तथा कागडा के ब्रजभाषा साहित्य के अध्ययन मे बडा सहायक है। 'मौलाराम' का शुद्ध नाम 'मौलराम' है। इसी को उसने अपनी दर्जनो ब्रजभाषा की काव्य-कृतियो मे 'कवि-छाप' के रूप म प्रयोग किया है।

रायकृष्णदास के नाम पत्र

□ सपादक

प० चद्रधर शर्मा गुलरी जी के पत्रा म उनका व्यक्तित्व झलकता है पाडित्य छलकता है और पारिवारिक मधुर स्नेह तथा हास्य व्यग्य की फुलझडिया आलोकित होती है। उनका पत्र व्यवहार अपने समकालीन लगभग सारे साहित्य सेविया स था। इनम सवश्री महावीरप्रसाद द्विवदी, प्रेमचद जयशकर प्रसाद श्यामसुदरदास रामचद्र शुक्ल कामताप्रसाद गुरु मैथिलीशरण गुप्त रायकृष्ण दास तथा प० झाबरमल्ल शर्मा के नाम अग्रणी है।

गुलरी जी के विद्वानो स होने वाले पत्राचार मे हिंदी तथा देश प्रम भरा रहता था। किसी सीमा तक स्वाभाविक रूप से साहित्य सृजन को व्यक्तिगत गतिविधिया तथा उपलब्धियो के साथ घर परिवार के दुख सुख का मुखर हो उठना भी अपवाद न था।

गुलेरी जी के स्व० रायकृष्णदास तथा प० झाबरमल्ल शर्मा के साथ बड ही आत्मीय सबध थ। इनके साथ हुआ पत्राचार गुलरी जी की गुरु गरिमा प्रतिभा तथा जीवन दशन का दिग्दशन कराता है। मुझ वाराणसी के श्री मुरारीलाल जी केडिया क सौजन्य स गुलेरी जी के रायकृष्णदास जी क नाम लिखे कुछ पत्र उपलब्ध हुए है। य पत्र गुलरी जी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर शोध करन वाला के लिए बड उपादेय है।

गुलेरी जी अपने पत्रा पर आरभ म सबसे ऊपर ॐ नम शिवाय लिखा करत थे। उन्होन रायकृष्णदास जी की सवा म एक पत्र २५ १०-१९११ ई० को लिखा था। राय साहब उन दिना सरोज निकालन क लिए प्रयत्नशील थे और उनस उसके लिए लिखने का आग्रह कर चुके थे। गुलेरी जी ने अपने लखन के लिए फाउ ड्री शब्द का प्रयोग किया और कुछ बढिया लिखने की बात कही। उनकी मान्यता थी कि कच्चा पक्का न लिखा जाए। कारण, वह राय साहब की विद्वत्ता के कायल थे। वह राय साहब को हिंदी का 'सर एड्विन आनल्ड कहते

थे। सप्ताह भर मे लेख भेजने के लिए प्रतिश्रुत हुए गुलेरी जी लिखते हैं—

प्रियवर राय साहब, चिरजीव

आपका एक कृपापत्र आया। दूसरे की प्रतीक्षा रही।

मैं बडे हर्ष के साथ 'सरोज' के लिए लेख भेजगा। मैं सोचता ही था कि क्या भेजू, क्योकि आजकल कुछ तैयार नही है। 'फाउन्ड्री' मे एक तैयार है सही, परन्तु वह श्रीमती नेहरू के लिए है, इससे लाचारी है। फिर आपके लिए कोई चीज ऐसी वैसी तो नही भेजनी चाहिए, बढिया चीज चाहिए। नही तो सर एड्विन आर्नल्ड के हिन्दी अवतार को पसद कैसे आवे ?

पाठक जी तथा शुक्ल जी को मेरा यथायोग्य प्रेम-नमस्कार कहे। अपने लिए मेरे शुभ आशीर्वाद-कलाप स्वीकार करे।

आपका

श्रीचद्रधर शर्म्मा गुलेरी

पुन — शुक्ल जी की शिकायत है उनने 'मैंडल' विषयक मेरे पत्र का उत्तर नही भेजा !!

लेख एक सप्ताह मे भेज दूगा।

सन् १९११ ई० के दिसबर तथा १९१२ ई० की जनवरी का, गुलेरी जी के साहित्यिक जीवन मे अपना महत्त्व है। सन् १९११ ई० मे उनकी प्रथम कहानी 'सुखमय जीवन'—'भारत मित्र' मे छपी थी और इन्ही दिनो 'मर्यादा' मे 'वाजपेय', 'राजसूय', 'सौत्रामणी का अभिषेक', 'शुन शेप की कहानी', 'पुराने राजाओ की पुरानी गाथाए', 'मनु वैवस्वत', 'पृथु वैन्य का अभिषेक', 'सुकन्या की वैदिक कहानी' तथा 'अश्वमेध' प्रभृति लेख छपे थे। 'मर्यादा' के लेखो की ओर राय साहब का ध्यान आकृष्ट करने तथा 'सरोज' की साहित्यिक गरिमा एव मुद्रण आदि की समस्या को लेकर गुलेरी जी ने २-१२-१९११ ई० को अपना पत्र अजमेर से लिखा था। राय साहब ने अपने पत्र मे उनसे 'कलकत्ता' जाने के विषय मे पूछा था तो उनका उत्तर था राजराजेश्वर (जार्ज पचम) के परिप्रेक्ष्य म नहीं, बल्कि 'साहित्य-सम्मेलन' की बात हो तो अवश्य।

ध्यातव्य है कि 'मर्यादा' के उक्त अको में गुलेरी जी जार्ज पचम की स्तुति मे सस्कृत मे 'राजराजेश्वर को आशीर्वाद' तथा 'राजराजेश्वर का स्वागत' शीर्षक कविताए भी लिख चुके थे, जिनमे उनका खूब प्रशस्तिगान था। पर इस पत्र से उनके मन की अगरेजी शासन-विषयक वितृष्णा झलकती है। यह पत्र अनेक दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है। लिखते हैं—

'धीर' मान्यवर राय साहब, आशीर्वाद

आपका कृपापत्र पाकर चिन्ता और धन्यवाद की सृष्टि हुई। आपने शारीरिक कष्ट पाया इससे प्रथम भाव और आप अब नीरोगता के मार्ग पर चल रहे हैं इससे परमेश्वर की ओर दूसरा। परमेश्वर आपको चिरायु करें!

आपकी 'तकल्लुफ-पूर्ण' बातों का उचित उत्तर यह वैदिक ग्रामीण ब्राह्मण दे नही सकता उसके लिए क्षमा की जाय। 'नहूसत का कौआ' यह महाविरा हो चला है गत मास की मर्यादा देखिए। आशा है कि आप शीघ्र पूर्ण आरोग्य लाभ करेंगे। लेख को जब हिन्दी-आर्नल्ड पसन्द करे तब बात है—

गाँव बसाया बाणियें
बस जाये जद जाणिये!

अब 'सरोज' के खिलने के मार्ग मे कठिनाइया न रही होगी। अब उसके 'प्रकाशक' को ही 'मुद्रक' कहना पडता है! प्रिन्टर का अनुवाद 'विकासक' कीजिए, 'मुद्रक' नहीं।

मुझे गौरीशकरप्रसाद जी से कुछ लिल्लाही बुगज नही है। वे प्रसन्नता से काम करें। परन्तु फिर परस्पर वैमनस्य-कारिणी पार्टी म खडी होनी चाहिए। मेरे प्रस्ताव जैसे निरपराध विषय पर विवाद क्यो हुआ? पाठक जी लिखें तो जान पडे।

ओझा जी दिल्ली गए हैं और श्रीमती मेरी महारानी के अजमेर तारीख २१ को आने के कारण वे व्यग्र हैं। उस पीछे उनसे पूछकर उत्तर लिखूगा।

'कलकत्ते आएगे'—इस प्रश्न का क्या अर्थ है? यदि राजराजेश्वर के वहा रहने पर, तो 'नही' और यदि अग्रिम साहित्य सम्मेलन पर तो 'आपके साथ'।

आपका
श्रीचद्रधर शर्म्मा

पुन —शुक्ल जी और बाबू साहब को 'स्मरण'—पाठक जी को विशेषत श्रीमती बगमहिला का लेखसग्रह ही नही मिला, वाचस्पत्य तो कहा?

और फिर जाने क्यो, गुलेरी जी तथा राय साहब के बीच पत्र-सपर्क टूट गया तो पाठक जी ने राय साहब को गुलेरी जी का स्मरण कराया। तब राय साहब ने दिसबर, १९१२ ई० के प्रथम सप्ताह मे उनको एक पत्र लिखा जिसका उत्तर गुलेरी जी ने मेयो कॉलेज, अजमेर से १७-१२-१२ को दिया। इस पत्र मे नाराजगी नही, स्नेह व्यक्त था और अपने ब्राह्मणत्व की प्रतिष्ठा थी। राग-द्वेष से परहेज था। घर-परिवार की चर्चा तथा 'सरोज' की सुध थी। इस पत्र की विशेषता यह है कि इसमे गुलेरी जी ने पूर्ण विराम (।) के स्थान पर अगरेजी के पूर्ण विराम (.) का प्रयोग किया है। लिखते है—

प्रियवर राय साहब,

आशीर्वाद

मैं पाठक जी का बहुत ही उपकृत हू कि उनने आपके काशी से जाने के विषय मे झूठी खबर लिखकर आपको इस बात पर बाधित किया कि आप मुझे स्मरण करें

मैं आपसे नाराज कभी न था, न हू। आपने मेरे कोई अपराध नही किए हैं, इसको छोडकर कि आप मुझे भूल गए हैं यो तो मैं ब्राह्मण हू, आप वैश्य, चरणा पर शिर कई दफा रखवाऊगा, परतु किसी मानसिक अपराध के लिए ऐसा न कीजिएगा, क्योकि अभी वह हुआ ही नही आगे यदि हो जायगा तो उसकी blank cheque अभी लिखे देता हू.

मैं कलकत्ते नही जाऊगा. यहा से १६ चलकर वहा २१ को नही पहुच सकता। दूसरे, कुछ और भी कारण है.

काशी बुलाने के लिए धन्यवाद

ओझा जी कदाचित् ता० २३ को चलकर काशी सवुट्ठ आवे. यदि आवेगे तो मैं तार दूगा

मुझे आपसे मिलने की उत्कठा बहुत ही है. परमेश्वर आपसे मिलने का सुयोग लावे. बडे दिनो मे, खेद है कि, नही आ सकूगा यदि सकता तो बडे प्रेम से आता.

भाई जगद्धर प्रयाग हिन्दू बोर्डिग हाउस मे है। थर्ड इयर की सेवा करता है। काशी से प्रयाग आना हो तो मिलिएगा

काशी वाले चुप हैं चिन्ताशील शुक्ल जी—सर एड्विन आर्नल्ड—चुप, जन्तुकेतु जी चुप—आप भी चुप.

आप लोगो से मिलने के लिए कैसे काशी आकर बस जाय!

सच्चे ही, सरोज का क्या हुआ?

आपका वही

श्रीचन्द्रधर शर्मा

गुलेरी जी के छोटे भाई सोमदेव शर्मा गुलेरी की पत्नी अस्वस्थ रहने लगी तो वैद्य महोदय ने 'परवल' सेवन का पथ्य बताया। तब उन्होने राय साहब को ६-२-१५ का पत्र, प्रति सप्ताह पाच सेर परवल भेजने के निवेदन को लेकर लिखा। पर तब तक सन् १९१२ ई० से निकलता चला आ रहा 'सरोज' नही निकल पाया था इसलिए उन्होने 'सरोज' पर श्लेष लगाकर उसके लिए लिखने का फिर आश्वासन दिया। उन्होने आगाह किया कि पार्सल अजमेर न भेजकर जयपुर भेजा जाए। यथा—

प्रिय राय साहब

आशीर्वाद

बहुत व्यग्र हू मरे छाटे भाई सोमदेव की स्त्री बहुत बीमार है परवल चाहिए, यहा तो मिलते नही क्या आप कृपा करक प्रति सप्ताह एक पाच सेर का परवल का पासल फ्रश फ्रूट के ढग पर रेल स नही भज सकते ? पता प० सोमदेव गुलरी जयपुर रेलवे स्टेशन बी०बी० सी० आई० अजमेर न भजिएगा महीने के अन्त मे हिसाब कर लिया करग बडी कृपा हागी यदि भजा कर

आजकल चिंतित हू चि ताहर भगवान न किया तो आपके सरोज क खिलन पर साथी होऊगा

आपका

श्रीचद्रधर शर्मा

यह परवल गाथा आग भी चलती रही। गुलरी जी सन १६२१ ई० मे हिंदू विश्वविद्यालय म महामना पडित मदनमोहन मालवीय जी के निमत्रण पर प्राच्य विभाग के प्राचाय तथा पुरातन इतिहास एव धम की मनीद्र चद्र नदी स्कालर चेयर के प्रोफसर नियुक्त हुए तो एक बार फिर परवल पर भाषा भगी के रूप म टिप्पणी करते हुए परबल कहकर राय साहब स निवदन किया। यह महत्त्वपूर्ण पत्र उनके काशी मे रहने की व्यवस्था आदि विषय म भी प्रकाश डालता है। पत्र यो है—

मेयो कालेज

अजमेर

१८ ७ १६२१

माननीय राय साहब

अब परवल न भेजिएगा। अब तो आप वहो खिलाइएगा। अब हम वही आपके परबल हुए आप स्वबल रह। मैं आपन सुना ही होगा कि काशी आता हू। ता० २७ को यहा स यात्रा का मुहूत है। अब सारा भार आप पर है। नए विदेशी की सभी समस्याए हल करना।

घर नौकर पलग फर्नीचर कभी पहिए के पैर सलाह आदि सब देना होगा। एक दिन को गुरुगृह जाऊगा। पीछ बाबू साहब कहते हैं कि हमने लाहोरी टोला म बडा मकान लिया है उसी म रहा। मैं विश्वविद्यालय क पास रहना चाहता हू। आपक यहा देसाई वाला बगला यदि खाली हो तो सर्वोत्तम था। आपका साथ और स्वास्थ्य कि तु बहुत दूर है। कामाख्या म कोई बगला या घर दिला दीजिए। या पुराने हिंदू विश्वविद्यालय के जितना पास कोई घर मिल

सके, खुला तथा अच्छा, खोज करवा रखिए। सम्भव है कि आप ही का कोई हो, या किसी परिचित मित्र का हो। साम से मिले तो साम से (याने यो ही) दाम से मिले तो वैसे। सुना है कि वहा विजयनगरम् वालो की छोटी कोठी है। बाग है, कुआ है। विजयनगरम् के राजकुमार को लिखा है। आप भी टोह लगाइए। वहा उनका एजेंट होगा। इस विषय मे आपकी सलाह, सहायता सब कुछ चाहिए। आप ही के यहा रह जाता यदि इतनी दूर न होता तथा सकुटुब न आता अस्तु। मिलने पर सब बातें तै होगी। मैं यहा से ता० २५ को यात्रा करना चाहता हू। पहुचने की सूचना दे दूगा, जिससे पाठक जी गाडी आदि माग सकें। अब ईश्वर ने आपके समीप रहने का अवसर दिया है, कुछ फाइन आर्ट भी सीख लूगा, क्यों ?

आपका
श्रीचन्द्रधर

गुलेरी जी के ये कुछ पत्र उनके सरल तथा शात व्यक्तित्व की छवि प्रतिबिंबित करते हैं, जिनमे बीच-बीच मे हास्य-व्यग्य की हल्की हल्की चुभन भी है। उनके पत्रों मे अनुस्यूत व्यक्तित्व उनकी अन्य कृतियो मे भी झलकता है।

●

कहानीकार

द्विवेदी-युग के सशक्त कहानीकार

□ प० मुकुटधर पाण्डेय

गुलेरी जी से मेरा प्रत्यक्ष परिचय नही था। वह मुझसे उम्र मे काफी बड़े थे। पर मै उनके नाम से पूर्ण परिचित था। वह हिंदी के ही नही, सस्कृत के भी विद्वान थे। साहित्य के ही नहीं—दर्शन, ज्योतिष, पुरातत्त्व, इतिहास आदि के पारदर्शी विद्वान थे। वह बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वह काशी विश्वविद्यालय मे सस्कृत विभाग के अध्यक्ष थे। अग्रेजी मे भी उनकी अबाध गति थी। प्रयाग विश्वविद्यालय मे उन्होंने बी० ए० की डिग्री प्राप्त की थी। वह एक सपादक भी थे। उनके सपादकत्व मे निकलने वाले 'समालोचक' के कई अक मेरे देखने मे आए थे।

मेरी छात्रावस्था की बात है। तब हिंदी के लेखको मे अगरेजी की उच्च उपाधिप्राप्त लोगो की सख्या बहुत कम थी। गुलेरी जी उनमे से एक थे।

गुलेरी जी द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि लेखक तथा सशक्त कथाकार थे। मैंने भी उसी युग मे लिखना शुरू किया था। द्विवेदी जी की सीख थी—कम लिखिए, प्रयत्न अच्छा लिखने का कीजिए। एक बार उन्होंने मुझे लिखा था—"दो-चार कविता या लेख लिखकर भी आदमी अमर हो सकता है जबकि बहुत लिखने के बाद भी, सौ पचास वर्षों के बाद किसी का नाम तक लोगो को याद नही रहता।"

कहानी के क्षेत्र मे कम लिखकर ज्यादा नाम कमाने वालो मे एक गुलेरी जी भी थे। कहा जाता है, उन्होंने केवल तीन कहानिया लिखी थी, जिनमे 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी प्रमुख है, जिसे अतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है। मेरे देखने मे उनकी केवल यही कहानी आई है। मैने उसे कई बार पढा। जब पढता हू, नई जान पडती है।

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति, तदैव रूप रमणीयताया —माघ

रमणीयता की इस कसौटी पर गुलेरी जी की यह कहानी खरी उतरती है।

कहानी के आरंभ म वह अमृतसर के व्यस्त बाजार का ऐसा शब्द चित्र खडा करते हैं कि वह सजीव हो उठता है। इसी बाजार मे सयोगवश १२ वर्ष के एक लडके की भेंट एक लडकी से होती है। लडका सहज भाव स आकृष्ट होकर लडकी से पूछ बैठता है—"तेरी कुडमाई (सगाई) हो गई न ?" लडकी 'धत्' कहकर चली जाती है। यह रोज रोज की बात हो गई। यह कोरी जिज्ञासा थी या उसमे कोई और बात छिपी थी ? एक दिन लडकी ने कहा, 'हा, हो गई।' तब लडके का जो हाल हुआ उससे बात उजागर हो गई। बिना कुछ कहे ही तथ्य का आभास, यही तो कला है।

हजारासिंह सूबेदार की पत्नी बन जान पर उस लडकी क प्रति लडके (लहनासिंह, जमादार) का वह भाव नही रहा। वह उसे माथा टेकता है। सूबेदारिनी युद्धभूमि को जाते हुए अपने पति और पुत्र (हजारासिंह और बोधा सिंह) की रक्षा का भार लहनासिंह को सौंपती है। लहनासिंह युद्धभूमि म अपने प्राण देकर भी उनकी रक्षा करता है। यह आत्मोत्सर्ग इसीलिए कि—उसन कहा था।

लहनासिंह के पूर्वापर के भावो का जरा विश्लेषण तो कीजिए, कितना अतर ! प्रेम की कैसी उच्च परिणति है। प्रम की पयोधि म वासना का ऐसा विलय कि उसका अता-पता तक नही चलता। वहा वासना ही कहा थी, वह तो एक स्वर्गीय प्रेम था।

वैषयिक प्रेम का चित्रण करने वाले कहानीकार, कलाकार भूलत है कि सच्ची कहानी या कला मानसिक विलास के स्वर स सर्वथा मुक्त होती है।

इस कहानी का रचनाकाल प्रथम विश्व युद्ध के आसपास है। तब मरी छात्रावस्था थी। लडाई यूरोप की भूमि म लडी जा रही थी। पर यहा भारत मे पल पल युद्ध वार्ता की प्रतीक्षा रहा करती थी। भारतीय सैनिक हजारो की सख्या म फ्रास और बेल्जियम की भूमि पर लड रहे थे। हम लोग नक्शा निकालकर युद्धस्थलो का पता लगाते थे। समाचारपत्र लडाई की खबरो से भरे रहते थे। विद्वद्वर श्री काशीप्रसाद जायसवाल के सपादकत्व म निकलने वाले 'पाटलिपुत्र' साप्ताहिक म हमारे स्व० पूज्याग्रज की 'रण निमत्रण' नामक कविता की धूम मची हुई थी।

श्री गुलेरी जी की इस कहानी मे युद्धभूमि और युद्ध प्रसग का जैसा विराट वर्णन पाया जाता है, जान पडता है लेखक प्रत्यक्षदर्शी हो। यह गुलेरी जी की लेखन कला का चमत्कार है।

गुलेरी जी की कहानी-कला—१

□ डॉ० नगेन्द्र

हमारे एक साहित्यिक मित्र ने जीवन के कुछ सिद्धात स्थिर कर रक्खे हैं। उनमें से एक यह भी है कि अध्ययन का मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अतएव वह व्यक्तित्व के मूल्याकन म विद्वत्ता को प्राय अवगुण ही मानते है। उनका कहना है—और बात काफी हद तक ठीक भी है—कि विद्वत्ता के अनुपात से ही व्यक्ति की प्राणवत्ता मे कमी होती जाती है। विद्वान् व्यक्ति प्राय प्राणवान् नही रह पाता, उसके दृष्टिकोण मे जीवन की ताजगी न रहकर पुस्तक-ज्ञान का बोझीलापन आ जाता है।

गुलेरी जी इस सिद्धात के अपवाद हैं। उच्च कोटि की विद्वत्ता के साथ ही उतनी ही प्राणवत्ता भी उनके व्यक्तित्व मे पायी जाती है। वह अपने युग में शुद्ध प्रथम श्रेणी के विद्वान् थे। पुरातत्त्व, इतिहास, दर्शन, ज्योतिष, साहित्य, भाषा-विज्ञान—सभी म उनकी अबाध गति थी। सस्कृत, पाली, प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओ और हिंदी, बगला, मराठी, अगरेजी आदि आधुनिक भाषाओ पर उनका समान अधिकार था। लैटिन, जर्मन और फ्रैंच का भी उन्हे ज्ञान था। परतु अपने इस असाधारण पाडित्य को उन्होने सदैव जीवन का साधन ही माना, साध्य नही बनने दिया। उनकी जीवन चेतना इतनी प्रबल थी कि पाडित्य उसको पुष्ट तो कर सका पर दबा नही सका।

गुलेरी जी का सक्षिप्त जीवन सभी प्रकार से सफल ही कहा जा सकता है। वह पुत्र, वित्त और लोक—तीनो ओर से सुखी थे। विद्यार्थी-जीवन में उन्हे स्पृहणीय सफलता मिली थी। हाई स्कूल और बी० ए० में वह सर्वप्रथम रहे थे। यौवन-काल मे भी सफलता उनके चरण चूमती रही। पहले वह जयपुर राज्य के सभी सामत-पुत्रो के अभिभावक रहे। बाद मे, उन्होने बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी मे 'कॉलेज ऑव ओरियटल लर्निंग ऐंड थियोलोजी' के प्रिंसिपल पद को सुशोभित किया। लोक-जीवन मे भी उनको अक्षय गौरव प्राप्त हुआ था। काशी 'नागरी

प्रचारिणी' का सभापतित्व, 'देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला' एवं 'सूर्यकुमारी पुस्तकमाला' का संपादन अनेक लेखों का स्वदेशी विदेशी विद्वानो द्वारा अभिनंदन— ये सब उनके गौरव की स्वीकृति के विभिन्न रूप थे। परंतु गौरव दीर्घजीवी नहीं होता ! उन्तालीस वर्ष की अल्पायु म ही समस्त दिशाओं को उद्भासित कर यह प्रकाश पुंज भी तिरोहित हो गया और विद्वान् लोग यह अनुमान लगाते ही रह गए कि अगर कुछ और समय मिलता तो शायद वह हिंदी जगत् को समग्रत आच्छादित कर लेता।

गुलेरी जी न हिंदी साहित्य क अनेक विभागो का समृद्ध किया। भाषातत्त्व और पुरातत्त्व पर उनका पर्याप्त साहित्य विद्यमान है। पुरानी हिंदी और शिशुनाग मूर्तियों पर लिख हुए उनके लेख आज भी अत्यत प्रसिद्ध है। परतु मै उनके इस साहित्याग को स्पर्श नहीं करूगा, क्योकि मै उसकी मीमासा करन का अधिकारी नही हू। मैं तो केवल उनक सृजनात्मक साहित्य, उनकी कहानियों की ही, विवेचना करता हुआ यह दिखाने का प्रयत्न करूगा कि किस प्रकार उनकी सृजन प्रतिभा अविकसित ही रह गई और कलाकार के रूप म वह अपना प्राप्य न पा सक।

गुलेरी जी की कहानिया

अभी एक आध वर्ष पहले तक सबका यही खयाल था कि गुलेरी जी केवल एक ही कहानी 'उसने कहा था' लिखकर अमर हो गए। विद्वानो न इस बात को पूरे विश्वास के साथ लिखित रूप म भी स्वीकृत कर लिया था। परतु कुछ दिन हुए गुलेरी जी की दो और कहानिया सामने आई —'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का काटा'—और आलोचक की यह उलझन कि गुलेरी जी न एकसाथ ही एसी 'एकवन्' कहानी कैसे लिख डाली, कुछ कुछ सुलझी। इस दशा म उन्होंने तीन पग रखे। पहला था सुखमय जीवन', दूसरा 'बुद्धू का काटा' और तीसरा उसन कहा था। सभव है, उन्हाने कुछ और भी प्रयत्न किए हो जो आज उपलब्ध नही।

दृष्टिकोण

जीवन क प्रति गुलेरी जी का दृष्टिकोण, जैसा मैंने आरभ मे कहा है, सर्वथा स्वस्थ है। उनके साहित्य का आधार छायानुभूतिया नहीं हैं, जीवन की मासल अनुभूतिया ही हैं। निदान उनम मानसिक ग्रथियो का सर्वथा अभाव मिलता है। जीवन मे नीति और सदाचार को पूर्ण रूप से स्वीकार करते हुए भी वह सत्रम के नाम पर बिदकने वाले आदमियों म से नहीं थे। जहा-कहीं भी प्रसग आया है उन्होने मुक्त भाव से बिना झिझके उसकी स्पष्ट व्यजना की है—यहा तक कि

'उसने कहा था' कहानी मे उद्धृत पजाबी के उस गाने मे 'कर लेणा नाडे दा सौदा अडिए' के स्थान पर भी उन्होंने शरमाकर चिह्न-बिंदु नही लगाए, साफ ही पंक्ति को उद्धृत कर दिया है। यह उनके मन के स्वास्थ्य का असंदिग्ध प्रमाण है। एक स्थान पर उन्होंने स्वय ही इस सत्य का उद्घाटन किया है "जो कोने म बैठकर उपन्यास पढा करते हैं उनकी अपेक्षा खुले मैदान मे खेलने वालो के विचार अधिक पवित्र होते हैं।" *गुलेरी जी प्रवृत्ति के इन सच्चे चित्रो को ही देखते थे, उपन्यासो* की मृगतृष्णा मे चमत्कार नही ढूढते थे।

गुलेरी जी की कहानियो मे स्पष्ट ही शास्त्र के बधे हुए वातावरण से प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण की ओर जाने की प्रवृत्ति है। उनके जीवन-मान, सवाद प्राकृतिक हैं। कृत्रिम मान—चाहे उन पर सभ्यता और नागरिक शिष्टाचार का कितना ही मुलम्मा चढा हो, उन्हे सह्य नही थे। दृष्टिकोण का यह स्वास्थ्य रस, विवेक और विचार—तीनो तत्वो के उचित सम्मिश्रण का फल था। उसमे *अतरभिमुखता और बहिर्मुखता का वाछित सयोग था। जीवन मे रस का उन्होंने* सम्यक् उपभोग किया परतु अपने जागृत विवेक के कारण उसमे बहे नही। इससे अनुभूति मे स्थिरता आई। उधर, विचार ने उसको गभीरता और परिपक्वता प्रदान की। जीवन-तत्वों का यही सम्यक् सतुलन उनके जीवन और साहित्य की सफलता का कारण था।

सामाजिक चेतना

ऐसे व्यक्ति की सामाजिक चेतना स्वभावतः ही बलवती होनी चाहिए और वास्तव मे हिंदी कहानी के उस प्रसवकाल मे इस प्रकार की सामाजिक चेतना होना आश्चर्य की बात है। उन्होंने दृष्टि को अपने मन के राग द्वेषो पर ही न गडाकर बाहर जीवन की धूप मे विचरने दिया और समाज की सामयिक समस्याओ के प्रति जागरूक रहे। उदाहरण के लिए, पर्दे की अस्वस्थ प्रथा, उस समय बढती हुई सभ्यता की दाभिक चेतना, विवाह से सबद्ध दहेज-मुहूर्त आदि की प्रथाओ पर वह बीच बीच मे छीटे छोडते हुए चले है।

इसके साथ ही कुछ अन्य सामयिक प्रश्नो पर भी, जैसे हिंदी मे ग्रहण किए गए सस्कृत के तत्सम शब्दो के उच्चारण पर भी, उन्होंने मौका देखकर फिकरा कस दिया है। सस्कृत के प्रगाढ विद्वान् होन हुए भी गुलेरी जी यह मानते थे कि सस्कृत तत्सम शब्दो का उच्चारण हिंदी व्याकरण के नियमो के अनुकूल ही होना चाहिए। आज से तीस वर्ष पूर्व एक सस्कृत के पडित की इस प्रकार की धारणाए *कितनी प्रगतिशील थी यह देखकर उनके व्यक्तित्व की शक्ति का पता चलता* है। इस दृष्टि से यह व्यक्ति अपने समय से कितना आगे था!

हास्य

ऐसे खुले हुए स्वभाव के व्यक्ति मे निश्चय ही हास्य की अत्यत प्रखर भावना होगी। गुलेरी जी के हृदय मे कुढन का विष नही था, सतोष का अमृत था, इसीलिए उनके हास्य मे भी कुढन का विष नही, सतोष का अमृत है। उन्होने स्वस्थ दृष्टि से अपने चारो ओर बहुत गौर से देखा। जीवन और जगत् मे सर्वत्र उन्हे ऐसी विचित्रता दिखाई पडी जिसमे स्वभावत ही उनके हृदय मे गुदगुदी पैदा हो जाती थी। वास्तव म, उनका हास्य एक ऐसे व्यक्ति का हास्य है जिसके हृदय मे जीवन के प्रत्यक सुख से महानुभूति है जो विकृतियो मे भी अद्भुत वैचित्र्य और आकर्षण पाता है, जिसक हृदय म, किसी प्रकार का दभ या मैल नही है और जो खुलकर हँसता है। एक उदाहरण लीजिए—अमृतसर के इक्के-तागे वालो की बोलियों की तारीफ करते हुए आप फर्माते हैं—"क्या मजाल है कि जी और साहब बिना सुन किसी को हटना पडे। यह बात नही कि उनकी जीभ चलती नही, चलती है पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढिया बार-बार चितौनी दन पर भी लीक से नही हटती तो उनकी वचनावली क ये नमूने हैं—हट जा जीणे जोगिए, हट जा करमाँ वालिए, हट जा पुत्ता प्यारिए, बच जा लम्बी वालिए। समष्टि मे इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यो वाली है, पुत्रो को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यो मेरे पहियो के नीचे आना चाहती है? बच जा।"

दूसरी बात जो गुलेरी जी के हास्य के विषय मे जानने योग्य है, यह है कि वह हास्य की सृष्टि नही करते, उद्बुद्धि मात्र करते हैं उनका हास्य साध्य नही, साधन है। वह केवल हास्य के लिए परिस्थिति का सृजन नही करेंगे वरन् उपस्थित परिस्थिति म ही हास्य की तरग पैदा कर देगे। कहीं कहीं तो गभीर परिस्थिति को भी वह हँसी से गुदगुदा देते है। 'सुखमय जीवन' के अत मे परिस्थिति मे काफी खिचाव आ गया है परतु ज्योही उत्तजना शात होती है और परिस्थिति मे लोच आता है, गुलेरी जी फौरन ही उसे गुदगुदा देते हैं। बेचारे वृद्ध गुलाबराय वर्मा की आखो मे आसू तो वास्तव म मानसिक स्तब्धता का अत हो जाने के कारण—दूसर शब्दो म क्रोध के सहसा आनद मे परिणत हो जाने के कारण—आते हैं, परतु प्रश्न यह उठता है कि 'वृद्ध की आखो पर कमला की माता की विजय होन के क्षोभ के आसू थे, या घर बैठे पुत्री को योग्य पात्र मिलन के हर्ष के आसू, राम जाने!" अच्छा, और यह सदेह होता है उस व्यक्ति को जो स्वय ऐसी ही मानसिक स्थिति मे होकर गुजर चुका है! इस प्रकार गुलेरी जी के पात्र कभी-कभी अपने पर भी हँस लेते हैं।

गुलेरी जी अधिकतर अपने पात्रो पर नही हँसते—उनके साथ हँसते हैं। इसलिए उनके हास्य म विनोद की मात्रा अधिक रहती है। इनकी कहानिया

विनोद की फुलझड़िया छोडती हुई रस दिशा मे बढती हैं। विनोद के अतिरिक्त वाक्-चापल्य और वाक्-चातुर्य का भी सम्यक् उपयोग उनमे मिलता है। लहनासिह और नकली लेपिटनेंट साहब की बातचीत उसका सुदर उदाहरण है। व्यग्य का प्रयोग उन्होने अपेक्षाकृत कम किया है। जहा है वहा अत्यत महीन और मधुर है। किसी गभीर नैतिक उद्देश्य से प्रेरित होकर सुधार करने के लिए वह किसी को हास्य द्वारा प्रताडित नहीं करते।

रस

इन सब गुणो के होते हुए भी गुलेरी जी की कहानियो का प्रमुख आकर्षण तो रस ही है। यह रस उथली रसिकता या मानसिक विलासिता का तरल द्रव नही है, जीवन के गभीर और स्वस्थ उपभोग मे खीचा हुआ गाढा रस है। उसमे एक बलिष्ठ व्यक्तित्व का वजन है। 'बुद्धू का काटा' की परिणति मे काफी रस है। 'उसने कहा था' कहानी का आरभ चचल-मधुर है। पर अत मे तो जैसे सारी ही कहानी रस मे डूब जाती है। शैशव की उस मीठी घटना से माधुर्य और लहनासिह के पुरुषार्थी व्यक्तित्व से शक्ति प्राप्त कर अत मे उसके बलिदान की करुणा कितनी गभीर हो जाती है। आप देखें कि रति, हास, ओज और कारुण्य—इनके मिश्रण से रस का जो परिपाक होता है वह अत्यत ही प्रगाढ और पुष्ट है, और यह रस सिंचन घटनाओ और परिस्थितियो मे ही नही है, वर्णनो मे भी स्थान-स्थान पर इसकी रसीली मुस्कराहट मिलती है। उदाहरण के लिए—

(१) "आखों के डेले काले, कोए सफेद नही कुछ मटियानी और पिघले हुए। जान पडता था कि अभी पिघलकर बह जाएगे। आखो के चौतरग हँसी, ओठो पर हँसी और सारे शरीर पर नीरोग स्वास्थ्य की हँसी।"

(२) "पहाडी जमीन, जहा रास्ता देखने मे कोस-भर जचे और चाहे उसमे दस मील का चक्कर काट लो। बिना पानी सीचे हुए हरे मखमल के गलीचे से ढकी हुई जमीन, उस पर जगली गुलदाऊदी की पीली टिमकिया और बसत के फूल, आलूबुखारे और पहाडी करौंदे की रज से भरे हुए छोटे-छोटे रगीले फूल जो पेड का पत्ता भी न दिखने दें, क्षितिज पर लटके हुए बादलो की-सी बर्फीले पहाडो की चोटिया जिन्हे देखने आखें अपने-आप बडी हो जाती और जिनकी हवा की सास लेने से छाती बढती हुई जान पडती, नदी मे निकाली हुई छोटी छोटी असख्य नहरें जो साप के-से चक्कर खा खाकर फिर प्रधान नदी की पथरीली तलैटी मे जा मिलती।"

भाषा

सबसे अधिक आश्चर्यजनक है गुलेरी जी की भाषा। ऐसी प्रौढ भाषा उस समय तो कोई विरला ही लिख सकता था, गद्य के समुन्नत युग मे भी कोई लिख

सका है, इसमे मुझे सदेह है। प्रेमचद की भाषा मे इतनी प्रौढि और शक्ति कहा है, और शुक्ल जी की भाषा मे जीवन की इतनी स्फूर्ति और यथार्थता कहा है?

आज से तीस-पैंतीस वर्ष पूर्व जब हिंदी का गद्य व्याकरण की पुस्तकों से बाहर आते ही लडखडाने लगता था, गुलेरी जी की भाषा की लाक्षणिक और व्यजनात्मक शक्तियो पर कितना व्यापक अधिकार था। उनकी भाषा मे जीवन-गत विभिन्न परिस्थितियो को—विभिन्न पात्रो की विभिन्न मनोदशाओं को—व्यक्त करने की अद्भुत क्षमता थी। और उन्होंने सदैव भाषा के वास्तविक रूप को बनाए रखा है, इसलिए उसका माधुर्य, ओज और प्रसाद स्वाभाविक ही है। उन्होंने कहीं भी न तो माधुर्य लाने के लिए शब्दो की हड्डिया तोडकर उन्हें मुलायम बनाने की कोशिश की है और न ओज के लिए तीलिया बाधकर ही उनको कडा और खडा करने की कोशिश की है।

गुलेरी जी के जीवन की सफलता का यही रहस्य था कि उन्होने अपने पाडित्य की गभीरता को जीवन के उपभोग मे अत्यत सतर्कता से प्रयुक्त किया। इसीलिए उनके व्यक्तित्व म स्फूर्ति और गभीरता का अद्भुत योग था। ठीक यही रहस्य उनकी भाषा की समर्थता का भी है—यहा भी उन्होने अपनी व्यापक शब्द शक्ति और भाषागत पाडित्य का उपयोग जीवनगत भाषा गढने मे किया। प्राणवान व्यक्ति का पाडित्य जिस प्रकार जीवनगत अनुभव से शक्ति और उसका जीवनगत अनुभव पाडित्य से समृद्धि पाता रहता है इसी प्रकार साहित्य की भाषा जीवन की भाषा से शक्ति और जीवन की भाषा साहित्य की भाषा से समृद्धि पाती रहती है। और किसी व्यक्ति के लिए ये दो स्रोत जितने ही अधिक खुले होगे उतनी ही समृद्ध और सशक्त उसकी भाषा होगी। गुलेरी जी को यह सुविधा भरपूर प्राप्त थी।

गुलेरी जी के बाद इस विषय का उनसे गुरुतर उदाहरण हमारे पास राहुल का है। परतु राहुल मे एक दोष है—उनमे ह्यूमर नही। इसीलिए उनकी भाषा मे समृद्धि और शक्ति अधिक होते हुए भी स्फूर्ति और फडक उतनी नहीं है जितनी कि गुलेरी जी की भाषा मे।

टेकनीक

गुलेरी जी के उपर्युक्त गुणों का अब तक जो उल्लेख किया गया है, उससे आप यह मत समझिए कि उनकी सभी कहानिया सर्वथा पूर्ण और निर्दोष बिल्कुल नहीं है। उनकी अतिम कहानी 'उसने कहा था' तो अवश्य ि श्रेष्ठ कहानियों म स है, परन्तु पहली दोनो क ' बहुत-कुछ 'सुखमय जीवन' म तो वास्तव मे कहानी अ भी नही चरम घटना मे विस्मय का अत्यत अ तिरि

'बुद्धू का काटा' इससे कहीं अधिक सफल कहानी है, परंतु उसमें भी अतिरंजना और अप्रासंगिकता है। इसकी नायिका—(शायद यह पारिभाषिक और कृत्रिम नागरिक विशेषण उसके लिए गुलेरी जी स्वीकार न करते) —कुछ अधिक वाग्वीर और पहलवान है। इसके अतिरिक्त उस पहाड़ी टट्टू वाले की सारी कहानी ही ही अप्रासंगिक है।

परंतु जैसा कि मैंने आरंभ में कहा है, ये दोनों कहानियाँ दो पहली मंजिलें हैं। 'सुखमय जीवन' में गुलेरी जी की कहानी कला का शैशव है, 'बुद्धू का काटा' में किशोरावस्था और 'उसने कहा था' में आकर वह पूर्ण योषिता हो गई है। चूँकि वह समय से पूर्व ही पूर्णत्व को प्राप्त हो गई थी इसीलिए शायद उसकी अकाल-मृत्यु हो गई। बहुत होनहार बालक अधिक दिन जीवित नहीं रहते।

गुलेरी जी की कहानी-कला—२

□ डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल

गुलेरी जी का कहानी-साहित्य केवल तीन कहानियों—'सुखमय जीवन,' 'बुद्धू का काटा' और 'उसने कहा था' से निर्मित है। संभव है, उन्होंने और भी कहानियाँ लिखी हों, लेकिन वे कभी हिंदी जगत् के सामने नहीं आ सकीं, बस केवल यही तीन कहानियाँ अपनी कलात्मक श्रेष्ठता के कारण गुलेरी जी को विकास युग का प्रथम चरण सिद्ध कर गईं। इन कहानियों में विकास की दृष्टि से 'सुखमय जीवन' उनकी कला का प्रारंभिक रूप है। 'बुद्धू का काटा' और 'उसने कहा था' क्रमशः उनकी कला के विकास और चरम उत्कर्ष की प्रतीक हैं।

कथानक

ये तीनों सामाजिक कहानियाँ हैं, लेकिन समस्त सामाजिक मान्यताओं और प्रश्नों के बीच इन कहानियों की संवेदनाएं मुख्यतः प्रेम और कर्तव्य को लेकर आई हैं। 'सुखमय जीवन' में इसका रूप अपरिपक्व है, फलतः इसके इतिवृत्त की सृष्टि रूप के आकर्षण और रोमांस के माध्यम से हुई है, जिसमें प्रेम केवल अपने बाह्य रूप में ही चित्रित हो सका है और कर्तव्य का जन्ममात्र होकर रह गया है। 'बुद्धू का काटा' के कथानक में प्रेम अपने अव्यक्त और असाधारण ढंग से पलता है। प्रेम तथा स्त्री-संपर्क की दिशा में नायक में हीनग्रंथि है फलतः नायिका को अग्रगण्यता लेनी पड़ती है। यही कारण है कि इस कहानी में पहले कर्तव्य आता है फिर प्रेम। 'उसने कहा था' की संवेदना प्रेम और कर्तव्य का उज्ज्वलतम और अनन्य प्रतीक है। इसके कथानक का आरंभ सहज आकर्षण और कर्तव्य से होता है। आकर्षण धीरे धीरे पवित्र प्रेम में परिणत हो जाता है तथा दोनों ओर से भावों की दुनिया में खो जाता है। कालांतर में संयोगवश इसका उदय फिर एक बार होता है, लेकिन वहाँ वह केवल विशुद्ध कर्तव्य बन जाता है तथा इसकी चरम परिणति त्याग-उत्सर्ग के संधिबिंदु पर होती है।

निर्माण की दृष्टि से इन तीनों कहानियों के कथानकों का निर्माण घटनाओं और सयोगों से होता है। मुख्यत इनका प्रारभ सयोगों से हुआ है। विकास सयोगों और कार्यों से हुआ है तथा अत के निर्माण मे फिर घटना और सयोग का सहारा लिया गया है। उदाहरणार्थ—'सुखमय जीवन' के कथानक का आरभ साइकिल की हवा निकल जाने के सयोग से होता है। इसके विकास मे कई और सयोगों का सहारा लिया गया है। रास्ते में जयदेवशरण वर्मा की भेंट एकाएक एक युवती कमला से होती है, जो उसके लिखे हुए ग्रथ 'सुखमय जीवन' की अनन्य पुजारिन थी। वह उन्हें अपने घर लाती है। उसके चाचा भी उनकी बहुत श्रद्धा करते हैं। जयदेवशरण वर्मा और कमला मे सहज आकर्षण पैदा होता है। कमला को बगीचे मे अकेली पाकर वर्मा जी उससे प्रणय-प्रस्ताव करते हैं और सारी परिस्थितिया प्रतिकूल हो जाती हैं। कमला क्रोधपूर्वक इनकी उपेक्षा करती है। यह उसके चाचा से भी तिरस्कृत होते हैं और अत मे झगडे के बीच, सयोगवश जयदेवशरण वर्मा के मुख से निकल जाता है—"भाड मे जाय 'सुखमय जीवन'! उसी के मारे नाकों दम है!! 'सुखमय जीवन' के कर्ता ने क्या यह शपथ खा ली है कि जनम-भर क्वारा ही रहे? क्या उसके प्रेमभाव नहीं हो सकता? क्या उसमे हृदय नहीं होता?"[1]

यहा क्वारा स्थिति के सयोग से सारी प्रतिकूल परिस्थितिया अनुकूल हो जाती है और जयदेवशरण वर्मा तथा कमला का मगलमय सयोग होता है।

'उसने कहा था' के कथानक-निर्माण मे ये सत्य पूर्ण कलात्मक ढग से चरितार्थ हुए हैं। कथानक का आरभ बम्बूकार्ट वालों के बीच मे एक लडके और लडकी के सयोगवश मिल जाने से होता है। लडका अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और लडकी रसोई के लिए बडिया। दोनों इस तरह महीने भर कभी कभी मिलते रहते है। दोनों मे सहज प्रेम और अनुराग पैदा होता है तथा इसकी पुष्टि केवल इन वाक्यों से हो जाती है कि "दो तीन बार लडके ने फिर पूछा—'तेरी कुडमाई हो गई?' और उत्तर मे वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लडके ने वैसे ही हँसी मे चिढाने के लिए पूछा तब लड़के की सभावना के विरुद्ध बोली—'हा, हो गई।' 'कब, देखते नहीं यह रेशम से कढा हुआ सालू।' लडकी भाग गई। लडके ने घर की राह ली।"[2]

फिर कथानक का विकास इस सयोग के पच्चीस वर्ष के बाद होता है। लडका—लहनासिंह न० ७७ सिख राइफल्स जमादार होकर अगरेजों की ओर से फ्रास के युद्धस्थल मे मोर्चे की खाइयों मे पडा हुआ है। पिछली बार वह अपने

१. गुलेरी जी की अमर कहानिया सपा० शक्तिधर गुलेरी, पृ० ८६
२. वही, पृ० ६२

एक मुकदमे के सिलसिले मे भारत आया था और लौटते समय अपनी फौज के सूबेदार के घर गया था। वहा सयोगवश उसकी उसी लडकी से भेंट होती है जो उसकी आदिप्रेयसी थी लेकिन उस समय सूबेदारनी थी। इस दर्शन से प्रेम कर्तव्य मे परिणत हो जाता है। सूबेदारनी ने लहनासिंह से कहा—'अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग ! तुम्हे याद है, एक तागेवाले का घोडा दहीवाले की दुकान के पास बिगड गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोडे की लातों मे चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खडा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनो (पति-पुत्र) को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे आचल पसारती हू।'[१] लेकिन कथानक के विकास-अग की सबसे बडी कलात्मकता इसमे है कि यह विकास-अग लहनासिंह के उस स्मृतिचित्र के माध्यम मे सजोया गया है, जब लहना अपने कर्तव्य की बलिवेदी पर सूबेदारनी के पति-पुत्र की रक्षा और वीरता म मोर्चे पर घायल होकर मरणासन्न है।

कथानक के इस चरम विकास म स्मृति दृश्यो के माध्यम से इस पूर्व विकास को इतनी कलात्मकता से सजोना, उस समय गुलेरी जी की कहानी कला का चरमोत्कर्ष है। इसके आगे प्रेमचद और प्रसाद के कहानी साहित्य मे ऐसा कोई उदाहरण नही मिल पाता। कथानक का चरम विकास विविध घटनाओ से होता है, जैसे—बोधा का घायल होकर मोर्चे पर पडा रहना तथा उसके प्रति लहना का असीम प्यार और त्याग, लपटन साहब की मृत्यु और उनके वेश म दुश्मन का लपटन बनकर आना, लहनासिंह को रहस्य का ज्ञान होना, दुश्मनो का नया आक्रमण, लहनासिंह के सीने म गोली लगना, लेकिन फिर भी सबको विदा करके स्वय मोर्चे पर पीडा से विक्षिप्त हो जाना। इस दिशा म कथानक का आरभ, पूर्व विकास तथा जीवन स सबधित समस्त स्मृति-चित्रो का सिमट जाना तथा कथानक का अत उसकी मृत्यु की घटना से हो जाता है। गुलेरी जी ने कथानक-निर्माण मे सयोग और घटनाओ के अतिरिक्त जीवन तथा कर्मक्षेत्र का साधारण वैयक्तिक तथा व्यापक रूप लिया है। 'सुखमय जीवन' का कथानक एक परिवार तथा मुख्यत एक व्यक्ति की एक दिन की जीवन-विवेचना है। 'बुद्ध का काटा' का कथानक रघुनाथ और भागवती के जीवन के प्रणय-पक्ष की अनेक दिनो की विवेचना है। 'उसने कहा था' म दो व्यक्तियो के प्रेम कर्तव्य का क्षेत्र इतने विशाल और व्यापक ढग स लिया गया है कि इसमे एक ओर जीवन के पच्चीस वर्ष चित्रित हैं, तो दूसरी ओर भारत से फ्रास की भूमि तक इसका चित्र पृष्ठ (कैनवेस) फैला हुआ है, अतएव तीनो कहानियो के कथानक इतिवृत्तात्मक और लबे भी हो गए है लेकिन फिर भी इसम वर्णनात्मकता का

१ गुलेरी जी की अमर कहानिया पृ० ७६

सहारा कम लिया गया है, वरन् विविध भाव-चित्रों और चिंतन-शैली को इसमें स्थान मिला है।

चरित्र

गुलेरी जी के चरित्र मानवीय और यथार्थ हैं। इनकी अवतारणा व्यक्ति, समाज और उसकी मान्यताओं के धरातल पर हुई है। 'सुखमय जीवन' के जयदेवशरण वर्मा तथा 'बुद्धू का काँटा' के रघुनाथ, इन दोनों पुरुष-चरित्रों से मानवीय पक्ष इतने सहज रूप में आया है कि ये दोनों चरित्र पूर्ण वैयक्तिक होते हुए भी पूर्ण सामाजिक हो गए हैं।

ये दोनों चरित्र अपनी सहज दुर्बलता के कारण हमारे आकर्षण के पात्र हो गए हैं। जयदेवशरण में कमला के प्रति आकर्षण और उसके प्रेम-प्रस्ताव में जयदेवशरण का व्यवहार उच्छृंखलता तक पहुँच गया है, फलतः इसमें कुछ अस्वाभाविकता भी आ गई है। दूसरी ओर, इनमें चरित्र की वह गंभीरता भी नहीं रह गई है जो 'बुद्धू का काँटा' के रघुनाथ में है। कमला का भी चरित्र बहुत दब गया है तथा इसमें और भी अस्वाभाविकता आ गई है, क्योंकि जो तरुणी जयदेवशरण को जीवन की प्रथम भेंट में अनन्य श्रद्धा और प्रशंसा देती है, स्वयं उसे अपने घर लाती है, वह कैसे जयदेव के प्रणय-प्रस्ताव की इतनी निर्ममता से उपेक्षा करती है? 'बुद्धू का काँटा' का रघुनाथ और भागवती दोनों चरित्रों की अवतारणा अपेक्षाकृत अधिक चारित्रिक गंभीरता और मानवीय धरातल से हुई है। यहाँ रघुनाथ एक ऐसा पुरुष-चरित्र है जो स्वभावतः स्त्रीवर्ग के सम्मुख अपने में हीनग्रंथि पाता है। ऐसा क्यों है? इसके लिए कहानी में चरित्र चित्रण और विश्लेषण—दोनों की विधि रखी गई है। पिता की कठोर शिक्षा का प्रभाव बालकपन से ही स्वभाव पर ऐसा पड़ गया था कि दो वर्ष प्रयाग में स्वतंत्र रहकर अपने चरित्र को केवल पुरुष समाज में बैठकर पवित्र रखता है।—"जो कोने में बैठकर उपन्यास पढ़ा करते हैं, उनकी अपेक्षा खुले मैदान में खेलनेवालों के विचार अधिक पवित्र रहते हैं। इसीलिए फुटबाल और हाकी के खिलाड़ी रघुनाथ को कभी स्त्री विषयक कल्पना ही नहीं होती थी, वह मानवी सृष्टि में अपनी माता को छोड़कर और स्त्रियों के होने या न होने से अनभिज्ञ था।" फलतः इस चरित्र में एक अजीब तरह की सौम्यता मिलती है जिसमें यद्यपि स्त्रीवर्ग की ओर से हीनग्रंथि अवश्य है, लेकिन फिर भी इसमें प्रेम विषयक भोलापन और बचपन के अतिरिक्त स्नेह और करुणा की तीव्रता भी है। रघुनाथ झुंझलाकर भागवती को उसकी नाक पर एक मुक्का

१ गुलेरी जी की अमर कहानियाँ पृ० ३८

जमाता है तथा रघुनाथ के दौडाने से भागवती के पैर के तलवे मे एक काटा भी चुभ जाता है। वस्तुत ये दोनो घटनाए रघुनाथ के भोलेपन की एक सीमा के उदाहरण है लेकिन दूसरी सीमा पर वह जब उसकी नाक से लहू बहते देखता है, वह अपने को एकदम से भूलकर पश्चात्ताप और दु ख के पाश मे फस जाता है। उसका मुह पसीना-पसीना हो जाता है। उसे इतनी ग्लानि हुई कि वह इन लहू की बूदो के साथ धरती मे समा जाए।

दूसरी ओर, रघुनाथ ज्योही भागवती के पैर के तलवे मे चुभे हुए काटे को देखता है और उसे पता चलता है कि यह सब उसके ही कारण हुआ, वह फौरन वही भागवती के सामने घुटने टेककर बैठ जाता है और उसके पैर को खीचकर, रूमाल से धूल झाडता हुआ काटे को निकालने लगता है। भागवती का भी चरित्र अत्यत जीवनपूर्ण और मानवीय सवेदनाओ से अभिभूत है। 'सुखमय जीवन' की कमला को हम बहुत शीघ्र भूल सकते हैं, लेकिन 'बुद्धू का काटा' की भागवती को हम कभी नही भूल सकते, क्योकि रघुनाथ के समान ही इसके चरित्र-विश्लेषण के साथ इसके व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हुई है। मानवीय चरित्रों की अवतारणा तथा उनमे सहज व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा का सुदरतम उदाहरण हमे 'उसने कहा था' मे मिलता है। सूबेदारनी और लहनासिह के माध्यम से जहा एक ओर सच्चे प्रेम और उत्सर्ग की भावना मिलती है, वहा इन दोनो आदर्श प्रतीको मे यथार्थ मानवीय भावनाओ का आदि से अत तक एक सुदरतम विकास देखने को मिलता है। लहनासिह के चरित्र के मुख्यत चार अध्याय हैं—पहला, उसके चरित्र का कुमारस्वरूप, जब वह बारह वर्ष का है, अमृतसर मे मामा के यहा आया हुआ है, दहीवाले के यहा, सब्जीवाले के यहा हर कही उसे आठ वर्ष की लडकी मिल जाती है। जब वह पूछता है—'तेरी कुडमाई हो गई?' तब वह 'धत्' कहकर भाग जाती है। इस पवित्रतम आकर्षण और प्रेम के साथ ही उसमे कर्तव्य का जन्म भी होता है। एक दिन तागेवाले का घोडा दहीवाले की दुकान के पास बिगड गया था, उस समय स्वय घोडे की लातो मे जाकर लहना ने उसके प्राण बचाये थे। इसके चरित्र का दूसरा अध्याय उस समय निर्मित होता है जब एक दिन लहना ने उससे फिर पूछा—'तेरी कुडमाई हो गई' तब एक दिन उसने कह दिया—'हा, हो गई, देखते नही यह रेशम से कढा हुआ सालू।' तीसरा अध्याय, उस समय आरभ होता है, जब लहनासिह पूर्ण युवक है, 'न० ७७ सिख राइफल्स जमादार, और पच्चीस वर्षों के बाद वह अकस्मात् अपनी आदिप्रेमिका को अपनी फौज के ही सूबेदार की धर्मपत्नी के रूप मे देखता है। "मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूं। मेरे तो भाग फूट गए। ' मरे भाग "ऐसे ही इन दोनो को बचाना। यह मेरी

भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आचल पसारती हू।"[1]

लहनासिह के चरित्र का चौथा और अतिम अध्याय उस समय खुलता है जब वह फास मे युद्ध-मोर्चे की खाई मे पडा है। एक ओर, वह अपने आराम सुख के उत्सर्ग पर घायल बोधा की सेवा सुश्रूषा करता है और दूसरी ओर, अपूर्व चतुराई, बुद्धिमत्ता और वीरता के साथ दुश्मनो से लडता है। अत म, सूबेदारनी की बात को पूर्ण करने मे अर्थात् सूबेदार और बोधा की जीवन-रक्षा म वह अपने को उत्सर्ग कर देता है। वस्तुत लहनासिह के इस तरह के आदर्शमय महान चरित्र की अवतारणा तथा इसमे परम मानवीय व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के ही कारण यह कहानी हिंदी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कहानियो मे गिनी जाती है। इसमे चरित्र-विकास, चरित्र विश्लेषण तथा व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा तीनो पूर्ण कलात्मक ढग से चरितार्थ हुए हैं।

शैली

शैली के व्यापक प्रकाश मे, गुलेरी जी अपनी कहानियो की निर्माण शैली मे आदि, मध्य और अत तीनो की योजनाओ मे बहुत उदार हो गए है। तीनो कहानियो का आरभ भूमिकाओ से होता है। ये भूमिकाए वस्तुत कहानी की सवेदना की पृष्ठभूमि के निर्माण के लिए लाई गई है। 'उसने कहा था' का आदिभाग अर्थात् आरभ की भूमिका कहानी की पृष्ठभूमि के अतिरिक्त आरभ ही से आकर्षण और जिज्ञासा प्रकट करने के लिए आई है तथा यह आदिभाग दोनो प्रकाश मे प्राय सफल ही हैं लेकिन 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का काटा' इन दोनो कहानियो की भूमिकाए कलात्मक दृष्टि से प्राय असगत और विस्तृत हो गई है। 'बुद्धू का काटा' कहानी का आरभ इस भूमिका से होता है—

"रघुनाथ प् प् प्रसाद त् त् त्रिवेदी —या रुग्नात् पर्शाद तिर्वेदी—यह क्या ?"

"क्या करें, दुविधा मे जान है। एक ओर तो हिंदी का यह गौरवपूर्ण दावा है कि इसमे जैसा बोला जाता है वैसा लिखा जाता है और जैसा लिखा जाता है वैसा ही बोला जाता है। दूसरी ओर, हिंदी के कर्णधारो का अविगत शिष्टाचार है कि जैसे धर्मोपदेशक कहते हैं कि हमारे कहने पर चलो हमारी करनी पर मत चलो, वैसे ही जैसे हिंदी के आचार्य लिखें वैसे लिखो, जैसे वे बोलें वैसे मत लिखो, शिष्टाचार भी कैसा ? हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति अपने व्याकरणकषायित कण्ठ से कह 'पर्सोत्तमदास' और 'हृकिसनूलाल' और उनके

१ गुलेरी जी की अमर कहानिया, पृ० ७६

पिट्ठू छापें ऐसी तरह कि पढा जाय—'पुरुषोत्तम अ दास अ' और 'हरि कृष्णलाल अ' ।'"[1]

वस्तुत उक्त भूमिका से कहानी की सवेदना का कोई सबध नही है । कहानी की सवेदना एक हीन ग्रथिप्रधान युवक और एक युवती की कहानी है और यह भूमिका हिंदी मे आने वाले सस्कृत के तत्सम शब्दो पर व्यग्य के रूप मे लिखी गई है । किसी तरह इस भूमिका का सबध कहानी से नही है, लेकिन फिर भी इस कहानी का आरभ इसी शैली मे हुआ है । 'सुखमय जीवन' की भूमिका भी पूर्ण रूप से कहानी की सवेदना से सगति नही रखती । बस, नायक की मन स्थिति की थोडी-सी भूमिका अवश्य कही जा सकती है । नायक परीक्षाफल के लिए बहुत उद्विग्न है, फलत कहानी का आरभ इसी भूमिका से हुआ कि परीक्षा के उपरात परीक्षार्थी की क्या स्थिति होती है । 'उसने कहा था' की भूमिका सर्वथा कलात्मक और कहानी की सवेदना से तादात्म्य रखती है, उसमे शैली का आकर्षण है, कहानी मे आरभिक जिज्ञासा है । और इस कहानी मे देश, काल तथा परिस्थिति का आशिक चित्रण भी हो जाता है।

इन कहानियो का मध्यभाग कलात्मक दृष्टि से इनका विकास-भाग है । गुलेरी जी ने कथानक का विकास जहा मुख्यत सयोगो से किया है, वहा सपूर्ण कहानी का विकास विविध कार्यों, मुख्यत वर्णनो तथा विवेचनाओ के माध्यम से किया है। विकास-क्रम अथवा विकास के इन प्रसाधनो मे जिज्ञासा और कौतूहल को बढाते रहना, इनकी सबसे बडी सफलता है। 'सुखमय जीवन' मे इस शैली को बहुत ही कम सफलता मिली है, शेष दोनो कहानिया इसकी सुदरतम उदाहरण हैं । विकास क्रम मे एकसूत्रता की दृष्टि से, सुखमय जीवन' और 'उसने कहा था' परम सफल हैं । लेकिन 'बुद्धू का काटा' मे त्रुटि आ गई है। इसमे मोती के स्वामी इलाही की अवतारणा तथा उसका लबा सा प्रवचन—'बाछा, मेरे हाल मे आपका क्या जी लगेगा ? गरीबो का क्या हाल ? रब रोटी देता है ?' स आरभ होकर 'आप जैसे साईं लोगो की बदगी करता हू । रब का नाम बडा है'[2] तक कहानी से बिल्कुल अलग ही वस्तु है । इसका सबध किसी तरह कहानी के विकास भाग या विकास-क्रम से नही है। 'उसने कहा था' का विकास-भाग कहानी-कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। विविध वर्णनो और व्यवस्थाओ के बीच से कार्यों घटनाओ की योजना तथा इन सबके ऊपर स्मृति-चित्रो के माध्यम स कहानी का पूर्ण विकास, आरभ-भाग तथा व्यक्ति की

१ गुलेरी जी की अमर कहानिया, पृ० २८
२ वही पृ० ३३-३६

मन स्थिति का सुदर विश्लेषण आदि सब तत्वों को एक मे अपूर्व कलात्मक ढग से बाधा गया है ।

इन कहानियो की चरम सीमाए सयोगात्मक और घटनात्मक होती हुई भी मानव-प्रकृति तथा मनोविज्ञान के प्रकाश मे चरितार्थ हुई है। 'सुखमय जीवन' की चरमसीमा यद्यपि कुछ आदर्श बिदुओ पर स्थित है, फिर भी इसमे मनोभावो की तीव्रता विद्यमान है—"उन्होने मुसकराकर कमला से कहा, 'दोनो मेरे पीछे पीछे चले आओ । कमला ! तेरी मा ही सच कहती थी ।' वृद्ध बगले की ओर चलने लगे । उनकी पीठ फिरते ही कमला ने आखें मूदकर मेरे कधे पर सिर रख दिया ।"[१] 'बुद्धू का काटा' की चरमसीमा मे मनोभावो की यह तीव्रता और भी अधिक है—" घूघट के भीतर, जहा आखें होनी चाहिए, वहा कुछ गीलापन दिखा ।

" 'देखो, मैं तुम्हारे प्रेम के बिना जी नही सकता। मेरा उस दिन का रूखापन और जगलीपन भूल जाओ। तुम मेरी प्राण हो, मेरा काटा निकाल दो ।'

" रघुनाथ ने एक हाथ उसकी कमर मे डालकर उसे अपनी ओर खीचना चाहा। मालूम पडा कि नदी के किनारे का किला, नीव के गल जाने से धीरे-धीरे धस रहा है। भागवती का बलवान शरीर निस्सार होकर रघुनाथ के कधे पर झूल गया। कधा आसुओ मे गीला हो गया। "

" मेरा कसूर—मेरा गवारपन—मै उजड्ड—मेरा अपराध—मेरा पाप, मैंने क्या कह डा—डा—आ—घिग्घी बध चली ।

" उसका मुह बद करने का एक ही उपाय था । रघुनाथ ने वही किया । "[२]

कहानियो के अतभाग मे चरम सीमा के उपरात उपसहार बिल्कुल नही जोडा गया है, फलत कहानिया के अत मे प्रभविष्णुता आ गई है। 'उसने कहा था' कहानी की अतिम पक्तियो मे—" कुछ दिन पीछे लोगो ने अखबारो मे पढा—

" फ्रास और बेलजियम—६८वी सूची—मैदान मे घावो से मरा न० ७७ सिख राइफल्स जमादार लहनासिह ।"[३]—उपसहार का किंचित् मात्र स्पर्श अवश्य आ गया है लेकिन कहानी की प्रभविष्णुता पर इसका बुरा प्रभाव नही पडता बल्कि कहानी की तीव्रता बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है।

शैली के सामान्य पक्ष मे भाषा, वर्णन और कथोपकथन तीनो बहुत स्वाभाविक और कलात्मक ढग से प्रयुक्त हुए है ।

१. गुलेरी जी की अमर कहानिया, पृ० २७
२. वही, पृ० ६०
३. वही, पृ० ७७

भाषा और वर्णन

इन कहानियों की भाषा अत्यंत स्वाभाविक और जीवनपूर्ण है, क्योंकि गुलेरी जी भाषा शास्त्र के बहुत बड़े विद्वान थे तथा जर्मन फ्रेंच के अतिरिक्त उन्हें भारत की प्राय समस्त प्रादेशिक भाषाओं और बोलियों का भी पूर्ण ज्ञान था। यही कारण है कि उनके वर्णनों में अपूर्व ढंग से स्वाभाविकता और प्रवाह दोनों तत्त्व आ गए हैं, जैसे अमृतसर में बम्बूकार्ट वाले भाग का वर्णन—"बड़े-बड़े शहरों के इक्के गाडी वालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सबध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आंखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अंगुलियों के पोरों को चीथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और ससार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले, तग, चक्करदार गलियों में, हर एक लड्ढीवाले के लिए ठहरकर, सब्र का समुद्र उमड़ाकर, 'बचो खालसा जी', 'हटो भाई जी', 'ठहरना भाई', 'आने दो, लाला जी', 'हटो, बाछा' कहते हुए सफेद फेंटो, खच्चरों और बत्तकों, गन्ने और खोमचे और भारेवालों के जगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि जी और साहब बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं, चलती है पर मीठी छुरी की तरह मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—हट जा, जीणे जोगिए, हट जा करमाँ वालिए, हट जा, पुत्ता प्यारिए; बच जा, लम्बी वालिए।"[1] तीनों कहानियों में सर्वत्र पात्र तथा परिस्थिति के अनुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है और इस प्रयोग से वर्णनों में सर्वत्र जीवन आ गया है।

कथोपकथन

भाषा और वर्णनों के ही अनुरूप इन कहानियों में कथोपकथनों की भी सफल सृष्टि हुई है। भाषा की स्वाभाविकता तथा परिस्थिति के अनुकूल इसका प्रयोग इन दोनों प्रसगों के सुदर उदाहरण हमें गुलेरी जी के कथोपकथनों में मिलते हैं। जैसे 'उसने कहा था' में—

" लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा —'अपनी

१ गुलेरी जी की अमर कहानियां, पृ० ६१

बाडी के खरबूजो मे पानी दो। ऐसा खाद का पानी पजाब-भर मे नही मिलेगा।'

'हा, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लडाई के बाद सरकार से दस घुमा जमीन यहा माग लूगा और फलो के बूटे लगाऊगा।'

'लाडो होरा को भी यहा बुला लोगे ? या वही दूध पिलानेवाली फरगी मेम—'

'चुप कर। यहा वालो को शरम नही।'

'देस देस की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तमाकू नही पीते। वह सिगरेट देने म हठ करती है, ओठो मे लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हू तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुलक के लिए लडेगा नही।' "[1]

कथोपकथन के प्राय समस्त रूप और शैलिया इन कहानियो मे प्रयुक्त हैं अर्थात् कार्यों, व्यापारो के बीच के कार्यों, व्यापारो के सकेतो के साथ तथा बडे-बडे और अत्यत छोटे छोटे स्वाभाविक कथोपकथनो के यहा दर्शन होते है। इन समस्त रूपो और शैलियो मे स्वाभाविकता ही इसकी प्रमुख विशेषता रही है। इसके अतिरिक्त इसमे सहज विनोद, व्यग्य और जीवन के अन्य सहज तत्व मिलते हैं।

निम्नलिखित कथोपकथनो मे इन तत्वो के स्पष्ट उदाहरण मिलेंगे—

"तुम्हारा नाम क्या है ?'

"भागवती।"

"रहती कहा हो ?"

"मामी के पास। वही जिसने कुए पर पानी नहीं पिलाया था !"

उस दिन का स्मरण आते ही रघुनाथ फिर चुप हो गया। फिर कुछ ठहर-कर बोला—"तुम मेरे पीछे क्यो पडी हो ?"

"तुम्ह आदमी बनाने को। जो तुम्हें बुरा लगा हो, तो मैंने भी अपने किए का लहू बहाकर फल पा लिया। एक सलाह दे जाती हू।"

"क्या !"

"कल से नदी मे नहाने मत जाना।"

"क्यो ?"

"गोते खाओगे तो कोई बचानेवाला नही मिलेगा।" रघुनाथ झेंपा, पर सभलकर बोला, "अब कोई मेरी जान बचायेगा तो मैं पीछा नही करूगा, दो गाली भी सुन लूगा।"

१ गुलेरी जी की अमर कहानियां, पृ० ६४-६५

इसलिए नही मैं आज अपन बाप के यहा जाऊगी।
तुम्हारा घर कहा है ?
जहा अनाडिया के डूबने के लिए कोई नदी नही है। [1]

लक्ष्य और अनुभूति

गुलेरी जी की तीना कहानिया अनुभूति के धरातल से नही लिखी गई हैं बल्कि लक्ष्य के धरातल से लिखी गई हैं। इनकी सृष्टि तथा निर्माण म आदश लक्ष्य सबसे बडी प्ररणा थी और अनुभूतिया इनम साधनतत्त्व के रूप म आई हैं प्ररणातत्त्व म नही। इस निष्कष पर पहुचने के लिए हमार पास दो सबसे बड प्रमाण हैं। वस्तुत कहानीकार का दृष्टिकोण अपनी इन कहानिया के निर्माण म लक्ष्यात्मक रहा है फलत समस्त कहानिया सयोग और घटना प्रधान हुई हैं। एक निश्चित आदश की प्रतिष्ठा क कारण ये कहानिया लम्बी और दो विरोधी शक्तिया के साथ निर्मित हुई हैं।

समीक्षा

ये कहानिया लक्ष्यात्मक होती हुई भी अनुभूतियो स ओतप्रोत हैं। व्यक्ति समाज और वग तीना के सुदरतम आदश इन कहानियो मे मिलते हैं क्योकि स्पष्टत जीवन के प्रति गुलेरी जी का दृष्टिकोण सवथा स्वस्थ है। उनके साहित्य का आधार छायानुभूतिया नही हैं जीवन की मासल अनुभूतिया है। जीवन म नीति और सदाचार को पूण रूप से स्वीकार करते हुए भी वह सक्स के नाम पर बिदकने वाले आदमियो म से नही थे। [2] वस्तुत सामाजिक चेतना इन कहानिया का प्राण है। आदश प्रतिष्ठा तथा नीति सदाचार जीवन के ऊचे मान को स्थिर करना इन कहानिया की प्ररणाए है। समाज की उभरी हुई समस्याए जस पर्दे की अस्वस्थ प्रथा सभ्यता की अनुचित दासता और विवाह से सबधित दहेज मुहूत प्रम के व्यावसायिक स्वरूपो तथा समस्याओ के प्रति उन्होने उचित सकेत और व्यग्य दोनो किए है। इस व्यग्य मे गुलेरी जी का हास्य इन कहानिया की सबसे बडी विशेषता है। कहानिया म बार बार अतिरजना तथा अप्रासगिकता आई है लेकिन हास्यरस से सिक्त होने के कारण यह दोष आकषण मे परिणत हो जाता है। इन्होने हास्य की सष्टि तीन शलियो से की है—परिस्थिति निर्माण परिस्थिति चित्रण और विनोद की अवतारणा से।

१ गुलेरी जी की अमर कहानिया पृ० ५१
२ विचार और अनभूति गुलेरी जी की कहानिया श्री नगन्द्र पृ० ४६ प्रदीप कार्यालय मुरादाबाद सन् १९४५ ई०

हिंदी कहानी के उस शैशवकाल मे कहानी को इतनी समुचित और कलात्मक भाषा, शैली और प्रवाह देना, गुलेरी जी के कहानीकार व्यक्तित्व की अपूर्व क्षमता है। जिस समय प्रेमचद और प्रसाद अपनी कहानी-कला के प्रारम्भिक काल मे कहानी लिख रहे थे, उस समय गुलेरी जी ने इन कहानियो की सृष्टि से कहानी-कला के विद्यार्थी और पाठक दोनो के सामने आश्चर्य खडा कर दिया।

गुलेरी जी की कहानी-कला—३

☐ डॉ० हरदयाल

हिंदी कहानी का इतिहास बहुत पुराना नही है। इस शताब्दी के पहले दशक मे हिंदी की पहली कहानी लिखी गई। दूसरे दशक मे कई महत्त्वपूर्ण कहानीकार प्रकाश मे आए। इसी दशक मे कई ऐसी कहानिया भी प्रकाश मे आई जो हिंदी की अमर कहानिया मानी जाती हैं। इनमे से कुछ तो ऐसी कहानिया हैं जिन्हें ससार की श्रेष्ठ कहानियों की पक्ति मे रखा जा सकता है। इस दूसरे दशक की ही श्रेष्ठ उपलब्धि चद्रधर शर्मा गुलेरी और उनकी कहानिया हैं। गुलेरी जी को बहुत छोटी आयु (१८८३-१६२२) मिली, किंतु इस छोटी-सी आयु मे ही उन्होंने विभिन्न क्षेत्रो मे थोडा-थोडा लिखकर अमरत्व प्राप्त कर लिया। विद्वत्ता और साहित्य-सृजन के क्षेत्र मे उनकी उपलब्धिया आश्चर्यजनक हैं। उनकी उपलब्धिया अभ्यास या श्रम की अपेक्षा प्रतिभा का फल अधिक हैं। यह बात अन्य क्षेत्रो के समान ही कहानी क्षेत्र की उनकी उपलब्धियो से भी सिद्ध होती है। गुलेरी जी की कुल तीन कहानिया उपलब्ध हैं। उनकी पहली कहानी 'सुखमय जीवन' है। यह कहानी १६११ मे 'भारत मित्र' मे प्रकाशित हुई थी। दूसरी कहानी 'बुद्धू का काटा' कहा और कब प्रकाशित हुई, यह पता नही है। इसलिए उसका रचनाकाल सन् १६११-१५ ई० के बीच अनुमानित किया जाता है। उनकी तीसरी कहानी 'उसने कहा था' जून, १६१५ ई० की 'सरस्वती' मे प्रकाशित हुई थी। अपनी इन तीन कहानियो के आधार पर उन्हे हिंदी का अमर कहानीकार माना जाता है। पुरानी पीढी के आचार्य रामचद्र शुक्ल, बाबू श्यामसुदरदास, अमरनाथ झा, डॉ० बाबूराम सक्सेना, नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ० नगेन्द्र इत्यादि से लेकर नयी पीढी के समर्थ आलोचको तक ने उन्हे श्रेष्ठ कहानीकार स्वीकार किया है, किंतु कुछ अतिरिक्त उत्साही, नासमझ युवक अपने लचर तर्कों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे है कि "गुलेरी कोई सशक्त कहानीकार नही हैं।" उनके इस प्रयत्न के पीछे कौनसी प्रेरणा काम कर रही

है, यह हम नही जानते, किंतु हम इतना अवश्य कह सकते है कि उन्हे अपने प्रयत्न म सफलता नही मिलेगी ।

गुलेरी जी ने अपनी तीन कहानियो मे विकास के तीन सोपान पार किए हैं, और हर सोपान पर उनकी कहानी-कला परिपक्वतर होती गई है। पाच वर्ष के अल्प काल और तीन कहानियो की अल्प सख्या मे उन्होने कहानी-सृजन की जो प्रौढता प्राप्त की, उसे अद्भुत ही कहा जा सकता है। परिपक्वता केवल कला के स्तर पर ही नही, बल्कि वस्तु, सवेदना और जीवन दृष्टि के स्तर पर भी आई है ।

गुलेरी जी की तीनो कहानिया प्रेम-कहानिया हैं। इन तीनो कहानियो मे चित्रित प्रेम का स्वरूप क्या है, इसे समझने के लिए कुछ तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक है। 'सुखमय जीवन' मे प्रेम का उदय प्रथम दृष्टि मे होता है । नायिका को देखते ही नायक मुग्ध हो जाता है। नायिका की आखें नायक के अतस् को बेधती चली जाती है—"पारसी चाल की एक गुलाबी साडी के नीचे चिकने काले बालो से घिरा हुआ उसका मुखमडल दमकता था और उसकी आखें मेरी ओर कुछ दया, कुछ हँसी और कुछ विस्मय से देख रही थी। बस, पाठक ! ऐसी आखें मैंने कभी नही देखी थी। मानो वे मेरे कलेजे को घोलकर पी गयी। एक अद्भुत कोमल, शात ज्योति उनमे से निकल रही थी। कभी एक तीर मे मारा जाना सुना है ? कभी एक निगाह मे हृदय बेचना पडा है ? कभी तारामैत्रक और चक्षुमैत्री नाम आये हैं ? मैंने एक सेकड मे सोचा और निश्चय कर लिया कि ऐसी सुदर आखें त्रिलोकी मे न होगी और यदि किसी स्त्री की आखो को प्रेमबुद्धि से कभी देखूगा तो इन्ही को ।"[१]

'बुद्धू का काटा' मे प्रेम का उदय प्रथम दृष्टि मे नही होता । उसमे प्रेम का उदय थोडे-से साहचर्य के कारण होता है। इस कहानी मे भी नायक को नायिका की आखें सर्वाधिक आकर्षित करती हैं। रघुनाथ पनघट पर भागवती को आख उठाकर देखता है तो अन्य चीजो के साथ उसका ध्यान उसकी आखो पर केंद्रित होता है—"आखों के डेले काले, कोए सफेद नही, कुछ मटियाले नीले और पिघलते हुए। यह जान पडता था कि डेले अभी पिघलकर बह जायेंगे ।"[२] भागवती की य आखें उसकी चेतना मे चुभकर रह गईं। पनघट मे इलाही के पास लौट आने पर 'स्त्रियो की टोली के वाक्य उसे गड रहे थे और सब वाक्यो के दुस्वप्नो के ऊपर उस पिघलती हुई आखो वाली कन्या का चित्र मडरा रहा था।"[३] नदी के

१. गुलेरी जी की अमर कहानियां :,
२ वही, पृ० ४०
३. वही, पृ० ४३

किनारे दाढी बनाते रघुनाथ की क्रियाओं का अनुकरण करती भागवती की आखे उसे अपनी ओर देखने के लिए विवश करती हैं —' रघुनाथ ने कई बार विचार किया कि मैं उधर न देखगा, पर वह फिर उधर ही देखने लगा। आखें, जो मानो अभी पानी होकर वह जायेंगी, सफेद हल्का नीला कोआ, जिसम एक प्रकार की चपलता हँसी और घृणा तैर रही थी।"[1] नदी में से भागवती रघुनाथ को निकालती है और वह देखता है कि "भीगी हुई कुमारी उसके सामने खडी है और उन्ही पिघलती हुई आखो मे घृणा दया और हसी झलकाती हुई कह रही है कि इस अनाडी के सामने भी कोई लहगा पसारेगी ?"[2] दोनों के उलझाव और छीना-झपटी मे रघुनाथ का घूसा लडकी की नाक पर लग गया। वह लज्जित है। उसकी आखें नीचे झुकी हैं। 'परतु फिर क्षण-भर मे आखें उठ आयी। लडकी अपने भीगे और धूल लगे हुए आचल से नाक पोछती हुई उन्ही आखो मे वही घृणा की और पछतावे की दृष्टि डालती हुई वह रही थी ।"[3] रघुनाथ का घोघापन और स्त्रियो की ओर से झेंप 'इस पिघलती हुई आखो वाली के वचन बाणो के नीचे भागने लगी।"[4]

भागवती की छेडछाड ने उसमे विचित्र बेचैनी पैदा कर दी है। वह उसे याद करता उसकी आखो से—"अवश्य ही अपने पिछले अनुभव से वह इतना चमक गया था कि किसी स्त्री से बातें करने की उसकी इच्छा न थी, परतु रह-रहकर उस पिघलती हुई आखो वाली का और अधिक हाल जानने और वचन-कोडे सहन की इच्छा होती थी।" *भागवती के साथ रघुनाथ का विवाह हो* गया। वह उसके मा बाप के पास आगरा म है। इलाहाबाद मे हॉस्टल मे रहते हुए उसे भागवती बराबर याद आती है। इस याद मे भागवती की आखें प्रमुख हैं—'रात को जब सोया तो पिघलती हुई आखें, वही नाक से बहता हुआ खून और वह आसुओं से न ढकने वाली हँसी।'[6]'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का काटा' दोनो कहानियो के नायको को नायिका की आखें अभिभूत करती हैं। वस्तुत किसी लडकी की आखो स स्वय कहानीकार अभिभूत है। यह लडकी कौन थी जिसकी आखो से कहानीकार इतना अभिभूत है—यह खोज का रोचक विषय हो सकता है। स्पष्टत यह इस बात का एक सकेत है कि गुलेरी जी की कहानियो मे आत्म-

१ गुलेरी जी की अमर कहानिया पृ० ४६
२ वही, पृ० ४६
३ वही पृ० ५०
४ वही पृ० ५१
५ वही पृ० ५३
६ वही पृ० ५७

कथात्मक तत्त्व हैं। डॉ० मनोहरलाल ने अपने एक लेख मे इन आत्मकथात्मक तत्त्वो को विश्वसनीय ढग से खोजा है।"[1]

तीसरी कहानी 'उसने कहा था' मे प्रेम का उदय पूर्णत साहचर्यजनित है। उसमे नायिका के रूप का आकर्षण कतई नही है। बारह वर्ष का लहनासिह और आठ वर्ष की एक लडकी रोज अमृतसर के एक बाजार मे मिल जाते हैं। लडका लडकी को 'तेरी कुडमाई हो गयी' कहकर चिढाता है और लडकी 'धत्' कहकर भाग जाती है। यह क्रम एक महीने तक चलता रहता है। और इस बीच लडके ने दो-तीन बार फिर पूछा - 'तेरी कुडमाई हो गयी ?' और उत्तर मे वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लडके ने वैसे ही हँसी मे चिढाने के लिए पूछा तब लडकी बोली—'हा, हो गयी।' 'कब ?' 'कल—देखते नही यह रेशम से कढा हुआ सालू !' लडकी से यह अप्रत्याशित उत्तर पाकर लडके को ठेस लगी, जिसका सकेत कहानीकार ने लडके की इन क्रियाओ के माध्यम से दिया है—"लडके ने घर की राह ली। रास्ते मे एक लडके को मोरी मे ढकेल दिया, एक छावडी वाले की दिन-भर की कमाई खोयी, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और गोभी वाले के ठेले मे दूध उडेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अधे की उपाधि पाई। तब कही घर पहुचा।"[2] लहनासिह की ये क्रियाए इस बात की द्योतक हैं कि एक महीने के साहचर्य और छेडछाड ने उसके मन मे लडकी के प्रति एक भावना पैदा कर दी है। इस भावना को 'प्रेम' कहा जा सकता है। यह भावना अनजाने उत्पन्न हुई है , और अनजाने उत्पन्न होने वाली इस भावना के लिए लहनासिह ने अपने जीवन का बलिदान कर दिया। फलत 'उसने कहा था' प्रेम के लिए आत्मबलिदान की कहानी बन जाती है।

'उसने कहा था' कहानी मे लहनासिह और सूबेदारनी के बीच का प्रेम पूर्णत. अशरीरी है। उसमे शारीरिक इच्छा—वासना—का लेश भी नही है। यह अशरीरी प्रेम भी सकेतों से व्यजित हुआ है, उसमे मुखरता कतई नही है। इसी बात को दृष्टि मे रखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा था—"इसमे पक्के यथार्थवाद के बीच, सुरुचि की चरम मर्यादा के भीतर, भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यत निपुणता के साथ सपुटित है। घटना इसकी ऐसी है जैसी बराबर हुआ करती है; पर उसके भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाक रहा है, केवल झाक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नही रहा है। कहानी-भर मे कही प्रेम की निर्लज्ज प्रगल्भता, वेदना की वीभत्स विवृत्ति नही है। सुरुचि के सुकुमार-से-सुकुमार स्वरूप पर कही आघात नही पहुचता। इसकी

१. सारिका, १-१५, जुलाई, १९८३
२ गुलेरी जी की अमर कहानिया, पृ० ६३

इतिहास ऐसी विचित्र घटनाओ की धूप-छाया से भरा हुआ है, पर हम लोग प्रकृति के इन सच्चे चित्रो को न देखकर उपन्यासो की मृगतृष्णा मे चमत्कार ढूढते हैं।"[1] गुलेरी जी की जीवन दृष्टि इसी यथार्थ के अवलोकन और अनुभव से निर्मित हुई है। उनकी कहानिया मे जीवन के विभिन्न पक्षो से सबधित जो सूक्त्यात्मक कथन हमे मिलते हैं वे उपदेश नही हैं अपितु जीवन के अनुभव-निष्कर्ष हैं। उदाहरण के लिए, इस प्रकार के कुछ कथन प्रस्तुत हैं—

(१) स्त्री के स मने उसके नैहर की बडाई कर दे और लेखक के सामने उसके ग्रथ की, यह प्रिय बनने का अमोघ मत्र है।[2]

(२) बहस करके स्त्रियों से आज तक कोई नही जीता, पर मण्ट मारकर जीत सकता है।[3]

(३) बिना फेरे घोडा बिगडता है और बिना लडे सिपाही।[4]

(४) मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म-भर की घटनाए एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यो के रग साफ होते हैं, समय की धुध बिल्कुल उन पर से हट जाती है।[5]

जिस प्रकार गुलेरी जी की कहानियो मे उनके अनुभव और जीवन-दृष्टि मे क्रमश परिपक्वता आई है, उसी प्रकार उनकी कहानी-कला मे भी। उनकी कहानियो म सयोगो की भूमिका महत्वपूर्ण है। सयोगो म स्वाभाविकता क्रमश आई है। सुखमय जीवन' में सयोग स्वाभाविक नही बन पाए है। ऐसा स्पष्ट लगता है कि जैसे सब कुछ लेखक के द्वारा नियोजित है। इस कहानी के अस्वाभाविक सयोगो और स्थितियों के प्रति कहानीकार सचेत है, और वह उनके औचित्य को सिद्ध करने के लिए तर्क और प्रमाण जुटा रहा है, इसका अनुभव पाठक को बराबर होना है। सालह सत्रह वर्ष की लडकी का १६११ ई० म न केवल बेपर्दा घूमना, बल्कि २४-२५ वर्ष के अपरिचित युवक को अपने घर ले आना, विश्वसनीय नही लगता। इसे विश्वसनीय बनाने के लिए लेखक ने एक तर्क को गुलाबराय के इस कथन के रूप मे रखा है—"मैं ब्रह्मसमाजी हू मेरे यहा पर्दा नही है।"[6] दूसरा तर्क है, कमला की प्रबुद्धता। वह शिक्षित है और लेखिका भी। वह 'महिला मनोहर' मासिक पत्र मे लख लिखती है। ऐसी ब्रह्मसमाजी युवती यदि किसी अपरिचित युवक के साथ सकोचहीन व्यवहार करती है तो अनुचित

१ गुलेरी जी की अमर कहानिया पृ० ३६
२ वही, पृ० २१
३ वही, पृ० ३०
४ वही पृ० ६३
५ वही, पृ० ७४
६ वही पृ० २२

क्या है ? कहानीकार को इस बात का बोध भी है कि जयदेव जिस ढग से और जिस शब्दावली मे प्रेम-निवेदन कर रहा है वह अनुचित है। इसका भी औचित्य सिद्ध करने के लिए कहानीकार ने तर्क और प्रमाण जुटाए हैं। जयदेव का यह कथन इसी उद्देश्य से प्रेरित है—"अगरेजी महाकाव्यो मे, प्रेममय उपन्यासो मे और कोर्स के संस्कृत-नाटको मे जहा-तहा प्रेमिका-प्रेमिक का वार्तालाप पढा था, वहा-वहा का दृश्य स्मरण करके वहा के वाक्यो को घोख रहा था, पर यह निश्चय नही कर सका कि इतने थोडे परिचय पर भी बात कैसे करनी चाहिए। अत को अगरेजी पढने वाले की धृष्टता ने आर्यकुमार की शालीनता पर विजय पाई, और चपलता कहिए, बेसमझी कहिए, ढीठपन कहिए, पागलपन कहिए, मैंने दौडकर कमला का हाथ पकड लिया।"[1] जयदेव अपने प्रेम-निवेदन के सबध मे कहता है—"मैं स्वय नही जानता था कि मैं क्या कर रहा हू, पर लगा बकने।"[2] स्पष्टत कहानीकार जयदेव के आचरण की अस्वाभाविकता और उसकी बेवकूफी से परिचित है और उसके प्रति उसके मन म परिहास-भाव विद्यमान है। जो लोग कहानीकार के इस परिहास-भाव को नही पकड पाते, वे 'सुखमय जीवन' को ठीक से समझ भी नही पाते।

'सुखमय जीवन' मे नायक नायिका की अवस्था क्रमश २४-२५ एव १६-१७ वर्ष है। दोनो की अवस्था मे आठ वर्ष का अतर है। 'बुद्धू का काटा' और 'उसने कहा था' मे न केवल नायक नायिका की आयु-सीमा कम होती जाती है अपितु दोनों का अतर भी कम होता जाता है। 'बुद्धू का काटा' मे रघुनाथ की आयु है १६ वर्ष और भागवन्ती की १४-१५ वर्ष। यहा आठ वर्ष के बजाय १-५ वर्ष का ही अनर रह जाता है। 'उसने कहा था' मे लडकी की उम्र ८ वर्ष है और लडके की १२ वर्ष। दोनो की उम्र मे अतर रह जाता है ४ वर्ष का। हमारे विचार से यह स्वाभाविकता और यथार्थवादिता की दिशा मे बढने के प्रयास का परिणाम है। तीनो कहानियो की नायिकाए सकोचहीन एव अत्यत मुखर स्वभाव वाली हैं। तीनो कहानियो मे कहानीकार ने इसके अलग-अलग कारण दिए हैं। कमला ब्रह्मसमाजी और विदुषी है। भागवन्ती ग्रामीणा है। गाव की लडकियो के सबध म कहानीकार का मत है—"गाव की लडकिया हड्डियों और गहनों का बडल नहीं होती। वहा वे दौडती हैं, कूदती हैं, हँसती है, गाती हैं, खाती हैं और पचाती है। नगरो मे आकर वे खूटे से बधकर कुम्हलाती हैं, पीली पड जाती हैं, भूखी रहती हैं, सोती हैं, रोनी हैं और मर जाती हैं।"[3] तीसरी कहानी की

१ गुलेरी जी की अमर कहानिया, पृ० २४
२ वही, पृ० २५
३ वही, पृ० ४६

लडकी अभी इतनी कम उम्र की है कि उसके लिए लडके-लडकी की छेडछाड का अर्थ बचपन की खिलवाड से अधिक कुछ नही है। उसके लिए 'कुडमाई' का अर्थ केवल 'रेशम से कढा हुआ सालू' है।

पहली दो कहानियो म गुलेरी जी ने नायक और नायिका के बीच प्रेम की उत्पत्ति की सूचना स्पष्ट शब्दो मे दे दी है, किंतु तीसरी कहानी मे केवल सकेत दिए हैं, बाकी पाठक के अनुमान के लिए छोड दिया गया है। श्रेष्ठ कला होती भी साकेतिकता मे ही है। पहली दो कहानियों मे घटनाओ को सीधे-साधे कालानुक्रम से रखा गया है। इन कहानियो का अत क्या होगा, इसका अनुमान लगा लेना पाठको के लिए कठिन नही होगा, किंतु 'उसने कहा था' मे ऐसा नही है। इसमे घटनाओं को विदग्धता के साथ सयोजित किया गया है। शीर्षक से ही पाठक के मन मे जिज्ञासा उत्पन्न होती है—किसने किससे कब क्या कहा कहा था ? यह जिज्ञासा क्रमश तीव्रतर होती जाती है, किंतु इसका समाधान कहानी के अत मे जाकर होता है।

'उसने कहा था' के पहले खड मे केवल इतना सकेत मिलता है कि अमृतसर के बाजार मे महीने भर मिलते रहने वाले कम उम्र वाले लडके लडकी के बीच एक भावनात्मक सबध अनजाने विकसित हो गया है। दूसरे से चौथे खड तक हम देखते हैं कि लहनासिंह सूबेदार हजारासिंह और उसके बेटे बोधासिंह का विशेष ध्यान रखता है। क्यो इसका कोई उत्तर हम नही मिलता। चौथे खड मे लहनासिंह सूबेदार से कहता है—'जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होने (सूबेदारनी ने) कहा था वह मैंने कर दिया।'' यहा इतना सकेत हमे मिल जाता है कि सूबेदारनी ने लहनासिंह से कुछ करने के लिए कहा था, किंतु यहा भी हम सूबेदार के साथ यही पूछते रह जाते है—"उसने क्या कहा था ?" इसका उत्तर हमे कहानी के अतिम खड मे मिलता है। छुट्टियो मे लहनासिंह और सूबेदार अपने अपने गाव गए हुए है। तभी लडाई छिड जाती है और दोनो को वापस लौटने का आदेश मिलता है। सूबेदार लहनासिंह को चिट्ठी लिखता है कि लौटते समय वह उसके गाव आ जाए। साथ साथ वापस लौटेंगे। लहनासिंह सूबेदार के घर आता है तो सूबेदारनी उससे एकात मे कहती है—"तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोडे की लातो म चले गए थे और मुझे उठाकर दूकान के तख्ते पर खडा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों (सूबेदारनी के पति और पुत्र) को बचाना। यह मरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आंचल पसारती हू।"[1] यहा जाकर पाठक की जिज्ञासा शात होती है। हिंदी कहानी की उस शैशवावस्था म घटनाआ का ऐसा कुशल परिपक्व विन्यास तथा कहानी के अतिम खड

१ गुलेरी जी की अमर कहानिया पृ० ७६

मे पूर्वदीप्ति शैली का उपयोग हमे आश्चर्यचकित करता है। यह अपूर्व वस्तु-निर्माण की क्षमता रखने वाली प्रतिभा का ही परिणाम है।

गुलेरी जी की तीनो कहानियो मे आए हुए पात्रो का व्यक्तित्व एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न और निजी पहचान से युक्त है। पहली दो कहानियो की नायिकाए एक ही लडकी के आधार पर गढी गई लगती है तथापि व एक दूसरे से अलग अपनी पहचान रखती हैं। कमला और भागवन्ती मे जो सकोचहीनता है उसकी प्रकृति अलग-अलग है। तीसरी कहानी की नायिका पहली दो कहानियो की नायिकाओ से काफी दूर है। गुलेरी जी मे पात्रो को सजीव बना देने की अद्भुत क्षमता है। उनकी कहानियो का शायद ही कोई पात्र ऐसा होगा जो व्यक्तित्वहीन नाम-मात्र हो। यह बात जयदेवशरण वर्मा, रघुनाथ और लहनासिंह तथा नायिकाओ जैसे प्रमुख पात्रो के सबध मे ही सच नही है अपितु गुलाबराय, इलाही, वजीरासिंह जैसे अप्रमुख पात्रों के विषय मे भी सच है। दरअसल, गुलेरी जी पात्रो के बाह्य रूप-रग, क्रियाकलाप तक ही अपने को सीमित नही रखते अपितु उनके मन मे प्रवेश करके उनके मनोविज्ञान का भी उद्घाटन करते हैं। उदाहरण के लिए, 'बुद्धू का काटा' के रघुनाथ के माता-पिता या इलाही का प्रस्तुत किया जा सकता है। मानव मनोविज्ञान को पकडने की क्षमता का ही यह परिणाम है कि इस कहानी के नायक नायिका अपने प्रेमोद्भव के समय के स्मृति-चिह्न—क्रमश पैंट और काटा—सुरक्षित रखते हैं। इसमे कोई सदेह नही कि गुलेरी जी की कहानियो मे जो मनोविज्ञान अभिव्यक्ति पाता है वह सामान्य (नॉर्मल) मनोविज्ञान है।

गुलेरी जी ने अपनी कहानियो के प्रभाव को तीव्र करने के लिए कहानी के हर तत्त्व का कुशल प्रयोग किया है। उनके सवाद पात्रानुकूल हैं। वे छोटे, रोचक और विदग्धतापूर्ण है। उनके माध्यम से सूचनाए भी मिलती हैं और पात्रों के चरित्र का उद्घाटन भी होता है। लडकी के पैर से काटा निकाल देने के बाद की 'बुद्धू का काटा' के नायक नायिका की यह बातचीत सुनिए—

"ओफ !" कहकर रघुनाथ ने कमीज की आस्तीन फाडकर उसके पाव मे पट्टी बाध दी।

बालिका चुप बैठी थी। रघुनाथ काटे को निरख रहा था।

"अब तो दर्द नही ?"

"कोई एहसान थोडा है, तुम्हारे भी काटा गड जाय तो निकलवाने आ जाना।"

"अच्छा !" रघुनाथ का जी जल गया था। यह बर्ताव !

"अच्छा क्या ? जाओ, अपना रास्ता लो।"

"यह काटा मैं ले जाऊगा। आज की घटना की यादगारी रहेगी।"

"मैं इसे जरा देख लू।"

रघुनाथ ने अगूठे और तर्जनी से काटा पकडकर उसकी ओर बढाया। अपनी दो अगुलियो से उसे उठाकर और दूसरे हाथ से रघुनाथ को धक्का देकर लडकी हँसती-हँसती दौड गई।'[1]

इस बातचीत और उसके साथ जुडी क्रियाओ से भागवन्ती की समस्त चचलता और विदग्धता उभर आती है और उसे मोहक व्यक्तित्व प्रदान कर देती है। इसम भाषा की अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। गुलेरी जी भाषा के कुशल प्रयोक्ता है। सवादो को पात्रानुकूल बनाने के लिए वह आचलिक शब्दावली का नि सकोच प्रयोग करते हैं। यहा नोट करने की बात यह है कि पहली कहानी म आचलिक शब्दावली का प्रयोग नही है किंतु दूसरी और तीसरी कहानी मे यह प्रयोग है। 'बुद्धू का काटा' मे इलाही की कहानी आचलिक शब्दावली से भरपूर है। 'उसने कहा था' मे आचलिक शब्द प्रयोग मे और परिपक्वता आती है। इस कहानी मे आचलिक शब्द पूरी कहानी मे व्याप्त हैं। इनके कारण कहानी को स्थानीय रग मिला है और उसमे वैशिष्ट्य आया है। यद्यपि गुलेरी जी की कहानियो के कुछ भाषिक प्रयोग पुराने पड गए हैं, किंतु समग्रत इन कहानियो की भाषा आज भी हम आकर्षित करती है। इस प्रकार के अनेक प्रयोग है जो हमे तुरत पकड लेते हैं और जिनसे प्रभावित हुए बिना हम रह नही पाते। 'बुद्धू का काटा' म पहाड का यह चित्र किसे आकर्षित नही करेगा—"पहाडी जमीन, जहा रास्ता देखने मे कोस भर जँचे और चाहे उसमे दस मील का चक्कर काट लो, बिना पानी सीचे हुए हरे मखमल के गलीचे स ढकी हुई जमीन उस पर जगली गुलदाऊदी की पीली टिमकिया और वसन्त के फूल, आलूबोखारे और पहाडी करौदे की रज से भरे हुए, छोटे-छोट रगीले फूल जो पेड का पत्ता भी न दिखने दें, क्षितिज पर लटके हुए बादलो की सी बरफीले पहाडो की चोटिया जिन्हे देखते आखें अपने आप बडी हो जाती और जिनकी हवा की सास लेने से छाती बढती हुई जान पडती, नदी से निकाली हुई छोटी-छोटी असख्य नहरें, जो साप के-से चक्कर खा खाकर फिर प्रधान नदी की पथरीली तलेटी मे जा मिलती—ये सब दृश्य प्रयाग के ईंटो के घर और कीचड की सडको से बिल्कुल निराले थे।"[2]

उक्त उद्धरण मे अलकरण है। तीसरी कहानी मे अलकारो के उपयोग मे और अधिक परिपक्वता आई है। 'लडाई के समय चाँद निकल आया था। ऐसा चाँद, जिसक प्रकाश मे सस्कृत कवियो का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्ट की भाषा मे 'दन्तवीणोपदेशा-

१ गुलेरी जी की अमर कहानिया, पृ० ५२ ५३
२ वही, पृ० ४३ ४४

चार्य' कहलाती ।"[1] यह प्रयोग वातावरण की सृष्टि तो करता ही है, साथ ही समय तथा ठड की अतिशयता की सूचना भी देता है। गुलेरी जी की कहानियो मे लोकोक्तियो, मुहावरो, उपमामूलक अलकारो तथा अन्य लाक्षणिक प्रयोगो के उदाहरण सुलभ हैं, किंतु उतने ही जितने से भाषा का सौदर्य निखरता है, भाषा को कृत्रिमता प्रदान करने वाली भरमार नही है।

गुलेरी जी की कहानियो मे—विशेषत पहली दो कहानियो मे—कुछ ऐसी चीजें हैं जिनसे कहानियों की चुस्ती कम होती है – जैसे बीच-बीच मे कहानीकार का प्रत्यक्ष रूप से पाठक के सामने आकर किसी किस्सागो के समान सूचनाए देना अथवा विषयातर करके किसी ललित निबधकार के समान विभिन्न विषयो पर टिप्पणिया करने लगना, किंतु गुलेरी जी की कहानियों का मूल्याकन करते समय हम यह बात नही भूलनी चाहिए कि वह हिंदी कहानी के शैशवकाल की रचनाए हैं। हमारा स्पष्ट मत है कि गुलेरी जी की कहानिया हिंदी कहानी-साहित्य की स्पृहणीय उपलब्धिया हैं।

१ गुलेरी जी की अमर कहानिया, पृ० ७३

गुलेरी जी की कहानी-कला—४

□ सुरेश शर्मा

गुलेरी जी बहुत अच्छे भाषा-विज्ञानी, निबंधकार और संपादक भी थे लेकिन हिंदी के बहुसंख्यक पाठक उन्हें 'उसने कहा था' कहानी के कहानीकार के रूप में ही जानते हैं। जबकि इससे पूर्व लिखी गई 'बुद्धू का कांटा' तथा 'सुखमय जीवन' शीर्षक उनकी कहानियां अपनी संरचनात्मक कमजोरियों के बावजूद भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

गुलेरी जी की पहली कहानी 'सुखमय जीवन', जो 'भारत मित्र' में १९११ ई० में प्रकाशित हुई, इस अर्थ में विशिष्ट है कि उसमें सुधारवाद तो है लेकिन आदर्शवाद नहीं है, बल्कि वह सुधारवाद आधुनिकता से अधिक जुड़ा है। गुलेरी जी की यह विशिष्टता उन्हें बहुत दूर तक यथार्थवाद के निकट ले आती है। बाद की उनकी अन्य दो कहानियों, 'बुद्धू का कांटा' (१९११-१५ के बीच लिखित), तथा 'उसने कहा था' (सरस्वती जून, १९१५), की तरह ही 'सुखमय जीवन' नामक कहानी भी एक प्रेम-कहानी ही है। लेकिन इसमें अपने कथ्य के द्वारा गुलेरी जी स्त्री-पुरुष संबंध के संदर्भ में सामंती सोच पर चोट करते हैं तथा उसे आधुनिकता की दिशा में उन्मुख करने का प्रयास करते हैं।

इन कहानियों में सबसे पहले जो चीज आकर्षित करती है, वह है उनकी सर्जनात्मक भाषा।

गुलेरी जी की कहानियों का गद्य बोझिल गद्य नहीं है। उनके गद्य की लय बातचीत और बहस की है। अपने समय के बहुतसे दूसरे लेखकों की तरह गुलेरी जी भाषा लिखकर अनुपस्थित नहीं हो जाते बल्कि वह हमेशा मौजूद रहते हैं। एक-एक शब्द में, एक-एक पंक्ति में—अतत वाक्यविन्यास और विराम-चिह्नों में। लेटे हुए अगर आप उनका गद्य पढ़ रहे हैं तो कुछ पंक्तियों के बाद अचानक आप पाएंगे कि आप अपने कमरे की खाली कुर्सी पर जाकर बैठ गए हैं और मेज की दूसरी तरफ पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी बैठे हैं—पतली कमानी के

चश्मे मे, सिर पर पाग और गले मे लबा अगोछा लपेटे, और आपसे बहस कर रहे हैं—अपने अहवाल बयान कर रहे हैं ! सत्तर-इकहत्तर वर्ष बाद, उसी ताजगी से।

ऐसा क्यो है ? दरअसल गुलेरी जी महज विचार की भाषा नही लिखते, क्रियाशीलता की भाषा लिखते हैं, जिसमे विचार निहित हैं। अक्सर वह किसी भी वृत्तात को विवरण की भाषा मे नही लिखते, न ही यथातथ्यता का सूखापन उसमे होता है। गुलेरी जी की भाषा की क्रियाशीलता उसकी चित्रात्मकता मे है, जिसमे व्यग्य की रेखाओ की प्रमुखता है। यह चित्रात्मकता ही है जो उनकी भाषा को ऐन्द्रिक बनाती है और जिससे वह सर्जनात्मक हो उठती है। अपनी पहली कहानी 'सुखमय जीवन' मे वह लिखते हैं—"बस, अब नही सहा गया—सोचा कि घर स निकल चलो, बाहर ही कुछ जी बहलेगा। लोहे का घोडा उठाया कि चल दिए। तीन-चार मील जाने पर शाति मिली। हरे-हरे खेतो की हवा, कही पर चिडियो की चहचह और कही कुओ पर खेतो को सीचते हुए किसानो का सुरीला गाना, कही देवदार के पत्तो की सोधी बास और कही उनमे हवा का सी सी करके बजना – सबने मेरे चित्त को परीक्षा के भूत की सवारी से हटा लिया। बाइसिकिल भी गजब की चीज है। न दाना मागे, न पानी, चलाए जाइए जहा तक पैरो म दम हो। सडक मे कोई था ही नही, कही-कही किसानो के लडके और गाव के कुत्ते पीछे लग जाते थे।"

गुलेरी जी की भाषा की दूसरी विशेषता कहानियों मे आने वाले पात्र हैं। 'बुद्धू का काटा' मे इलाही पाठक के मन पर कथा के मुख्य पात्र रघुनाथ और भागवती के बराबर ही प्रभाव छोडता हुआ आचलिक प्रयोगो को प्राथमिकता देता है। 'उसने कहा था' कहानी की भाषा को देखें या बुद्धू का काटा' मे इलाही टट्टू वाले की भाषा को। पजाबी के जिस आचलिक रूप का प्रयोग गुलेरी जी ने किया है उससे अनजाने ही हिंदी कथा साहित्य मे आचलिकता का सूत्रपात हो जाता है और जिसे फणीश्वरनाथ रेणु लगभग ४० वर्ष बाद अपनी कृतियो मे अतिम ऊचाइयो तक ले जाते हैं। निश्चय ही गुलेरी जी की कहानियो द्वारा किसी अचल का सपूर्णता मे प्रतिनिधित्व नही हो पाता लेकिन अशो मे प्रतिनिधित्व की स्थितिया बार-बार आती हैं।

आचलिक कथाकार के लिए अपनी कथाकृति का प्रत्येक पात्र मुख्य पात्र की तरह ही महत्त्वपूर्ण होता है। वह चरित्रो के विकास मे 'लोकतात्रिक' रुख अपनाता है, मुख्य पात्र के 'गतव्य' के लिए गौण पात्रो का इस्तेमाल नही करता।

गुलेरी जी भी अपने कथापात्रो के सदर्भ मे बहुत ही लोकतान्त्रिक रुख अपनाते हैं। समाज मे रहने वाले व्यक्तियो की तरह उनकी कहानियो की दुनिया

में आने वाले लगभग सभी पात्रों की निजी जिंदगी है, अपनी समस्याएं और अपना अतीत है। प्रत्येक कहानी के लगभग सभी चरित्र अपनी समग्रता में आते हैं। मुख्य पात्र के चारित्रिक विकास के लिए किसी भी गौण पात्र के अस्तित्व की गुलेरी जी बलि नहीं देते। उसे संपूर्ण बनाने की पूर्ण कोशिश करते हैं। एक बड़े कथाकार का सबसे बड़ा गुण यही है कि कितने अधिक पात्रों में वह कितनी अधिक कहानियां देखता है।

कुछ लोगों को इससे कथा-विन्यास में बिखराव नजर आ सकता है। लेकिन कहानी को कथानक की सीधी निरंतरता की यांत्रिकता से अलग करके अगर गुलेरी जी की कहानियों को पढ़ने की कोशिश करें तो उनकी कहानियां नई व्यंजना के साथ प्रभावोत्पादक हो जाती हैं। किसी भी कहानी का प्रत्येक पात्र मुख्य पात्र से निर्धारित होकर सिर्फ उसीके लिए एक निश्चित भूमिका निभाकर पर्दे के पीछे नहीं चला जाता बल्कि मुख्य पात्र के संदर्भ में ही सही, वह जितनी देर के लिए आता है या जितनी बार आता है उतनी ही देर में अपने कथोपकथन, अपनी सक्रियता तथा अपनी अलग भाषा की मार्फत अपनी जिंदगी की छिपी हुई कहानी का भी संकेत दे जाता है।

उदाहरण के लिए, 'बुद्धू का कांटा' कहानी एक शुद्ध रोमानी प्रेमकथा है—भावुकता से भरी हुई। स्त्री-समुदाय से अपरिचय के कारण एक युवक के मन में बने हुए जो भ्रम हैं वे परिचय के साथ ही धीरे धीरे टूट जाते हैं लेकिन मुख्य कथा से अलग जरा देर के लिए ही। इलाही के टट्टू से रघुनाथ शादी के लिए अपने घर लौट रहा है। रास्ते में इलाही रघुनाथ को अपनी जीवनगाथा सुनाता चलता है। इस कथा में एक ऐसा मार्मिक पक्ष उभर आता है, जो हिंदुस्तान में शोषित वर्ग की स्त्री के दमन से जुड़ा है। इलाही नवाब का नौकर था। अपने मालिक नवाब को बिना बताए वह एक रात हज के लिए चल पड़ा था। दूसरे दिन नवाब को इलाही की अनुपस्थिति में नाश्ते आदि की थोड़ी असुविधा हुई।—"बस, वह जल-जल गया। उसने मेरा घर फुकवा दिया, मेरी जमीन अपनी रखवाल (रखैल) के भाई को दे दी और मेरी बीवी को लौंडी बनाकर कैद कर लिया। लेकिन नवाब इतने पर ही नहीं रुका। इसके पंद्रहवें दिन जनाने में एक सोने की अंगूठी खो गई। नवाब ने मेरी घरवाली पर शक किया : जला-भुना तो था ही, बेंत लेकर लगा मारने। मौला मेरा गुनाह बख्शे, आज पांच बरस हो गए हैं। पर जब मैं घरवाली की पीठ पर पचासों दागों की गुच्छियां देखता हूं, तो यह पछतावा रहता है कि रब ने उस सूर का (तोबा! तोबा!) गला घोंटने को यहां क्यों न रखा" इस कहानी में शोषक नवाब का शोषित वर्ग की स्त्री पर किया गया यह आत्यंतिक दमन ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के शासन में भारतीय सामंतों के चरित्र का पर्दाफाश करता है। दूसरी ओर, इलाही

द्वारा नवाब का गला न घोट पाने का अफसोस, उसकी उस वर्गघृणा तथा चेतनता को व्यक्त करता है जो शोषक वर्ग के खात्मे के लिए शोषित वर्ग मे आवश्यक है।

इलाही द्वारा कहानी समाप्त करने पर कथानायक रघुनाथ उससे पूछता है कि क्या उसने इस सदर्भ मे न्यायालय मे फरियाद नही की। इलाही द्वारा दिया गया इस प्रकार का उत्तर वर्गों मे बटे समाज की असमान न्याय-व्यवस्था पर ऐसी टिप्पणी है, जो आज भी सच है। वह कहता है—"कचहरिया गरीबो के लिए नही हैं, वा'छा वे तो सेठो के लिए हैं।"

भारतीय समाज के शोषितजनों की इस विवशता की पहचान गुलेरी जी की यथार्थवादी दृष्टि का ही प्रतिफल है। 'उसने कहा था' कहानी मे इस दृष्टि को गुलेरी जी ने और भी विस्तार दिया है। हिंदी कथालेखन के आरभिक दौर मे १६१५ ई० मे छपी इस कहानी ने अचानक ही हिंदी कथा-साहित्य को प्रौढ और आधुनिक बनाने के साथ ही उसे यथार्थवाद से भी जोड दिया था। प्रेमचद ने हिंदी मे तब तक अपनी महान कहानिया नही लिखी थी। तब तक हिंदी मे इदुमती (किशोरीलाल गोस्वामी), प्लेग की चुडैल (भगवान दास), ग्यारह वर्ष का समय (रामचन्द्र शुक्ल) तथा दुलाई वाली (बग महिला) जैसी कहानिया ही लिखी गई थी। इनकी तुलना मे 'उसने कहा था' आश्चर्यजनक उपलब्धि है।

अगर बहुत गहरे जाकर देखें तो 'उसने कहा था' साम्राज्यवादी युद्ध के विरुद्ध लिखी गई प्रमुखतम कहानियों मे से एक है। साम्राज्यवादी शक्तिया खुद को बनाए रखने के लिए महायुद्ध छेडती हैं। गरीब देशो की सामान्य शोषित जनता पर युद्ध थोपा जाता है, क्योंकि हथियारो के एक पुर्जे के रूप मे इस युद्ध को अतत वही लडती है। इस युद्ध की भयावहता और नृशसता के समानातर उसकी अतरग जिंदगी है, कोमल सवेदना है, जो युद्ध मे मारे जाने के साथ ही समाप्त हो जाती है। एक ओर, साम्राज्यवादियो का झूठ और फरेब है (एक जर्मन लेफ्टिनेंट का वेश बदलकर आना) तो दूसरी तरफ शोषित वर्ग का सच्चा और साहसी जमादार लहनासिंह है, जो मानवीय मूल्यो की रक्षा मे खुद को समाप्त कर डालता है।

आचार्य शुक्ल ने इसे 'पक्की यथार्थवादी' कहानी कहा है। यह अपने समय की दो मुख्य विरोधी शक्तियो के सघर्ष को ही नही दिखाती बल्कि श्रेष्ठ कथा-योजना के कारण हमारे मन पर युद्ध और शोषण-विरोधी तीव्र मानसिकता भी उत्पन्न करती है, अत गुलेरी जी का यथार्थवाद प्रभाव मे रचनात्मक है।

गुलेरी जी ने कहानिया लिखने के साथ-साथ एक भाषा-विज्ञानी और निबध-कार के रूप मे भी हिंदी साहित्य के विकास मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

गुलेरी जी की कहानी-कला—५

□ डॉ० सुशीलकुमार फुल्ल

गुलेरी जी कहानीकार नही थे और न ही कवि, इस आशय का अप्रत्यक्ष सकेत हमे उनके इस कथन मे मिलता है—"मैं हिंदी का प्रसिद्ध लेखक हू और साहित्यिक जगत् मे आलोचक और विद्वान के रूप मे मेरी ख्याति है।"[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' मे चद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था'[2] को 'अद्वितीय' कहकर परवर्ती विद्वानो के लिए एक लीक बना दी, जिसे आज तक निरतर दोहराया जाता रहा है परतु वास्तविकता यह है कि उनकी कहानिया समग्र रूप से देखे जाने पर कथ्य एव कलात्मकता दोनो ही दृष्टियो से छोटी पड जाती हैं। आलोचको ने जो आदर्श उनकी कहानियो पर आरोपित किए हैं, कहानियो का अवलोकन करते ही वे भुर-भुराकर बिखर जाते हैं। आलोचको ने गुलेरी जी की रचनाओ को खूटी समझकर, अपनी मान्यताए टागकर, उन्हे अमर कहानीकार घोषित कर दिया है। व्यक्ति चन्द्रधर शर्मा गुलेरी को क्षणभर के लिए भुलाकर यदि उनकी कहानियो का परीक्षण करे तो रचनात्मक कमजोरिया, अनावश्यक विस्तार, सयोजन की शिथिलता तथा रोमास की ललक एव मासल चित्रण का मोह एकाएक स्पष्ट हो उठता है।

सयोजन की शिथिलता

गुलेरी जी की तीन कहानिया—'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का काटा' तथा 'उसने कहा था' उपलब्ध है। डॉ० विद्याधर शर्मा गुलेरी ने 'पनघट' नाम की एक चौथी, अद्यावधि अनुपलब्ध कहानी का उल्लेख भी किया है। परतु सभवत.

१. गुलेरी जी की अमर कहानिया . सपा० डॉ० विद्याधर शर्मा गुलेरी, 'गुलेरी जी अपने शब्दो मे पृ० IV, १६८१ ई०

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४८१, स० २०१८ वि०

'पनघट' 'बुद्धू का काटा' कहानी का ही दूसरा नाम है, क्योंकि 'बुद्धू का काटा' मे महत्त्वपूर्ण घटनाए पनघट पर ही घटती है।

इन तीनो कहानियो म कथानक का सयोजन शिथिल तथा कृत्रिम जान पडता है। 'सुखमय जीवन' का प्रारभिक अश अनावश्यक रूप से लबा खीच दिया गया है। कहानीकार अपनी टिप्पणी करता चलता है। जयदेवशरण वर्मा के विचारो को ऊबड खाबड ढग से जोडा गया है। बस किसी-न किसी प्रकार उसे साइकिल पर सवार कर कमला के घर तक पहुचाने के लिए सारा आडबर रचा गया है। घर से निकलने का बहाना देखिए—'*अखबार पढने बैठा कि देखता क्या हू कि लिनोटाइप की मशीन न चार-पाच पक्तिया उलटी छाप दी है। बस, अब नही सहा गया—सोचा कि घर से निकल चलो, बाहर ही कुछ जी बहलेगा।*'[1]

'बाइसिकिल' म पक्चर कमला के घर के निकट होता है। कमला अचानक सडक पर प्रकट हो जाती है। अपने घर ले जाती है। 'सुखमय जीवन' पर चर्चा होती है। नायक नायिका से वाटिका मे प्रणय-निवेदन करता है। फटकार सुनता है। अपने कुवारेपन की दुहाई देता है और फिर गुलाबराय वर्मा से आशीर्वाद लेकर विवाह-बधन मे बधता है। अभिप्राय यह कि घटनाओ का सयोजन परीलोक से आयातित किया लगता है, वास्तविक नही।

'बुद्धू का काटा' के प्रथम दो अश माथा पर व्यग्य तथा इलाही का उपाख्यान—अनावश्यक एव अप्रासगिक हैं। दूसरे अश की अतिम सूचना—'रघुनाथ अपने बक्स म से लोटा डोर निकालकर कुए की तरफ चला हास्यास्पद है। तीसरे अश मे स्त्री-पुरुष सबधो पर व्याख्यान वस्तुत लेखक के उपदेशक को उद्घाटित करना है, साथ ही उसके मन मे फसी काम ग्रथि को भी। तीसरे ही अश म भागवती का व्यवहार अपेक्षाकृत अधिक उच्छृखल चित्रित किया गया है। पनघट पर दोनों की भेंट, फिर अत मे दोनो का विवाह अस्वाभाविक घटनाए हैं, क्योकि यह सारा जाल पूर्व नियोजित जान पडता है। 'रघुनाथ' को शृग ऋषि का प्रतिबिब कहा जा सकता है। कहानी का अत अटपटा है।

'उसने कहा था' का प्रथम अश आचलिकता की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण है परतु लडके-लडकी की बातचीत अस्वाभाविक है। दस-बारह साल का लडका तथा आठ साल की लडकी—*उस वय क्षेत्र से हैं, जहा अभी प्रेमाकुरण नही होता*। दोनों अपने मामा के घर आए हुए हैं। और कुछ दिन बाद लडकी की 'कुडमाई' भी हो जाती है। लडकी के पिता का कोई जिक्र नही आता। मामा के घर घूमने आई लडकी की कुडमाई भी कुछ विचित्र लगती है। और फिर लडके

१ गुलेरी जी की अमर कहानियां सम्पा० शक्तिधर गुलेरी, पृ० १७, १९५९ ई०

लपलपाई और चख लिया। 'सुखमय जीवन' के नायक को कोई भी लबादा लेखक ने ओढाने का प्रयत्न किया हो परतु वह निश्चित रूप से काम-लोभी एव लम्पट है, जो कन्या को देखते ही 'भ्रमर' बनने का निवेदन करता है।

'बुद्धू का काटा' का नायक ऋषि शृग का प्रतिबिंब है। मा के अतिरिक्त उसने किसी कन्या के प्रति कभी खुली आखो से देखा ही नही। प्रस्तुत कहानी की नायिका भागवन्ती चपल कन्या है और उसके रोम-रोम से, शब्द-शब्द मे काम-गध टपकती है। भागवन्ती एकदम लहगा पसारने के लिए व्याकुल दृष्टिगोचर होती है। उसके कुछ कथन द्रष्टव्य हैं—

"मामी, मामी, मुझे भी अपने नये पालतू के ब्याह मे ले चलना। "वाह जी वाह, ऐसे बुद्धू के आगे भी कोई लहँगा पसारेगी !"[१]

"· पाच सात बार खासने पर, आखें पोछने पर उसने देखा कि भीगी हुई कुमारी उसके सामने खडी है और उन्ही पिघलती हुई आखो से, घृणा, दया और हँसी झलकाती हुई कह रही है कि—इस अनाडी के सामने भी कोई अपना लहँगा पसारेगी।"[२]

जरा अब नायक-नायिका का मिलन देखें —"रघुनाथ ने उसे दोनो बाहें डालकर पकड लिया। रघुनाथ के लिए यह स्त्री का और उस लडकी के लिए पुरुष का यह पहला स्पर्श था।"[३]

दोनो का विवाह हो जाता है या लेखक द्वारा हठात् करवा दिया जाता है, तो भागवन्ती मौन हो जाती है और लहँगा रघुनाथ पर हावी हो जाता है—

"क्या कहा था, ऐसे मर्द के आगे कौन लहगा पसारेगी ?·· हा, फिर तो कहना, इस बुद्धू के आगे कौन लहँगा पसारेगी ?"[४]

बुद्धू का काटा' कहानी का अत भी सभोग की स्थिति मे होता है— "रघुनाथ ने एक हाथ उसकी कमर पर डालकर उसे अपनी ओर खीचना चाहा। मालूम पडा कि नदी के किनारे का किला, नीव के गल जाने से, धीरे-धीरे धस रहा है। भागवन्ती का बलवान् शरीर, निस्सार होकर, रघुनाथ के कधे पर झूल गया। कधा आसुओ से गीला हो गया। उसका मुह बद करने का एक ही उपाय था।—रघुनाथ ने वही किया।"[५]

यदि 'सुखमय जीवन' तथा 'बुद्धू का काटा' मे लहँगा पसारने की बात हावी है, तो तीसरी कहानी भी इस भावना से मुक्त नही है। लुच्चो का गीत

१ गुलेरी जी की अमर कहानिया पृ० ४३
२ वही, पृ० ४२-४६
३ वही पृ० ४६
४ वही, पृ० ५५
५ वही, पृ० ६०

एक उदाहरण है, जिसमे लहँगे की बात बराबर उभरती है—

> दिल्ली शहर तें पिशौर नु जांदिए,
> कर लेणा लौंगा दा वपार मडिए,
> कर लेणा नाडेदा सौदा अडिए—
> (ओय्) लाणा चटाका कदुए नु।
> कद्दू बणया वे मजेदार गोरिए,
> हुण लाणा चटाका कदुए नु॥[1]

शायद उपर्युक्त अश को आचार्य शुक्ल ने नजर-अदाज कर दिया। और फिर लहनासिह का सूबेदारनी के प्रति प्रेम क्या प्रेम था ? क्या बालको का परस्पर स्नेह अभी तक बना हुआ था ? यदि पच्चीस वर्ष बाद भी दोनो म प्रेम की भावना थी · या मासल आकर्षण बाकी था, तो क्या इसे सात्त्विक प्रेम कहना उचित होगा ! परस्त्री के प्रति प्रेम 'परपुरुष के प्रति प्रेम या फिर प्रेम को भुनाने का प्रयत्न ये कुछेक प्रश्न हैं, जो गुलेरी जी की कहानी मे अनुत्तरित रहते है तथा उनकी कहानियो मे व्याप्त विसगतियो को उघाडकर रख देते हैं।

अस्तु, गुलेरी जी की कहानियो की मूल सवेदना देह-धर्म के मासल प्रेम की अभिव्यक्ति मात्र है। किसी आदर्श की थोपना लेखक को अभिप्रेत नही था, हा, आलोचको ने अपने अपने चश्मे से देखते हुए अर्थ का अनर्थ करने का प्रयत्न अवश्य किया है।

शिल्प-विधान

'सुखमय जीवन' तथा 'बुद्धू का काटा' कहानियो मे परपराभुक्त शैली के दर्शन होते हैं। उनमे शिल्प की कोई नवीनता नही, बल्कि अनघडता अवश्य है ! पैबद लगा घटना सयोजन बडा फीका फीका सा है। कथानक मे रस मासल प्रेम का है घटनाओ के सही सगुम्फन का नही। अनावश्यक प्रसग, अनावश्यक लेखकीय विचार कहानियो की बुनावट को कृत्रिम परिधान पहनाते हैं।

'उसने कहा था' कहानी के शिल्प को लेकर भी दिग्गज आलोचको ने गुलेरी जी को महान एव अमर कथाकार घोषित किया है परतु प्रस्तुत कहानी म भी प्रयुक्त शैली उनकी मौलिकता नही है ! अगरेजी साहित्य मे उन दिनो 'स्ट्रीम ऑफ काशियसनेस' का बोलबाला था, वर्जिनिया वुल्फ की शैली को गुलेरी जी ने अपनाकर हिंदी पाठको को चमत्कृत तो किया लेकिन उन्हे मौलिकता का श्रेय नही दिया जा सकता। दूसरे, पूरी कहानी म यह शैली

१ गुलेरी जी की अमर कहानियां पृ० ६६

अपनाई भी नही गई है। उत्तरार्ध मे इस स्मृति अथवा पूर्व-दृश्य शैली का प्रयोग किया गया है, जबकि पूर्वांश मे सपाट-बयानी है।

आचलिकता

गुलेरी जी का जन्म जयपुर मे हुआ और उनका अधिकाश जीवन भी मैदानो मे ही बीता। हा, कही-कही पैतृक गाव—गुलेर की माटी के प्रति मोह आचलिक शब्दो के प्रयोग के रूप मे झलकता-छलकता अवश्य है। शब्दो के आचलिक प्रयोग की दृष्टि से उन्हे आचलिक कहानी के क्षेत्र मे थोडा-सा श्रेय अवश्य दिया जा सकता है। उनसे बहुत पहले श्रद्धाराम फिल्लौरी द्वारा अपने उपन्यास 'भाग्यवती' मे आचलिक शब्दो का प्रयोग किया जा चुका था। गुलेरी जी ने किसी अचल-विशेष के परिवेश को अपनी कहानियो मे उद्घाटित किया हो, ऐसा नही है।

निष्कर्ष

गुलेरी जी सशक्त कहानीकार नही हैं। उनकी कहानिया सयोजन एव शिल्प, तथा कथ्य एव विषयवस्तु की दृष्टि से भी साधारण स्तर की रचनाए हैं। उनकी कहानियो की मूल सवदना मासल प्रेम का रोचक चित्रण प्रस्तुत करने तक ही सीमित है। 'अनाडी के सामने लहँगा पसारने' या 'न पसारने' की समस्या का समाधान ही उनको आतकित करता हुआ जान पडता है। बस !

गुलेरी जी की कहानियों में प्रेम का स्वरूप

□ डॉ० ब्रजनारायण सिंह

मानव-जीवन के समस्त क्रियाकलापों को परिचालित करने वाली दो आदिम प्रवृत्तियां हैं—क्षुधा और काम। पेट की भूख बाह्य क्रियाव्यापार को परिचालित करती है और काम की भावना संस्कृति के विकास को। चिन्तकों ने इन्हीं दो प्रवृत्तियों को अलग अलग नामों में परिगणित किया है। काम की भावना जब शरीर के धरातल पर कार्य करती है तो 'वासना' कहलाती है और यही वासना भावना की उच्चतर भावभूमि पर पहुंचकर प्रेम का रूप धारण कर लेती है। जब-जब वासना या मांसल सौंदर्य-चित्रण साहित्यकार का अभीष्ट रहा, इस प्रवृत्ति को गर्हित समझा गया। रीतिकाल इसका स्पष्ट उदाहरण है। पर जब काम की प्रवृत्ति को केवल वायवी धरातल पर ही वर्णित करने का प्रयत्न किया गया तब वह छायावाद जैसी विधा के रूप में सामने आया। गुलेरी जी का व्यक्तित्व ऐतिहासिक दृष्टि से मांसल सौंदर्य के चित्रण (रीतिकाल) और द्विवेदी-युग के सुधारवादी तथा पुनर्स्थापनवादी युग के संधिस्थल पर खड़ा है। संस्कृत तथा प्राकृत साहित्य की परंपरा अबाध गति से रीतिकाल को छूती हुई भारतेन्दु-युग तक चली आई थी, गुलेरी जी अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य के द्वारा उसमें घुल मिल गए थे। दूसरी ओर, वह पाश्चात्य शिक्षा के संपर्क में आने के कारण नारी-जीवन के बदलते हुए विभिन्न पहलुओं से भी पूर्णतः परिचित थे। इसी कारण उनकी कहानियों में जहां सुधारवादी युग की छाप है वहीं प्रेम और वासना का मिला-जुला रूप भी दिखाई देता है।

गुलेरी जी ने प्रेम के रूप को कहानियों में नागर और ग्रामीण दोनों ही अंचलों में देखने का प्रयास किया है। कोरे आदर्शवाद से जीवन में काम नहीं चल सकता। जीवन के अनुभव को जब तक यथार्थवादी ढंग से प्राप्त न किया जाए, वह काल्पनिक जगत् का प्रलाप मात्र ही रह जाता है। इसी कारण

'सुखमय जीवन' का जयदेवशरण वर्मा जो स्वय अविवाहित ही नही, नारी सपर्क से नितान्त अछूता भी है गृहस्थ-जीवन पर पुस्तक तो लिख लेता है पर प्रत्यक्ष जीवन मे लडकी को देखते ही अपना सयम खो बैठता है। गुलेरी जी ने उसका आत्मविश्लेषण करते हुए लिखा —"दो ही पहर मे, मैं बालक से युवा हो गया था। अगरेजी महाकाव्यो मे, जहा-जहा प्रेमिका-प्रेमिक का वार्तालाप पढ़ा था, वहा-वहां का दृश्य स्मरण करके वहा वहा के वाक्यो को घोख रहा था, पर यह निश्चय नही कर सका कि थोडे परिचय पर भी बात कैसे करनी चाहिए। अत को अगरेजी पढनेवाले की धृष्टता ने आर्यकुमार की शालीनता पर विजय पाई और चपलता कहिए, बेसमझी कहिए, ढीठपन कहिए, पागलपन कहिए, मैंने दौडकर कमला का हाथ पकड लिया।"[1] गुलेरी जी का यह चित्रण एक ओर नवयुवक के आदर्शवाद का मजाक उडाता है तो दूसरी ओर विदेशी सस्कृति की तत्कालीन प्रेमविषयक धारणा पर व्यग्य भी करता है, जिसे 'सुखमय जीवन' मे उन्होंने इन शब्दो मे व्यक्त किया है— मैं उपनिषद् और योग वाशिष्ठ का तर्जुमा पढा करता हू। स्कूल मे लडके बिगड जाते है, प्रबोध को इसलिए घर पर पढाता हू।"[2]

प्राचीन परपरा से जुडे होने के कारण गुलेरी जी प्रेम के मासल और शरीरी रूप की ही कल्पना करते है पर इस दिशा मे वह उस उच्छृखल और पाशविक नही होने देते। उनका प्रेम प्रथम दर्शन से प्रारभ होता हुआ नारी और पुरुष के सान्निध्य मे धीरे-धीरे परिपक्व होकर प्रगाढता प्राप्त करता है। उनका प्रेम अमर्यादित नही शास्त्रसम्मत विवाहानुमोदित है। 'सुखमय जीवन' मे, कमला को देखते ही जयदेवशरण वर्मा का सयम काफूर हो जाता है। कमला का रूप सौदर्य उसे विमोहित कर लेता है— 'पारसी चाल की एक गुलाबी साडी के नीचे चिकने काले बालो से घिरा हुआ उसका मुखमण्डल दमकता था और उसकी आखें मेरी ओर कुछ दया, कुछ हँसी और कुछ विस्मय से देख रही थी। बस, पाठक! ऐसी आखें मैने कभी नही देखी थीं। मानो वे मेरे कलेजे को घोलकर पी गई।"[3] कमला का यह आकर्षण नारी का सहज स्वाभाविक आकर्षण है जो मध्ययुगीन प्रेम काव्य की कल्पना साकार करता है। पुरुष प्रथम दर्शन के इस प्रेम म आबद्ध होकर सब-कुछ भूल जाता है। नारी-रूप की आकाक्षा के अकुरित होते ही पुरुष बहुधा सयम खो बैठता है। यही पुरुष के पौरुष और सयम की परीक्षा होती है और यही आकर 'सुखमय जीवन'

१ गुलेरी जी की अमर कहानिया सम्पा० शक्तिधर गुलेरी पृ० २४
२. वही, २२
३ वही, पृ० २०

का नायक उच्छृंखल बन जाता है। रजनीगंधा की क्यारियों के बीच कमला का रूप उसे उन्मत्त कर देता है और वह भावावेश में उसका हाथ पकड़कर कहता है—"प्यारी कमला, तुम मुझे प्राणों से बढ़कर हो, प्यारी कमला, मुझे अपना भ्रमर बनने दो। मेरा जीवन तुम्हारे बिना मरुस्थल है उसमें मंदाकिनी बनकर बहो। मेरे जलते हुए हृदय में अमृत की पट्टी बन जाओ। जब मैं तुम्हें देखता हूँ, मेरा मन मेरे अधीन नहीं है। मैं तब तक शांति न पाऊंगा जब तक तुम —"[1] कमला का यह रूप छायावादी कवियों के रूप-सौंदर्य की कल्पना को ताजा कर देता है।

प्रेम के क्षेत्र में पुरुष की अपेक्षा नारी अधिक सचेत संयमित और पुरुष-पारखी होती है। वह पुरुष की छिपी वासना तथा प्रेम के सहज रूप को प्रथम दृष्टि में ही पहचान लेती है। इस कारण उसकी प्रेमाभिव्यक्ति बहुत संयमित रहती है। जयदेवशरण वर्मा कहता है—"पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक पहचान सकती हैं कि कौन अनुभव की बातें कह रहा है और कौन गप्पें हाँक रहा है।" नारी की इसी सूक्ष्म दृष्टि की ओर इशारा करते हुए गुलेरी जी 'बुद्धू का काँटा' के नायक की मनःस्थिति का विश्लेषण करते हुए कहते हैं कि जो पुरुष नारी के परिवेश से दूर रहते हैं और जीवन में माँ या बहिन के अतिरिक्त नारी का सान्निध्य नहीं प्राप्त कर पाते वे बहुधा 'बुद्धू का काँटा' के रघुनाथ की तरह नर्वस हो जाते हैं। 'पिता की आज्ञानुसार वह विवाह के लिए घर उसी रुचि से आ रहा था जिससे कि कोई पहले पहल थियेटर देखने जाता है। कुएँ पर इतनी स्त्रियों को इकट्ठा देखकर वह सहम गया, उसके ललाट पर पसीना आ गया और उसका बस चलता तो वह बिना पानी पिए ही लौट जाता।"[3] इतना ही नहीं, स्त्रियों के समुदाय में रघुनाथ की कैसी दयनीय स्थिति हो जाती है, गुलेरी जी के शब्दों में देखिए—"संकोच, प्यास, लज्जा और घबराहट से रघुनाथ का गला रुक रहा था, उसने खाँसकर कण्ठ साफ करना चाहा।"[4] पर भागवती के उद्दण्ड व्यवहार के आगे वह और भी नर्वस हो जाता है।

वास्तव में गुलेरी जी का व्यक्तित्व रीतिकालीन मांसल सौंदर्य-चित्रण की परंपरा और द्विवेदी युग के आदर्शवादी दृष्टिकोण के संधि-स्थल पर खड़ा था। उस समय तक नगरीय सभ्यता अपने आधुनिक रूप में विकसित नहीं हो पाई

१ गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, पृ० २५
२. वही, पृ० २७
३. वही, पृ० ३८
४. वही, पृ० ३६

थी तथा ग्रामीण अचल पर मध्ययुगीन प्रभाव पूरी तरह छाया हुआ था। इसी कारण ग्रामीण उन्मुक्त वातावरण मे पली हुई लडकियो के रूप में जो आकर्षण होता है वह शहरी जीवन मे देखने को नही मिलता। ग्रामीण अचल की किशोरियो का रूप-चित्रण करते हुए गुलेरी जी कहते हैं—"कोई चौदह-पद्रह बरस की लडकी, शहर की छोकरियो की तरह पीली और दुबली नही, हृष्ट-पुष्ट और प्रसन्नमुख। आखो के डेले काले, कोए सफेद नहीं, कुछ मटिया नीले और पिघलते हुए। यह जान पडता था कि डेले अभी पिघलकर बह जायेंगे। आखो के चौतरग हँसी, ओठो पर हँसी और सारे शरीर पर निरोग स्वास्थ्य की हँसी।"[1]

भारतीय प्रेम-पद्धति मे पुरुष प्रेम का प्रस्ताव करता है और स्त्री स्वीकृति देकर उसे कृतकृत्य करती है। प्रेम के इस क्रिया व्यापार मे नारी अपनी सलज्जता और गरिमा बनाए रखती है तथा पुरुष उसे सरक्षण देने मे पौरुष की अनुभूति करता है। पुरुष के पौरुषपूर्ण साहसिक प्रयत्न की ओर ही बहुधा नारी आकर्षित होती है। गुलेरी जी ने भारतीय प्रेम-पद्धति के परपरागत रूप को 'उसने कहा था' मे अक्षुण्ण बनाए रखा है। इस कहानी मे प्रेम का स्वरूप किशोरावस्था के प्रथम दर्शन से प्रारभ होकर क्रमश विकसित होकर सयोगावस्था मे पूर्णता न प्राप्त कर वियोगावस्था (त्रासदी) मे पूर्ण होता है। अमृतसर के बाजार मे एक लडका और लडकी मिलते हैं, तो लडका लडकी से पहला सवाल करता है—"तेरी कुडमाई हो गई?" और लडकी के नकारात्मक उत्तर पर प्रसन्न हो दूसरे-तीसरे दिन भी यही प्रश्न दुहरा देता है। पर यकायक एक दिन आशा के विपरीत जब लडके को पता चलता है कि उसकी कुडमाई हो गई है तो वह इस अप्रत्याशित उत्तर से क्षुब्ध हो, कई ऊल-जलूल काम कर बैठता है। तीव्र मानसिक आघात से विक्षिप्त लहनासिह का जो वर्णन गुलेरी जी ने इस सदी के प्रारंभ मे किया, वह मानव-मन के चेतन, उपचेतन तथा अचेतन मन की विभिन्न पर्तों को खोल देने वाला है। गुलेरी जी के चरित्रचित्रण की इस मनोवैज्ञानिकता से पाठक आश्चर्यचकित रह जाता है।

लहनासिह अपने बचपन के प्रेम को पच्चीस साल बाद भी भुला नही पाता तो सूर के 'लरिकाई को प्रेम कहो अलि कैसे छूटत'[2] की बात अक्षरश सत्य प्रतीत होती दिखाई देती है। पच्चीस साल बाद अचेतन मे पडे हुए अपने प्रति कोमल भाव को पुनर्जागृत कर सूबेदारनी लहनासिह को अपने पति और पुत्र के बारे मे कहकर उससे सुरक्षा की भीख मांगती है। ठीक वैसे ही जैसे बचपन

१. गुलेरी जी की अमर कहानियां, पृ० ४०
२. सूरसागर-२, सम्पा० नददुलारे वाजपेयी, छद ४६६४

मे तागे के घोडे से उसने सूबेदारनी को प्रदान की थी। लहनासिंह का उदात्त प्रेम परिस्थितियों का सवाल सहता हुआ अपनी पूर्वप्रेमिका के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करता है। लहनासिंह के इस उदात्त प्रेम म न तो कहीं वियोग का गिला है और न सूबेदारनी की अप्राप्ति का पश्चात्ताप, अपितु भारतीय प्रेम क उदात्त रूप के आगे अपने प्राणो का उत्सर्ग करने वाले पुरुष के पराक्रम की पूर्णता का परिचय है। इस प्रकार गुलेरी जी ने उसने कहा था' म अपनी पहली दो कहानियों से भिन्न जिस निर्मल प्रेम की अवतारणा की है वह कहानी की प्राणवत्ता को और भी सशक्त बना देती है।

गुलेरी जी ने अपनी कहानियों म प्रेम के निरूपण म जिस सिद्धहस्तता का परिचय दिया है वह उन्हे कहानी कला की दृष्टि से समय से आगे ले जाता है। उनकी कहानियों म प्रेम प्रथम दर्शन से प्रारभ होकर क्रमिक रूप मे विकसित होते हुए पूर्णता को प्राप्त होता है। 'सुखमय जीवन' का जयदेवशरण वर्मा 'बुद्धू का काटा' का रघुनाथ और 'उसने कहा था' का लहनासिंह किशोरावस्था वाले प्रेम से अपनी प्रेमयात्रा प्रारभ करते हैं, भले ही पहली दोना कहानियों के नायक आयु की दृष्टि से किशोर न रहे हो, पर उनका क्रियाव्यापार पाठकों के सम्मुख उन्हें अपरिपक्व बुद्धि वाले व्यक्तियों के रूप मे ही प्रस्तुत करता है। अत वह असयमित व्यवहार करत देखे जाते हैं। जयदेवशरण वर्मा द्वारा कमला का हाथ पकडना, रघुनाथ का भागवती की नाक पर घूसा मारना नायक के अपरिपक्व मस्तिष्क की बात ही दुहराते हैं जबकि इसके विपरीत लहनासिंह अपनी किशोरवय के अनुरूप ही व्यवहार करता है। उसका प्रेम ही स्वाभाविक गति से विकसित होकर उदात्तता को प्राप्त होता है। इस दृष्टि से गुलेरी जी की कहानियो मे प्रेम का जो स्वरूप चित्रित हुआ है वह कहानीकार की प्रखर प्रतिभा का सहज परिचायक है।

गुलेरी जी की कहानियों में आंचलिकता

□ डॉ॰ मनोहरलाल

प॰ चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानियो मे 'आचलिकता की खोज' वाली बात भले ही चौकाने वाली लगे, पर यह सही है कि जब हिंदी कहानी 'घुटुरुन-चलत' की स्थिति मे थी, तब उन्होने उसे सजीव भगिमा तथा शैली और शिल्प की नई दिशा दी थी। जब कालजयी कथा-कृति 'उसने कहा था' की भूरि-भूरि प्रशसा करते समय आलोचक[1] उसे अलेक वाह (Alec Waugh) कृत 'द सल्यूथ हाउण्ड' (The Sleuth Hound), एडगर वैलेस (Edgar Wallace) कृत अगरेजी कहानी 'द ग्रेटर बैटल' (The Greater Battle), एच॰ पी॰ प्रीवोस्ट बैट्संबाई कृत अगरेजी कहानी 'ए नाइट अफेयर' तथा हेनरी बार्बस कृत फासीसी कहानी 'ब्रुतोर' जैसी कहानियो की उस पर छाया का उल्लेख करके भी उसे भारतीय वातावरण मे रसी-पगी श्रेष्ठतम कहानी बताते है तब तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' की याद हो आती है, जो 'नानापुराणनिगमागम-सम्मत यद् रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि' होने पर भी अपनी मौलिकता के लिए जनमानस का कठहार बना हुआ है। यही स्थिति 'उसने कहा था' की भी है। गुलेरी जी की प्रतिभा को रेखाकित करने के लिए इतना ही कहना चाहूगा।

गुलेरी जी की कहानियो मे आचलिकता की चर्चा करने से पूर्व यह इसलिए लिखना पडा कि जिस युग मे उन्होने कहानियो मे आचलिकता का बीज बोया था तब 'आचलिकता' शैली नही थी, फिर भी 'आचलिकता' के कोशगत अर्थ—'कहानी-उपन्यास मे प्रचलित आधुनिक प्रवृत्ति जो किसी जनपद या अचल के जीवन को समग्र रूप से चित्रित करना अपना उद्देश्य

१. नया निर्माण नये सकल्प : राजनाथ पाण्डेय, पृ॰ १५८, १६०-१६१, मानकचद बुक डिपो, उज्जैन, १९६१ ई॰

मानती है'—के परिप्रेक्ष्य में गुलेरी जी की कहानियों को परखने से स्पष्ट हो जाता है कि उनमें वर्णित भूगोल हिमाचल प्रदेश के तथा कांगड़ा या पंजाब के अमृतसर, लुधियाना, लायलपुर तथा जगाधरी तक ही सीमित नहीं, बल्कि उनमें उत्तर प्रदेश के प्रयाग और शिकारपुर तथा राजस्थान के कतिपय अंचलों की जीवनधारा की भीनी भीनी गंध भी बहुत कुछ मौजूद है। और जर्मन की माटी की भीनी भीनी गंध इस कहानी में है ही, यह सर्वविदित है।

मजे की बात यह है कि 'सुखमय जीवन' तथा 'बुद्धू का काँटा' कहानियाँ 'मैं' शैली में लिखी गई हैं जो उस युग के लिए नई चीज थी। और जिन लोगों ने गुलेरी जी के जीवनचरित की रूपरेखा को समझकर इन कहानियों को पढ़ने का प्रयास किया है व जानते हैं कि इन कहानियों का उनके छात्रजीवन तथा प्रौढ़ावस्था के जीवन संग्राम से खूब तालमेल बैठता है, यही कारण है कि लेखक इनमें आत्माभिव्यक्ति की दृष्टि से बखूबी प्रतिबिंबित है। इसीलिए इनमें भौगोलिक तथा लोक संस्कृति के बीज विद्यमान हैं। क्योंकि किसी प्रतिबद्धता का शिकार होकर आंचलिकता को उभारना उनका लक्ष्य नहीं था, भले ही भाषा के प्रयोगों को जनपद विशेष की बोली की शब्दावली से सवारने का खूब प्रयास किया गया। भाषा का यह प्रयोग ही आंचलिकता की बात को शक्ति प्रदान करता है। यह उनकी शैली है। इसे उनकी रचना की पहचान' कहना चाहिए।

लोक-संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में विचार करें तो 'बुद्धू का काँटा' में झडीपुर की विवाह-पद्धति पर की गई टिप्पणी अंचल विशेष के रीति रिवाज, धार्मिक रूढ़ियों, लोक विश्वासों तथा परंपरागत मान्यताओं का सटीक चित्रण करने में समर्थ है—"कन्यादान के पहले और पीछे वर-कन्या को, ऊपर तक दुशाला डालकर, एक-दूसरे का मुह दिखाया जाता है। उस समय दुलहा दुलहिन जैसा व्यवहार करते हैं, उससे ही उनके भविष्य दाम्पत्य सुख का थर्मामीटर मानने वाली स्त्रियाँ बहुत ध्यान से उस समय के दोनों के आकार-विकार को याद रखती हैं। जो हो, झडीपुर की स्त्रियों में यह प्रसिद्ध है कि मुह दिखौनी के पीछे लड़के का मुह सफेद फक् हो गया और विवाह में जो कुछ होम वगैरा उसने किए, वे पागल की तरह। मानो उसने कोई भूत देखा था। और लड़की ऐसी गुम हुई कि उसे काटो तो खून नहीं। दिन भर वह चुप रही और बिड़रायी आँखों से जमीन देखती रही, मानो उसे भी भूत दीख रहे हों। स्त्रियों ने इन लक्षणों को बहुत अशुभ माना था।'[1]

वास्तव में, यह लोक रीति तथाकथित झडीपुर की नहीं, बल्कि गुलेरी जी के पैतृक गाँव गुलेर-जनपद के लोक जीवन से भी मेल खाती है।

1 गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, पृ० ५४-५५

गुलेरी जी की कहानियो में आंचलिकता

□ डॉ० मनोहरलाल

प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानिया मे 'आचलिकता की खोज' वाली बात भले ही चौकाने वाली लगे, पर यह सही है कि जब हिंदी कहानी 'घुट्टरुन-चलत' की स्थिति मे थी, तब उन्होन उसे सजीव भगिमा तथा शैली और शिल्प की नई दिशा दी थी। जब कालजयी कथा कृति 'उसने कहा था' की भूरि-भूरि प्रशसा करते समय आलोचक[1] उसे अलेक वाह् (Alec Waugh) कृत 'द सल्यूथ हाउण्ड' (The Sleuth Hound), एडगर वैलेस (Edgar Wallace) कृत अगरेजी कहानी 'द ग्रेटर बैटल' (The Greater Battle), एच० पी० प्रीवोस्ट बैटूर्सबाई कृत अगरेजी कहानी 'ए नाइट अफफेयर' तथा हेनरी बार्बस कृत फ्रासीसी कहानी 'बुलोर' जैसी कहानियो की उस पर छाया का उल्लेख करके भी उसे भारतीय वातावरण मे रसी पगी श्रेष्ठतम कहानी बताते हैं तब तुलसी-दास कृत 'रामचरितमानस' की याद हो आती है, जो 'नानापुराणनिगमागम-सम्मत यद् रामायणे निगदित क्वचिद॰यतोऽपि' होने पर भी अपनी मौलिकता के लिए जनमानस का कठहार बना हुआ है। यही स्थिति 'उसने कहा था' की भी है। गुलेरी जी की प्रतिभा को रेखाकित करने के लिए इतना ही कहना चाहूगा।

गुलेरी जी की कहानियो मे आचलिकता की चर्चा करने से पूर्व यह इसलिए लिखना पडा कि जिस युग म उन्हान कहानियो म आचलिकता का बीज बोया था तब 'आचलिकता' शैली नही थी, फिर भी 'आचलिकता' के कोशगत अर्थ—'कहानी उपन्यास मे प्रचलित आधुनिक प्रवृत्ति जो किसी जनपद या अचल के जीवन को समग्र रूप से चित्रित करना अपना उद्देश्य

१. नया निर्माण नये सकल्प राजनाथ पाण्डेय, पृ० १५८, १६० १६१ मानकचद बुक डिपो, उज्जैन, १९६१ ई०

मानती है'—के परिप्रेक्ष्य मे गुलेरी जी की कहानियों को परखने से स्पष्ट हो जाता है कि उनमे कथित भूगोल हिमाचल प्रदेश के तथा, कागड़ा या पजाब के अमृतसर, लुधियाना, लायलपुर तथा जगाधरी तक ही सीमित नहीं, बल्कि उनमे उत्तर प्रदेश के प्रयाग और शिकारपुर तथा राजस्थान के कतिपय अचलों की जीवनधारा की भीनी-भीनी गध भी बहुत कुछ मौजूद है। और जर्मन की माटी की भीनी भीनी गध इस कहानी मे है ही, यह सर्वविदित है।

मजे की बात यह है कि 'सुखमय जीवन' तथा 'बुद्धू का काटा' कहानिया 'मैं' शैली मे लिखी गई है जो उस युग के लिए नई चीज थी। और जिन लोगो ने गुलेरी जी के जीवनचरित की रूपरेखा को समझकर इन कहानियों को पढने का प्रयास किया है वे जानते हैं कि इन कहानियों का उनके छात्रजीवन तथा प्रौढ़ावस्था के जीवन सग्राम से खूब तालमेल बैठता है, यही कारण है कि लेखक इनमे आत्माभिव्यक्ति की दृष्टि से बखूबी प्रतिबिंबित है। इसीलिए इनमे भौगोलिक तथा लोक सस्कृति के बीज विद्यमान है। क्योंकि किसी प्रतिबद्धता का शिकार होकर आचलिकता को उभारना उनका लक्ष्य नहीं था, भले ही भाषा के प्रयोगो को जनपद-विशेष की बोली की शब्दावली से सवारने का खूब प्रयास किया गया। भाषा का यह प्रयोग ही आचलिकता की बात को शक्ति प्रदान करता है। यह उनकी शैली है। इसे उनकी रचना की 'पहचान' कहना चाहिए।

लोक-सस्कृति के परिप्रेक्ष्य मे विचार करें तो 'बुद्ध का कांटा' मे झडीपुर की विवाह-पद्धति पर की गई टिप्पणी अचल-विशेष के रीति-रिवाज, धार्मिक रूढियो, लोक-विश्वासो तथा परपरागत मान्यताओ का सटीक चित्रण करने मे समर्थ है—"कन्यादान के पहले और पीछे वर-कन्या को, ऊपर तक दुशाला डालकर, एक-दूसरे का मुह दिखाया जाता है। उस समय दुलहा-दुलहिन जैसा व्यवहार करते है, उससे ही उनके भविष्य दाम्पत्य सुख का थर्मामीटर मानने वाली स्त्रिया बहुत ध्यान से उस समय के दोनो के आकार-विकार को याद रखती हैं। जो हो, झडीपुर की स्त्रियो मे यह प्रसिद्ध है कि मुह-दिखौनी के पीछे लडके का मुह सफेद फक् हो गया और विवाह मे जो कुछ होम वगैरा उसने किये, वे पागल की तरह। मानो उसने कोई भूत देखा था। और लडकी ऐसी गुम हुई कि उसे काटो तो खून नही। दिन-भर वह चुप रही और बिडरायी आखो से जमीन देखती रही, मानो उसे भी भूत दीख रहे हो। स्त्रियो ने इन लक्षणो को बहुत अशुभ माना था।"[१]

वास्तव मे, यह लोक-रीति तथाकथित झडीपुर की नही, बल्कि गुलेरी जी के पैतृक गाव गुलेर-जनपद के लोक-जीवन से भी मेल खाती है।

१ गुलेरी जी की अमर कहानियां, पृ० ५४-५५

लोक-सस्कृति की दृष्टि मे 'उसने कहा था' भी कम महत्त्वपूर्ण नही है। उस मे सिक्ख-पथ के उदात्त आदर्शों तथा सैनिक-जीवन को मूर्तित करने के लिए भी 'आचलिकता' जैसी शैली का सहज सहारा लिया गया है। 'अमृतसर' के वातावरण की निबधना के कारण आलोचक इसे 'पजाबी वातावरण' की कहानी भी कहते हैं, पर वास्तविकता यह है कि कहानी का सारा वातावरण तथा भाषागत सौंदर्य कागडा के गुलेर-जनपद का है जिसे किसी सीमा तक नागरता का जामा पहनाने के लिए 'अमृतसर की सकरी सडको पर ला खडा कर दिया गया है। यथा—"तेरी कुडमाई हो गई? "हा, हो गई देखते नही यह रेशम से कढा सालू!" तथा जर्मन की खदको मे ठड से सिकुडते सिपाहियो का शृगार रस की तथाकथित अश्लीलता से सना गीत—"क्या मरने-मराने की बात लगायी है। मरें जर्मनी और तुर्क! हा भाइयो, कुछ गाओ। हा, कैसे—

> दिल्ली शहर तें पिशौर नु जांदिए,
> कर लेणा लौगां दा बपार मडिए,
> कर लेणा नाडेदा सौदा अडिए—
> (ओय्) लाणा चटाका कदुए नु।
> कद्दू बणया वे मजेदार गोरिए,
> हुण लाणा चटाका कदुए नु॥

यह गीत सैनिक-जीवन की सस्कृति का दिग्दर्शन कराता है। खदको के जीवन तथा जर्मन के लोगो के लोक-व्यवहार के परिप्रेक्ष्य मे लेखक युद्ध के वातावरण को आचलिकता की परिसीमाओ मे ही स्पष्ट करता है। सिक्ख सैनिको द्वारा अश्लील गीत गाकर अपना मनोरजन करना युग बोध तथा सैनिक-मनोविज्ञान का परिचायक है।

सिक्ख-धर्म के उदात्त आदर्श के चित्रण के सदर्भ मे मात्र यह उद्धरण ही पर्याप्त होगा—"अचानक आवाज आयी—'वाह गुरु जी की फतह! वाह गुरु जी का खालसा!' • एक किलकारी और—अकाल सिक्खा दी फौज आयी! वाह गुरु जी दी फतह! वाह गुरु जी दा खालसा!! सत्त सिरी अकाल पुरुष!!!

" 'पर यहा तो तुम आठ ही हो!'

" 'आठ नही, दस लाख। एक-एक अकालिया सिक्ख सवा लाख के बराबर होता है! चले जाओ।' "[1]

आचलिकता की दृष्टि से गुलेरी जी का भाषा-प्रयोग उल्लेखनीय है। उनकी भाषा मे हिमाचली कागडी की ध्वनियो तथा शब्दावली का भडार है। इस दृष्टि

१. गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, पृ० ७०, ७२

से 'बुद्धू का काटा' मे—"बा'छा (बादशाह) मेरे हाल मे आपका क्या जी लगेगा ? गरीबो का क्या हाल ? रब (प्रभु) रोटी देता है, दिन भर मेहनत करता हू, रात पडा रहता हू । बा'छा, तुम जैसे साईं (सीधा-सादा) लोको की वरकत से मैं हज कर आया, ख्वाजा का उर्स देख आया, तीन वेले (समय) नमाज पढ लेता हू, और मुझे क्या चाहिए ? बा'छा, मेरा काम टट्टू चलाना नही है । अब तो इस मोती की (घोडे का नाम) की कमाई खाता हू, कभी सवारी ले जाता हू, कभी लादा (वोझ, गूण), ढाई मण कणक (गेहू) पा (डाल) लेता हू, तो दो पौली (चवन्नी) बच जाती है । रब की मरजी, मेरा अपना घर था, सिंहो (सिक्खो) के वक्त की माफी जमीन थी, नाते (सवधी)-पडोसियो मे मेरा नाम था । • एक रात को मैं खाना बना-खिला के अपनी मजडी (खाट) पर सोया था कि, मेरे मौला (प्रभु) ने मुझे आवाज दी—'लाही-लाही हज कर आ' । मैं आखें मल के (कर) खडा हो गया···मैं तेरे नाल हू, मैं तेरा बेडा पार करूगा ।··· सबने समझा, मर जाएगे, पानी मे गोर (कब्र) बनेगी···जहाज के नाल (साथ) डूब गया • उस पाजी के हाथ की अगुली मे एक वेंत की सली (लित्त, तिनका) चुभ गयी थी ··आप जैसे साईं लोको (सज्जनो) की बदगी (इज्जत, प्रणाम) करता हू, रब का नाम वडा है ।·· तुझे रात-दिन ऊतपन ही सूझता है । इन्हे गलसूड चला गया ।"[1] जैसे वाक्य हिंदी भाषा को हिमाचली पहाडी के पास ले जाने मे समर्थ हैं । इससे लगता है कि लेखक की दृष्टि भाषा को सहज और सरल बनाने के साथ अचल विशेष की भाषिक सरचना के रग मे रग देने की भी रही है । 'उसने कहा था' के आरभ मे चित्रित वातावरण को भी आचलिक भाषा का बाना पहनाया गया है ।

इस कहानी मे लहनासिह ने 'बुलेल की खड्ड' के किनारे भाई कीरतसिह की गोद मे मरने की बात कही है । यह 'बुलेल की खड्ड' गुलेर और हरिपुर के बीच बहने वाली बनेर या बडेर (बाण गगा) ही है । 'बुद्धू का काटा' मे इस खड्ड का वडा जीवत वर्णन है ।

गुलेरी जी की कहानियो मे कतिपय ठेठ आचलिक शब्दो का प्रयोग है—जैसे—'लाडी होरा', 'सूबेदारनी होरा' । हमारे यहा कागडा मे बहू को 'लाडी' कहते हैं । राजस्थान तथा समीपवर्ती क्षेत्रो मे 'लाडी' या 'लाड्डी' रूप भी प्रयुक्त होते हैं जो 'लाडली' अर्थ के सूचक हैं । 'होरा' प्रत्यय आदरसूचक है । 'उसने कहा था' मे इसका प्रयोग जब सन् १९१५ ई० किया गया तो इसकी आचलिक गरिमा को सरस्वती सपादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी खूब पहचाना था । और यह गुलेरी जी की आचलिक भाषा की ही विशेषता थी कि आचार्य

१. गुलेरी जी की अमर कहानियां, पृ० ३३-३६

जैसे सपादक ने 'अश्लील गीत' को कहानी का महत्त्वपूर्ण पहलू समझा और ज्यो का त्यो प्रकाशित कर दिया।

इतना ही नही, 'सुखमय जीवन' मे—सुपने, घोख, 'बुद्धू का काटा' मे—चाह (चाय), गिरी, गोह, लाहना, जिदो, वट, डेले, गलसूड, बेरियों, टिचल, खिरती, थावला, खातीचिडे, कलामुण्डी, तथा उसने कहा था' मे—लीक, गुथ, गनीम, जलजला, उदमी, पाधा, घुमा, तमाकू, सिगडी, मादे, मुरब्बे, खोते, सौहरा, मजा, पोल्हूराम, मत्था टेकना, लाम, बेडे, तीमियो, ओवरी, हाड तथा पट्ट आदि शब्द भाषा को आचलिक शक्ति प्रदान करने के लिए ही प्रयुक्त किए हैं।

सक्षेप म, कहा जा सकता है कि हिंदी कहानी के शैशवकाल मे गुलेरी जी ने आचलिकता की छौंक लगाकर जिस भाषाशैली का सूत्रपात किया था, बाद के हिंदी कथाकारो ने उसे अपनी शैलीगत विशिष्टता के रूप मे अपनाया, और उस दिशा म नये प्रयोग करके हिंदी कथा साहित्य मे आचलिकता को रूपाकार दिया। कहने का आशय यह है कि हिंदी कहानी और उपन्यास म आचलिकता की प्रवृत्ति लाने का श्रेय बहुत कुछ प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी को जाता है। उनके बाद हिमाचल प्रदेश के कहानीकारो मे इस प्रवृत्ति को यशपाल, मस्तराम कपूर, विजय सहगल, सुशीलकुमार फुल्ल, सुदर लोहिया तथा केशव आदि न अपने कथा-साहित्य मे अपनाया है।

गुलेरी जी की पहली कहानी :
सुखमय जीवन

□ इब्रार रब्बी

प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने तीन ही कहानिया लिखी है—'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का काटा' और 'उसने कहा था'। तीनो का प्रकाशन-काल १९११-१५ ई० के बीच कभी है। यह वह समय है जब हिंदी गद्य और पद्य आधुनिक रूप मे ढल रहा था। कहानी नया रूप ले रही थी। प्रेमचन्द अभी क्षितिज पर चमक नहीं रहे थे। रहस्य और रोमाच का हिंदी कथा साहित्य मे बोलबाला था। ऐसे समय मे गुलेरी जी तत्कालीन लेखन से ऊपर उठकर जीवन के गभीर और मार्मिक पक्षो का उद्घाटन करते हैं। यह साधारण बात नही है। आगे चलकर जो परपरा बनी और हिंदी कहानी की मुख्य धारा बनी, उसके बीज [illegible] ही बोए हैं। प्रेमचन्द, प्रसाद, मोहन राकेश, आदि उन्ही का विस्तार और विकास करते हैं।

फ्लैश बैक मे कहानी कहना या आचलिक तत्वो का [illegible] गुलेरी जी के यहा भरपूर है। इन दोनो प्रवृत्तियो के जनक [illegible]। आगे चलकर जितने भी कथा-आदोलन हुए, जहा-जहा कहानी [illegible] गए उन सबके सूत्र भी गुलेरी जी मे किसी न किसी तरह [illegible]।

कवियो और लेखको का सर्वप्रिय विषय है—प्रेम। [illegible] के बखान या व्याख्या मे लगा रहा है। गुलेरी जी की [illegible] कहानिया ही हैं। उन्होने जीवन के सबसे मार्मिक और गहन [illegible] है, इसीलिए वह केवल तीन कहानियो से अमर हो गए। [illegible] एक कहानी 'उसने कहा था' ने ही अमरत्व प्रदान कर दिया, [illegible] प्रसार अधिक नही हुआ। हिंदी के हर श्रेष्ठ और [illegible] सबसे ऊपर 'उसने कहा था' ही होती है। हर पीढी [illegible] जी से जुडा हुआ पाता है।

गुलेरी जी की पहली कहानी 'सुखमय जीवन' 'एक्सपोजर', पाखड के भडा-फोड, की कहानी है। पात्र अपनी पोल खुलने से डरते हैं। बाबू जयदेवशरण अभी छात्र ही हैं कि उन्होंने एक पुस्तक लिख डाली है—'सुखमय जीवन' जिसमे अच्छी गृहस्थी चलाने के नुस्खे बताए गए हैं। यानी अविवाहित व्यक्ति 'सुखी विवाहित जीवन' का रहस्य समझा रहा है, है न पाखड। इन लेखक महाशय से बाबू गुलाबराय वर्मा और उनकी पुत्री कमला बहुत प्रभावित है। उसी पुस्तक के कारण व उन्हें महान विद्वान और अनुभवी लेखक समझते है जबकि लेखक महोदय को विवाह और गृहस्थी का कतई अनुभव नही है। आजादी के बाद भारतीय राजनीति और समाज मे जिस पाखड का खुले आम जोरशोर से प्रचलन हो गया, उसके अकुर गुलेरी जी के समय मौजूद थे। काग्रेस का 'मध्यवित्त वर्ग-चरित्र और उसमे घुसे पाखड को लोग आज अच्छी तरह जानते हैं। धार्मिक कर्मकाडो मे पाखड की परपरा भारत मे बहुत पुरानी है। क्या इस सबकी ओर भरपूर इशारा यह कहानी नही कर रही है?

लक्ष्य प्राप्त करने का एक तरीका यह भी है कि जिस चीज को प्राप्त करना है, उसके लिए नाटक रचिए। क्या यही कारण तो नही है कि अविवाहित जय-देवशरण ऐसे विषय पर पुस्तक लिखता है, जिसके लिए वह तरसता है। दमित इच्छाए अवचेतन मन मे जाकर बाहर आती है तो पुस्तक का आकार ले लेती है। जयदेवशरण पाखडी नहीं है, अपराधी नही है। वह केवल रोगी है। पुस्तक लिखकर वह अपनी दमित इच्छाओ का केवल प्रकटीकरण मात्र कर रहा है, लेकिन कमला और उसके पिता उसे ढोगी मान लेते है। यह आतरिक व्यवहार और सामाजिक व्यवहार के टकराव से उत्पन्न हुई स्थिति है, जिसे गुलेरी जी 'कहानी' बना देते हैं।

मोटे शब्दो म इसे 'कथनी और करनी का भेद' भी कहा जा सकता है। यह शायद पाखड और ढोग से अधिक नरम प्रयोग है। इस विभेद को चित्रित करने के लिए ही गुलरी जी इस कहानी मे एक नही दो कथाए कहते हैं। मूलकथा तो जयदेव और कमला के बीच घटती ही है, दूसरी उपकथा जयदेवशरण के मित्र के बारे मे है। इस उपकथा से गुलेरी जी अपने समय की सामाजिक स्थिति को उजागर करते हैं—जिसम बाल विवाह की कुरीति आम बात थी। गुलेरी जी अपने समय क जागरूक चितेरे है। वह हर कुरीति और ढोग पर चोट करते हैं। वह उन्हे ढहाना चाहते हैं। इसीलिए वह अपने समय के प्रगतिशील कथाकार हैं।

गुलरी जी का समय वह है जब आदर्शवादी नवयुवक बाल विवाह का विरोध करते हैं, लेकिन खुलकर नही कह पाते। मित्रो मे और समवयस्को म आदर्शवाद के चलने से बाल विवाह के विरोधी हैं, पर माता-पिता के सामने

र झुका लेते हैं। उनके सामने खडे होकर, नजर मिलाकर नही कह सकते कि बच्ची से विवाह नही करूगा। माता-पिता को देखकर उनकी सिट्टी-पिट्टी गुम जाती है। उन्हें माता-पिता डिक्टेटर जैसे लगने लगते हैं। जाहिर है यह, आदर्शवादी रोमान बालू के किले की तरह ढह जाता है। जीवन के प्रति यथार्थ वही अवैज्ञानिक समझदारी का यही हश्र होना था। गुलेरी जी पुन एक पाखड का भडाफोड करते हैं। वह रोमाटिक विचारधारा का गिरता हुआ गढ साफ-साफ देख लेते हैं—"मेरे घर सितारपुर के १५ मील पर कालानगर है—वहा की मलाई की बरफ अच्छी होती है और वही मेरे मित्र रहते हैं, व कुछ सनकी । कहते हैं, जिसे पहले देख लेंगे, उससे विवाह करेंगे। उनसे कोई विवाह की चर्चा करता है, तो अपना सिद्धात के मडन का व्याख्यान देने लग जाते हैं। चलो, उन्हीसे सिर खाली करें।

"ख्याल पर ख्याल बढ़ने लगा। उनके विवाह का इतिहास याद आया। उनके पिता कहते थे कि सेठ गनेशलाल की एकलौती बेटी से अब की छुट्टियो मे तुम्हारा विवाह कर देंगे। पडोसी कहते थे कि सेठजी की लडकी कानी और मोटी है और आठ ही वर्ष की है। पिता कहते थे कि लोग जलकर ऐसी बातें उडाते हैं, और लडकी वैसी हो भी तो क्या, सेठ जी के कोई लडका है नही, बीस-तीस हजार का गहना देंगे। मित्र महाशय मेरे साथ साथ पहले डिबेटिंग क्लबो मे बाल-विवाह और माता-पिता की जबरदस्ती पर इतने व्याख्यान झाड चुके थे, अब मारे लज्जा के साथियो मे मुह नही दिखाते थे। क्योंकि पिता जी के सामने ची करने की हिम्मत नही थी। व्यक्तिगत विचार से साधारण विचार उठने लगे। हिंदू समाज ही इतना सडा हुआ है कि हमारे उच्च विचार चल ही नही सकते। अकेले चना भाड नही फोड सकता। हमारे सद्विचार एक तरह के पशु हैं, जिनकी बलि माता-पिता की जिद और हठ की वेदी पर चढाई जाती है ·· भारत का उद्धार तब तक नही हो सकता · "

यह दृश्य शताब्दी के शुरू मे १६११ ई० के आसपास का है। मित्र महाशय को पिता जी के सामने ची करने की हिम्मत नही थी। यह पिता का कोरा आदर और भय ही नही था। इस आदर के मूल मे वही बीस-तीस हजार के गहनो की चमक दमक भी दबी है, जो मुह खोलने नही देती यानी सारा आदर्शवाद और भाववाद अत मे जाकर भ्रष्ट आचरण का ही सहयोगी बनाता है।

गुलेरी जी जिस कुरीति का उल्लेख कर रहे है, वह आज भी कायम है, भले ही बाल विवाह आज न होते हो, पर दहेज का दानव और भी विकराल हो उठा है। आज इजीनियर, डाक्टर और प्रोफेसर युवक दहेज का विरोधी है। पर कहेगा, 'मुझे कुछ नही चाहिए पर माता-पिता ही बात करेंगे,' यानी मैं तो

उनका आज्ञाकारी हू और वे दहेज जरूर लेंगे । मैं उनका विरोध कैसे कर सकता हू ।'

जितनी उच्च शिक्षा और योग्यता वर की होगी उतना ही दहेज और रुपया अधिक देना होगा । यही नही, विवाह के बाद यही मध्य वर्ग के, वणिक्-बुद्धि के लोग पढी लिखी बहुओं को जीवित जला रहे हैं और किसी को कोई सजा नही मिलती। बहू जलाने के बाद लाडले बेटे की दूसरी, तीसरी शादी हो जाती है। दहेज भी दूसरी, तीसरी बार मिल जाता है। इस सामाजिक अभिशाप के बीज गुलेरी जी क्या अपनी इस कहानी मे जयदेवशरण की मूल कथा से पहले उपकथा मे नहीं दिखा देते हैं ?

सामाजिक रीति रिवाजो और कुरीतियों के वर्णन और उन पर प्रहार की दृष्टि से गुलेरी जी का अध्ययन किया जाय तो रोचक और महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आएगे ।

इस शताब्दी के पहले दशक को हम गुलेरी जी की आखों से आज भी देख सकते है। वह बहुत समसामयिक हैं शायद इसीलिए शाश्वत भी हैं। 'मुहल्ले मे तार का चपरासी आया, टेलीग्राम का यह उल्लेख कहानी को आधुनिक और सामयिक बना देता है। सामाजिक जीवन म जो भी नये परिवर्तन आ रहे है उन्हें गुलेरी जी रेखाकित करते है। फिर भले ही वह टेलीग्राम हो या साइकिल का प्रवेश । जो चीजें पुरानी हो जाती हैं, उनका उल्लेख चलते चलते कर दिया जाता है लेकिन नई चीजें समाज को लबे समय तक झकझोर देती है। इसलिए उनका उल्लेख विशेष तरीके स या अधिक अलकृत तरीके से होता है। पुरानी पडने पर उस चीज की चमक कम हो जाती है फिर लोग उसका जिक्र विशेषणो या अतिशयोक्ति के साथ नही करते। साइकिल उन दिनो नई चीज थी। लोग उसे आश्चर्य से देखते थे। गुलेरी जी उसे 'लोह का घोडा' कहते हैं। यानी ऐसा आविष्कार जिसने सामती मध्य युग के वाहन घोडे को अपदस्थ करके विलुप्त कर दिया। जो बाद मे घर-घर मे अपनी जगह बनाने वाली थी उस क्रातिकारी परिवर्तन के बिंदु को लेखक पहचान रहा है इसलिए साइकिल के बारे मे अलग से पूरा वर्णन है—"बाइसिकिल भी गजब की चीज है। न दाना मागे न पानी, चलाये जाइए जहा तक पैरो म दम हो।" इन पक्तियो मे परिवर्तन के आर्थिक कारणो को पहचाना जा सकता है।

लिनोटाइप की मशीन का भी उल्लेख है। इसी कहानी म प्लेग का जिक्र तीन बार है। उन दिनो प्लेग का प्रकोप ऐसा ही था जैसा आज कैंसर का है। उस समय के चाल-ढाल और फैशन को भी यहा जाना जा सकता है।—'कमला पारसी चाल की गुलाबी साडी पहने है।" यह उन दिनो की सबसे फैशनेबुल

पोशाक थी। पारसी महिलाओ को उन दिनो सबसे अधिक आधुनिक माना जाता था। कमला के पिता 'पजाबी ढग की दाढी' रखे अधेड महाशय हैं।

लेखक मध्यवर्ग का है। उसके पात्र भी मध्यवर्ग के ही हैं। हिंदी कथा-साहित्य मे मध्यवर्ग का ही सर्वाधिक चित्रण हुआ है। अधिकतर लेखक उसी वर्ग के हैं इसलिए उच्च और निम्नवर्ग का जीवन हिंदी कहानी मे अधिक प्रामाणिक नही है जबकि मध्यवर्ग के हर पहलू, हर अग-प्रत्यग का विस्तार से चित्रण है। कथा साहित्य पर मध्यवर्ग के सर्वाधिकार का सूत्र भी हमे गुलेरी जी के यहा मिलने लगता है, जहा विद्वान दिखाई देना अच्छा समझा जाता है और मजदूर नजर आना हेय। कहानी का नायक अपनी दुर्दशा के बारे मे कहता है—' मेरा सारा आकार सभ्य विद्वान का सा नही, वरन सडक कूटने वाले मजदूर का सा हो गया।"

गुलेरी जी स्वय सस्कृत, व्याकरण, पुरातत्त्व, इतिहास, ज्योतिष आदि के विद्वान थे। क्या नायक की यह कथा स्वय लेखक का आत्मकथ्य नही है ? सभ्य विद्वान जैसा नजर आना लेखक की महत्त्वाकाक्षा ही है, जो नायक मे ढाल दी गई है।

सस्कृत और पुरातन विद्या का यह विद्वान रूढिवादी नही है, गतिहीन जड-बुद्धि नही है। वह नई चीजो, नये जीवन को अपनाते है। गुलेरी जी की प्रगतिशील दृष्टि उन्हे आज भी प्रासगिक और जीवत बनाए हुए है। नये और पुराने के बीच जीने का आलम, पुराने से ग्रहण और नये का स्वीकार उनकी शैली मे छनकर आया है। सस्कृत के परपरागत उपमानो के साथ वह हल्के-फुल्के ढग से आम आदमी की प्रतिक्रियाए रख देते हैं। सौंदर्य के लिए 'तीर से मारा जाना' और 'तारामैत्रक' और 'चक्षुमैत्री' का एकसाथ प्रयोग उनके यहा अस्वाभाविक नही है—

"पारसी चाल की एक गुलाबी साडी के नीचे चिकने काले बालो से घिरा हुआ उसका मुख-मडल दमकता था और उसकी आखें मेरी ओर कुछ दया, कुछ हँसी और कुछ विस्मय से देख रही थी, बस पाठक, ऐसी आखें मैंने कभी नही देखी थी, मानो वे मेरे कलेजे को घोलकर पी गईं, एक अद्भुत, कोमल, शात ज्योति उनमे से निकल रही थी, कभी एक तीर मे मारा जाना सुना है ? कभी एक निगाह मे हृदय बेचना पढा है। कभी तारामैत्रक और चक्षुमैत्री नाम आये हैं।"

" 'सुखमय जीवन' का लेखक और ऐसा घृणित चरित्र," यह वाक्य इस कहानी का मूल वाक्य है। इसी सूत्र के चारो ओर कहानी बुनी गई है। चरित्र को बेनकाब करना ही 'सुखमय जीवन' का मूलाधार है। चीजो को साफ किए

बिना, दृष्टि की धुंध दूर किये बिना जीवन सुखमय हो भी कैसे सकता है।
चरित्र की यह चिंता भी मध्यवर्ग वाली ही है।

जयदेवशरण की उक्त पुस्तक को लेकर कमला व माता-पिता में मतभेद है। पिता उसे प्रामाणिक और अनुभवसंभव जीवन का निष्कर्ष मानते हैं, जबकि कमला की मां उसे कोरी गप्पों की पोथी कहती है। उन्हें वह बनावटी लगती है। उनके विचार में लेखक अनुभवशून्य है, उसने हवाई किले बनाए हैं। कहना नहीं होगा कि पुरुष आकाशगामी है, जबकि स्त्री के पांव ज़मीन पर हैं। उसे सत्य की पहचान है। वह यथार्थ के करीब है, जबकि पुरुष का स्वभाव अयथार्थवादी है। स्त्री पुरुष के स्वभाव की इस बुनियादी पहचान को गुलेरी जी कलात्मकता से चित्रित करते है। सब-कुछ बेनकाब हो जाने के बाद जयदेवशरण कमला के पिता से कहता है—"चाचा जी, उस निकम्मी पोथी का नाम मत लीजिए, बेशक कमला की मां सच्ची हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक पहचान सकती हैं कि कौन अनुभव की बातें कह रहा है और कौन गप्पें हांक रहा है।"

उसने कहा था :
मनोभावों का विश्लेषण

☐ डॉ० कमला रजन

श्रीचन्द्रधर शर्मा गुलेरी की ख्याति-स्तंभ कहानी—'उसने कहा था' वर्षों से हिंदी कहानी-साहित्य मे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाए रही और आगे भी बनाए रहेगी क्योंकि यह शाश्वत मानव मनोभाव पर आधारित है। इस कहानी पर एक चलचित्र भी बना जो इसकी लोकप्रियता और महत्त्व को स्थापित करता है। जिस युग मे यह प्रकाशित हुई, उस युग मे मनोविज्ञान कहानी-साहित्य का विषय नही बना था और न मन की उलझन तथा अवचेतन की प्रेरणा की व्याख्या कथा साहित्य में मुख्य आधार-शिला थी। गुलेरी जी ने अवचेतन मन को कहानी का साध्य बनाकर आने वाले युग को एक नया निर्देश दिया। इसीलिए इस कहानी को अपने युग से आगे की रचना स्वीकार किया गया। वर्षों तक विश आलोचक इसे उपन्यास माना जाए या कहानी—इस तरह की आलोचना करते रहे थे। कलात्मकता, शिल्पविधान तथा मनोविज्ञान आदि की दृष्टि से यह कहानी हिंदी कहानी-साहित्य मे अपना अन्यतम स्थान रखती है।

'उसने कहा था' मानवीय शाश्वत भावो को प्रकाशित करने वाली, कर्तव्य और त्याग की कहानी है, जिसमे नायक नायिका के मधुर रागात्मक मिलन की क्षणिक आभा उनके संपूर्ण व्यक्तित्व और जीवन को आलोकित करती है। दोनो ओर से सुकुमार मनों म उद्वेलित प्रेम की सहज आकाक्षा निश्छल है, उच्छृंखल, चचल या वासनारंजित नही। इसमे सरल, सहज, सुकुमार मन की सनातन तरल भावना है। दोनों ओर समाज, परिस्थिति तथा जीवन-संघर्ष के मध्य यह मधुर भाव अवचेतन मन की निधि बनकर रह जाता है। इसीलिए अचानक २५ वर्ष बाद लहनासिंह को देखकर सूबेदारनी उसे पहचान लेती है। वर्षों के सुख-दुःख की गहराई मे गृहस्थी की उलझनो मे भी सूबेदारनी अमृतसर के उस बालक

को पहचान गई, यह प्रेमाकर्षण की अद्भुत गभीरता है। सघर्ष सकुल जीवन की उलझनो के बीच अवचेतन की आकाक्षा एक विश्वास के साथ लहनासिह के सामने अनुरोध, भिक्षा एव प्रार्थना बनकर आती है, सूबेदारनी के अतर्मन मे लहनासिह के प्रति अखड विश्वास है, स्नेह है। वह कहती है—वर्षों पहले तुमने मुझे घोडे की लात से बचाया था, इस बार भी मेरी सहायता करना। मेरा पति और एक ही पुत्र है—दोनो युद्ध मे जाते हैं, इनकी रक्षा करना। सूबेदारनी का आचल पसारकर, पति एव पुत्र की जीवन-रक्षा की भीख मागना, उस शाश्वत सहज स्नेह की माग है, जो लहनासिह के मन मे कही-न-कही सुषुप्तावस्था म था। उसे पच्चीस वर्ष पहले की एक शर्मीली सरल बालिका की याद हो आई। लहनासिह के सामने सब-कुछ सजीव हो उठा, भावावेश की स्थिति मे आखो म आसू आ गए। २५ वर्ष का सघर्ष-सकुल जीवन तिरोहित होकर अमृतसर की सरल बालिका का स्नेह स्फुरित अनुराग उसके जीवन का सर्वस्व बन गया। युद्ध-सघर्ष के बीच भीषण ठड, बर्फ और वर्षा की परेशानी, खदक मे बैठे बैठे हड्डिया जकड रही थी, पिंडलियां तक कीचड मे धसी थी। चारो ओर कान के परदे फाडने वाले धमाको से खदक हिल जाती थी, सौ सौ गज धरती उछल पडती थी। हड्डियो मे जाडा धस जाता था। सूर्य का कही पता ही नही था। और खाई के दोनो तरफ मौत मुह खोले मनुष्य को निगल जाना चाहती थी। इस भीषण ठड मे लहनासिह के जीवन मे एक मधुर स्मृति उजाला बनकर उसे आशा, उल्लास और उमग दे रही थी। परसों रिलीफ आ जाएगी और फिर वह सात दिन की छुट्टी का मधुर स्वप्न देख रहा था। वह स्वीकार करता है कि—"मरा डर मत करो, मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूगा। भाई कीरतसिह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाए हुए आगन के आम के पेड की छाया होगी।" लेकिन लहनासिह का यह विश्वास, यह आशा, यह स्वप्न, पूरा नही हो पाता है। कर्तव्य और त्याग की बलिवेदी पर वह अपना सब कुछ अर्पण कर, एक अपार आत्मसुख मे खो जाता है, क्योंकि— उसने कहा था'। बोधासिह बीमार है। उसके लिए वह अपने दोनो कबल और जरसी उसे दे, अपना गुजारा सिगडी (आग) के सहार करता है। उसकी जगह पर स्वय पहरा देता है। उसे सूखी लकडी के तख्तो पर सुलाता है, अपने-आप कीचड मे पडा रहता है। अवचेतन की प्रेरणा तथा तीक्ष्ण बुद्धि और सतर्क आखो से वह नकली लपटन को पहचान-कर वजीरासिह को, सूबेदार को वापस बुलाने के लिए भेजता है। लहनासिह निडर, निर्भय हो उस नकली साहब की हर गतिविधि को देखता है जो खदक म बमगोले लगाकर जलाना चाह रहा था। और फिर तत्क्षण —'बिजली की तरह दोनो हाथो से उलटी बदूक को उठाकर लहनासिह ने साहब की कुहनी पर तानकर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पडी।

लहनासिंह ने एक कुदा साहब की गर्दन पर मारा और साहब 'आँख मीन गौट्ट' कहते हुए चित हो गए। लहनासिंह ने तीनो गोले बीनकर खदक के बाहर फेंके और साहब को घसीटकर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली, तीन-चार लिफाफे और डायरी निकालकर उन्हे अपनी जेब के हवाले किया।"

युद्ध की इस विषम स्थिति मे नकली लेफ्टिनेंट की पिस्तौल की गोली खाकर भी लहनासिंह खडा था। और तक-तककर दुश्मनो को मार रहा था। वह बडी हिम्मत, साहस और धैर्य से लड रहा था। इसी बीच उसको दूसरी गोली पसली मे लगी। —"उसने घाव को खदक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कसकर कमरबद की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना को दूसरा घाव— भारी—घाव लगा है।"

लहनासिंह अपने कर्तव्य पर डटा रहा। युद्ध की समाप्ति के बाद जो रिलीफ की गाडी आई उसमे लहनासिंह सूबेदार को जिसके 'दाहिने कधे मे से गोली आरपार निकल गई थी' तथा बोधासिंह को कसम देकर भेजता है और स्वय दूसरी गाडी (स्वर्ग की गाडी) की प्रतीक्षा मे यह कहकर कि—' मेरे लिए वहा पहुचकर गाडी भेज देना और जर्मन मर्दों के लिए भी तो गाडिया आती होंगी। मेरा हाल बुरा नही है। देखते नही, मैं खडा हू ? वजीरासिंह मेरे पास है ही"—वह रुक जाता है। उसका जीवन जवाब दे रहा था, उसे आभास हो रहा था, लेकिन हिम्मत, साहस और अवचेतन की प्रेरणा से वह खडा था। जाते हुए सूबेदार से वह सूबेदारनी होरा को मत्था टेकना और मुझसे 'जो उनने कहा था वह मैंने कर दिया' का सदेश दता है। गाडी के जाते ही वह लेट गया। "वजीरा, पानी पिला दे और मेरा कमरबद खोल दे। तर हो रहा है।" उसके जीवन का लक्ष्य पूरा हो गया था।

अनेक भाषाओ के पडित होने पर भी गुलेरी जी ने जन सुलभ सरस-सरल भाषा को ही इस कहानी के लिए उपयुक्त माना। कहानी मे जाति-विशेष और फौज की व्यावहारिक भाषा स्वाभाविक ढग से प्रयुक्त है। जनपदीय तथा स्थानीय शब्दो और भाषा का नूतन प्रयोग विधान, जो बाद मे कथा-साहित्य मे प्रचलित हुआ, 'उसने कहा था' मे प्राजलता, स्वाभाविकता और मधुरता का सगम उपस्थित करता है। शिल्पविधान की दृष्टि से यह कहानी उपन्यास की भाति लहनासिंह के सपूर्ण व्यक्तित्व की समीक्षा करती हुई पवित्र प्रेम और कर्तव्य की अद्वितीय मिसाल बनकर हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि की तरह स्वीकार की जाती रही है।

प्रम और कर्तव्य का मनोविज्ञान

'उसने कहा था' म लेखक ने प्रणय की असफलता को भी बडी सावधानी तथा सफलता से अकित किया है। उसका नायक, और पाठक दोनो पर गभीर प्रभाव पडता है। बालक और बालिका अमृतसर के बाजार मे मिलते हैं। दोनो मे सहज आकर्षण उत्पन्न होता है। बातो ही बातो मे बालक शर्माता हुआ बालिका से पूछता है—"क्या तेरी कुडमाई हो गई ?" बालिका की ओर से भी सहज रागात्मक 'धत्' की आवाज आती है। दोनो के मन मे प्रेम भावना अकुरित होने लगती है। लेकिन तभी अचानक एक दिन पूछने पर लडकी ने लडके से कहा—"हा हो गई, देखते नही यह रेशम का कढा हुआ सालू।' तब लडके की बडी विचित्र हालत हो गई। दो अनुरागी मनो के सहज सरल आकर्षण प्रेम-बधन टूट गए। पाठक के मन मे उस विक्षिप्त परेशान बालक के प्रति एक अजीब स्नेह, दया, सहानुभूति की भावना पैदा होती है, जो रास्ते मे एक लडके को मोरी मे ढकेलता है, एक छबडी वाले की दिन-भर की कमाई गिरा देता है, एक कुत्ते को मारता है, गोभी वाले के ठेले मे दूध डाल देता है और एक सद्य स्नाता वैष्णवी से टकराकर अधे की उपाधि पाता हुआ घर पहुचता है। बालक के मनोभाव को स्पष्ट करने के लिए मनोविज्ञान का सहारा लिया है। लेखक उसकी विक्षप्तावस्था, अव्यवस्थित निराशाजन्य मानसिक स्थिति, उसके मन की व्यथा उलझन, सघर्ष और पराजय को हमारे सामने रखने मे सफल होता है। जहा आशा के फूल खिलने वाले थे, वहा निराशा का ज्वार-भाटा आता है। बालक उस नैराश्य मे उन्मादित हो अपन मन की पराजय को जिस प्रकार प्रकट करता है, वह उसके मानसिक भावो का प्रतिफलन जान पडता है। मनोवैज्ञानिको के अनुसार, प्रत्यक दमित इच्छा के साथ भावावेग का सबध होता है, जो अपना प्रवाह का मार्ग ढूढ लेता है। अगर मन की इच्छा को पूर्णता नही मिलती या जीवन मे विपरीत फल सामने आ जाता है तो मन की ठीक यही स्थिति होती है। वह अपनी कुठा, नैराश्य और पराजय को विविध तोड-फोड तथा विध्वस मे प्रकट करता है जैसा कि 'उसने कहा था' का नायक लहनासिंह करता है।

बालक-बालिका का प्रणय आकर्षण यौवन के शाश्वत रागात्मक भाव का स्फुरण है। इसम सुप्त काम वासना का प्रभाव है। यह एक सहज आकर्षण मात्र है। दोनो सघर्ष-सकुल जीवन की विविधता म अपनी अपनी राह चलते हैं। बहुत व्यस्त जीवन के मध्यभाग मे पुन अचानक दोनो का मिलन होता है। दोनो के जीवन की अपनी-अपनी समस्याए हैं, अपना अपना लक्ष्य है। सूबेदारनी लहनासिंह को पहचान लेती है और उसे अपने पास बुलाती है। २५ वर्ष पहले की घटना—उनका मिलन, उनका सहज निश्चल प्रेम आज भी प्रेमिका

के अतराल मे छिपा है। यही निश्चल प्रेम, त्याग और कर्तव्य बनकर, लहनासिंह का आदर्श बन जाता है जिसके फलस्वरूप लहनासिंह अपना जीवन उस निश्चल शाश्वत प्रेम को समर्पित करता है जो उसके जीवन में २५ वर्ष पहले सहज स्फुरित हुआ था। मन की वह प्रथम भावना अचेतन मे रहकर उसके सपूर्ण जीवन को गति दे देती है।

फ्रायड ने मानव जीवन के विकास मे उसके अचेतन मस्तिष्क को अत्यत महत्त्व दिया है। उसके अनुसार मानसिक जीवन के दो छोर—तत्रिका यत्र और चेतना के मध्य जो मानसिक प्रक्रिया होती है, वह अचेतन मन होता है। एम० एन० राय ने अपनी पुस्तक 'साइस ऐंड सुपरस्टीशन' मे लिखा है कि 'अचेतन मन मनुष्य के स्वचालित अनुभवो अथवा सामाजिक वातावरण के दबाव से बनी हुई प्रवृत्तियो का एक ढेर होता है। वस्तुत मनोवैज्ञानिको के अनुसार हमारे व्यक्तित्व अथवा मन का वह अश जिसका विकास अवरुद्ध हो, जो बराबर किसी न-किसी कारण पिछडी दशा मे पडा रहे, वह अचेतन मन है। जितनी अनैतिक, अधार्मिक, अव्यावहारिक तथा असामाजिक इच्छाए तथा व्यवहार मनुष्य करता है और जिन्हे वह बडा होकर स्वय अपना नहीं कहना चाहता वे सभी इच्छाए-भावनाए अचेतन मन मे स्थान पाती हैं। लेकिन मुख्यत अचेतन मन की सुप्त भावनाओ से ही मानव का सपूर्ण व्यक्तित्व सचालित होता है। इसे ही 'अनुभवात्मक मानसिक शक्ति' कहा गया है। सामाजिक बधनो के कारण मनुष्य अनेकानेक इच्छाओं की पूर्ति न हो पाने से उनका दमन करता है। ये इच्छाए दमित होकर अचेतन मन मे सुषुप्तावस्था मे रहती हैं और उसके जीवन को गति देती हैं।

हम देखते हैं कि युद्ध के मैदान मे लहनासिंह के सपूर्ण व्यक्तित्व को 'उसने कहा था' प्रेरक शक्ति बनकर सचालित करता है। वह उसके आत्मोत्सर्ग, त्याग, बलिदान का कारण बनता है। लहनासिंह उस आदर्श प्रेम के लिए बलिदान होता है, जिसमे वासना का स्थान नही होता है, वैसे तो फ्रायड ने मानव-जीवन के सपूर्ण व्यक्तित्व के विकास का आधार सेक्स या काम भावना माना था, जिसकी बाद मे बडी आलोचना हुई। अनेकानेक मनोवैज्ञानिको ने भी इस सिद्धात को महत्त्व नहीं दिया। वैयक्तिक मनोविज्ञान के निर्माता एडलर ने काम-प्रवृत्ति की अपेक्षा 'आत्मस्थापना' की प्रवृत्ति को महत्त्व दिया तथा चेतन अचेतन स्मृतियो के सबध को व्यक्ति की श्रेष्ठ भावना से प्रभावित माना। जुग ने अचेतन मन के कपेसेटरी फकशन सिद्धात के आधार पर सिद्ध किया कि मानव का व्यक्तित्व विकास मे नही, अचेतन उसे विशेष प्रकार मे परिवर्तित करता है।

जिस समय गुलेरी जी ने कहानी-साहित्य के सृजन का कार्य किया, उस समय कहानी या उपन्यास साहित्य मे मनोविज्ञान को आधार मानकर प्रणयन की प्रथा नही थी। यह प्रथा सन् १९३० के आसपास शुरू हुई और धीरे-धीरे कथा का

मुख्य विषय मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही बन गया। आरभिक कहानीकारो को न तो फ्रायड के सिद्धातो की अपेक्षा थी और न ही मनोविज्ञान की समस्याओ का विश्लेषण ही उनका उद्देश्य था। उन्होने अपनी कहानियो मे जीवन के सत्य भाव को उसकी समग्रता, व्यापकता, गभीरता तथा भावात्मकता के साथ अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। भावात्मक कहानियो मे मन के सघर्षों को स्पष्ट करने के लिए इन लेखको ने जिस मानसिक सघर्ष एव सत्य को प्रकट किया वह बाद मे मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रणीत नही हुआ। गुलेरी जी के सभी पात्रो का सजीव स्वाभाविक और सरल जीवन निर्मित हुआ है। जब हम लहनासिह के व्यक्तित्व को मनोविज्ञान की तराजू पर तोलते हैं तो उसके भावो की गहराई मे, उसके आत्मत्याग की तत्परता मे उसके अचेतन की — 'उसने कहा था' — आवाज सुनाई पडती है। यह आवाज उसके जीवन का सत्य बन जाती है।

'उसने कहा था' को मनोवैज्ञानिक गुत्थियो को सुलझाने वाली तथा अचेतन के प्रभाव को स्पष्ट करने वाली विशिष्ट रागात्मक कहानी कहा जा सकता है।

उसने क्यों कहा था :

अधिकार और सीमा

□ कृष्ण विकल

मैं बचपन मे सस्कृत का विद्यार्थी था। उन दिनो पजाब मे हिंदी को सस्कृत क्षेत्र के लोग 'भाषा' कहते थे। हमारी धारणा थी कि सस्कृत मे सभी कुछ 'सुसस्कृत' है और 'भाषा' मे जो कुछ भी है वह उससे निचले स्तर का है। हम हितोपदेश और पचतत्र की शृखलाबद्ध कहानियो पर लट्टू थे और कथा-कहानी के नाम से हमने अधिक से अधिक कथासरित्सागर का नाम सुना था। उसमे से दो-एक कथाए गुरुमुख से सुनी भी थी।

सहदेव मेरा सहपाठी था। उसके पिता जी हिंदी साहित्य मे रुचि रखते थे। उनके घर मे हिंदी की नई-पुरानी पुस्तको का अच्छा खासा भण्डार था। वह हितोपदेश या पचतत्र का कवर चढाकर रोज कोई न कोई हिंदी की पुस्तक विद्यालय लाता था और दूसरो से छिपकर उसे पढा करता था।

मैं तब छात्रावास मे रहता था। छात्रावास मे ब्रह्मचर्य के नियमो का पालन अनिवार्य था। वहा शृगारपरक पुस्तकें पढने की सख्त मनाही थी। हिंदी के किस्से-कहानियो मे जीवन का यथार्थ चित्रण रहता था। नर-नारी-सबधो की कहानियों मे 'शृगार-चर्चा' साधारण बात है पर यह बात सस्कृत विद्यालय के सस्थापक-सचालकों को स्वीकार्य नही थी।

जिस बात की मनाही हो, उधर ध्यान अधिक बँटता है। एक शनिवार की रात को मुझे सहदेव ने एक पुस्तक लाकर दी जिसका कवर तो फटा हुआ था। पर पुस्तक में सब पृष्ठों पर 'हिंदी गल्प' छपा था।

शनिवार की रात को हमारे छात्रावास के अधिपति मुख्य रसोइये पर छात्रावास का भार सौपकर अपने गाव-घर चले जाते थे। फिर सोमवार प्रात आते थे। एक तो रसोइया अनपढ था, ऊपर से दयालु स्वभाव का था। वह चाहता तो पीछे हमपर कडाई रख सकता था। शायद वह इतने कडे अनुशासन का विरोधी रहा होगा। जो भी हो, हमारी शरारतें देखकर वह बरबस हँसता

रहता था। इस बीच हमको अपनी मनमौज करने का अवसर मिल जाता था।

शनिवार की उस रात मैं पुस्तक लेकर बैठा। पहली (या शायद दूसरी) कहानी थी 'उसने कहा था'। मैंने रात ही रात मे पूरी कहानी पढ डाली—एक बार दो बार। तब पूरी कहानी तो मेरी पकड मे नही आई थी क्योंकि घटना-क्रम आगे का पीछे था। यह मेरे लिए नई चीज थी। पहले भी मैंने सहदेव से लेकर कुछ अय्यारी या तिलिस्मी की कहानिया पढी थी और उनमे मुझे ऐसी उलझन नही हुई थी।

कहानी मे युद्ध का लबा विवरण दिया था, यद्यपि वह भी मुझे कम आकृष्ट नही कर रहा था। पर बारह बरस का माझे का लडका और आठ बरस की मगरे की लडकी कुछ मन मे इस तरह धँस गये थे कि निकल नही पा रहे थे।

मुझे लडके (बाद के लहनासिह) के प्रेम और विलक्षण त्याग पर गर्व कम होता था, आश्चर्य अधिक होता था। उसके बलिदान पर मेरा बालमन रात-भर शायद रोता भी रहा था। पर लडकी (बाद की सूबेदारनी) ने जो कहा था, वह क्यों कहा था? क्या वह निर्दय नही थी कि जिसने उसको बालपन मे चाहा उसको तागे घोडे की टापो से खीचकर बचाया, पच्चीस बरस बाद मिलने पर उसने अपने स्वार्थ के लिए उसे मौत के मुँह मे जाने के लिए प्रेरित किया?

तब मैं कोई तरह बरस का था—वह लडका बारह बरस का था। यह अद्भुत सयोग था। पता नही कैसे मैं अपने को 'लहना' मान रहा था। तब मुझे 'सूबेदारनी' अपराधिनी दिखाई देती थी। और मेरे कोमल हृदय पर इस कहानी ने खासी चोट पहुचाई थी। मैं तब भी यह मानता था कि यह कहानी है तो बडी मर्मस्पर्शी पर···

मुझे याद है, सहदेव को मैंने अपनी यह प्रतिक्रिया बताई थी तो वह बरबस हँस पडा था—'यह कहानी मैंने भी चार बार पढी है। कहानी अच्छी है, बस! इससे अधिक क्या! यह तो हम जानते ही हैं कि यह गल्प (गप्प—बनाई हुई कहानी) है! फिर रोना-धोना कैसा! तुम तो निरे अनाडी हो·' उसने मुझे डाट दिया था।

मैं डाट खाकर चुप अवश्य हो गया था। पर मेरे मन मे काटा सा चुभ गया था। फिर उस सग्रह की मैंने दो एक कहानिया और पढने की चेष्टा की थी। पर 'उसने कहा था पढने के बाद तब न जाने मुझे और कोई कहानी क्यो नही बाध सकी थी।

भारत-विभाजन हो गया। १९५१ ई० म दिल्ली के एक मुद्रणालय मे काम करना था। तब मैं बीस वर्ष का था। दो एक सकलन छपे और उसमे 'उसने कहा था' कहानी को फिर से कई बार पढने का अवसर मिला। कहानी अब

मुझे पहले से अधिक अच्छी लगी थी—शायद मेरे मन-मस्तिष्क का कुछ अधिक विकास हो गया था। पर लडकी (सूबेदारनी) के बारे मे मेरी शिकायत फिर भी बनी रही।

१९५४ मे मैं हिंदी साहित्य मे कुछ 'दखल' रखने लगा था। मैं एक परीक्षोपयोगी पुस्तको के प्रकाशक के पास काम करता था। मुझे कुछ निबध-सग्रह और कहानी-सकलन सपादित करने का मौका मिला[1] तो मैंने गुलेरी जी की 'उसने कहा था' कहानी को एक सकलन के लिए चुना। उसी सग्रह मे मैंने हिंदी के यशस्वी कथाकार श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी जी की कहानी भी ली थी।

उन दिनो वाजपेयी जी भारत होटल मे टिककर एक नया उपन्यास लिख रहे थे। अपने कार्यालय मे मुझे उनके दर्शन हुए तो मैंने उनकी 'मिठाई वाला' कहानी को सग्रहार्थ लेने की अनुमति चाही। उन्होने सहर्ष दे दी। फिर उन्होंने मेरे सकलन की सूची पर एक दृष्टि डालते हुए पूछा—" 'उसने कहा था' कहानी तुम्हें कैसी लगी ?"

सीधे इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए मैं अदर से तैयार न था। क्योंकि तब मैंने इस कहानी को न केवल नये सिरे से पढा था बल्कि हिंदी के विद्वानों की इस कहानी पर प्रतिक्रियाए भी देखी थी। सबने जैसे एक स्वर से इसे हिंदी की सर्वश्रेष्ठ कहानी स्वीकार किया था। किसी आलोचक ने इस कहानी की सवेदना को प्रेम और कर्तव्य का उज्ज्वल प्रतीक माना था। हिंदी के अन्य लेखक इस कहानी मे रस के परिपाक, हास्य की स्वस्थ छटा, कहानी-कला के चरम उत्कर्ष, भाषा के आश्चर्यजनक प्रौढ़ प्रयोगो एव अद्भुत शैली आदि से इतने अभिभूत हुए थे कि वे अवाक्-स्तब्ध रह गये थे। गुलेरी जी का जादू उनपर ऐसा चला कि यह कहानी उनके लिए एक मिसाल बनकर खडी हो गई थी—उनके लिए कथाकार एक रहस्यमय चितेरे से कम नही था। यह वह काल था जब प्रेमचन्द और जयशकर प्रसाद जैसे समर्थ लेखक अपनी कहानी-कला के आरभिक चरण मे चल रहे थे, ऐसे समय मे गुलेरी जी की 'उसने कहा था' हिंदी जगत् मे एक चुनौती थी !

इतने जबर्दस्त दबाव के बीच मेरा शकालु पाठक अपनी जिद पर अड़ा था, यद्यपि उसकी अनुभूति के क्षेत्र का विस्तार हो गया था क्योंकि 'उसने कहा था' के बाद उसे गुलेरी जी की छिटपुट रचनाओ, टिप्पणियो को भी पढने को बाधित होना पडा था और उनका लोहा मेरा नया पाठक कैसे न मानता ! तब चकाचौंध से अधी आखो से मैं 'उसने कहा था' की गुत्थियो को टटोलता रहा था···

वाजपेयी जी मेरी प्रतिक्रिया जानना चाहते थे। उन्होंने अपना प्रश्न दुहराया। मैंने कहा—"यह कहानी मुझे एक रहस्य की तरह अच्छी लगती है।

१. पर वे सकलन किन्ही एम० ए०, पी-एच० डी० प्रोफेसरों के नाम से छपे थे।

सबकी प्रशसित है अत मैं अपने हृदय मे काटे की चुभन का कैसे बयान करूं ?" फिर मैं सीधे अपनी बात पर उतर आया—"क्या लहनासिह का पहला प्रेम एक छलना से अधिक था ? जिस लडकी को उसने चाहा, जिसके लिए वह स्वय घोडे की टागो मे चला गया उसने उसे क्या दिया ? पच्चीस वर्ष के अतराल मे भी उस लडकी की अनिष्टकारी छाया ने उसे न छोडा—न हाल पूछा न चाल, सीधे अपने नये स्वार्थ की बात पर उतर आई—'अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग ! तुम्हें याद है एक दिन 'तुमने ''मेरे प्राण बचाये थे' ऐसे ही इन दोनो के बचाना···' और भावुक होकर सूबेदारनी के पति और पुत्र के लिए लडाई मे लहनासिह ने अपने प्राण न्यौछावर कर दिये ! भला यह लहना की कहा की लायकी थी ! और उस लडकी (सूबेदारनी) ने किस अधिकार से यह सब लहनासिह को कहा था ?" कहते-कहते मेरे गाल लाल हो गये थे। जबान सूखने लगी थी।

वाजपेयी जी मुस्कराए—"नवयुवक हो न ! तुम्हारा उत्साह प्रशसनीय है। *पर अभी तुम और कथा-साहित्य पढो ''शरत्, चेखव, मोपासा''*·तुम्हारी जिज्ञासा मे दम तो है। पर मेरी दृष्टि मे, गुलेरी जी का उद्देश्य लहना के चरित्र को दर्शाना है कि कैसे पहला प्यार परिस्थितियो के बदलने पर अशरीरी हो सकता है और जिसने प्यार किया था वह किस सीमा तक जा सकता है। कहानी में नायक है लहना, पर ध्यान दो कि सूबेदारनी 'नायिका' नही - और नायिका है भी कोई नही। कथा साहित्य मे दोनो—नायक-नायिका रहे, यह जरूरी भी नही। तुम्हारी बात भी मान लें कि सूबेदारनी क्रूर, स्वार्थी सही, पर इमसे क्या आता-जाता है ! जो लहना ने किया वह लहना के उत्सर्ग को प्रकटाता है···कहो, तुम क्या सोचते हो ?"

मेरा मन वाजपेयी जी के तर्कों से कुछ-कुछ भ्रमित तो होने लगा था। पर मेरे हिय मे जो काटा चुभा था वह अब भी ज्यो का त्यो गडा था।

वाजपेयी समाधान देते हुए बोले—" 'उसने कहा था' वैसी ही कृतियो मे से एक है जिनके लिए सस्कृत कवि माघ ने कहा था—'जो प्रतिक्षण नई से नई लगे' समझो वह उत्कृष्ट रचना है। तुममे सच्चा जिज्ञासु है। तुम्हारे प्रश्न निरर्थक नही हैं। पर तुम समाधान इसी कहानी मे ढूढो। वैसे तुमने मुझे भी नये सिरे से सोचने को बाध्य कर दिया है।" यह कहकर उनकी आखे कुछ छलछला आई।

वाजपेयी जी से प्रोत्साहन पा, मैं कहानी की गुत्थियो को रेखाकित करने लगा।

···बारह बरस का लडका · आठ बरस की लडकी ''दोनो का अमृतसर के बाजार मे परिचय होता है। लडका पूछता है—**'तेरी कुड़माई हो गई ?'** इस

पर लड़की कुछ आंखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गई और लड़का मुंह देखता रहा।

लडके ने यह क्यो पूछा ? मैं समाधान ढूढने लगा कि तू मुझे अपने लिए पसद है। तू अगर पराई नही हुई तो मेरे लिए वरेण्य है, आदि। (यदि भारत का अतीत काल होता जब कन्या को स्वयवर का अधिकार था तो 'तेरी कुड़माई हो गई ?' से मुराद होता कि यदि तूने किसीको नही वरा तो मुझे वर ले !)

लडकी अल्हड और भोली-भाली है। उसके पास अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करने के लिए शब्द नही के बरावर हैं। उसके लिए ऐसी परिस्थिति जिसमे लडका उससे प्रणय-निवेदन करे, एकदम कल्पनातीत थी। उसके मुह से बरबस निकला – 'धत्।'

यह 'धत्' ग्लानिसूचक था, जैसे उसने अपने कानो से वे शब्द सुन लिये हो जो उसके लिए अश्रव्य हो जैसे कि उसकी दोनो उँगलिया सहसा कर्ण-विवरो पर चली गई हो।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जी वाले के यहा या दूध वाले के यहा अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना-भर यही हाल रहा।

लडका लडकी को अपलक देखता होगा। लडकी भी उसकी इस चेष्टा से 'अचल' नही रह पाती होगी। आखो ही आखो मे कुछ आदान-प्रदान होता होगा'''कौन जाने तब वह क्या सोचती होगी ? ''

दो तीन बार लड़के ने फिर पूछा—'तेरी कुड़माई हो गई।' और उत्तर में वही 'धत्' मिला।

गुलेरी जी का बयान इतना-भर है। फिर एकदम पच्चीस बरस बाद की सूबेदारनी की लहना से अभ्यर्थना'''मैं सूबेदारनी के अधिकार और उसकी सीमा को रेखाकित करना चाहता हू। सूबेदारनी ने यह सब लहना को क्यो कहा था ? दान का ही तो कोई प्रतिदान माग सकता है। कुछ दिया न हो—मात्र लिया ही लिया हो तो कोई यह हिम्मत कैसे कर सकता है कि भई, पहले तुमने मुझे बचाया था, अब थोडी और कृपा करो। युद्ध मे मेरे पति और पुत्र की रक्षा करना।

तो क्या लड़की भी उस लडके से प्यार करती थी ? यदि वह सचमुच प्रेम करती रही हो, यदि वह लडका भी उसका पहला प्रेमी रहा हो, यदि उसके बालामन मे वह कही 'गुदगुदी' बन सका हो तब तो सदेह सर्वथा निर्मूल हो सकता है'''इस बिंदु पर पहुचकर मैं उन सकेतो को ढूढने मे जुट गया। किसी ने जो कहा है कि शब्दो से अधिक प्रभावशाली मौन की भाषा होती है। इसीलिए शायद सूबेदारनी ने अपने पूर्व-प्रेम की दुहाई नही दी। अपनी भावनाओ को शब्दो मे नही उतारा—उसे मौन-मूक छोड दिया।

'तेरी कुडमाई हो गई ?'—हर बार इस प्रश्न का एक ही उत्तर—'धत् !' पर जैसे-जैसे प्रश्नकर्ता की मुद्रा बदलती रही होगी, वैसे-वैसे 'धत्' शब्द की व्यजना ने हर बार अलग-अलग रग की (सतरगी) चुनरिया न ओढी होगी ? • इस प्रकार बालमन की इस आखमिचौनी म एक प्रसग और जुड गया जिसमे लडके ने अपनी जान पर खेलकर अपनी चहेती को तागे के घोडे की टागों मे से निकालकर दुकान के फट्टे पर खडा कर दिया ! कुछ ही पलक झपकते लडके के मन मे उठी प्रेम की पराकाष्ठा को क्या लडकी ने अपने प्राणपन से नही महसूसा होगा ? और बाहर-भीतर से उसीकी होकर उसकी बाहो म मन ही मन न जा पडी होगी ?

आज का 'प्रगतिशील' पाठक समझता है कि आठ-नौ बरस की बालिका प्रेमरस को क्या जाने ! आप उस समय की कल्पना कीजिए, जब सात-आठ बरस की बालिका को ब्याह दिया जाता था और वह किसी की पत्नी बन जाती थी। उस बालामन मे यह बात तो अवश्य घुस आती होगी कि उसके चारो ओर एक घेरा लग गया है और वह 'पराई' हो गई है। यह उस युग की कहानी है जब लडकी गाय की तरह बेजबान थी और वह अपने मन के मीत को स्वय वरने की कल्पना नही कर सकती थी।

'उसने कहा था' की इस लडकी के साथ भी यही घटा था। उसका हृदय भले ही तब चूर-चूर हो गया होगा जब उसकी कुडमाई हो गई और उसके सिर पर सालू डाल दिया गया। पर जब लडके ने पुरानी आदत के मुताबिक इस बार पूछा—'तेरी कुडमाई हो गई ?' तो लडकी का सहज उत्तर था—'हा, हो गई'''कल। देखते नही यह रेशम से कढा हुआ सालू !' इस तरह बडी सहजता और भोलेपन के साथ लडकी ने अपने बालप्रेमी से विदा ली। ऊपर से जैसे कुछ घटा ही न था। दोनो के भीतर एक तूफान था। कथाकार ने लडके की कुछ ऊलजलूल चेष्टाओ से तो उसे प्रकट कर दिया, पर लडकी के मानस की दशा पर मौन-मूक रहकर एक अद्भुत रहस्यात्मक स्थिति उत्पन्न कर दी !

ठीक पच्चीस बरस बाद, जब लहनासिह सूबेदार के घर उन्हे लाम मे लौटते समय लिवाने आता है तो सूबेदार घर से बाहर आकर कहता है—'सूबेदारनी तुम्हे अदर बुला रही है। लहनासिह चौंकते हुए अदर प्रवेश करता है तो उसे देखते ही सूबेदारनी कहती है – तुम्हे तो मैंने आते ही पहचान लिया था '

आठ बरस की बालिका पच्चीस बरस के अतराल के बाद, किसी बालक को दाढी मूछ वाले युवक के रूप म देखकर कैसे पहचान सकती है ? उसकी आकृति, उसकी आवाज सबकुछ बदल ही तो जाता है। इस पक्ष मे गुलेरी जी की 'शब्दो की मितव्ययिता' कभी कभी साहित्य-पारखियो की अक्लमदी का भी जायजा ले

लेती है जब वे मर्मज्ञ इस कहानी मे कतिपय विसगतियों को रेखाकित करने की चेष्टा करते हैं।

यहा साहित्य मर्मज्ञो के प्रति पूरे सम्मान की भावना रखते हुए, मुझे एक नम्र निवेदन करना है। मुझे लगता है, 'उसने कहा था' कहानी को उसके पूरे सदर्भों मे अभी तक समझा नही जा सका। यद्यपि कारण यह रहा हो कि कथाकार का मुख्य प्रयोजन लहनासिंह के प्रेम, तथा उत्सर्ग मे परिणत उसके उदात्त रूप को दर्शाना था। तभी तो कथाकार ने मृत्युशय्या पर पडे लहनासिंह की ताजी हो आई स्मृतियो मे बीती घटनाओ का एक सिलसिला बाधा है। यहा कथाकार विवश अथवा निरीह जैसा दिखाई देता है। पर वस्तुत ऐसी बात है नहीं।

एक प्रबुद्ध पाठक कहानी के उलझे सूत्रो को सुलझा सकता है। कहानी के आरभ मे, दोनो के परिचय मे लडकी और लडका एक दूसरे के बारे मे अच्छी तरह जान लेते हैं कि लडकी मगरे की है और लडका माँझे का। पाठक को यह कल्पना करने पर विवश होना पडता है कि भले ही लडकी किसी की धर्मपत्नी बन गई, पर उसके भीतर की प्रेमिका कभी नहीं मरी और उसे समय-समय पर अपने प्रेमिक के बारे मे कोई न कोई सूत्र, कही न कही से, मिलता रहा। कोई बडी बात नही कि सूबेदार हजारासिंह या बोधासिंह भी लहनासिंह का जिक्र करते हुए उसे बताते रहे हो और इस मूक तपस्विनी के हृदय मे प्रेम का पौधा निरतर खुराक पाता रहा हो। यदि सचमुच ऐसा हुआ हो तो उसकी अधिकार की सीमा बहुत बढ जाती है, और तभी सूबेदारनी ने लहनासिंह से जो कहा था उसका औचित्य समझ मे आता है। उसका प्रेम यद्यपि शारीरिक नही पर अशरीरी रूप से वह उसी की रही। यही अपार्थिव प्रेम लहनासिंह को दिव्य उत्सर्ग की ओर बढने को प्रेरित करता है। उसने मन मे कहा होगा—ओ मेरे दिव्य प्रेमी! तुम्हारी वीरता और त्याग से मैं अपने बालापन से ही प्रभावित हू। तुम मुझे इस जन्म मे नही पा सकते लेकिन तुम मेरे भर्ता और पुत्र की रक्षा करना, जो इस जीवन मे मेरे सर्वस्व हैं।

वैसे, आप लहनासिंह का इकतरफा प्रेम समझकर उसकी उत्सर्ग मे परिणति देखते हैं तो भी आप इतने अभिभूत हो जाते हैं। एक क्षण के लिए आप कल्पना कीजिए कि उस लडकी (बाद की सूबेदारनी) का भी उस लडके (बाद के लहनासिंह) के प्रति उतना ही उत्कट लगाव था फिर उस नारी ने जो कुछ कहा और उसपर लहनासिंह ने, अपने अछूते प्रेम के प्रतिदान मे, इस तरह श्रद्धा-सुमन चढाए—तब आप कैसा महसूस करेंगे?

कहानी मे बहुत-कुछ 'अनकहा' है। कहानी का वातावरण ही ऐसा चुना गया है कि उसके प्रेम मे इन शब्दों को सजाने की गुजाइश ही नहीं रहती। वैसे, जब

लहनासिंह को पता चला होगा कि सूबेदारनी ने उसे पहली ही नजर मे पहचान लिया तो उसके सामने पच्चीस बरस के लम्बे अतराल का धुधलका एकदम फट नही गया होगा ? और उसने यह नही पाया होगा कि यदि मैंने आज तक विवाह नही किया, और इतने अरसे तक अपनी बाल-प्रेमिका की मूरत अदर ही अदर सँवारता रहा तो यह कोई इकतरफा क्रिया नही थी ? सचमुच उस लडकी ने अपने बालापन से मेरी छवि अपने अदर उतार ली थी तभी तो अब तक वह मुझे बिसार नही पाई। तब पाने से पहले बिछुडी प्रेमिका के और अधिक निकट जाने का उसे एक ही साधन दिखाई दिया होगा, और वह यह कि अपने प्राणो की बलि देकर वह अपने 'सच्चे' होने का सबूत दे। इसीलिए उसने हजारासिंह से विदा लेते हुए कहा था— "सूबेदारनी होरा से कह देना कि जो कुछ उसने कहा था, मैंने कर दिया है।"

इन शब्दो का ठीक ठीक आशय और कोई समझा हो या नही, सूबेदारनी ने इस चिर विदाई को पूरी आत्मीयता के साथ महसूस किया होगा, और इसी से इस कहानी पर उभयपक्षीय अनन्य प्रेम, किंवा सर्वांगपूर्णता की मुहर लग जाती है।

आज ये अतिम पक्तिया लिखते-लिखते सहसा मुझे स्वर्गीय श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी का स्मरण हो आया है। यदि वह होते तो आज मैं उन्हे सूचित करता कि 'उसने कहा था' कहानी मे नायक के साथ-साथ नायिका भी, अपनी गुरु गरिमा के साथ, विराजमान है, यह बात दूसरी है कि वह अधिकतर पाठको के लिए 'अवगुठनवती' बनी रही।



भाषाविद्

- मौलिक विचारों का खजाना : पुरानी हिंदी
- प्रातिभ भाषाविद् : गुलेरी जी
- हिमाचली पहाड़ी और गुलेरी जी

नही वच रहा है। वह मानो गगा की नहर है, नरोने' के बाध से उसमे सारा जल खैच लिया गया है, उसके किनारे सम हैं, किनारो पर हरियाली और वृक्ष है, प्रवाह नियमित है। किन टेढे-मेढे किनारो वाली, छोटी-बडी, पथरीली, रेतीली नदियो का पानी मोडकर यह अच्छोद नहर बनाई गई और उस समय के सनातन भाषा प्रेमियो ने पुरानी नदियो का प्रवाह 'अविच्छिन्न' रखने के लिए कैसा कुछ आदोलन मचाया या नही मचाया, यह हम जान नही सकते। सदा इस सस्कृत नहर को देखते-देखते हम असस्कृत या स्वाभाविक, प्राकृतिक नदियो को भूल गए। और फिर जब नहर का पानी आगे स्वच्छद होकर समतल, और सूत से नपे हुए किनारो को छोडकर, जल स्वभाव से कही टेढा, कही गदला, कही निखरा, कही पथरीली, कही रेतीली भूमि पर और कही पुराने सूखे मार्गों पर प्राकृतिक *रीति से बहने लगा तब हम यह कहने लगे कि नहर से नदी बनी है, नहर प्रकृति* है और नदी विकृति—(हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण का आरभ ही यो किया है कि सस्कृत प्रकृति है, उससे आया इसलिए प्राकृत कहलाया) यह नही कि नदी अब सुधारको के पजे से छूटकर फिर सनातन मार्ग पर आई है।

"इस रूपक को बहुत बढा सकते है। सभव है कि हमे इसका फिर भी काम पडे। वेद या छन्दस् की भाषा का जितना सात्म्य पुरानी प्राकृत से है उतना सस्कृत से नही। सस्कृत मे छाना हुआ पानी ही लिया गया है। प्राकृतिक प्रवाह का मार्ग-क्रम यह है—

१ मूल भाषा, २ छदस् की भाषा→|३ प्राकृत→५.अपभ्रश
|४ सस्कृत

"सस्कृत अजर अमर तो हो गई किंतु उसका वश नही चला, वह कलमी पेड था। हा, उसकी सपत्ति स प्राकृत और अपभ्रश और पीछे हिंदी आदि भाषाए पुष्ट *होती गईं और उसने भी समय समय पर उनकी भेंट स्वीकार की।*"[२]

एक अन्य बात की ओर उन्होंने ध्यान दिलाया कि "सस्कृत नाटको की प्राकृत को शुद्ध प्राकृत का नमूना नही मानना चाहिए। वह पडिताऊ या नक्ली या गढी हुई प्राकृत है, जो सस्कृत मे मसविदा बनाकर प्राकृत-व्याकरण नियमा से गढी गई है। वह सस्कृत मुहाविरो का नियमानुसार किया हुआ रूपातर है, प्राकृत भाषा नहीं।"[३]

सुप्रसिद्ध वैय्याकरण आचार्य किशोरीदास वाजपेयी जी की चिंतन-प्रक्रिया गुलेरी जी के कथन से मेल खाती है। आचार्य वाजपेयी का कथन है—"उस समय के लोगो को, साहित्यिको को, वह (प्राकृत) मीठी लगती होगी, हम लोगों

१ वस्तुत यह राजघाट-नरोरा है, जहा पर गगा से नहर निकाली गई है और आजकल अणु बिजलीघर स्थापित किया जा रहा है।

२ पुरानी हिंदी, पृ० १, २ स० २०३२ वि०

३ वही, पृ० ३

को तो बडी अटपटी तथा श्रवणकटु लगतो हैं ।' निश्चय ही तीसरी प्राकृत (अपभ्रश) मे वह कृत्रिमता बहुत कुछ बनी रही। ऐसा जान पडता है कि दूसरी अवस्था की प्राकृतो मे साहित्यिक लोग कृत्रिम प्रयोग करते रहे, परतु जनता उसे अपने सहज-सुलभ रूप मे ही बोलती रही। वही सहज रूप तीसरी अवस्था की जनभाषाओ मे आया और वही अधिक विकसित होकर आज हमारी भाषाओ के रूप मे उपलब्ध है। तृतीय प्राकृत (अपभ्रश) जहा हिंदी के रूप मे आती दिखाई देती है, वहा भी उपर्युक्त प्रवृत्ति आप साहित्य मे देख सकते हैं।"[1]

आचार्य गुलेरी ने आगे अपभ्रश पर विचार करते हुए, वही प्रारभिक रूपक आगे बढाते हुए कहा—"बाध से बचे हुए पानी की धाराए मिलकर अब नदी का रूप धारण कर रही थी। उनमे देशी[2] धाराए भी आकर मिलती गई। देशी और कुछ नही, बाध से बचा हुआ पानी है या वह जो नदी-मार्ग पर चला आया, बाधा न गया। उसे भी कभी-कभी छीनकर नहर मे लिया जाता था। बाध का जल भी रिसता रिसता इधर मिलता आ रहा था। पानी बढने से नदी की गति वेग से निम्नाभिमुखी हुई, उसका अपभ्रश (नीचे को बिखरना) होने लगा। अब सूत से नपे किनारे और नियत गहराई नही रही।'[3]

प्रायः यह समझा जाता है कि उन्होने अपभ्रश को ही 'पुरानी हिंदी' की सज्ञा दी। ऐसा नही है, वस्तुत उन्होने अपभ्रश के दो रूप स्वीकार किए—पुरानी अपभ्रश (प्रारभिक अपभ्रश), पिछली अपभ्रश (उत्तरकालीन अपभ्रश)।

उन्होने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया—'पुरानी अपभ्रश सस्कृत और प्राकृत से मिलती है और पिछली पुरानी हिंदी से।'

इस प्रकार उनका मतव्य था कि आगे और साहित्य की व्यापक खोज होने पर निश्चित रूप से यह पता लगाया जा सकेगा कि कहा तक के साहित्य को अपभ्रश माना जाए और कहा से प्राप्त साहित्य को अपभ्रश न कहकर 'पुरानी हिंदी' कहा जाए जहा से हिंदी का उद्गम हुआ है। इस सबध मे उन्होने लिखा—

१ हिंदी शब्दानुशासन पूर्वपीठिका किशोरीदास वाजपेयी, पृ० १०-१२, स० २०२३ वि०

२ (अ) विद्यापति ने 'देसिल बअना' का प्रयोग किया है

देसिल बअना सब जन मिट्ठा।
त तैसन जम्पओ अवहट्ठा।

(आ) हेमचन्द्र ने 'देसीनाम माला' शीर्षक से देशी शब्दो को इकट्ठा किया।

(इ) इससे पूर्व पादलिप्ताचार्य 'दशीशब्द सग्रह' कर चुके थे।

(ई) स्वयभू ने भी प्रयोग किया है देसी भासा उभय तडुज्जल कवि दुक्कस्यण सद्द सिलालय। पउम चरिउ प्रयम सधि २।३,४

३ पुरानी हिंदी, पृ० ६

"अभी अपभ्रंश के साहित्य के अधिक उदाहरण नहीं मिले है। न उस भाषा के व्याकरण आदि की ओर पूरा ध्यान दिया गया है। अपभ्रंश कहा समाप्त होती है और पुरानी हिंदी कहा आरभ होती है। उसका निर्णय करना कठिन, किंतु रोचक और बडे महत्त्व का है। इन दो भाषाओ के समय और देश के विषय मे कोई स्पष्ट रेखा नही खीची जा सकती।"

उनका स्पष्ट मत था कि पुरानी हिंदी 'अपभ्रंश' से भिन्न है। 'पुरानी हिंदी' से उनका तात्पर्य था—'खडी बोली हिंदी, मानक-परिनिष्ठित हिंदी के पूर्वरूपों से' जिसको प्रकारातर से उन्होंने स्पष्ट किया—"आजकल लोग पृथ्वीराज रासो की भाषा को हिंदी का प्राचीनतम रूप मानते हैं, उसका विचार हम अपभ्रंश के अवतरणो के विचार के पीछे करेंगे किंतु इतना कह देते हैं कि यदि इन कविताओं को पुरानी हिंदी नही कहा जाये तो रासो की भाषा को 'राजस्थानी या मेवाडी-गुजराती-मारवाडी-चारणी-भाटी' कहना चाहिए, हिंदी नहीं। ब्रजभाषा भी हिंदी नही और तुलसीदास की मधुर उक्तिया भी हिंदी नहीं।"

उक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि राजस्थानी, मारवाडी, ब्रजभाषा, अवधी आदि हिंदी की उपभाषाए मानी जा सकती हैं, पर हिंदी नही। यह बहुत ही मौलिक दृष्टि थी। इसी आधार पर जनपदीय आदोलन प्रारभ हुए। आगे चलकर 'पुरानी हिंदी' का प्रयोग अपभ्रंश के सदर्भ मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' मे किया—"हिंदी काव्य भाषा के पुराने रूप का पता हमें विक्रम की सातवी शताब्दी के अतिम चरण मे लगता है। · देशभाषा मिश्रित अपभ्रंश अर्थात् पुरानी हिंदी की काव्यभाषा है।"[1]

इस युग के विपुल साहित्य की खोज महापडित राहुल साङ्कृत्यायन ने की और 'हिंदी काव्यधारा' शीर्षक सकलन भी प्रस्तुत किया। इस बीच जैन साहित्य विपुल मात्रा मे सामने आया। अनेक कार्य अपभ्रंश भाषा और साहित्य पर किए गए जिनमे उल्लेखनीय हैं—अपभ्रंश साहित्य (डॉ० हरवश कोछड), अपभ्रंश भाषा का अध्ययन (डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव), प्राकृत-अपभ्रंश का साहित्य और उसका हिंदी-साहित्य पर प्रभाव (डॉ० रामसिह तोमर), सिद्धो की अपभ्रंश कृतियो का अध्ययन (रणजीतकुमार साहा), अपभ्रंश भाषा और भविष्यकहा कथा काव्य (देवेन्द्रकुमार जैन), अपभ्रंश का हिंदी साहित्य पर प्रभाव (डॉ० नामवर सिह) आदि। इनके अतिरिक्त अपभ्रंश के विविध पक्षो पर बीस शोधकार्य हो चुके हैं लेकिन प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने जिस ओर सकेत करके उसको 'पुरानी हिंदी' नाम से अभिहित किया था उस दिशा मे कोई व्यवस्थित काम अभी भी

१ हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० १०, २२, स० २०१८ वि०

आगे नही बढ सका। उन्हे तो मात्र हेमचन्द्र के शब्दानुशासन[1] से उदाहरण देकर सतुष्ट होना पडा।

मेरी दृष्टि मे इस दिशा मे दो महत्त्वपूर्ण कृतियो का उद्घाटन हुआ है जिनको 'पुरानी हिंदी' मे सम्मिलित किया जा सकता है—'(१) प्राकृत पैंगलम् और (२) राउलवेल।

'प्राकृत पैंगलम्' मे पुरानी हिंदी के उदाहरण भरपूर हैं। डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव ने स्वीकार किया है कि 'इस पुरानी हिंदी के अध्ययन मे प्राकृत पैंगलम् का स्थान महत्त्वपूर्ण है।' लेखक[2] ने स्वय इस सबध मे विस्तृत अध्ययन बहुत पहले किया था। इसके नवीन सस्करण के सपादक प्रो० भोलाशकर व्यास ने इससे सबधित विषय—पुरानी हिंदी भाषा और साहित्य के विकास मे 'प्राकृत पैंगलम्' का योग—पर डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की। 'प्राकृत पैंगलम्' छदशास्त्र का ग्रथ होते हुए भी भाषिक दृष्टि से अद्भुत तथा महत्त्वपूर्ण कृति है।

इस दृष्टि से दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति है—राउलवेल। यह शिलाकित काव्य है जिसको लेखक पुरानी हिंदी की कृति स्वीकार करता है। इसको सर्वप्रथम उद्घाटित डॉ० भायाणी ने किया। बाद मे डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इसकी भाषा पर अध्ययन प्रस्तुत किया। लेखक[3] ने स्वय इस शिलाकित काव्य पर विस्तार से लिखा। प्रस्तुत कृति की कुछ भाषिक विशेषताएं इस प्रकार है—

१. उकारबहुला प्रवृत्ति, जैसे—काजलु, लाछतु, मणु, रातउ, चांगउ, भालउ।
२. सज्ञाओं का भाववाचक रूप बनाने के लिए 'म्व'[4] प्रत्यय का प्रयोग : गम्वारिम्व, तरुणिम्व, तुलिम्व।
३. 'न' के स्थान पर 'ण' का प्रयोग मिलता है पर 'न' का पूर्णतया बहिष्कार

१. इस पर उल्लेखनीय कार्य हैं
   (अ) सिद्धहेम शब्दानुशासनगत अपभ्रश का समग्र अनुशीलन और उसका हिंदी पर प्रभाव, (सुकुमारी चतुर्वेदी)
   (आ) हेमचन्द्र के अपभ्रश सूत्रों की पृष्ठभूमि और उसका भाषावैज्ञानिक अध्ययन (परम मिश्र)
२. प्राकृत पैंगलम् की शब्दावली और वर्तमान हिंदी (कैलाशचन्द्र भाटिया) सम्मेलन पत्रिका, वर्ष ४७, अक ३
३. राउलवेल की भाषा (कैलाशचन्द्र भाटिया), भारतीय साहित्य : अक्तूबर, १९६१ राउलवेल मे प्रयुक्त क्रियाएँ (कैलाशचन्द्र भाटिया), नागरी प्रचारिणी पत्रिका, माल बीयशती विशेषांक। (अब पुस्तकाकार प्रकाशित 'राउलवेल,' तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड, नई दिल्ली-२)
४. हेमचन्द्र ने भी स्वीकार किया है कि मकार अनुनासिक 'वँ' मे परिवर्तित होता है। (८।४।३९७)

नही है विणु, जणु, माडणु, यण, मणु।

४ अनुनासिक तथा अनुस्वार के लिए 'बिंदु' का प्रयोग—काटी, तबोले, जेंवि, रोई।

५. कर्ता, कर्म के लिए शून्यविभक्तिक प्रयोग प्रारभ हो गए थे—
कर्ता—खल जणु सयलइ चाहहि
कर्म—नेउराणी कान सुहावइ

६ कारकीय परसर्गों का उदय हो गया था—
कर्म—को, कु
करण—सउ, सहुँ, सइ
सप्रदाय—तण
सबध—करि, करी, केर, केरा, करा
अधिकरण—ऊपरि, ऊपर, पर, माझ, मा, विच

डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री ने अपने ग्रथ 'अपभ्रश भाषा और साहित्य की शोध-प्रवृत्तिया' मे अपभ्रश के हस्तलिखित ग्रथ तथा उपलब्ध अपभ्रश-साहित्य की सूचियो के अतिरिक्त दो अन्य महत्त्वपूर्ण सूचिया दी है—

१. अपभ्रश के अज्ञात एव अप्रकाशित ग्रथो के अश (२१२ ग्रथो के अश है)

२ 'पुरानी हिंदी' की रचनाओ के कतिपय अश

इसमे १. हरिषेणचरिउ (कवि शकर), २ सदयवत्सवीर प्रबध (भीम), ३ सदैवच्छ सावलिगा चउपई (मुनि केशव), ४ वसन्तविलास, ५ प्रद्युम्नचरित (सधास), ६ राउलवेल (रोडा), ७ पृथ्वीराजरासो (चन्द), ८. माधवानल-कामकन्दला (गणपति), ९ ढोलामारू रा दोहा (···), १०. कुतुबशतक (···), ११ श्री शान्तिनाथदेवरास (उपाध्याय लक्ष्मीतिलक)।

जो दृष्टि प० चन्द्रधर जी ने दी उस दिशा मे कुछ कार्य अभी बढा तो है, पर अभी बहुत कुछ शेष है।

कौन-कौनसा साहित्य इसमे सम्मिलित किया जाए, यह तो समस्या है ही, साथ ही यह भी विचारणीय है कि 'भाषिक दृष्टि' से इस भाषा को क्या कहा जाए। स्वयभू ने 'देसी भासा' के अतिरिक्त 'सामण्ण भास' (सामान्य भाषा) का प्रयोग किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसको ही 'देश्यमिश्रित' कहा। 'कीर्तिलता' की अवहट्ठ के सदर्भ मे सुप्रसिद्ध भाषाविद् डॉ० बाबूराम सक्सेना ने 'मैथिल अपभ्रश' की सज्ञा दी। 'सदेशरासक' की भाषा का अध्ययन करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसको 'अग्रसरीभूत अपभ्रश' कहा तो उनके शिष्य डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने 'कीर्तिलता' के सदर्भ मे 'परवर्ती सक्रान्तिकालीन अपभ्रश' की सज्ञा दी। इन सब नामो मे सर्वथा सार्थक नाम 'पुरानी हिंदी' ही प्रतीत होता है।



शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय मे हुई। उनका कार्यक्षेत्र रहा—जयपुर, अजमेर और वाराणसी।

प्रतिभाशाली पुरुष जिस क्षेत्र मे रहता है उसकी भाषा हृदयगम कर लेता है, उस पर भी यदि कही वह व्याकरणिक और भाषा-वैज्ञानिक अभिनिवेश से सपन्न हो, तब तो फिर कहना ही क्या! गुलेरी जी के आधुनिक भाषा-ज्ञान का कारण था उनका विस्तृत क्षेत्र से सबध तथा उक्त अभिनिवेश। इन भारतीय भाषाओ के अतिरिक्त उनका अगरेजी पर भी अच्छा अधिकार था। लेफ्टिनेंट गैरेट के साथ उन्होने *'द जयपुर ऑबजर्वेटरी एड इटस् बिल्डर'* नामक अगरेजी पुस्तक की रचना की थी। वह लैटिन, जर्मन और फ्रासीसी भाषाए भी जानते थे। साहित्य और भाषा के अतिरिक्त पुरातत्त्व, इतिहास, दर्शन, ज्योतिष, सगीत और कला आदि विषयो मे भी उनकी अबाध गति थी। इनमे इतिहास और पुरातत्त्व उन्हे भाषा-विज्ञान मे बहुत सहायक हुए।

गुलेरी जी की समग्र देन का मूल्याकन इस छोटे-से निबध मे असभव है, इसके अतिरिक्त अपनी भी सीमा है, अत यहा उनकी साहित्यिक तथा अन्य विशेषताओं का विचार न कर के केवल भाषा-वैज्ञानिक प्रतिभा का ही विहगावलोकन किया जाएगा।

गुलेरी जी ने अपभ्रश-साहित्य का जो सकलन प्रस्तुत किया है, उसका नाम रखा है—'पुरानी हिंदी'। यह नामकरण ही उनकी भाषा-वैज्ञानिक सूझ का परिचायक है। परवर्ती अवहट्ठ का ढाचा सभी क्षेत्रो मे प्राय. सामान्य था, पर उसमे क्षेत्रीय प्रयोग झलक मारने लगे थे। ऐसी स्थिति मे उसे वर्तमान आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ का प्रारभिक रूप कहा जा सकता है क्योकि उसमे उसके बीज निहित हैं, पर उसका एक सार्वभौम नाम होना चाहिए और गुलेरी जी ने वह नाम दिया है—'पुरानी हिंदी'। इस नाम की उपयुक्तता के विषय मे आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा है—

" 'पुरानी हिंदी' नाम बहुत सोच-विचार कर प्रयुक्त किया गया है, पुरानी बगला, पुरानी गुजराती, पुरानी राजस्थानी, पुरानी मराठी आदि प्रयोगो का भ्रम मिटाने के लिए। जैसे ब्रजभाषा के सर्वसामान्य भाषापद पर आरूढ होने पर उसका प्रयोग प्रत्येक प्रात के निवासी करने लगे और अपने प्रात के प्रयोग जाने-अनजाने उसमे रख चले पर रीढ ब्रजभाषा ही रही, वैसी ही स्थिति अपभ्रश की भी थी। जिस प्रकार नानक जी की भाषा पजाबीपन लिए हुए है, श्री भारतीचद्र की बगलापन, समर्थ गुरु रामदास की मराठीपन, मीरा की गुजराती-राजस्थानीपन, पर है वह ब्रजभाषा ही, उसी प्रकार जिसे 'पुरानी हिंदी' कहा गया है वह हिंदी ही है, पर उस सोपान तक पहुचकर प्रातीय रूप कुछ-कुछ और

कहीं-कहीं परिस्फुट होने लगे थे।"[1] इसी भाषा का परवर्ती रूप 'नागरी' है। अपने हिंदी साहित्य का अतीत[2] में आचार्यचरण लिखते हैं—

"जो भाषा जनता में अपभ्रंश के अनंतर सिर उठाने लगी उसका नाम नागरी पड गया। व्यापक देशभाषा का नाम देशी लोगों का दिया हुआ 'नागरी' ही है। इसी भाषा को विदेशी लोग 'हिंदवी' कहते थे।" वह आगे लिखते हैं—"अपभ्रंश के अनंतर जनता की भाषा जो बहुत व्यापक क्षेत्र में चलती थी नागरी या हिंदी कहलाती थी। पर धीरे-धीरे एक-एक प्रदेश की भाषा विकसित होकर एक-दूसरे से पृथक् होने लगी और सौ दो सौ वर्ष के भीतर ही बंगाली, पंजाबी, गुजराती, राजस्थानी आदि के पृथक् रूप दिखाई पड़ने लगे।"[3]

आज ऐसा युग आ गया है कि हममें से अधिकांश अपनी विद्यमान भाषा का भी व्याकरण नहीं जानते। विश्वविद्यालयों के शिक्षक प्रायः शिकायत करते हैं कि आज के बहुत कम ही शोध-छात्र शुद्ध भाषा लिख पाते हैं। प्राध्यापक भी तो उन्हीं में से नियुक्त हो रहे हैं, फिर भाषा की दशा कैसी होगी? गुलेरी जी केवल वर्णनात्मक (Descriptive) भाषाविज्ञान के ही विद्वान नहीं थे, वह ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषाविज्ञान में भी पारंगत थे। उनके संस्कृत-व्याकरण के ज्ञान का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि जब वह शालीय कक्षाओं में थे तभी उन्होंने महाभाष्य का अध्ययन कर लिया था। 'पुरानी हिंदी' में कुछ ऐसे सूत्र मिलते हैं, जिनको आधार बनाकर शोध किया जा सकता है। उनमें से कुछ विशिष्ट सूत्र अधोलिखित हैं—

(१) जो लिखित प्राकृत साहित्य के जमे हुए नियम हैं" सबका भंग, सबका विकल्प, खुदाई की प्राकृत में मिलता है। जब प्राकृतों के मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री आदि देशनाम रक्खे गए तब उनमें कुछ तो उस देश की प्राकृत भाषा का सहारा लिया गया, कुछ विशेष लक्षण वहां की चलित बोली के लिये गए, किंतु ढचर संस्कृत का ही गढा गया।"'यह कहना कि सातवाहन (हाल) की सप्तशती और वाक्पति के गौडवहो की महाराष्ट्री महाराष्ट्र की देश भाषा थी, ठीक नहीं।'[4]

(२) जैसे पहले गंगाप्रवाह में से संस्कृत का नरौने का बांध बांधकर नपे-कटे किनारों की नहर बना ली गई थी वैसे फिर मागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री की नहरें छांट ली गईं, जिसके किनारे भी संस्कृत की प्रकृति की तरह काटे-तराशे गए, किंतु भाषा-प्रवाह—सच्ची गंगा—अपभ्रंश और पुरानी हिंदी

१. पुरानी हिंदी, वक्तव्य, (प्रारंभिक पंक्तियां), पृ० १
२. भाग १, तृतीय आवृत्ति, पृ० १२-१३
३. वही, पृ० १३
४. पुरानी हिंदी, पृ० ६२, सं २०३२ वि०

के रूप मे बहता गया। अपभ्रश कई नही थे। अपभ्रश एक देश की भाषा नही थी, कही कही नहरो का पडोस होने से उसे नहर के नाम से भले ही पुकारते हो, किंतु वह देश भर की भाषा थी जो नहरो के समानातर बहती चली जाती थी। वैदिक भाषा, सच्ची सस्कृत, सच्ची प्राकृत, अपभ्रश, पुरानी हिंदी, हिंदी देश की एक ही भाषा रही है पडितो की सस्कृत, वैयाकरणो या नाटको की प्राकृत, महाराष्ट्री या ऐसे ही नाम के अपभ्रश, पश्चिमी राजस्थानी या पुरानी गुजराती या बगला, गुजराती आदि सब इसकी Side shows हैं, नट की न्यारी न्यारी भूमिकाए हैं।[1]

(३) देशी शब्द और वाग्धारा सस्कृत के लिए अछूत न थी, सस्कृत मे इतना लोच था कि उन्हे अपना लिया करती।[2]

(४) वैदिक सस्कृत म भूतकाल की क्रिया के तिङन्त रूप ही आते हैं, स गत, तेन वृतम्, अह पृष्ठवान् आदि रूप अलभ्य नही तो अति दुर्लभ हैं।[3]

(५) दीजिए (दिज्जिय, दीजै दिज्जै) पहले कर्मवाच्य प्रयोग था, पीछे कर्तृवाच्य हो गया।[4] वस्तुत किज्जिय, दिज्जिय आदि रूप क्रियते, दीयते आदि सस्कृत रूपो से व्युत्पन्न हैं जो कर्मवाच्य हैं—

एउ गृण्हेप्पिणु ध्रु मईं, जउ प्रिउ उव्वारिज्जइ।
महु करिएव्वउँ कि पि णावि मरिएव्वउँ पर देज्जइ॥[5]

एक्कसि सील कलकिअहॅं देज्जहिं पच्छित्ताइँ।
जो पुणु खडइ अणुदिअहु तसु पच्छित्तॅ काइँ॥[6]

प्रथम दोहे मे कर्म 'मरिएव्वउँ एकवचन है, अत क्रिया भी एकवचन है पर द्वितीय दोहे मे कर्म पच्छित्ताइँ के अनुकूल 'देज्जहिं' भी बहुवचन है अत पुरानी हिंदी मे यह कमवाच्य है पर आधुनिक हिंदी मे कर्तृवाच्य तो नही, भाववाच्य है। कर्तृवाच्य मे क्रिया का लिंग, वचन और पुरुष कर्ता के अनुसार तथा कर्मवाच्य मे कम के अनुसार होता है। खडीबोली मे यह रूप ऐसा नही होता। कर्ता या कम किसी के लिंगवचनादि का ऐसे क्रिया रूपो पर कोई प्रभाव नही होता। देख लीजिए —

१ महाराज, इस पुस्तक दीजिए।

१ पुरानी हिंदी, पृ० ६२ ६३
२ वही पृ० २२
३ वही पृ० २४
४ वही पृ० २७
५ सिद्धहेमशब्दानुशासन ८।४।४३८
६ वही, पृ० ४।४२८

२. देवी जी, मुझे संतरा दीजिए।

३. आप लोग इन्हें पुस्तकें दीजिए।

४. आप लोग लड़की को संतरे दीजिए।

कर्ता और कर्म के लिंग-वचन में कोई परिवर्तन कर दीजिए, क्रिया एकरूप ही रहेगी। इसका तीसरा मार्ग है भाववाच्य, जो हिंदी में सदा एकरस रहता है।

(६) कन् का, जिसका अर्थ छोटा है, अकेले विशेषण की तरह उस समय संस्कृत में व्यवहृत होना छूट गया हो। 'कन्या' में वह मौजूद है। कन्या का पुत्र 'कानीन' बनाने के लिए पाणिनि ने कन्या की जगह 'कनीन' मानकर प्रत्यय लगाया है।[1] यह काम कन् से प्रत्यय लगाकर भी हो सकता था, यदि कन् की सत्ता पाणिनि मानता। नेपाली कान्-छा (छोटा), हिंदी कन्+अँगुरिया, नारंगी की 'कन्नी' फाक आदि में वह कन् चलता आया है।[2]

(७) पाणिनि ने 'ब्रू' के कुछ रूपों की जगह 'आह' होना, 'हन्' का 'वध' हो जाना कहा है। उसका यही ऐतिहासिक अर्थ है कि 'आह', 'अस्' और 'वध्' धातुओं के पहले पूरे रूप होते होंगे, उस समय ये धातु अधूरे रह गए थे, पाणिनि ने उन्हें उसी अर्थ के और धातुओं के रूपों में मिला दिया।[3]

गुलेरी जी ने भाषा-प्रवाह में अनेक शब्दों और व्याकरणिक रूपों के ऐतिहासिक विकास की परंपरा दे दी है। इस विषय में उनकी सूझ नवीन और आकर्षक है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

(१) हेमचंद्र ने लिखा है—'प्रकृतिः संस्कृत, तत्र भव, तत् आगत वा प्राकृतम्'।[4] यह भव या आगत कहना ठीक नहीं।[5]

(२) संस्कृत वैयाकरणों ने त्वा (गत्वा, कृत्वा) को पूर्वकालिक की प्रकृति और य (संस्कृत्य, संगत्य) को धातु के पहले उपसर्ग आने पर विकृति माना है, किंतु पुरानी संस्कृत में यह भेद नहीं है। अकृत्वा और गृह्य दोनों मिलते हैं। वेद में 'कृत्वाय' मिलता है। और पाली में 'छित्वान' और 'कातून'। अतएव पांच तरह के रूप हुए—कृत्वा, कृत्वाय, कृत्वान, कर्तून, कर्य (कृत्य)। सूक्ष्म विचार से ये अव्यय नहीं, किंतु 'तु' अंत वाले धातुज शब्द के तृतीया और चतुर्थी के रूपों के से जान पड़ते है, कृत्वा = कृतु से, करने से = कर कर, इत्यादि प्राकृत में 'त्वा' बिलकुल नहीं है, 'य' है या पाली वाला 'त्वान'। 'तून' जो 'तूण

१. ४।१।१६ 'कन्यायाः कनीन च'

२. पुरानी हिंदी, पृ० ११७

३. वही, पृ० ११७-११८

४. सिद्धहेम०, ८।१।१

५. पुरानी हिंदी, पृ० ६३

या 'ऊण' होता हुआ मराठी घेऊन, म्हणून तक पहुँच गया है और मारवाडी मे करीनै, लखीनै मे रहा है। पुरानी हिंदी अर्थात् अपभ्रश मे 'पोक्खिवि' 'बोल्लिवि' आदि आते है। वहा भी य = इय = इ है। हिंदी मे 'य' 'इ' के रूप मे आया है (आइ, सुनि = आय्य, सुन्य —स० आयाय्य श्रुण्य (!) अब 'इ' भी उड गया है और कर धातु के पूर्वकालिक का अनुप्रयोग होता है जैसे खाकर = (पु० हि०) खाइ करि = (पजाबी) खाई करी = स० खाद्य कर्य (!)[1]

(३) हेमचद्र ने एक धातु को प्रधान मान लिया है और अन्य समानार्थी धातुओं को उसका आदेश/वज्जरइ, पज्जरइ, उप्पालइ, पिसुणाइ, सघइ, बोल्लइ, चवइ, जपइ, सीसइ, साहइ को विकल्प से 'कहइ' का आदेश कह दिया है।[2] वज्जरइ उच्चरति से, पज्जरइ प्रोच्चरति से, फिसुणइ पिशुनयति से, सघइ सख्याति से, जपइ जल्पयति से निकल सकता है।[3]

(४) सबध के अर्थ मे केरअ (प्राकृत—केरक, हि० केरा) प्रत्यय आता है, हेमचद्र ने उसे अपभ्रश मे आदेश गिना है[4], प्राकृत मे नही, किंतु वह मृच्छकटिक[5] और शाकुतल[6] की प्राकृत मे कई जगह मिलता है।[7] केर = केरा। यह 'का, की, के' का बाप कहा जाता है, किंतु यह स्वय ही विभक्ति नही है और न सट सकता है। फिर इसके बेटे-पोते कैसे सटाए जा सकते हैं?[8] ध्यातव्य है कि 'रामचरित-मानस के काशिराज-सस्करण मे इसे सर्वनाम से भी अलग रखा गया है।[9]

(५) 'न' वेद मे उपमावाचक है। यह (सस्कृत वैयाकरणो के) बाध मे नही बँध सका। प्रवाह मे चला आया—

'गोरी वयणविणिज्जिअउ न सेवइ वणवासु'[10]

(६) *भविष्यत्काल तथा सभावनापरक रूपो के प्रत्यय—प्राकृत मे सु—* मतेसु, पुरानी हिंदी मे सों—हानिसों, राजस्थानी मे स्यूं—करस्यूं, गुजराती मे श—करोश।[11]

१ पुरानी हिंदी, पृ० ३२-३३
२ वही, पृ० १२०
३ वही, पृ० १२०
४ सिद्धहेम०, ८।४।१२ सम्बन्धिन केर-तणौ'
५ 'ममकेरकेण भत्तपरि०वएण प्रथमाक, पृ० १६, पक्ति २ (द्रष्टव्य एम० आर० काले का सपादन, तृतीय सस्करण, १९७२ ई०)
६ 'ममकेरए उडए ', अक ७, श्लोक १६ के नीचे
७ पुरानी हिंदी, पृ० ११८
८ वही, पृ० १६५
९ *बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी*', २।११३।५
१०. पुरानी हिंदी, पृ० १५१ दोहा ६०
११. वही, पृ० १५१, १५६, दोहा ६८ तथा १०८

(७) विधि, प्रेरणार्थक और कर्मवाच्य मे जहा-जहा सस्कृत मे 'य' आता है, वहां 'ज' या 'ज्ज' आता है जैसे—मरीजै (मरा जाय), करीजै (किया जाय—महाराज कहँ तिलक करीजै[1])। कहज्ये (राज०)=तू कहना/लिखीज गयो (मार०)=लिखा गया।[2]

(८) मइँ=मैं, कर्मवाच्य मे कर्ताकारक। 'ने' लगने से (मैंने) दुहरा कारक चिह्न लगता है।[3] 'चक्कें खड मुणालियहे नउ जीवग्गलु दिण्णु' मे 'चक्कें' कर्मवाच्य का कर्ता (है), जैसे—मैं, तैं (मइँ, तइँ)। 'ने' वृथा है। पजाबी—राजें=राजा ने।[4] 'मइँ' वस्तुतः सस्कृत के तृतीया, ए० व० रूप 'मया' का विकास है। यह सस्कृत में कर्मवाच्य मे आता है—'मया कृतम्'। इसी प्रकार 'चक्कें'=चक्रेण/गुलेरी जी का यह कथन अक्षरशः यथार्थ है कि 'मैंने' मे दुहरी कारक विभक्ति है। यह ध्यातव्य है कि प० कामताप्रसाद गुरु ने 'लडके ने पुस्तक पढी' को कर्तृ-वाच्य लिखा है और उसपर 'कर्मणि प्रयोग' का तुर्रा लगा दिया है।[5] पडित किशोरीदास वाजपेयी ने उनका खडन करते हुए ऐसे वाक्यो को कर्मवाच्य माना है और हिंदी भाषा के वाच्य का बुद्धिसगत विवेचन किया है।[6]

(६) सस्कृत मे तुम्य, मह्य चतुर्थी हैं। चतुर्थी और षष्ठी का प्रयोग वैदिक भाषा मे बिना भेद के होता था। वैदिक भाषा मे तुम्य षष्ठी के अर्थ मे भी आया है—मम तुम्य च सवनन तदग्निरनुमन्यताम्'।[7]

जइ नसु आवइ दूइ घरु काइँ अहो मुहुँ तुज्झु।
वयणु जु खडइ तउ सहिए सो पिउ होइ न मज्झु॥

अन्यसभोगदु खिता की उक्ति—दूती, यदि वह घर नही आता (तो) तुम्हारा मुख क्यो नीचा है (दूती दतक्षत छिपाने के लिए मुख नीचा किए हुए है)? जो तुम्हारा वचन खडित करता है (तुम्हारी बात का तिरस्कार करके नही आता) अथवा वदन खडित करता (तुम्हारे अधर पर दतक्षत करता है) है, वह मेरा प्रिय नही है।

यहा 'तुज्झु' और 'मज्झु' रूप 'तुम्य' और 'मह्य' से व्युत्पन्न हैं, पर प्रसग

१. रामचरितमानस, काशिराज सस्करण, ७।१२।८
२ पुरानी हिंदी, पृ० २६ २७
३ वही, पृ० ३८
४. वही, पृ० १७१, दोहा १६८
५ हिंदी व्याकरण, षष्ठ सस्करण, पृ० २५६, २६६, अनुच्छेद, ३४६ (क) तथा ३६२ (
६ ब्रजभाषा का व्याकरण, द्वितीय सस्करण, भूमिका, पृ० ३७
७ पुरानी हिंदी, पृ० ४१

मे इनका अर्थ 'तेरा' और 'मेरा' होता है।

प० परशुराम लक्ष्मण वैद्य ने 'वयण' का अर्थ केवल 'वचन' किया है, इस कारण वे अन्यसभोगदु खिता वाला अर्थ नही लगा सके हैं।[१]

(१०) 'चूडउ चुन्नी होइसइ···' की टीका में वह कहते हैं—चुन्नी होइसइ[२] अभूततद्‌भाव का 'ई' पहचान लो। सस्कृत मे एक 'च्वि' प्रत्यय होता है जो अभूततद्‌भाव के अर्थ मे आता है। इसके एक नियम के अनुसार, पूर्वपद मे दीर्घ ई का योग होता है[३]—जो चूर्ण नही है, वह चूर्ण हो जाएगा, चूर्णीभविष्यति; जो शुक्ल नही है, उसे शुक्ल कर दिया गया, शुक्लीकृत आदि। गुलेरी जी ने इसी की परपरा दिखाई है।

(११) जयमगल सूरि 'चातुर्यता' लिखकर हिंदी के डबल भाववाचक का बीज बोते हैं—'पौरवनिताचातुर्यतानिर्जिता'।[४] अब भी कितने लोग 'माधुर्यता' का प्रयोग कर देते हैं तथा अनेक साहित्यकारो के 'व्यक्तित्व और कृतित्व' पर तो सभी विश्वविद्यालय शोध-प्रबंध लिखा रहे हैं।

(१२) 'चउमुहु छमुहु झाइवि एक्कहिँ लाइवि णावइ दइवे घडिअउ'[५] की टीका मे लिखते हैं—णावइ = मानो (स० ज्ञायते)। मिलाओ नाईं, नाउँ, मारवाडी न्यूं, उपमा मे नावइ, नावँ उत्प्रेक्षा मे और वैदिक उपमावाचक।

मिलाइए अवधि में भी—'मारेहु मोहि ब्याध की नाईं'[६] 'उमा दारु जोषित की नाईं'।[७]

(१३) 'बिवाहरि तणु रयणवण' मे 'तणु' का अर्थ 'तन्वी' (तन्व्या) किया गया है।[८] गुलेरी जी ने इस दोहे (६४, पृ० १५२) की टीका मे लिखा है—'बिंबाधर पर तन्वी के' यह अर्थ करने की कोई आवश्यकता नही, 'तण, तणु या तणो' सबधसूचक प्रत्यय हैं। गुलेरी जी ने ठीक लिखा है। 'रामचरितमानस' मे देख लीजिए—

'रघु हँकिउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं'।[९]

१. सिद्धहेम०, सपादक प० ल० वैद्य, अगरेजी व्याख्या, पृ० ६८४, (३६७।१)
२. पुरानी हिंदी, पृ० ४१
३ द्रष्टव्य—काले-कृत हायर सस्कृत ग्रामर का डॉ० कपिलदेव द्विवेदी कृत हिंदी अनुवाद, पृ० २१६
४. पुरानी हिंदी, पृ० २२
५ वही, पृ० १२७, दोहा ५
६. रामचरितमानस ४।६।५
७. वही, पृ० ४।११।७
८. सिद्धहेम०, अगरेजी व्याख्या, पृ० ६६५
९. रामचरितमानस, २।९९

'पिय तन चितइ भौंह करि बांकी'[1]

क्या इन स्थलो पर 'तन' का अर्थ 'शरीर' है ?

(१४) पुरानी हिंदी—अच्छइ, बगला—आछे, राजस्थानी—छै।[2]

ये तो व्याकरण और भाषाविज्ञान की सामान्य बातें हुईं। अब गुलरी जी के विविध भाषा ज्ञान पर विहगम दृष्टिपात करना उचित है, जो 'पुरानी हिंदी' मे स्थान स्थान पर झलक मारता है। यह ध्यातव्य है कि उक्त पुस्तक मे उन्होंने पुरानी पजाबी के बहुतसे उदाहरण दिए हैं। उनमे बहुतसे शब्द डोगरी या हिमाचली पहाडी के है। इसका कारण यह है कि उस समय हिमाचली पहाडी पजाबी की एक बोली ही समझी जाती थी। अच्छा, अब हिमाचली पहाडी स ही आरभ करें।

(क) हिमाचली पहाडी (कागडी)

(१) खिरना[3] (√क्षर्=बहना, रिसना नष्ट होना)=घिसना। तुलनीय—भोजपुरी—खिआना।

(२) धी[4]=कन्या, पुत्री। तुल०—भोज०—धिय, धीया –'पूत मोर मरल पतोह मोर के? धिय मोर मरल दमाद मोर के?'

(३) बिटिया[5]=कन्या, पुत्री। यह शब्द भी भोजपुरी मे है।

(४) ध्याडा, दिहाडा[6]=दिवस। ध्यातव्य है कि हिंदी के 'दिन दहाडे' मे 'दिहाडे' का विकार हुआ है। 'बलिहारी गुरु आपणौं द्योहाडी कै बार'[7] मे भी यही वेश बदले हैं।

(५) पतियाना[8]=हिमाचली अर्थ—मनाना, रिझाना, अवधी—विश्वास करना—'सुरमाया बस बैरिनिहिं सुहृद जानि पतियानि'।[9]

(६) आपमुहारा[10] (हिंदी—आप+अरबी—मुख्तार ?)=अपने मन का, स्वच्छद।

१ रामचरितमानस पृ० २।११६।६
२ पुरानी हिंदी, पृ० १४७, दोहा ७५
३ वही, पृ० ७
४ वही, पृ० १३
५ वही, पृ० १२७, दोहा ३
६ वही, पृ० २८
७ कबीर ग्रथावली, साखी, गुरुदेव का अग २
८ पुरानी हिन्दी, पृ० ३१
९ रामचरितमानस, २।१६
१० पुरानी हिन्दी, पृ० १६४, छद ११६

(७) रड्याना[1]=पुकारना। भोज०—ररना, अरराना, अललाना (भैंस आदि का चिल्लाना)।

(८) निहालना[2]=हिमाचली—प्रतीक्षा करना। भोज०—निहारना=लोभ से घूरना।

(९) न्हस[3]=भागना।

देखिए, भारतीय बोलियों मे कितना अधिक शब्द साम्य है।

पजाबी

(१) अम्हणिअउ—स० अस्मान, अस्मनीय। 'ण (स० नाम्) सबध विभक्ति का है। गीतो की पजाबी मे ण का ड हो गया है—मैंडा, तैंडा।[4]

(२) रडतु=हि० रटता, प०—रडचांदा।[5]

(३) अक्खियइ=कहना, प० आखना।[6]

(४) सभरहि=स्मरण करना, प० सुंभालना।[7]

(५) पजाबी मे कर्ता, एकवचन की विभक्ति ऐं—राजें=राजा ने।[8] उदा० राजें गद्दण ब्याही।[9]

(६) सचना (सचय करना) पुरानी हिंदी और पजाबी मे है। तुल०—[10] अवधी और भोज०—सनचना।

(७) चिक्खिल=कीचड, प० चिकली।[11] तुल०—भोज० चिहुला।

(८) खेड्ड=खेल। खेलना=प० खेडण। पजाबी गीत—साडे खेडण दे दिन चार।[12]

(९) नवखी=अनोखी, प० नौक्खी।[13]

१ पुरानी हिंदी पृ० १७६, दो० १७२
२ वही पृ० ४२, प्रबधचितामणि दोहा १६
३ वही पृ० १७० दोहा १५४
४. वही, पृ० २६
५ वही पृ० ७२ प्राचीन दोहा १४
६ वही पृ० ७७ प्राचीन दोहा २८
७ वही, पृ० ८७
८ वही पृ० १७५ दोहा १६८
९ वही पृ० १२६ दोहा ८
१० वही पृ० १६२ दोहा १२८
११ वही पृ० २६
१२ वही पृ० १६४ दोहा १३३
१३ वही पृ० १६१ दोहा १२३

कुछ सारणी रूप मे देखिए—

पंजाबी	अन्य भाषा	संदर्भ
एवे	पु० हिं० एम्व, हिं० यों, ऐसा	पृ० १४३, दो० ६०
एँवँ	पु० हिं० एम्वइ, हिं० योंही	पृ० १२८, दो० ७
इत्थु, इत्थँ	म० अत्र, हिं० यहा	पृ० १४६, दो० ७३
कित्थुं, जित्थुं, तित्थुं, इत्थुं	स० कुत्र, यत्र, तत्र, अत्र	पृ० १४३, दो० ६७
केवें, एवें, तेवें	अवधी—किमि, इमि, तिमि	
	हिं० क्यों, यों, त्यों	पृ० १५७, दो० १११
विच्च	हिं० बीच	पृ० १३५, दो० २६

मारवाडी

(१) निट्ठवन = बिताने वाला, समाप्त करने वाला। मार० नीठ जाना = बीतना।[१]

(२) माणियाँ = मडन किया, उपभोग किया। तुल०—मार० सेजाँ माणी-ज्यो, गोरी ने माणज्यो ढोला।[२]

(३) कप्पिज्जइ = कटता है। मार० कापना = कटना, कापी = शाक आदि का कटा टुकडा।[३]

(४) पहिउ = पथिक। मार० पही, पावणो पही = पाहुना और पथिक।[४]

(५) सस्कृत के अल्प, अज्ञात, कुत्सित तथा स्वार्थक प्रत्यय का समानार्थी प्रत्यय पुरानी हिंदी मे ड या डल है, मार० उदाहरण—मोर—मोरडो, नींद—नींदडली।[५]

(६) इकज्ज = एक ही। ज = ही। मार०—एकज झूंपो = एक ही झोपडा।[६]

(७) तेज्जि = वे ही। मार०—तेईज।[७]

(८) सउ = सब। मार०—सँग (हैड)।[८]

१ पुरानी हिंदी, पृ० ८७
२ वही, पृ० ३६
३ वही, पृ० १३६, दोहा ३६
४ वही, पृ० १५७, दोहा १०६
५ वही, पृ० २६
६ वही, पृ० ४१
७ वही, पृ० १५४, दोहा ६६
८ वही, पृ० ३१

(९) डिहियाँ=चतुरों। मार०—डाह्या।[1]

(१०) एक दोहा भी देख लीजिए—

जिण मारग केहरि बुवो रज लागी तिरणांह।
ते खड ऊभी सूखसी नहिं खासी हरिणांह॥[2]

राजस्थानी

राजस्थानी	हिंदी	संदर्भ
क्यूं आथ न साथ।	कुछ है ही नहीं।	पृ० ४५
पांच आगला सित्तर।	पाच ऊपर सत्तर, पचहत्तर	पृ० १३२, दोहा १८
पछेवडा।	पक्षपट, दुपट्टा, ओढनी।	पृ० ४६
बेरा।	कुआ।	पृ० १५०, दोहा ८५
धणणियाप।	धनीपन, स्वामित्व।	पृ० १७६, दोहा १७२
बाल्या।	दग्ध (एक गाली)।	पृ० १५८, दोहा ११५
पावीसुं, करीसुं, पइसीसुं।	पाऊगी, करूगी, पैठूगी, पाऊ, करू, पैठू।	पृ० १५१, दोहा ८६
आसी।	आएगा।	पृ० १५६, दोहा १०८
म्हे।	हम।	पृ० ७६ प्राचीन दोहा २८
आछे।	है।	पृ० १४७, दोहा ७४
सं, सौं।	सब।	पृ० ३१
अबार।	अब।	पृ० २६
पूठपीछे।	पीठ पीछे।	पृ० ४५
तिम।	उतना।	पृ० १४६, दोहा ८५

गुजराती

गुजराती	हिंदी	संदर्भ
होशे।	होगा, होगी।	पृ० २६
तेईज।	वही।	पृ० १५५, दोहा ६६
डाह्या।	दक्ष, चतुर।	पृ० ३१
सारु।	अच्छा।	पृ० १४०, दोहा ४७

१ पुरानी हिंदी, पृ० ३१
२ वही, १६५ दोहा १३६

मूका।	मुक्त, छूटा हुआ।	पृ० १४१, दोहा ५४
तेवड, तेवडी।	उतना, उतनी।	पृ० १४६, दोहा ८५
केम।	क्यों।	पृ० १५२, दोहा ६२

मराठी

(१) मराठी-आई = माता।[1]

(२) संभरै = स्मरण करते है। मराठी—सँभरना, साँभरना, सँभारना, सभालना।[2]

(३) घेप्पंति = ग्रहण किए जाते है। मरा०—घ्या (स० √ग्रह्)।[3]

(४) दोण्णि = दो। मरा०—दोन।[4]

जयपुरी

(१) कईं नाउँ = क्या नाम / जयपुरी—काईं नाँव।[5]

फुटकल

नेपाली मे 'करना' धातु का 'गरना' हो जाता है।[6]

थक्किय—थकना = रहना। बगला—√थाक।[7]

भज्जिउ जति = भागती जाती हैं। 'भागने को ग्रामीण भाजना।[8]

के = या। 'कै तापसतिय काननजोगू (तुलसीदास)'।[9]

धण = प्रिया। "मिलाओ मिरजापुरी कजलियो की 'धनिया'।"[10]

इस सर्वेक्षण के आधार पर यह नि सकोच कहा जा सकता है कि गुलेरी जी ने भारतीय आर्य-भाषाओं और बोलियो का गभीर अध्ययन किया था तथा वह ध्वनि और अर्थ की परपरा के मर्मज्ञ विद्वान् थे। सबसे बडी बात यह है कि उनमे विलक्षण सूझ थी, जो कम ही भाग्यशालियो को मिलती है।

एक यह भी निवेदन है कि कतिपय स्थानो पर मेरी गुलेरी जी से विमति है। महत्त्वहीन होने पर भी उसका उल्लेख कदाचित् अनुपयुक्त नही होगा।

१. पुरानी हिंदी, पृ० ३७। तुल० असमीया—आइ, आइदेओ, आइदेउता
२. वही, पृ० ८७
३. वही, पृ० १२६, दोहा १०
४. वही, पृ० १३१, दोहा १६
५. वही, पृ० १६६, दोहा १४८
६. वही, पृ० १५०, दोहा ८६
७. वही, पृ० ७२, प्राचीन, दोहा १७
८. वही, पृ० १४६, दोहा ८३, द्रष्टव्य . रामचरितमानम १।२०३ 'भाजि चले क्लिकत मुख, दधि ओदन लपटाइ'।
९. रामचरितमानस : २।६०।३
१०. पुरानी हिंदी, पृ० १४५, दोहा ७०

(१) गुलेरी जी न धी की व्युत्पत्ति दुहितृ स मानी है[१]। म इस स० धीदा[२] से मानता हू। इससे भोजपुरी का धीया (=पुत्री) भी सरलतापूवक वन जाता है।

(२) वक—वक्र (स०) युक्ताक्षर की न श्रुति[३]। मरा विचार है कि इसे स० वङ्क[४] स ही क्यो न माना जाए।

(३) झोली तुट्टी कि न मुउ—(आग म) जलकर या (फासी की रस्सी) टूटकर (मैं) क्यो न मरा? मूल म झोली पाठ रखा गया है पर टीका म झाली का अथ किया गया है—जलकर स० ज्वल राजस्थान म आग की लपट (ज्वाला) को झाल या झल कहते हैं। डा० नामवरसिंह ने झोली ही पाठ माना है। मरी समझ म झाली को झालो करन की कोइ आवश्यकता नही है। झोली का अथ कपड का पालना क्यो न लिया जाए? हिंदी शब्दसागर म झोली का एक अथ यह भी है—सफरी बिस्तर जो चारो कोना पर लगी हुई रस्सियो के द्वारा खभ पड आदि म बाधकर फैलाया जाता है। घर म यही झोली बनाकर बच्चो को सुला देते हैं। यहा इसी झोली से मतलब है। यदि इसकी रस्सी टूट जाए तो शिशु गिरकर मर सकता है।

(४) नेपाली मे करना धातु का रूप गरना नहीं गर्ना है।

गुलरी जी ने असडढलु का सस्कृत मूल असस्थुल लिखा है और उसपर प्रश्न चिह्न भी लगा दिया है।[८] यह शब्द मुझ भी किसी कोश म नही मिला।

निष्कष स्वरूप गुलेरी जी ने अपने अल्प जीवन म जितना ज्ञान प्राप्त किया उतना सामान्य मनुष्य के लिए कठिन है। डा० नगे द्र ने ठीक कहा है उ ता लीस वप की अल्पायु मे हो समस्त दिशाओ को उदभासित कर यह प्रकाश पुज भी तिरोहित हो गया और विद्वान लोग यह अनुमान ही लगाते रह गए कि यदि कुछ और समय मिलता तो शायद वह हिंदी जगत को समग्र आच्छादित कर लेता।

चिंता का विषय है कि इस देश म राजनीतिक पुरुषो के नाम पर तो सस्थाए

१ पुरानी हिंदी प० १३
२ आप्टे कृत सस्कृत इगलिश डिक० सन १९५८ खड २ प० ८६२
३ द्रष्टव्य पुरानी हिंदी प० ३२ मकड की टीका
४ द्रष्टव्य—आप्टे कृत उक्त कोश प० १८७६
५ हिंदी के विकास मे अपभ्रश का योग नवीन सस्करण १९५४ प० २५१
६ प्रथम सस्करण प० १२४२
७ पुरानी हिंदी प० १५० दोहा ८६
८ वही प० १६३ दोहा १३१।
९ काव्य चिंतन डॉ० नगेन्द्र प० ४६ ४७ १९५१ ई०

ही-सस्थाए भरी पडी हैं, पर विद्वानो के नाम पर कही इक्की-दुक्की भी दिख जाए, तो बडी बात है। काशी विश्वविद्यालय के रुइया छात्रावास मे एक छोटा-सा पुस्तकालय मात्र गुलेरी जी के नाम का स्मरण दिलाता है। मुझे किसी अन्य संस्था की जानकारी नही है। विद्वानो के प्रति कृतज्ञता दिखाने म भी इतनी कृपणता !

हिमाचली पहाड़ी और गुलेरी जी

□ डॉ० मनोहरलाल

गुलेरी जी भाषाविद् थे। उनका इतिहास, दर्शन, ज्योतिष, पुरातत्त्व, कला, भाषाविज्ञान तथा भाषाशास्त्र आदि के साथ-साथ सस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रश, ब्रज, अवधी, राजस्थानी, बगला, मराठी तथा अगरेजी आदि पर अच्छा अधिकार था। वह फ्रेंच, लेटिन और जर्मन भाषाओ के भी ज्ञाता थे। उनकी भाषा की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है—उसमे हिमाचली पहाडी (कागडी) की भीनी-भीनी गध। यद्यपि उनका जन्म जयपुर मे हुआ, शिक्षा-दीक्षा भी हिमाचल से बाहर ही हुई तथापि उन्होंने अपनी पैतृक भूमि—गुलेर (कागडा) तथा वहा की बोली को नही छोडा। उन्होंने इस जनपद की बोली को बडे मनोयोग से अपनी कहानियो तथा निबधो एव टिप्पणियो मे उभारा है। उन्होंने हिमाचली पहाडी के वाक्यो का हिंदीकरण करके तथा आचलिक शब्दो के प्रयोग से हिंदी के शब्द-भडार को खूब समृद्ध किया है। इस तथ्य की पुष्टि 'बुद्धू का काटा' के इस उद्धरण से हो जाती है—" · रब रोटी देता है।'''तीन वेले नमाज पढ लेता हू · अब तो इस मोती की कमाई खाता हू, कभी सवारी ले जाता हू कभी लादा, ढाई मण कणक पा लेता हू तो दो पौली बच जाती है। · एक रात को मैं खाना बना-खिला के अपनी मजडी पर सोया था कि मेरे मौला ने मुझे आवाज दी। · मैं तेरे नाल हू, मैं तेरा वेडा पार करूगा। · वहा मेरे पल्ले टका नही था।"[1] "'''तुझे रात दिन ऊतपन ही सूझता है। इन्हे गलमुड चला गया।'''नदी की तलेटी मे चट्टान थी, जो पानी के बहाव से क्रमश खिरती जाती थी। · वह एक हाथ से उसे खीचती हुई रघुनाथ को छर्रे के बहाव से निकाल लाई।"[3]

यहा वेले (समय), मोती (टट्टू का नाम), लादा (बोझ, गूण), मण (मन),

१ गुलेरी जी की अमर कहानिया शक्तिधर गुलेरी, पृ० ३३
२ वही, पृ० ४१
३ वही, पृ० ४८

कणक (गेहूं), पौली (चवन्नी) मजडी (छोटी चारपाई), मौला (स्वामी, ईश्वर), नाल (साथ), पल्ले (पास, कब्जे मे), टका (दो पैसे, आधा आना का सिक्का, रुपया-पैसा), गलसूड (श्वास नलिका मे कुछ अटक जाने पर श्वासावरोध से होने वाली परेशानी), खिरती (कटती, क्षरित होती) तथा छर्रें (छरडा, झरना) आदि शब्दो का प्रयोग उस पाठक को अपना अर्थ-सौरस्य प्रकट करने मे कठिनाई पैदा करेगा जो कागडा जनपद की भाषिक सरचना से अनभिज्ञ होगा। इसी तरह 'उसने कहा था' मे—"चौधरी के बड के नीचे मजा बिछाकर हुक्का पीता रहता था।······सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना।"

यहा 'मजा' का अर्थ बडी चारपाई है। पीछे आया 'मजडी' प्रयोग मजा का स्त्रीलिंग भी है और यह आकार-प्रकार मे खाट से कही छोटी (आधी) होती है। 'लाडी होराँ' की तर्ज पर 'सूबेदारनी होराँ'—(होराँ – आदरसूचक) प्रयोग किया गया है। 'लाडी' का प्रयोग मीरा ने भी किया है—'हमको लिखी-लिखी जोग पठावत, आप दूल्हा कुब्जा भई लाडी।"[1]

गुलेरी जी ने 'सुखमय जीवन' मे —सुपने (स्वप्न), घोखणा (दोहराना), 'बुद्धू का काटा' मे—चाह (चाय), बाछा (बादशाह), साईं (स्वामी, भक्त), पा (लादना), नाते (सबधी), सिंहो (सिक्खो, सरदारो), सूर (सूअर की गाली), सलो (लित्त, बास आदि—लकडी का रेशा चुभना), बट (ऐठन), पेच (बल), डेले (आखो के गोलक) तथा 'उसने कहा था' मे—चीथ (चुत्थणा, कुचलना), लाडी होरा (बहू, होरा-आदरसूचक), उदमी (उद्यमी), सालू (लाल रग की ओढ़नी, सुब्बर), कुडमाई (सगाई), पाधा (उपाध्याय, पुरोहित), घुमा (जमीन का एक नाप), सिगडी (मिट्टी की गोल-गोल अगीठी जिसे उठाकर सहज साथ-साथ ले जाया जा सकता है, कागडी), खोते (गधे), सौहरा (श्वसुर की गाली, सुसरा), तीमी (स्त्री), वेडा (मकानो के बीच खाली भाग, आगन), ओबरी (भीतरी कमरा, अत कक्ष), पट्ट (जाघ) तथा हाड (आषाढ) आदि।

इतना ही नही, उन्होने 'उसने कहा था' मे अपने पैतृक गाव गुलेर के पास बहने वाली 'वडेर' (बनेर) या 'बाणगगा' के लिए 'बुलेल की खड्ड' लिखा है। कागडा मे पुरुषो के 'ऊकार' नामो का एक नमूना 'डाक बाबू पोल्हू राम' लिखकर भी पहाडी भाषा का प्रयोग किया है।

गुलेरी जी ने अपनी पुस्तक 'पुरानी हिंदी' मे 'हिमाचली पहाडी' के शब्दो को 'पुरानी पजाबी' कहा है। कारण, उनके समय भाषा के 'डोगरी' या 'हिमाचली पहाडी' जैसे नाम ईजाद नही हुए थे। इस जनपद की बोली की गणना पजाबी

1. मीरां माधुरी : ब्रजरत्नदास छद १८४

ए, पविट्ठि—प्रविष्टी, स० प्रविष्टी, हिं० पैठी।[1]

पुरानी हिंदी मे एक शब्द है—पत्तिज्जई = पतीजते हैं, पतियाते हैं। (सहसा जनि पतियाहु—तुलसीदास)। गुलेरी जी ने 'पतियाने' का अर्थ मनाना या रिझाना हिमाचली पहाडी होने वाले प्रयोग के आधार पर ही लिखा है।[2] यही नही इसका प्रयोग इसी अर्थ मे—'कछुआ धरम' निबध मे भी किया है—"उपमन्यु को उसकी मा ने और अश्वथामा को उसके बाप ने जैसे जल मे आटा घोलकर दूध कहकर पतिया लिया था, वैसे पूतिक की सीखो से देवता पतियाए जाने लगे।"[3]

हमारे यहा कागडा मे फसल की कटाई के लिए 'बाढी' या 'बढाई' शब्दो का प्रयोग होता है। गुलेरी जी ने सस्कृत 'वृध्' के दो अर्थों—'बढना' और 'काटना' का उल्लेख करके पहाडी शब्द की इस अर्थवत्ता की ओर सकेत कर दिया है।[4]

अब जरा 'पत्तल' या 'पत्तलु' शब्द लीजिए। 'पत्तल' अर्थात्—कागज की तरह पतला तथा थाली के स्थान पर प्रयोग किया जाने वाला पत्तो से बना थाली के आकार का पात्र। हमारे यहा कागडा मे लघु करने की प्रवृत्ति से इसे 'पत्तलु' भी कहा जाता है। 'पुरानी हिंदी' म 'पत्तलु' का प्रयोग 'घने पत्तो वाला' के अर्थ मे हुआ भी है। गुलेरी जी ने 'पत्तलु' तथा 'इत्यु' को स्पष्ट करने के लिए पुन हेमचन्द्र की रचना उद्धृत की है—

> भमरा एत्यु वि लिम्बडइ केवि दियहडा विलम्बु।
> भण-पत्तलु छाया बहुलु, फुल्लहिं जाम कयम्बु ॥७३॥

—एत्यु—पजाबी इत्थु, इत्थे, स० अत्र, दियहडा—दिवस (धियाडा), पत्तलु—पत्ते वाला।[5]

कागडा मे अमलतास खूब होता है। इसे सस्कृत मे 'कर्णिकार' कहते हैं। कागडा मे इसके नाम हैं—कनिआर, अलि तथा बन्दरलाठी। नागरजीवन तथा सस्कृति से ताल्लुक रखने वाले इस 'कनिआर' को झट 'कनेर' समझ बैठते हैं, जो गलत है। इस सदर्भ मे गुलेरी जी की जानकारी स्तुत्य है—

> उअ कणिआरु पफुल्लिअउ कचणकन्तिपकासु।
> गोरीवयणविणिज्जिअउ न सेवई वणवासु ॥६०॥

१ पुरानी हिंदी, पृ० १२७
२. वही, पृ० ३१
३. प्रतिमा पृ० २८०, दिसम्बर, १९१९
४. पुरानी हिंदी, पृ० ४४
५. वही, पृ० १४६

ओ (=देव), कनियार, प्रफुला (है), काचन —काति—प्रकाश, गोरी—वदन—विनिर्जित, नाई (मानो), सेता है, वनवासा। वन मे विकसित होने के कारण उत्प्रेक्षा है। उअ—दय (प्राकृत), कणिआर—स० कणिकार (पजाबी पहाडी) कनयार, अमलताश, पीले फूलों से लद जाता है।[1]

और एक शब्द है—'आपमुहारा'। अर्थ है—अपने-अपने मत का। गुलेरी जी ने इसके स्पष्टीकरण मे लिखा है—

खसम पूजते देहरा, भूत पूजिनी जोय।
एक घर मे दो मता, कुसल कहा ते होय॥

साथ ही हेमचन्द्र की रचना उद्धृत करते है—

बहिणुए त घरु कहि किव नन्दउ।
जेत्थु कुडुम्बउ अप्पण-छदउ॥१३६॥

(बहन! वह घर कह, कैसे प्रसन्न हो जहा कुटुम्ब आपमुहारा हो।)[2]

एक और शब्द है—'रडाना'। 'रिडेरना' या 'रडत्त' भी इसीसे बने हैं। गुलेरी जी ने 'अब्भा लग्गा डुगरहि पहिउ रडन्तउ जाइ' मे 'रडन्तहु—रडतो, पजाबी रड्याना=पुकारना लिखकर इसे स्पष्ट किया है।[3]

हमारे यहा कभी कभी महिलाए 'वेढ्आ रोटी' बनाती हैं। गेहू के खमीर आटे के भटूरू तो प्राय बनते ही हैं। आटे म उडद या मूग की पिट्ठी मिलाकर या अलग-अलग भरकर भटूरू तले जाने को वेढुआ रोटी कहते हैं। हलवाई पूरी कचौडी भी ऐसे ही बनाते हैं। गुलेरी ने 'पुरानी हिंदी' के 'वेढई' शब्द का सहारा लेकर इसे भी स्पष्ट किया है। 'वेढई' का अर्थ है—घेरना। पजाबी मे वेढा (वेडा—'जब चलने लगे तब सूबेदार वेडे मे से निकलकर आया'—उसने कहा था) का अर्थ भी ऐसे ही स्पष्ट किया है घिरा हुआ मकान, जनाना।[4]

इसी तरह लीह, रेह—लीक, वाहना (सवारी करना, कराना) तथा नश्यत् से नामन्त होकर 'न्हस' (भागना) की व्युत्पत्ति बताई है। 'नश्यत्' का अर्थ है—नष्ट होना, अदर्शन होना, भागना, पजाबी न्हस्—भागना।[5]

गुलेरी जी ने 'देवकुल' निबंध मे वाँ (स० वाणी) देहरा, देहरी, नौण (स० निपान) (पाणिनि का निपान माहावा), तला (स० तडाग या तटाक, हिंदी—तालाब) तथा मूहरे (मोहरे), देहरा, देहरी और म्हासती आदि शब्दो का प्रयोग

१ पुरानी हिंदी, १५१
२ वही, पृ० १६४
३ वही, पृ० १७६
४ वही पृ० ३४

भी किया है। 'म्हासती' के स्पष्टीकरण मे लिखा है—"सतियो के लिए 'महासती' पद का व्यवहार सारे देश मे मिलने से देश की एकता का अद्भुत प्रमाण मिलता है। मेवाड मे महाराणाओ की सतियो के समाधिस्थान को 'महासती' कहते हैं। ''विपरीत लक्षणा से पजाबी पहाडी मे 'महासती' या 'म्हासती' दुराचारिणी स्त्री के लिए गाली का पद हो गया है।"[१]

कुछ शब्द-प्रयोग यो है—

(क) ' ''बहुत बूढा और पलीत (कृत्यारूप—कठपुतली का सा या भुतने का सा) होकर पीछे रह गया। लडको ने खेलते-खेलते च्यवन को बूढा पलीत का सा और निकम्मा समझकर पत्थरो से खूब दला (मारा, पीटा, कुचा)'[२]

(ख) 'वे दोनो विचले (मध्यम, बीच वाले) शुन.शेप पर राजी हो गए।'[३]

(ग) 'तू जेठा (सबसे बडा) पुत्र मेरो मे, तेरी सतान श्रेष्ठ हो।'[४]

(घ) 'सूर्य की किरणो से भाफ (वाष्प, भाप) बनकर जो जल के परमाणु उठते हैं।'[५]

(ङ) 'जब थी आती है तभी तो वह खडकाई (बजाई) जाती है।'[६]

(च) 'कम-से-कम उन पर यह निराशा का उन्माद और जन्म-भर का सियापा (शोक, आफत) तो नही चढा था।'[७]

(छ) वह शभली अतिप्रेम से किंतु कुछ देर से तथा खेद जतलाकर साठे के रस से भरा करुआ (मिट्टी का लोटानुमा पात्र, कुज्जू, डुगडू) लाई।'[८]

गुलेरी जी ने 'अमगल के स्थान मे मगल शब्द' निबध मे कागडा घाटी मे प्रयुक्त होने वाले 'अमगल' के स्थान पर 'मगल शब्दो' के प्रयोग मे वहा की भाषिक सरचना तथा लोक-सस्कृति का स्पर्श किया है। वैधव्यसूचक 'चूडी टूटना' के लिए 'चूडी मुरकना', रसोई के ईंधन की लकडी के गट्ठर के लिए 'भारा' तथा किसी बडे की मृत्यु पर उससे छोटो द्वारा सिर मुडवाने के लिए 'भद्दरों' का प्रयोग उल्लेखनीय है।

१ गुलेरी-ग्रंथ पृ० १२६
२. वही, पृ० १५
३. वही, पृ० २५
४. वही, पृ० २६
५. वही, पृ० ६६
६. वही, पृ० ८७
७. वही, पृ० १०४
८. वही, पृ० १६३

हमारे यहां कांगड़ा में सुबह-सुबह किसी गांव या व्यक्ति या जाति-विशेष का सीधा नामोच्चारण करना अमंगलकारी माना जाता है। इस संदर्भ में उन्होंने अपना स्पष्टीकरण देते हुए लिखा है—"कुछ गांवों के नाम अशुभ माने जाते हैं। सुबह उठकर उनका नाम लेने से यह भय होता है कि भोजन न मिलेगा। उनके नाम बदलकर 'राजा का शहर', 'जव वाला गांव', 'डेढ़ कोस का गांव', 'मोटा गांव', 'तलाव वाला गांव' आदि रख दिए जाते हैं। कभी-कभी गांव का दुर्भाग्य नये नाम को भी नहीं छोड़ता, तब नये नाम की जगह और नाम गढ़ा जाता है। ऐसे नाम मेरी जानकारी में बहुतसे हैं, परंतु उनका यहां लिखना एक देशी और उनके निवासियों के अकारण चिढ़ाने का कारण हो सकता है।"[1]

गुलेरी जी ने 'संस्कृत की टिपरारी' लेख में वर्ण द्वारा, धृतराष्ट्र के दरबार में आए प्रवासी ब्राह्मणों तथा बाहीकों की गाथाओं की सामाजिक चेतना के चित्रण के संदर्भ में कुल्लू तथा चम्बा-विषयक लोकधारणाओं—'आओ कुल्लू, हो जाओ उल्लू' तथा 'गए चम्बा, बड़ा अचम्भा' को 'राड साड-सीढ़ी-सन्यासी, इनसे बचे तो सेवे कासी' तथा 'जाए कलकत्ते, खाय अलबत्ते' के तौल पर उद्धृत किया है।[2]

'बनारसी ठग' टिप्पणी में 'वाराणसी' से 'बनारस' बनने की प्रक्रिया का संकेत करते हुए लिखते हैं कि बोली में व्यत्यय हो जाने से 'चिलम' का 'चिमल' तथा 'चाकू' का 'काचू' हो जाता है।[3] हमारे यहां कांगड़ा में 'चिमल' तथा 'काचू' दोनों शब्द-प्रयोग मिलते हैं।

गुलेरी जी ने 'दो प्रश्नों का एक उत्तर' टिप्पणी में एक प्रश्न यह उद्धृत किया है—

कोठे पर क्यों चढ़ी ?
कुए पर क्यों खड़ी ? लाज नहीं

इसमें 'लाज' शब्द बड़े काम का है। इसपर उनकी टिप्पणी है—"लाज—लज्जा, लाज = रज्जू = लेजू (एक पुरानी पोथी में रस्सी के लिए 'लालन' लिखा मिला है।'

'बृहद् हिंदी कोष' में लाज = लज्जा का अर्थ रस्सी नहीं, रज्जू का अर्थ रस्सी है। हमारे यहां कांगड़ा में कुए से पानी भरने के लिए घड़ा या गागर आदि के गले में फाह (फंदा, फांसी) लगाने के लिए जिस रस्सी का प्रयोग किया जाता है, उसका नाम 'लज्ज' भी है। इसलिए गुलेरी जी द्वारा लज्ज या रस्सी

१ अमंगल के स्थान में मंगल शब्द सरस्वती, पृ० ३०१-०२ मई, १९१५, ई०
२ 'संस्कृत की टिपरारी' सरस्वती, पृ० २०१ ०४, अप्रैल, १९१८ ई०
३. बनारसी ठग नागरी प्रचारिणी पत्रिका, पृ० २२७-२८, सं० १९७८ वि०

के लिए बताया गया पुराना प्रयोग 'लालन' अपनी सार्थकता स्पष्ट करने लगता है। 'लज्ज' या 'रस्सी' को बटते समय 'बल्'ल' या सण (=सन) की गुट्टियां (ग्रथिया, गाठें) प्रयोग मे लाई जाती हैं। धागानुमा रेशो की समूह इन गुट्टियों में पुंजीभूत छोटे-छोटे लवे तथा पतले रेशो के लिए आम बोलचाल मे 'लौन' शब्द प्रचलित है—'बल्ले दी लौल', 'सणू दी लौल' वगैरा-बगैरा। और वह 'लौल' शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'लालन' के समीप बैठता भी है।

गुलेरी जी की इस भाषाशैली, शब्द-भडार तथा विश्लेषण-पद्धति के संदर्भ मे भाषा की व्यजनाशक्ति को देखते हुए स्पष्ट हो जाता है कि वह बहुश्रुत तथा बहुपठित होने के कारण बहुज्ञ भी थे। उन्होंने हिमाचली पहाडी—कांगड़ी को पुरानी पजाबी के परिवेश म खूब समझा और समझाया है। उनके 'पुरानी हिंदी' पुस्तक कहानियो, निबधों तथा अन्यान्य टिप्पणियों म प्रयुक्त हिमाचली पहाडी—कागडी के शब्द-भण्डार को देखते हुए, उनके अप्रतिम प्रातिभ होने की पुष्टि स्वयमेव हो जाती है।

संस्मृतियाँ

मैं सिर भी दे सकता हूं

□ रायकृष्णदास

मैं प० चद्रधर शर्मा गुलेरी जी के नाम से परिचित था परतु उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नही हुआ था । पत्र व्यवहार भी न था । पर एकाएक अवसर आ गया । १९११ ई० मे द्वितीय हिंदी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन प्रयाग मे होना निश्चित हुआ । पहले सम्मेलन मे पूज्य द्विवेदी जी काशी आकर भी सम्मिलित नही हुए । उसकी अलग ही कहानी है । वह मेरी ही कुटिया पर टिके थे । भला वह जिस कार्यक्रम मे न जाए उसमे हम कैसे जा सकते हैं ।

द्वितीय सम्मेलन मे परिस्थितियो मे परिवर्तन हुआ । अत हम लोग बडे उत्साह से काशी से चले । इस दल मे आचार्य रामचद्र शुक्ल, केदारनाथ पाठक आदि थे, मेरे एक भाई साहब का इलाहाबाद मे मकान था । मैंने उन लोगों को अपने साथ ही रहने का निमत्रण दिया । मैंने बिना परिचय के गुलेरी जी को भी अपने साथ टिकने का आमत्रण पहले से भेज रखा था । उन्होंने अपनी साधुतावश उसे स्वीकार किया । बस, प्रयाग म ही पहली बार उनसे मिलना हुआ । उसी समय से निर्व्याज प्रेम हो गया । खूब साहित्यिक चर्चा रही । एक दिन हम लोग प० श्रीधर पाठक से मिलने गये । वहा स्त्रियो की सामाजिक स्थिति पर चर्चा चल पडी । गुलेरी जी ने बडी दृढता से कहा, कोई कारण नही है जिसके आधार पर हम लोग स्त्रियो को पुरुषो से नीचा समझें । मैं उनके उदार विचारा से बडा प्रभावित हुआ ।

कामिनी के कपोल

फिर कहने लगे, कामिनी के गडस्थल (कपोल) की पाडुता का अनुभव मुझे तब हुआ जब मैं बीकानेर गया और मैंने वहा की सुदरियो को देखा । फिर वह कई बार बनारस आए और मेरे ही अतिथि हुए । इसके बाद तो पत्र-व्यवहार का क्रम चलता रहा । वह जयपुर राज्य से सबद्ध थे । गुलेरी जी के पिता जयपुर के

राजपडित थे। इस प्रकार उनका राजस्थान से निकट का परिचय था।

बाद मे वह अजमेर के राजकुमार मेयो कॉलेज के प्रोफेसर हो गए। उनकी पत्नी बराबर बीमार रहा करती थी। वैद्यो ने उन्हे परवल का पथ्य बताया था। राजस्थान मे परवल की सब्जी नही मिलती थी। अत उनके नियमित पत्र आते रहते और जब तक परवल बनारस की मडी मे उपलब्ध होता रहता, मैं उन्हे भेजता रहता। एक पत्र मे उन्होने श्लेष भी किया है। मुझे स्वबल और अपने आपको परबल बताया था।

मैं सिर भी दे सकता हू

एक बार वह कलकत्ते जा रहे थे। बडी आशा थी कि बनारस रुकेंगे। परतु यह सभव न हुआ। इस प्रसग के भी अनेक पत्र कलाभवन म सुरक्षित हैं। मेरा पारिवारिक बाग हेस्टिंग्स हाउस कहा जाता। वारेन हेस्टिंग्स ने प्राय दो सौ वर्ष पूर्व बनारस मे अड्डा जमाया। यही से उसने अवध के नवाबो को नष्ट करने के षड्यत्र रचे। मेरे दादा ने वहा के उद्यान को नीलाम मे खरीद लिया। मैंने उसका नाम हसिताग गृह रखा था। मुझे लिखे अनेक पत्रो मे इस नाम पर भी गुलेरी जी की सुदर उक्तिया हैं। गुलेरी जी के मेरे नाम लिखे कई पत्र कलाभवन, वाराणसी मे सुरक्षित हैं। मैंने उन्हे अपने मसूरी वाले मकान मे भी कई बार बुलाया। वहा भाई मैथिलीशरण गुप्त, काशीप्रशाद जायसवाल, मुशी अजमेरी आदि आ जाते। अच्छी साहित्यिक गोष्ठिया होती रहती। बार-बार प्रयत्न करने पर भी गुलेरी जी वहा न पधार सके। प्रत्येक अवसर मे उनका निश्छल हास्य छलकता रहता।

वस्तुत गुलेरी जी मे प्रकाड पाडित्य के साथ-साथ बडी सरलता भी थी। ये दोनो विशेषताए दुर्लभ व्यक्तियो मे एकत्र होती हैं। सस्कृत का उनका पाडित्य अनत था। फिर भी वह हिंदी के हार्दिक प्रेमी थे। मैंने मित्रो की प्रेरणा से भारत कला परिषद् का कार्य प्रारम्भ किया। उस समय मैंने १२ रुपये प्रतिवर्ष की सदस्यता के लिए उन्हे लिखा। उसका उन्होने जो आत्मीयतापूर्ण उत्तर दिया वह एक पत्र मे सुरक्षित है। उन्होने लिखा—'रुपये क्या, सिर तक दे सकता हू।'

महामना मालवीय जी की प्रेरणा से वह काशी हिंदू विश्वविद्यालय मे सस्कृत यूनिवर्सिटी के प्राचार्य के रूप मे आ गए। वह स्थानीय मजूपुर मे विजयानगरम कोठी मे रहते थे। प्राय मिलना-जुलना रहता था। अवसर के अनुसार, कृपा करके मेरी कोठी पर भी आ जाते थे।

ब्राह्मण की हत्या

उन दिनो शाम को मैं स्थानीय काशी क्लब मे बैठा करता। वहा इधर-उधर की बातचीत मे समय बीत जाता। गुलेरी जी साथ होते थे। गुलेरी जी की मृत्यु भी बडी नाटकीय स्थिति मे हुई। उनके एक रिश्तेदार प० नित्यानद जी काशी के प्रमुख सस्कृत पडित हुए। गुलेरी जी की भाभी का देहात हो गया। बीमार होते हुए भी गुलेरी जी दाह-सस्कार मे सम्मिलित हुए। परतु दाह के बाद स्नान करने की उनकी हिम्मत न पडी। इसपर नित्यानद ने उन्हे ललकारा—"तेरी भाभी मर गई और तू स्नान नहीं करता।" गुलेरी जी ने कहा, "ले चाडाल, एक ब्राह्मण की हत्या करनी है तो ले।" फिर वह गगा मे कूद पडे। ज्वर कुपित हो गया और वह अच्छे न हो सके। उनके तिरोभाव से हिंदी का प्रतिभावान नक्षत्र अल्प समय मे ही अस्त हो गया। मैं भी पुन. काशी क्लब मे अपनी उदास सध्याए बिताने लग गया।

मेरे गुरुभाई

□ रघुनदनप्रसाद शर्मा

बहुत दिनों की बात है। सन् १६०६ या १० ई० रहा होगा। मै दस-ग्यारह वर्ष का निरा अबोध बालक था। सस्कृत पढने की इच्छा से अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान श्री पडित शिवराम (महामहोपाध्याय लघु सिद्धात कौमुदी के अर्वाचीन छात्रोपयोगी सस्करण के सशोधक एव सपादक) की सेवा मे उपस्थित हुआ। उनकी योग्यता और विद्वत्ता से प्रभावित होकर जयपुर के तत्कालीन नरेश सवाई रामसिह ने उन्हे अपने पास बुला लिया था। वहा मुझको ले जाने वाले स्वय प० शिवराम जी के सुपुत्र श्री पडित चद्रधर शर्मा गुलेरी थे।

शरीर से हृष्ट पुष्ट, सुदर क्रियाशील युवक श्री गुलेरी जी को मैं अपना आदर्श मानकर हृदय से उनकी पूजा किया करता था। गौर वर्ण, उच्च ललाट, सुदर गोल पगडी, प्राचीन शैली की तनीदार बगलबदी, स्वच्छ निर्मल पटलीदार धोती एव देशी चोचदार जूते सदा के लिए मन मे बस गए थे। आज भी वह मूर्ति हृदय मे अकित है और उनका वियोग न जाने कितनी बार लेखक को ही नही, उसके अन्य समकालीन मित्रो का वृद्धावस्था म रुला चुका है। ऐसे थे वह प्रेम, सहानुभूति, दया की मूर्ति। हा, तो जब वह अपने पिता जी के पास ले गए, मैंने उन वृद्ध तपस्वी ब्राह्मण को कादम्बरी मे वर्णित जाबालि मुनि के समान पाया। उस समय उनकी अवस्था ७५ वर्ष की रही होगी, किंतु वृद्धावस्था का कोई भी लक्षण उनमे प्रतीत नही होता था। तज उनके चेहरे से टपका पडता था। जयपुर मे रहकर उन्होंने सैकडो विद्यार्थियो को नि शुल्क विद्यादान देकर अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। मैं तो उनके सम्मुख हाथ जोडकर खडा ही रह गया। मुझे होश तब आया जब गुलेरी जी ने मुझसे कहा, 'चरण-वदना' करो। कमरे मे प्रवेश करते ही वह पहले ही पिता जी के चरण छू चुके थे।

स्वय गुलेरी जी ने अपने विद्वान पिता से ही पढना-लिखना सीखा था। आरभ मे उन्होंने सस्कृत पढी। उनकी बुद्धि बडी प्रखर थी। पाच-छ वर्ष की अवस्था

ही म उन्होने सस्कृत मे बोलने का अच्छा अभ्यास कर लिया था। जहा कही भी भारतीय सस्कृति के लिए, विद्वत्तापूर्ण किसी गवेषणा के लिए सामाजिक कुरीति निवारणार्थ अथवा राजनीतिक एव आर्थिक समस्या सुलझाने के लिए ज्योतिष-सवधी किसी प्रश्न के हल करने के लिए जयपुर मे कही भी कोई सभा होती थी, श्री गुलेरी जी ही उसके प्राण होते और मुझे भी सदा ऐसे अवसरो पर उनकी निजी रूप मे सेवा करने के लिए दास बनने का सौभाग्य प्राप्त होता। उनकी पुस्तकें, चश्मा, छडी आदि का मैं ही उत्तरदायी रहता था। उनके लुके-छिपे, बाहर उतारे हुए उनके जूतो को भी अपने रूमाल से साफ कर दिया करता था। इस सबने मुझको उनका अतीव कृपा-पात्र बना दिया था। सदा सभी परिस्थितियो मे मैं उनकी सरक्षकता प्राप्त करता रहा। छोटी-से-छोटी बात का भी उनको सदा ध्यान रहता था। भूलना तो वह जानते ही न थे।

यद्यपि ज्ञान की कमी के कारण मेरी समझ मे भी न आता था कि कौन चर्चा किस प्रकार की हो रही है, क्योकि उस विद्वन्मडली मे भाषण का माध्यम प्राय सस्कृत ही होता था। फिर भी वे सब बातें मेरे ऊपर एक अमिट छाप छोड गई हैं और उन्ही बचपन के दिनो मे कुछ ऐसा बीज बो गई हैं जो कदाचित् अनुकूल परिस्थितियो के अभाव मे सुदर वृक्ष के रूप मे प्रस्फुटित तो नही हो पाया, किंतु एक अविकसित पौधे के रूप मे हृदय को अब भी आदोलित करता रहता है। यह मेरी ही अवस्था नही है, उनके सपर्क मे आने वाले सभी का यही हाल है। मेरे आठवी कक्षा मे हिंदी के अध्यापक महाराजा कॉलेज मे स्वनाम-धन्य स्वर्गीय श्री विजयचद्र शर्मा थे। छमाही परीक्षा मे उन्होंने मुझको १०० मे से ११० अक दिए। कक्षा का मॉनीटर होने के कारण, जब मैं उन अको को परिणाम पत्र पर चढाने लगा, तो मैंने अपने नाम के सम्मुख ११० अक न चढाकर १०० ही चढाए। पडित जी नाराज हुए और कहने लगे कि यदि किसी ने १०० से भी अधिक अक प्राप्त करने का कार्य किया हो, तो क्या किया जाए। मैंने नम्रता से उत्तर दिया कि उसके लिए कोई आशीर्वादात्मक श्लोक लिख दिया जाय। पडित जी ने शीघ्र ही मेरी परीक्षा-पुस्तक पर श्लोक लिख दिया कि तू भी चद्रधर शर्मा गुलेरी हो। यह आशीर्वाद ऐसा फला कि सन् १८९९ ई० की प्रयाग विश्वविद्यालय की एट्रेंस परीक्षा मे श्री गुलेरी जी प्रथम आए थे और मैं भी उन्ही चरणो का अनुसरण करता हुआ सन् १९२७ ई० की मैट्रीकुलेशन परीक्षा में प्रयाग विश्वविद्यालय मे उसी महाराजा कॉलेज से वही स्थान प्राप्त कर सका। तात्पर्य यह है कि उन्ही का आदर्श हम सबको निरतर ऊचा उठाता चला जाता था। अग्रेजी की शिक्षा के साथ ही-साथ सस्कृत का स्वाध्याय भी लगातार किया जाता था। एण्ट्रेंस पास करने के बाद ही उन्होने महाभाष्य का अध्ययन किया। सम्राट-सिद्धात ज्योतिष ग्रथ का अनुवाद किया। जयपुर के मानमदिर का

जीर्णोद्वार कराया और अग्रेजी मे लेफ्टीनेंट गैरेट के साथ 'द जयपुर आब्जरवेटरी एण्ड इट्स बिल्डर्स' ग्रथ लिखा। यह कार्य उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन मे ही किया था। उन्होंने बी० ए० भी प्रथम श्रेणी मे किया। तत्पश्चात् के खेतडी-नरेश जयसिंह के सरक्षक बनकर मेयो कॉलेज, अजमेर मे चले गए और वहा वह सस्कृत के प्रधानाध्यापक हो गए।

मेयो कॉलेज, अजमेर सबधी अपने सस्मरण लिखने के पहले मैं श्री गुलेरी जी की एक और झाकी उपस्थित करना चाहता हू। वह मौज मदिर से सबध रखती है। यह सस्था उन बडे बडे मुकदमो मे धार्मिक दृष्टिकोण से व्यवस्था देती थी, जिनको उच्च न्यायालय व्यवस्था के लिए इस सस्था के पास भेजते थे। इसके अध्यक्ष राजगुरु महामहोपाध्याय श्री मधुसूदन ओझा थे। ओझा जी अपने समय के प्रकाड विद्वान हुए हैं। जब उनकी सवारी पालकी मे निकलती थी, सडक से गुजरने वाले सभी ताजीमी सरदार, गजेटेड उच्चपदाधिकारी आदि अपनी मोटर व बग्घी आदि रुकवाकर नीचे उतरकर गुरु जी को हाथ जोडकर खडे हो जाते थे। उस समय कोई भी अपने सर पर छाता नही लगा सकता था, तत्क्षण नीचा करना पडता था। मौज मदिर के दिव्य भवन मे गुरुमहाराज की मखमल की गद्दी पर रेशमी चादर बिछी होती थी। सामने ठोस चादी की चौकी पर चादी की दवात मे सोने का कलम होता था। बाहर चादी की छडिया लिए चोबदार और ढलैत खडे रहते थे। सभी योग्य विद्वान मौज मदिर के सदस्य होते थे। वहा की सभी कार्यवाही सस्कृत मे होती थी। उन वृद्ध पडितो के बीच मे श्री गुलेरी जी साक्षात् शुकदेव मुनि जैसे सुशोभित होते थे। सभी वृद्ध इस नवयुवक का लोहा मानते थे। बडी बडी कठिन समस्याओं को चुटकी बजाते हल कर देते थे। ऐसे-ऐसे पौराणिक, शास्त्रीय, वैदिक आख्यानो का उदाहरण रखते थे और उनका इतना सुदर आधुनिकतम विवेचन करते थे कि देखते ही बनता था। जितना प्राच्य विद्या का पूर्ण ज्ञान था, पाश्चात्य दर्शन-विज्ञान आदि को भी उतना ही जानते थे। पूर्व और पश्चिम की प्राचीन और अर्वाचीन सस्कृतियों का उनमे पूर्ण समन्वय हो गया था। इन सभाओ मे अल्प-वयस्क मैं तो हाथ जोडे एक कोने मे खडा रहता था। मानो श्री गुलेरी जी का अगरक्षक होऊ।

गुलेरी जी मेयो कॉलेज मे जयपुर के समस्त सामत-पुत्रो के अभिभावक थ। कश्मीर के महाराज हरीसिंह, प्रतापगढ के नरेश रामसिंह, ठाकुर अमरसिंह, ठाकुर कुशलसिंह, ठाकुर दलपतसिंह उनके प्रिय शिष्यो मे थे। मैंने अपनी आखो देखा है कि ये सब गुरुदेव का कितना आदर करते थे। उनके सम्मुख खडे रहते थे। कोई भी अपराध हो जाए, तो भय से काप उठते थे। एक बार बगीचे मे

छिपकर एक पेड के नीचे एक राजकुमार मदिरापान कर रहा था, अकस्मात् गुरुदेव उधर जा निकले। तत्क्षण वह बोतल फेंककर छिपने लगा। भय के मारे उसका बुरा हाल था, कापता हुआ वही लुढक गया। श्री गुलेरी जी दूर निकल गए थे। मैंने दौडकर उसे उठाया। उसकी घिग्घयाँ बध रही थी। वह बार-बार पूछता था, "गुरु जी ने मुझे देखा तो नही?" ऐसा था उनका अनुशासन एव प्रताप!

सन् १६२१ ई० के स्वतत्रता आदोलन से मेरा कुछ सबध हो गया था। एतदर्थ मुझे एम० ए० की अपनी पढाई छोडकर जयपुर से अजमेर चला जाना पडा। वहा मुझे काग्रेस कार्यालय मे प्रातीय मत्री का दफ्तर सभालना पडा। भोजन स्वयसेवकों के साथ करता था। मुझे ग्लानि थी कि चदे के धन को मैं अपने निजी भोजन के काम मे क्या ला रहा हू। इस समस्या को अपने पूज्य आदर्श श्री गुलेरी जी के सम्मुख रखने मैं मेयो कॉलिज गया। स्वच्छ सगमरमर की बनी सुदर सीढियो पर चढकर जब मैं उनके कमरे मे पहुचा, तो अदर की कोठरी का दरवाजा थोडा-सा खुला था। उसमे से धूप की सुगध आ रही थी। मैं यह देखकर अवाक् रह गया कि षोडशोपचार विधि से श्री गुलेरी जी अपने पूज्य पिता के चित्र की पूजा कर रहे थे। नेत्र बद थे और कपोलो पर अश्रु प्रवाह था। उस पितृभक्ति और गुरुभक्ति को देखकर मैं मुग्ध रह गया। श्री गुलेरी जी की वह झाकी भी मेरे मन मे बस गई है। यह पूजा नित्य गुप्त रूप से हुआ करती थी। कोई भी इसका साक्षी नही हुआ करता था। मुझे ही उनको देखने का सौभाग्य मिल गया और यह भेद अपने हृदय मे छिपाए रखा। श्री गुलेरी जी को भी नही मालूम होने दिया कि मैं उनकी पूजा विधि देख चुका हू।

कहने की आवश्यकता नही कि उस दीन-बधु ने, सब ही पर अकारण अनुग्रह, अहैतुकी कृपा करने वाले ने, तत्क्षण बघेरा राजकुमार को घटे भर अयोध्याकाड पढाने की मेरी ५० रुपये मासिक की ट्यूशन लगवा दी और मैं भोजन के बदले मे यह धन काग्रेस कार्यालय को देकर ग्लानि से मुक्त हुआ।

उसी वर्ष वह प्राच्य विभाग के अध्यक्ष होकर हिंदू विश्वविद्यालय, काशी चले गए। महामना मालवीय जी ने भारत के कोने-कोने से योग्यतम विद्वानो को वहा एकत्रित कर दिया था। किंतु यह काशी यात्रा बडी दु खद रही। न मालूम किस प्रकार पाडुरोग का भयानक आक्रमण हो गया। ज्यो ज्यो दवा हुई, रोग बढता ही गया। उनकी अतिम झाकी बडी ही कारुणिक है। उसका वर्णन न किया जाए तभी अच्छा है। वह बलिष्ठ शरीर सूखकर काटा, वह तेजस्वी आखें नितात पीली—यहा तक कि शरीर पर का कुर्ता भी पसीने से पीला हो गया था। मानो हल्दी मे रग दिया गया हो। मैं तो बस रोग शय्या की बगल मे खडे-का-खडा ही रह गया—आखो-ही-आखो मे मूक भाषा मे भाव का आदान-प्रदान

हुआ। उस दृश्य को मैं सह न सका, मेरी हिचकिया वध गई। धाड मारकर रोता बाहर को भागा और दूसरे ही दिन वह तेजस्वी सूर्य १२ सितबर, १९२२ ई० को केवल ३९ वर्ष की अवस्था मे सदा को अस्त हो गया।

यद्यपि श्री गुलेरी जी आज हमारे बीच नही हैं तथापि हिंदी ससार उनको कभी नही भूल सकता, वह उनका चिर ऋणी रहेगा। काशी नागरी प्रचारिणी सभा का सभापतित्व, देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला का सम्पादन उनके गौरव को चिर अक्षुण बनाए रखने को पर्याप्त है। पुरातत्त्व, इतिहास, दर्शन, ज्योतिष, साहित्य, भाषा-विज्ञान—सभी मे उनकी गति अबाध थी। अगरेजी, जर्मन, फ्रेंच और सस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत, पाली, वगला और मराठी का भी उनको अच्छा ज्ञान था। उन्होने 'समालोचक' पत्र का बडा सफल सपादन किया था। उनकी तीन अमर कहानियो म से 'उसन कहा था' ने तो विश्वख्याति प्राप्त कर ली है। इन सबमे वह कितना परिश्रम करते थे उसकी साक्षी मेरी आखे है। कार्य करते समय उनको तन-बदन की सुध नही रहती थी। क्या यही अनवरत परिश्रम एव भोजनादिक निजी दैही आवश्यकताओ की ओर से नितात उदासीनता ही काशी मे प्राच्य विभाग सगठित करते समय घातक तो नही हो गई ?

वह सभा को पुत्री मानते थे

☐ आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र

१५ दिसबर, १६७६ ई० को आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र को दिल्ली मे उनके शिष्यो द्वारा 'अभिनदन ग्रथ' भेंट किया गया। १६ दिसबर को आचार्य जी से स्व० गुलेरी जी के सस्मरणों की चर्चा छेड बैठा तो बोले—"बात गुलेरी जी के आकस्मिक देहात के लगभग १४-१५ दिन पहले की है। काशी मे उनके किसी निकट सबधी का देहात हो गया था।[1] गुलेरी जी उस दिन ज्वर से पीडित थे और दाह-सस्कार के लिए गगा जी पर गए हुए थे। दाह सस्कार के बाद सबने गगा-स्नान किया, पर ज्वर-पीडित होने के कारण गुलेरी जी रुक गए। पर होनी बलवान् होती है। तब श्री पद्मनाभ शास्त्री[2] ने कुछ ऐसे तीखे तथा कटु शब्दों का प्रयोग करके उनके ब्राह्मणत्व पर चोट कर दी और सुनते ही गुलेरी जी वस्त्रों समेत, 'दुष्ट ! यदि तू मेरा मरना ही चाहता है तो ले,' कहकर गगा जी मे छलाग लगा गए। बस, उनका यह गगा-स्नान सारे हिंदी जगत् के लिए 'गगा-स्नान' बन गया। उन्हे सन्निपात हो गया। और यही उन्हे ले गया।"

इसके बाद आचार्य मिश्र जी ने एक बात और बडी रोचक बताई। बोले—"गुलेरी जी नागरी प्रचारिणी सभा मे अवैतनिक कार्य किया करते थे। और इस अवैतनिकता का पालन भी वह बडी कडाई से करते थे। इतनी कडाई से कि वहा काम करते समय, वहा का जल तक ग्रहण नही करते थे। वहा काम करने वाले अन्यान्य लोग जब उनसे इसका कारण पूछते थे तो अवसर कहा करते, 'कोई अपनी लडकी के घर का भी कुछ खाता पीता है क्या ?' " इस सस्मरण को सुनाते-सुनाते आचार्य मिश्र का गला भर आया था। बोले—"कैसी त्याग तथा सेवा भावना थी उन लोगो मे ! हिंदी को सच्चे अर्थों मे उस पीढी के लोगो ने नि स्वार्थ भाव से सींचा था।"

१ देखें इस ग्रथ का पृष्ठ २२—सपादक
२. वही, पृ०२२—सपादक

आचार्य जी अपनी बात को आगे बढाते हुए फिर बोले—"मैं रीतिकाल की 'स्वच्छंद काव्यधारा' पर जब डॉक्टरेट की उपाधि के लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निर्देशन मे काम कर रहा था, तब वह अवसर भेंटवार्ता मे हिंदी के दिग्गजो की विद्वत्ता को रेखांकित करने वाले प्रेरक प्रसग सुनाया करते थे। उन्होने एक दिन गुलेरी जी विषयक बडा ही मर्मस्पर्शी सस्मरण सुनाया, जिसमे गुलेरी जी की ही नही, उनकी सतान की कुशाग्र बुद्धि तथा गहरी पैठ का भी पता चलता है। एक दिन आचार्य जी बोले, 'बात गुलेरी जी के देहावसान के चार-पाच दिन पहले की है। वह 'नागरी प्रचारिणी सभा' की मीटिंग मे उपस्थित थे। यह उनकी, सभा मे अतिम मीटिंग थी। गुलेरी जी के साथ उनका छोटा-सा बालक भी वहा उपस्थित था। बातचीत के दौरान किसी सज्जन ने अगरेजी मे कहना शुरू किया तो मैंने टोक दिया और हिंदी की सभा मे हिंदी मे बोलने का आग्रह किया। इस बीच उन अगरेजी बोलने वाले सज्जन के पक्ष के लोगों ने भी उनका समर्थन करना शुरू कर दिया और मुझे चित्त करने के लिए तर्क दिया कि—कुछ भाव-विचार ऐसे भी होते हैं जिन्हे अगरेजी ही सहार सकती है, हिंदी मे पूरी बात ठीक-ठीक कही ही नही जा सकती।—सुनकर, मैं सन्न रह गया। बस, इसी बीच उन सज्जन ने हठात् प्रश्न कर दिया—जरा यह तो कहिए कि आप हिंदी मे परदेस मे रह रहे पति की ओर से पत्नी को भला क्या सबोधन लिखना पसद करेंगे?

" 'मैं अभी सोच ही रहा था कि बगल मे बैठे गुलेरी जी ने अपने बेटे से कहा—बेटा! बताना जरा, क्या लिखेंगे? और वह होनहार बालक झट से बोल उठा—दादी जी को प्रणाम, बच्चों को आशीर्वाद प्यार और बच्चो की मा को श्रद्धा।

" सभा उठने के बाद मैंने गुलेरी जी से उस बालक के विस्मयकारी ज्ञान का रहस्य पूछा तो सहज भाव मे हल्का सा मुस्कराते हुए बोले—पडित जी, कुछ नही। मै जब घर से बाहर होता हू तो अपने पत्रो मे ऐसा लिख दिया करता हू।"

ध्यातव्य है कि गुलेरी जी के साथ उपस्थित वह बालक उनका ज्येष्ठ मेधावी पुत्र योगेश्वर था। इन्ही योगेश्वर शर्मा गुलेरी ने सन् १९५० ई० मे हिंदुस्तान टाइम्स' द्वारा आयोजित 'अतर्राष्ट्रीय कहानी प्रतियोगिता' मे पुरस्कृत ७ सर्वश्रेष्ठ कहानियो मे, अपनी 'राम जी की मरजी' पर ४०० रुपये का तृतीय तथा 'जीवन का सगीत' २५० रुपये का छठा पुरस्कार प्राप्त किया था। स्व० योगेश्वर गुलेरी भी मेधावी पिता की मेधावी सतान थे। इनकी लिखी हुई उक्त दो कहानियो के अतिरिक्त तीन कहानिया और हैं—'उसका टुकडा,' 'नर या नारी' तथा 'चोट।'

[प्रस्तुति सम्पादक]

चौबे जी के संग

□ प्रेमनाथ चतुर्वेदी

जीवन मे एक न-एक चूक ऐसी हो जाती है, जो न विस्मृत होती है और न सालना छोडती है। मेरे नाना जी पूज्य श्री चौबे विश्वेश्वरनाथ जी मिश्र (काशी भवन, मिर्जाइस्माइल रोड, जयपुर) और पडित श्री चन्द्रधर जी शर्मा गुलेरी बडे घनिष्ठ मित्र थे। वैसे तो मैं ननसाल जाया ही करता था, परतु बी०ए० तक की शिक्षा मैंने नाना जी के सरक्षण मे रहकर महाराजा कॉलेज, जयपुर मे ही प्राप्त की थी, क्योंकि भरतपुर मे तब तक उच्च शिक्षा की व्यवस्था नही थी। तीन बरस तक उनसे बातचीत करने का अवसर मिला, पर गुलेरी जी के विषय मे कभी खुलकर बात करने का सुयोग नही हुआ। वह बहुत कम बोलते थे। अत कुछ भय सा मन मे रहता था। एक दिन मैंने उनके चित्र-सग्रह मे गुलेरी जी का बडा सुदर चित्र देखा। उस चित्र मे गुलेरी जी हाथ मे पूजा-पात्र लिए थे। उनके ललाट और दोनो भुजाओ पर त्रिपुड दीख रहा था। गले मे रुद्राक्ष की माला थी। मैंने नाना जी से उस भव्य चित्र का उल्लेख किया तो उन्होंने बताया कि वह चित्र उन्होने ही खीचा था। उसका एनलार्जमेंट फोटोग्राफर गोविन्द राम उदय राम ने किया था।

ऐसी ही किसी बात पर नाना जी ने गुलेरी जी से अपनी मित्रता और उनके गुणो का सक्षेप मे बखान किया था। मैं अक्सर देखता कि गुलेरी जी की पत्नी नाना जी के पास आकर अपने दु ख-दर्द की बातें कहती। वह लाज (घुघट) मारकर उनके सामने कालीन पर बैठ जाती थी। यदा-कदा थोडी बहुत मदद नाना जी स्वय कर देते। यदि अधिक की तकरार होती तो वह गुलेरी जी के भक्त किसी पुराने सरदार को पत्र लिखते। घर की समस्याओ के बारे मे भी उनको अपनी सलाह देते थे। नाना जी के मतानुसार, गुलेरी जी की पत्नी का स्वभाव अच्छा नही था।

एक दिन नाना जी से मैंने कहा कि मेरे साथ गुलेरी जी के पुत्र पढते हैं।

उनका नाम योगेश्वर है। तब उन्होंने मुझसे पूछा—"क्या तुम जानते हो कि उसका योगेश्वर नाम कैसे पड़ा ?" मैंने कहा—"मुझे तो पता नहीं।" तब नाना जी बोले, "जब यह लड़का पैदा हुआ तब काफी देर तक रोया नहीं। इस पर गुलेरी जी ने पूर्वजन्म का योगी समझकर पुत्र का नाम 'योगेश्वर' रख दिया। घर में सभी उनको 'योगा' कहते थे।"

योगेश्वर जी कभी-कभी अपनी माता जी के साथ नाना जी के पास आया करते थे। वह मेरे इंटर (१६३१-३२) में सहपाठी रहे। उनका भी हिंदी विषय था और मेरा भी। जब श्री रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' की अध्यक्षता में 'हिंदी साहित्य समाज' की स्थापना की गई, तब उन्होंने उसके लिए धनसंग्रह कराने में बड़ा सहयोग किया था। जो धन-संग्रह हुआ उससे हिंदी की अच्छी-अच्छी पुस्तकें खरीदी गईं। उनकी दो अलमारियां पुस्तकालय के कमरे में अलग रखी गईं। तब तक महाराजा कॉलेज म्यूजियम के पीछे बने नये विशाल भवन में आ गया था। इण्टर तक हम लोग हवामहल के सामने वाले भवन में पढ़े। इण्टर करके योगेश्वर जी जयपुर छोड़कर कहीं अन्यत्र चले गए थे।

योगेश्वर जी का हिंदी और अंगरेजी विषयों पर पूरा-पूरा अधिकार था। उन्हें पान खाने और गप्पें मारने का बड़ा शौक था। उनके दिमाग में जाने कहां-कहां की बातें भरी रहती थीं। पर बातों के दौरान उन्होंने अपने पिता जी का कभी उल्लेख नहीं किया। यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि मैंने उनके पिता जी के बारे में कभी कोई प्रश्न ही नहीं किया। योगेश्वर जी धोती और खुले गले का कोट पहनते थे। जहां तक मुझे स्मरण आता है, शिलीमुख जी ने 'उसने कहा था' कहानी पढ़ाते समय योगेश्वर जी से प० चन्द्रधर शर्मा जी के संबंध में कभी कोई बात नहीं पूछी। यहां इतना संकेत कर देना समीचीन होगा कि शिलीमुख जी ने अपनी 'आधुनिक कहानियां' नामक पुस्तक में 'उसने कहा था' की बहुत अच्छी समालोचना की थी। तब यह पुस्तक इण्टर के पाठ्यक्रम में थी।

योगेश्वर जी से मेरी फिर कभी भेंट न हो सकी। जिन दिनों नवभारत टाइम्स का कार्यालय दरियागंज में था, तब उनके कई लेख उसमें छपे थे। मुझे ऐसा स्मरण है कि उनकी मृत्यु पर उनके विषय में कुछ श्रद्धांजलि-लेख नवभारत टाइम्स से प्रकाशित हुए थे। मुझे ऐसा अवसर प्राप्त हुआ था कि मैं उन दोनों पिता-पुत्र के बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त कर लेता पर तब छानबीन की रुचि मुझमें विकसित नहीं हो पाई थी, इसका मुझे बड़ा मलाल है।

द्वितीय खंड

चंद्रधर शर्मा गुलेरी की रचनाएं

- कहानी
- भाषा
- लोक और कला
- काव्य
- निबंध
- विज्ञान
- विविध

कहानी

सुखमय जीवन

[१]

परीक्षा देने के पीछे और उसके फल निकलने के पहले के दिन किस बुरी तरह बीतते है, यह उन्ही को मालूम है जिन्हे उन्ह गिनने का अनुभव हुआ है। सुबह उठते ही परीक्षा से आज तक कितने दिन गए, यह गिनते है और फिर 'कहावती आठ हफ्ते' मे कितने दिन घटते हैं, यह गिनते हैं। कभी कभी उन आठ हफ्तों पर कितने दिन चढ गए, यह भी गिनना पडता है। खाने बैठे हैं और डाकिये के पैर की आहट आई—कलेजा मुह को आया। मुहल्ले म तार का चपरासी आया कि हाथ-पाव कापने लगे। न जागते चैन, न सोते—सपने मे भी यह दिखता है कि परीक्षक साहब एक आठ हफ्ते की लबी छुरी लेकर छाती पर बैठे हुए हैं।

मेरा भी बुरा हाल था। एल एल० बी० का फल अबकी और भी देर से निकलने को था—न मालूम क्या हो गया था, या तो कोई परीक्षक मर गया था, या उसको प्लेग हो गया था। उसके पर्चे किसी दूसरे के पास भेजे जाने को थे। बार-बार यही सोचता था कि प्रश्नपत्रो की जाच किए पीछे सारे परीक्षको और रजिस्ट्रारो को भले ही प्लेग हो जाए, अभी तो दो हफ्ते माफ करें। नही तो परीक्षा के पहले ही उन सबको प्लेग क्यो न हो गया? रात भर नीद नही आई थी, सिर घूम रहा था, अखबार पढ़ने बैठा कि देखता क्या हू कि लिनो टाइप की मशीन ने चार पाच पक्तिया उलटी छाप दी है। बस, अब नही सहा गया—सोचा कि घर से निकल चलो, बाहर ही कुछ जी बहलेगा। लोहे का घोडा उठाया कि चल दिए।

तीन-चार मील जाने पर शाति मिली। हरे हरे खेतों की हवा, कही पर चिडिया की चहचह और कहीं कुओ पर सेता को सीचते हुए किसानो का सुरीला गाना, कही देवदार के पत्ता की सोधी बास और कहीं उनमे हवा का

सी सी करके बजना—सबने मेरे चित्त को परीक्षा के भूत की सवारी से हटा लिया। बाइसिकिल भी गजब की चीज है। न दाना मांगे, न पानी, चलाए जाइए जहां तक पैरों में दम हो। सड़क में कोई था ही नहीं, कहीं-कहीं किसानों के लड़के और गांव के कुत्ते पीछे लग जाते थे। मैंने बाइसिकिल को और भी हवा कर दिया। सोचा कि मेरे घर सितारपुर से पंद्रह मील पर कालानगर है—वहां की मलाई की बरफ अच्छी होती है और वहीं मेरे एक मित्र रहते हैं, वे कुछ सनकी हैं। कहते हैं कि जिसे पहले देख लेंगे, उससे विवाह करेंगे। उनसे कोई विवाह की चर्चा करता है, तो अपने सिद्धांत के मंडन का व्याख्यान देने लग जाते हैं। चलो, उन्हीं से सिर खाली करें।

खयाल-पर-खयाल बंधने लगा। उनके विवाह का इतिहास याद आया। उनके पिता कहते थे कि सेठ गनेशलाल की एकलौती बेटी से अबकी छुट्टियों में तुम्हारा ब्याह कर देंगे। पड़ोसी कहते थे कि सेठ जी की लड़की कानी और मोटी है और आठ ही वर्ष की है। पिता कहते थे कि लोग जलकर ऐसी बातें उड़ाते हैं, और लड़की वैसी हो भी तो क्या, सेठ जी के कोई लड़का है नहीं, बीस-तीस हजार का गहना देंगे। मित्र महाशय मेरे साथ-साथ पहले डिबेटिंग क्लबों में बाल-विवाह और माता-पिता की जबरदस्ती पर इतने व्याख्यान झाड़ चुके थे कि अब मारे लज्जा के साथियों में मुंह नहीं दिखाते थे। क्योंकि पिता जी के सामने चीं करने की हिम्मत नहीं थी। व्यक्तिगत विचार से साधारण विचार उठने लगे। हिंदू-समाज ही इतना सड़ा हुआ है कि हमारे उच्च विचार कुछ चल ही नहीं सकते। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। हमारे सद्‌विचार एक तरह के पशु हैं जिनकी बलि माता-पिता की जिद और हठ की वेदी पर चढ़ाई जाती है। 'भारत का उद्धार तब तक नहीं हो सकता—।

फिस्स्‌स् ! एकदम अर्श से फर्श पर गिर पड़े। बाइसिकिल की फूंक निकल गई। कभी गाड़ी नाव पर, कभी नाव गाड़ी पर। पम्प साथ नहीं था और नीचे देखा तो जान पड़ा कि गांव के लड़कों ने सड़क पर ही कांटों की बाड़ लगाई है। उन्हें भी दो गोलियां दीं पर उसमें तो पंक्चर सुधरा नहीं। कहां तो भारत का उद्धार हो रहा था और कहां अब कालानगर तक इस चरखे को खैंच ले जाने की आपत्ति से कोई निस्तार नहीं दिखता। पास के मील के पत्थर पर देखा कि कालानगर यहां से सात मील है। दूसरे पत्थर के आते आते मैं बेदम हो लिया था। धूप जेठ की, और कंकरीली सड़क, जिसमें लदी हुई बैलगाड़ियों की मार से छ-छः इंच शक्कर की-सी बारीक पिसी हुई सफेद मिट्टी बिछी हुई ! काले पेटेंट लेदर के जूतों पर एक-एक इंच सफेद पालिश चढ़ गई। लाल मुंह को पोंछते पोंछते रूमाल भीग गया और मेरा सारा आकार सभ्य विद्वान् का-सा नहीं, वरन् सड़क कूटने वाले मजदूर का सा हो गया। सवारियों के हम लोग

इतने गुलाम हो गए हैं कि दो-तीन मील चलते ही छठी का दूध याद आने लगता है।

[२]

"बाबू जी, क्या बाइसिकिल मे पकचर हो गया है?"

एक तो चश्मा, उस पर रेत की तह जमी हुई, उस पर ललाट से टपकते हुए पसीने की बूंदें, गर्मी की चिढ और काली रात की सी लबी सडक—मैंने देखा ही नही था कि दोनों ओर क्या है। यह शब्द सुनते ही सिर उठाया, तो देखा कि एक सोलह-सत्रह वर्ष की कन्या सडक के किनारे खडी है।

"हा, हवा निकल गई है और पकचर भी हो गया है। पम्प मेरे पास है नही। कालानगर कुछ बहुत दूर तो है ही नही—अभी जा पहुचता हू।"

अत का वाक्य मैंने सिर्फ ऐंठ दिखाने के लिए कहा था। मेरा जी जानता था कि पाच मील पाच सौ मील के-से दिख रहे थे।

"इस सूरत से तो आप कालानगर क्या, कलकत्ते पहुच जाएगे। जरा भीतर चलिए, कुछ जल पीजिए। आपकी जीभ सूखकर तालू से चिपट गई होगी। चाचा जी की बाइसिकिल मे पम्प है और हमारा नौकर गोविंद पकचर सुधारना भी जानता है।"

"नही, नही—"

"नही, नही क्या, हा, हा!"

यों कहकर बालिका ने मेरे हाथ से बाइसिकिल छीन ली और सडक के एक तरफ हो ली। मैं भी उसके पीछे चला। देखा कि एक कँटीली बाड से घिरा बगीचा है जिसमे एक बँगला है। यही पर कोई 'चाचा जी' रहते होंगे, परतु यह बालिका कैसी—

मैंने चश्मा रूमाल से पोछा और उसका मुंह देखा। पारसी चाल की एक गुलाबी साडी के नीचे चिकने काले बालों से घिरा हुआ उसका मुखमडल दमकता था और उसकी आखें मेरी ओर कुछ दया, कुछ हँसी और कुछ विस्मय से देख रही थी। बस, पाठक! ऐसी आखें मैंने कभी नही देखी थी। मानो वे मेरे कलेजे को घोलकर पी गईं। एक अद्भुत कोमल, शात ज्योति उनमे से निकल रही थी। कभी एक तीर मे मारा जाना सुना है? कभी एक निगाह मे हृदय बेचना पडा है? कभी तारामैत्रक और चक्षुमैत्री नाम आए हैं? मैंने एक सेकड मे सोचा और निश्चय कर लिया कि ऐसी सुदर आखें त्रिलोकी मे न होगी और यदि किसी स्त्री की आखो को प्रेमबुद्धि से कभी देखूगा तो इन्ही को।

"आप सितारपुर से आए हैं। आपका नाम क्या है?"

"मैं जयदेवशरण वर्मा हू। आपके चाचा जी—"

"ओ हो, बाबू जयदेवशरण वर्मा, बी० ए०, जिन्होने 'सुखमय जीवन' लिखा है ! मेरा बडा सौभाग्य है कि आपके दर्शन हुए ! मैंने आपकी पुस्तक पढी है और चाचा जी तो उसकी प्रशसा बिना किए एक दिन भी नही जाने देते। वे आपसे मिलकर बहुत प्रसन्न होगे, बिना भोजन किए आपको न जाने देंगे और आपके ग्रथ के पढने मे हमारा परिवार-सुख कितना बढा है, इस पर कम से-कम दो घटे तक व्याख्यान देंगे।"

स्त्री के सामने उसके नैहर की बडाई कर दे और लेखक के सामने उसके ग्रथ की। यह प्रिय बनने का अमोघ मन्त्र है। जिस साल मैंने बी० ए० पास किया था उस साल कुछ दिन लिखने की धुन उठी थी। लॉ कॉलेज के फर्स्ट इयर मे सेक्शन और कोड की परवाह न करके एक 'सुखमय जीवन' नामक पोथी लिख चुका था। समालोचको ने आडे हाथों लिया था और वर्ष भर मे सत्रह प्रतिया बिकी थी। आज मेरी कदर हुई कि कोई उसका सराहनेवाला तो मिला।

इतने मे हम लोग बरामदे मे पहुचे, जहा पर कनटोप पहने, पजाबी ढग की दाढी रखे एक अधेड महाशय कुर्सी पर बैठे पुस्तक पढ रहे थे। बालिका बोली—

"चाचा जी, आज आपके बाबू जयदेवशरण वर्मा बी० ए० को साथ लाई हू। इनकी बाइसिकिल बेकाम हो गई है। अपने प्रिय ग्रथकार से मिलाने के लिए कमला को धन्यवाद मत दीजिए, दीजिए उनके पम्प भूल आने को !"

वृद्ध ने जल्दी ही चश्मा उतारा और दोनों हाथ बढाकर मुझसे मिलने के लिए पैर बढाए।

"कमला, जरा अपनी माता को तो बुला ला। आइए बाबू साहब, आइए। मुझे आपसे मिलने की बडी उत्कठा थी। मैं गुलाबराय वर्मा हू। पहले कमसेरियट मे हेड क्लर्क था। अब पेन्शन लेकर इस एकात स्थान मे रहता हू। दो गौ रखता हू और कमला तथा उसके भाई प्रबोध को पढाता हू। मैं ब्रह्मसमाजी हू, मेरे यहा परदा नही है। कमला ने हिंदी मिडिल पास कर लिया है। हमारा समय शास्त्रों के पढने मे बीतता है। मेरी धर्मपत्नी भोजन बनाती और कपडे सी लेती है, मैं उपनिषद् और योगवासिष्ठ का तर्जुमा पढा करता हू। स्कूल मे लडके बिगड जाते हैं, प्रबोध को इसीलिए घर पर पढाता हू।"

इतना परिचय दे चुकने पर वृद्ध ने श्वास लिया। मुझे भी इतना ज्ञान हुआ कि कमला के पिता मेरी जाति के ही हैं। जो कुछ उन्होंने कहा था, उसकी ओर मेरे कान नही थे—मेरे कान उधर थे, जिधर से माता को लेकर कमला आ रही थी।

"आपका ग्रथ बडा ही अपूर्व है। दाम्पत्य-सुख चाहने वालो के लिए लाख

रुपये से भी अनमोल है। धन्य है आपको ! स्त्री को कैसे प्रसन्न रखना, घर मे कलह कैसे नही होने देना, बाल-बच्चों को क्योकर सच्चरित्र बनाना, इन सब बातो मे आपके उपदेश पर चलने वाला पृथ्वी पर ही स्वर्ग-सुख भोग सकता है। पहले कमला की मा और मेरी कभी-कभी खटपट हो जाया करती थी। उसके खयाल अभी पुराने ढग के है। पर जब से मैं रोज भोजन के पीछे उसे आध घटे तक आपकी पुस्तक का पाठ सुनाने लगा हू, तब से हमारा जीवन हिंडोले की तरह झूलते-झूलते बीतता है।"

मुझे कमला की मा पर दया आई जिसको वह कूडा-करकट रोज सुनना पडता होगा। मैंने सोचा कि हिंदी के पत्र-सपादकों मे यह वूढा क्यों न हुआ ? यदि होता तो आज मेरी तूती बोलने लगती।

"आपको गृहस्थ-जीवन का कितना अनुभव है ! आप सब कुछ जानते हैं ! भला, इतना ज्ञान कभी पुस्तको से मिलता है ? कमला की मा कहा करती थी कि आप केवल किताबो के कीडे हैं, सुनी-सुनाई बातें लिख रहे हैं। मैं बार-बार यह कहता था कि इस पुस्तक के लिखने वाले को परिवार का खूब अनुभव है। धन्य है आपकी सहधर्मिणी ! आपका और उसका जीवन कितने सुख से बीतता होगा ! और जिन बालको के आप पिता हैं, वे कैसे बडभागी हैं कि सदा आपकी शिक्षा मे रहते है, आप जैसे पिता का उदाहरण देखते है।"

कहावत है कि वेश्या अपनी अवस्था कम दिखाना चाहती है और साधु अपनी अवस्था अधिक दिखाना चाहता है। भला, ग्रथकार का पद इन दोनो मे किसके समान है ? मेरे मन मे आई कि कह दू कि अभी मेरा पचीसवा वर्ष चल रहा है, कहा का अनुभव और कहा का परिवार ? फिर सोचा कि ऐसा कहने से ही मैं वृद्ध महाशय की निगाहो से उतर जाऊगा और कमला की मा सच्ची हो जाएगी कि बिना अनुभव के छोकरे ने गृहस्थ के कर्त्तव्य-धर्मों पर पुस्तक लिख मारी है। यह सोचकर मैं मुसकरा दिया और ऐसी तरह मुह बनाने लगा कि वृद्ध समझा कि अवश्य मैं ससार-समुद्र मे गोते मारकर नहाया हुआ हू।

[३]

वृद्ध ने उस दिन मुझे जाने नही दिया। कमला की माता ने प्रीति के साथ भोजन कराया और कमला ने पान लाकर दिया। न मुझे अब कालानगर की मलाई की बरफ याद रही और न सनकी मिस की। चाचा जी की बातो मे फी सैंकडे सत्तर तो मेरी पुस्तक और उसके रामवाण लाभो की प्रशसा थी, जिसको सुनते-सुनते मेरे कान दुख गए। फी सैंकडा पचीस वह मेरी प्रशसा और मेरे पति-जीवन और पितृ-जीवन की महिमा गा रहे थे। काम की बात बीसवा हिस्सा थी जिससे मालूम पडा कि अभी कमला का विवाह नही हुआ है, उसे अपनी

फूलों की क्यारी को सम्हालने का बड़ा प्रेम है, वह सखी के नाम से 'महिला-मनोहर' मासिक पत्र में लेख भी दिया करती है।

सायंकाल का मैं बगीचे में टहलने निकला। देखता क्या हूं कि एक कोने में केले के झाड़ों के नीचे मोतिये और रजनीगंधा की क्यारियां हैं और कमला उनमें पानी दे रही है। मैंने सोचा कि यही समय है। आज मरना है या जीना है। उसको देखते ही मेरे हृदय में प्रेम की अग्नि जल उठी थी और दिन-भर वहां रहने से वह धधकने लग गई थी। दो ही पहर में मैं बालक से युवा हो गया था। अंगरेजी महाकाव्यों में, प्रेममय उपन्यासों में और कोर्स के संस्कृत-नाटकों में जहां जहां प्रेमिका-प्रेमिक का वार्तालाप पढ़ा था, वहां-वहां का दृश्य स्मरण करके वहां वहां के वाक्यों को घोख रहा था, पर यह निश्चय नहीं कर सका कि इतने थोड़े परिचय पर भी बात कैसे करनी चाहिए। अंत को अंगरेजी पढ़नेवाले की धृष्टता ने आर्यकुमार की शालीनता पर विजय पाई और चपलता कहिए, बेसमझी कहिए, ढीठपन कहिए, पागलपन कहिए, मैंने दौड़कर कमला का हाथ पकड़ लिया। उसके चेहरे पर सुर्खी दौड़ गई और डोलची उसके हाथ से गिर पड़ी। मैं उसके कान में कहने लगा—

"आपसे एक बात करनी है।"

"क्या ? यहां कहने की कौनसी बात है ?"

"जबसे आपको देखा है तबसे—"

"बस, चुप करो। ऐसी धृष्टता !"

अब मेरा वचन-प्रवाह उमड़ चुका था। मैं स्वयं नहीं जानता था कि मैं क्या कह रहा हूं, पर लगा बकने, "प्यारी कमला, तुम मुझे प्राणों से बढ़कर हो, प्यारी कमला, मुझे अपना भ्रमर बनने दो। मेरा जीवन तुम्हारे बिना मरुस्थल है, उसमें मंदाकिनी बनकर बहो। मेरे जलते हुए हृदय में अमृत की पट्टी बन जाओ। जब से तुम्हें देखा है, मेरा मन मेरे अधीन नहीं है। मैं तब तक शांति न पाऊंगा जब तक तुम—"

कमला जोर से चीख उठी और बोली—'आपको ऐसी बातें कहते लज्जा नहीं आती ? धिक्कार है आपकी शिक्षा को और धिक्कार है आपकी विद्या को ! इसीको आपने सभ्यता मान रखा है कि अपरिचित कुमारी से एकांत ढूंढकर ऐसा घृणित प्रस्ताव करें ! तुम्हारा यह साहस कैसे हो गया ? तुमने मुझे क्या समझ रखा है ? 'सुखमय जीवन' का लेखक और ऐसा घृणित चरित्र ! चिल्लू-भर पानी में डूब मरो। अपना काला मुंह मुझे मत दिखाओ। अभी चाचा जी को बुलाती हूं।"

मैं सुनता जा रहा था। क्या मैं स्वप्न देख रहा हूं ? यह अग्नि-वर्षा मेरे किस अपराध पर ? तो भी मैंने हाथ नहीं छोड़ा। कहने लगा, "सुनो कमला,

यदि तुम्हारी कृपा हो जाए, तो सुखमय जीवन—"

'देखा तेरा सुखमय जीवन ! आस्तीन के साप ! पापात्मा !! मैंने साहित्य-सेवी जानकर और ऐसे उच्च विचारो का लेखक समझकर तुझे अपने घर मे घुसने दिया और तेरा विश्वास और सत्कार किया था। प्रच्छन्नपापिन्[1] ! वकदाम्भिक[2] ! बिडालव्रतिक[3] ! मैंने तेरी सारी बातें सुन ली है।" चाचा जी आकर लाल-लाल आखें दिखाते हुए, क्रोध से कापते हुए कहने लगे—"शैतान, तुझे यहा आकर माया-जाल फैलाने का स्थान मिला। ओफ ! मैं तेरी पुस्तक से छला गया। पवित्र जीवन की प्रशसा म फार्मों-के-फार्म काले करनेवाले, तेरा ऐमा हृदय ! कपटी ! विप के घडे—"

उनका धारा-प्रवाह भापण बद ही नही होता था, पर कमला की गालिया और थी और चाचा जी की ओर। मैंने भी गुस्से म आकर कहा, "बाबू साहब, जबान सम्हालकर बोलिए। आपने अपनी कन्या को शिक्षा दी है और सभ्यता सिखाई है, मैंने भी शिक्षा पाई है और कुछ सभ्यता सीखी है। आप धर्म सुधारक हैं। यदि मैं उसके गुणो और रूप पर आसक्त हो गया, तो अपना पवित्र प्रणय उसे क्यों न बताऊ ? पुराने ढर्रे के पिता दुराग्रही होते सुने गए हैं। आपने क्यो सुधार का नाम लजाया है ?"

"तुम सुधार का नाम मत लो। तुम तो पापी हो। 'सुखमय जीवन' के कर्त्ता होकर—"

"भाड मे जाय 'सुखमय जीवन' ! उसीके मारे नाको दम है !! 'सुखमय जीवन' के कर्त्ता ने क्या यह शपथ खा ली है कि जन्म-भर क्वारा ही रहे ? क्या उसके प्रेमभाव नही हो सकता ? क्या उसमे हृदय नही होता ?"

"ह, जनम-भर क्वारा ?"

"हैं काहे की ? मैं तो आपकी पुत्री से निवेदन कर रहा था कि जैसे उसने मेरा हृदय हर लिया है वैसे यदि अपना हाथ मुझे दे, तो उसके साथ 'सुखमय जीवन' के उन आदर्शों को प्रत्यक्ष अनुभव करू, जो अभी तक मेरी कल्पना मे हैं। पीछे हम दोनो आपकी आज्ञा मागने आते। आप तो पहले ही दुर्वासा बन गए।"

"तो आपका विवाह नही हुआ ? आपकी पुस्तक से तो जान पडता है कि आप कई वर्षों के गृहस्थ-जीवन का अनुभव रखते हैं। तो कमला की माता ही सच्ची थी।"

१ जिसके पाप ढके हुए हों
२ बगुले की तरह छल करनेवाला
३. बिल्ली की तरह व्रत रखनेवाला

इतनी बाते हुई थी, पर न मालूम क्यो मैने कमला का हाथ नही छोडा था। इतनी गर्मी के साथ शास्त्रार्थ हो चुका था, परतु वह हाथ, जो क्रोध के कारण लाल हो गया था, मेरे हाथ मे ही पकडा हुआ था। अब उसमे सात्विक भाव का पसीना आ गया था और कमला ने लज्जा से आँखें नीची कर ली थी। विवाह के पीछे कमला कहा करती है कि न मालूम विधाता की किस कला से उस समय मैने तुम्हे झटककर अपना हाथ नही खैंच लिया। मैंने कमला के दोनो हाथ खैंचकर अपने हाथो के सम्पुट मे ले लिए (और उसने उन्हे हटाया नही!) और इस तरह चारो हाथ जोडकर वृद्ध से कहा—

"चाचा जी, उस निकम्मी पोथी का नाम मत लीजिए। बेशक, कमला की मा सच्ची हैं। पुरुषो की अपेक्षा स्त्रिया अधिक पहचान सकती हैं कि कौन अनुभव की बातें कह रहा है और कौन गप्पें हाक रहा है। आपकी आज्ञा हो, तो कमला और मैं दोनों सच्चे सुखमय जीवन का आरभ करें। दस वर्ष पीछे मै जो पोथी लिखूगा, उसमे किताबी बातें न होगी, केवल अनुभव की बातें होगी।"

वृद्ध ने जेब से रूमाल निकालकर चश्मा पोछा और अपनी आखें पोछी। आखो पर कमला की माता की विजय होने के क्षोभ के आसू थे, या घर बैठे पुत्री को योग्य पात्र मिलने के हर्ष के आसू, राम जाने।

उन्होने मुसकराकर कमला से कहा, "दोनों मेरे पीछे पीछे चले आओ। कमला! तेरी मा ही सच कहती थी।' वृद्ध बगले की ओर चलने लगे। उनकी पीठ फिरते ही कमला ने आखे मूदकर मेरे कधे पर सिर रख दिया।

[प्रथम प्रकाशन भारतमित्र, सन १९११ ई०]

बुद्धू का कांटा

[१]

रघुनाथ प्प् प्रसाद त्त् त्रिवेदी—या रुग्नात् पर्शाद तिर्वेदी—यह क्या ?

क्या करें, दुविधा मे जान है। एक ओर तो हिंदी का यह गौरवपूर्ण दावा है कि इसमे जैसा बोला जाता है वैसा लिखा जाता है और जैसा लिखा जाता है वैसा ही बोला जाता है। दूसरी ओर हिंदी के कर्णधारो का अविगत शिष्टाचार है कि जैसे धर्मोपदेशक कहते हैं कि हमारे कहने पर चलो, हमारी करनी पर मत चलो, वैसे ही जैसे हिंदी के आचार्य लिखें वैसे लिखो, जैसे वे बोलें वैसे मत लिखो, शिष्टाचार भी कैसा ? हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति अपने व्याकरण-कषायित कठ से कहे 'पर्सोत्तमदास' और 'हर्किसनुलाल' और उनके पिट्ठू छापें ऐसी तरह कि पढा जाए—'पुरुषोत्तम अ दास अ' और 'हरि कृष्णलाल अ' !

अजी जाने भी दो, बडे बडे बह गए और गधा कहे कितना पानी ! कहानी कहने चले हो, या दिल के फफोले फोडने ?

अच्छा, जो हुकुम। हम लाला जी के नौकर है, बैगनो के थोडे ही हैं। रघुनाथप्रसाद त्रिवेदी अब के इटरमीजिएट परीक्षा मे बैठा है। उसके पिता दारसूरी के पहाड के रहनेवाले और आगरे के बुझातिया बैंक के मैनेजर है। बैंक के दफ्तर के पीछे चौक मे उनका तथा उनकी स्त्री का बारहमासिया मकान है। बाबू बडे सीधे, अपने सिद्धातो के पक्के और खरे आदमी हैं जैसे पुराने ढग के होते हैं। बैंक के स्वामी इन पर इतना भरोसा करते हैं कि कभी छुट्टी नही देते और बाबू काम के इतने पक्के है कि छुट्टी मागते नही। न बाबू वैसे कट्टर सनातनी हैं कि बिना मुह धोए ही तिलक लगाकर स्टेशन पर दरभगा महाराज के स्वागत को जाए, और न ऐसे समाजी ही हैं कि खजडी लेकर 'तोड पोपगढ लड्का का' करने दौडें। उसूलो के पक्के हैं।

हा, उसूलो के पक्के है। सुबह एक प्याला चाय पीते है तो ऐसा कि जेठ मे

तुम तो परदेशी हो गए। यहा चार महीने बाद वृहस्पति सिहस्थ हो जाएगा, फिर डेढ दो वर्ष तक ब्याह नही हागे। इसलिए छोटी छोटी बच्चियों के ब्याह हा रहे हैं, वृहस्पति के सिह के पेट मे पहुचन के पहले कोई चार पाच वर्ष की लडकी कुवारी नही बचेगी। फिर जब वृहस्पति कही शेर की दाढ म से जीता जागता निकल आया तो न बराबर का घर मिलेगा न जोड की लडकी। तुम्ह क्या है गाव मे बदनाम तो हम हो रहे हैं। मैंने अभी दो तीन घर रोक रखे है। तुम जानो, अब के मेरा कहना न मानोगे तो मै तुमसे जन्म भर बोलने का नही।'

'भैया ठीक तो कहते है।

' मैं भी मानता हू कि अब लडके को उन्नीसवा वष है। अब के इटरमीजिएट पास हो ही जाएगा। अब हमारी नही चलेगी देवर भौजाई जैसा नचाएगे, वैसा ही नाचना पडेगा। अब तक मरी चली यही बहुत हुआ।

' भैया की कहो मरा कहना तो पाच वष स जो मान रहे हो।

'अच्छा अब जिदो मत। मैंने दो महीन की छुट्टी ली है। छुट्टी मिलते ही देश चलते हैं। बच्चा को लिख दिया है कि इम्तहान देकर सीधा घर चला आ। दस पद्रह दिन म आ जाएगा। तब तक हम घर भी ठीक कर ल और दिन भी। अब तुम आगरे बहू को लेकर आओगी।"

स्त्री ने सोचा, बताशेवाली बुढिया का उलहना तो मिटेगा।

[२]

' बा छा[1]' मेरे हाल म आपका क्या जी लगगा ? गरीवा का क्या हाल ? रब[2] रोटी देता है दिन भर मेहनत करता हू रात पड रहता हू। बा छा, तुम जैसे साइ[3] लोको की बरकत मे मैं हज कर आया ख्वाजा का उस दख आया, तीन वेले[4] नमाज पढ लेता हू और मुझ क्या चाहिए ? वा छा, मेरा काम टट्टू चलाना नही है। अब तो इस मोती की कमाई खाता हू, कभी सवार ले जाता हू कभी लादा[5], ढाई मण कणक[6] पा[7] लेता हू ता दो पौली[8] बच जाती है। रब की मरजी,

१ बादशाह
२ ईश्वर
३. स्वामी, भक्त
४ वक्त
५ बोझा (छटट, गूण)
६ गेहू
७ लाद लता हू
८ चवन्नी

मेरा अपना घर था, सिहो[1] के वक्त की माफी जमीन थी, नाते[2] पडोसियो मे मेरा नाम था। मै धामपुर के नवाब का खाना बनाता था और मेरे घर मे से उसके जनाने मे पकाती थी। एक रात को मैं खाना बना-खिला के अपनी मजडी[3] पर सोया था कि, मेरे मौला[4] ने मुझे आवाज दी –'लाही, लाही, हज कर आ।' मैं आखें मल के खडा हो गया, पर कुछ दिखा नही। फिर सोने लगा कि फिर वही आवाज आई कि 'लाहो, तू मेरी पुकार नही सुनता? जा हज कर आ।' मैं समझा, मेरा मौला मुझे बुलाता है। फिर आवाज आई –'लाही, चल पड, मैं तेरे नाल[5] हू, मैं तेरा बेडा पार करूगा।' मुझसे रहा नही गया। मैंने अपना कम्बल उठाया और आधी रात को चल पडा। बा'छा, मैं रातो चला, दिनो चला, भीख मागकर चलते-चलते बम्बई पहुचा। वहा मेरे पल्ले टका नही था, पर एक हिंदू भाई ने मुझे टिकट ले दिया। काफले के साथ मैं जहाज पर चढ गया। वही मुझे छ महीने लगे। पूरी हज की। जब लौटे तो रास्ते मे जहाज भटक गया। एक चट्टान पानी के नीचे थी, उससे टकरा गया। उसके पीछे की दोनो लालटेनें ऊपर आ गई और वे हमे शैतान की सी आखें दिखाई देने लगी। सबने समझा मर जाएगे, पानी मे गोर[6] बनेगी। कप्तान ने छोटी किश्तिया खोली और उनमे हाजियो को बिठाकर छोड दिया। मर्द का बच्चा आप अपनी जगह से नही टला, जहाज के नाल डूब गया। अधेरे मे कुछ सूझता नही था। सवेरा होते ही हमने देखा कि, दो किश्तिया बह रही हैं और न जहाज है, न दूसरी किश्तिया। पता ही नही, हम कहा से किधर जा रहे थे। लहरें हमारी किश्तियो को उछालती, नचाती, डुबोती, झकोडती थी। जो लहमा बीतता था, हम खैर मनाते थे। पर मेरे मालिक ने करम[7] किया, मेरे अल्लाह ने, मेरे मौला ने जैसे उस रात को कहा था, मेरा बेडा पार किया। तीन दिन, तीन रात हम बेपते बहते रहे—चौथे दिन माल के जहाज ने हमको उठा लिया और छठे दिन कराची मे हमने दुआ की नमाज पढी। पीछे सुना कि तीन सौ हाजी मर गए।

"वहा से मैं ख्वाजा की जियारत को चला, अजमेर शरीफ मे दरगाह का दीदार पाया। इस तरह, बा'छा साढे सात महीने पीछे मैं घर आया। आकर घर देखता क्या हू कि सब पटरा हो गया है। नवाब जब सवेरे उठा तो उसने

१ सिक्खों
२ रिश्तेदार
३ खटिया
४ ईश्वर
५ साथ
६ कब्र
७ कृपा

नाश्ता मागा। नौकरों ने कहा कि इलाही का पता नही। बस, वह जल गया। उसने मेरा घर फुकवा दिया, मेरी जमीन अपनी रखवाल[1] के भाई को दे दी और मेरी बीबी को लौंडी बनाकर कैद कर लिया। मैं उसका क्या ले गया था, अपना कम्बल ले गया था। और पिछले तीन महीने की तलब अपनी पेटी मे उसके बावर्ची खाने मे रख गया था। भला, मेरा मौला बुलावे और मैं न जाऊ? पर उसको जो एक घटा देर से खाना मिला, इससे बढकर और गुनाह क्या होता?

"इसके पद्रहवें दिन जनाने मे एक सोने की अगूठी खो गई। नवाब ने मेरी घरवाली पर शक किया। उससे पूछा तो वह बोली कि मेरा कौनसा घर और घरवाला बैठा है कि उसके पास अगूठी ले जाऊगी। मैं तो यही रहती हू। सीधी बात थी, पर उससे सुनी नही गई। जला-भुना तो था ही, बेंत लेकर लगा मारने। बा'छा, मैं क्या कहू, मौला मेरा गुनाह बख्शे, आज पाच बरस हो गए है, पर जब मैं घरवाली की पीठ पर पचासो दागो की गुच्छिया देखता हू, तो यही पछतावा रहता है कि रब ने उस सूर का (तोबा! तोबा!) गला घोटने को यहा क्यो न रखा। मारते-मारते जब मेरी घरवाली बेहोश हो गई तब डरकर उसे गाव के बाहर फिकवा दिया। तीसरे दिन वह वहा से घिसकती-घिसकती चलकर अपने भाई के यहा पहुची।"

रघुनाथ ने रुंधे गले से कहा, "तुमने फरयाद नही की?"

"कचहरिया गरीबो के लिए नही है, बा'छा, वे तो सेठो के लिए हैं। गरीबो की फरयाद सुननेवाला सुनता है। उसने पद्रह दिन मे सुनकर हुकुम भी दे दिया। मेरी औरत को मारते-मारते उस पाजी के हाथ की अगुली मे बेंत की एक सली चुभ गई थी। वही पक गई। लहू म जहर हो गया। पद्रहवे दिन मर गया। हज से आकर मैंने सारा हाल सुना। अपने जले हुए घर को देखा और अपने परदादे की सिहों की माफी जमीन को भी देखा। चला आया। मसजिद मे जाकर रोया। मेरे मौला ने मुझे हुकुम दिया, 'लाही, मैं तेरे नाल हू, अपनी जोरू को धीरज दे।' मैं साले के यहा पहुचा। उसने पचीस रुपये दिए, मैं टट्टू मोल लेकर पहाड चला आया और यहा रब का नाम लेता हू और आप जैसे माई लोगो की बदगी करता हू। रब का नाम बडा है।"

रघुनाथ इम्तहान देकर रेल से घराठनी तक आया। वहा तीस मील पहाडी रास्ता था। दूरी पर चून के स ढेर चमकते दिखने लगे, जो कभी न पिघलने-वाली बर्फ क पहाड थ। रास्ता साप की तरह चक्कर खाता था। मालूम होता कि एक घाटी पूरी हो गई है, पर ज्योही मोड पर आते, त्योही उसकी जड मे एक और आधी मील का चक्कर निकल पडता। एक ओर ऊचा पहाड, दूसरी

१. रखेली, रखैल

ओर ढाई सौ फुट गहरी खड्ड। और किराये के टट्टुओं की लत कि सड़क के छोर पर चलें जिससे सवार की एक टांग तो खड्ड पर ही लटकती रहे। आगे वैसा ही रास्ता, वैसी ही खड्ड, सामने वैसे ही कोने पर चलनेवाले टट्टू। जब धूप बढ़ी और जी न लगा तो मोती के स्वामी इलाही से रघुनाथ ने उसका इतिहास पूछा। उसने जो सीधी और विश्वास से भरी, दुःख की धाराओं से भीगी हुई कथा कही, उससे कुछ मार्ग कट गया। कितने गरीबों का इतिहास ऐसी चित्र घटनाओं की धूप-छाया से भरा हुआ है। पर हम लोग प्रकृति के इन सच्चे चित्रों को न देखकर उपन्यासों की मृगतृष्णा में चमत्कार ढूंढते हैं।

धूप चढ़ गई थी कि वे एक ग्राम में पहुंचे। गांव के बाहर सड़क के सहारे एक कुआ था और उसी के पास एक पेड़ के नीचे इलाही ने स्वयं और अपने मोती के लिए विश्राम करने का प्रस्ताव किया। "घोड़े को न्हारी देकर और पानी-वानी पीकर धूप ढलते ही चल देंगे और बात-की-बात में आपको घर पहुंचा देंगे।" रघुनाथ की भी टांगें सीधी करने में कोई उज्र न था। खाने की इच्छा बिल्कुल न थी। हां, पानी की प्यास लग रही थी। रघुनाथ अपने बक्स में से लोटाडोर निकालकर कुए की तरफ चला।

[३]

कुए पर देखा कि छह-सात स्त्रियां पानी भरने और भरकर ले जाने की कई दशाओं में हैं। गांवों में परदा नहीं होता। वहां सब पुरुष सब स्त्रियों से और सब स्त्रियां सब पुरुषों से निडर होकर बातें कर लेती हैं। और शहरों के लम्बे घूंघटों के नीचे जितना पाप होता है, उसका दसवां हिस्सा भी गांवों में नहीं होता। इसीसे तो कहावत में बाप ने बेटे को उपदेश दिया है कि लंबे घूंघटवाली से बचना। अनजान पुरुष किसी भी स्त्री से 'बहन' कहकर बात कर लेता है और स्त्री बाजार में जाकर किसी भी पुरुष से 'भाई' कहकर बोल लेती है। यही वाचिक संधि दिन-भर के व्यवहारों में 'पासपोर्ट' का काम दे देती है। हंसी ठट्ठा भी होता है, पर कोई दुर्भाव नहीं खड़ा होता। राजपूताने के गांवों में स्त्री ऊंट पर बैठी निकल जाती है और खेतों के लोग "मामी जी, मामी जी" चिल्लाया करते हैं। न उनका अर्थ उस शब्द से बढ़कर कुछ होता है और न वह चिढ़ती है। एक गांव में बारात जीमने बैठी। उस समय स्त्रियां समधियों को गाली गाती हैं। पर गालियां न गाई जाती देख नागरिक सुधारक बराती को बड़ा हर्ष हुआ। वह ग्राम के एक वृद्ध से कह बैठा, "बड़ी खुशी की बात है कि आपके यहां इतनी तरक्की हो गई है।" बुड्ढा बोला, "हां साहब, तरक्की हो रही है। पहले गालियों में कहा जाता था फलाने की फलानी के साथ और अमुक की अमुक के साथ। लोग लुगाई सुनते थे, हंस देते थे। अब घर घर में वे ही बातें सच्ची

हो रही हैं । अब गालिया गाई जाती हैं तो चोरो की दाढी मे तिनके निकलते हैं। तभी तो आदोलन होते हैं कि गालिया बद करो, क्योकि वे चुभती हैं ।"

रघुनाथ यदि चाहता तो किसी भी पानी भरनेवाली से पीने को पानी मांग लेता । परतु उसने अब तक अपनी माता को छोडकर किसी स्त्री से कभी बात नही की थी । स्त्रियो के सामने बात करने को उसका मुंह खुल न सका । पिता की कठोर शिक्षा से बालकपन से ही उसे वह स्वभाव पड गया था कि दो वर्ष प्रयाग मे स्वतत्र रहकर भी वह अपने चरित्र को, केवल पुरुषों के समाज मे बैठ-कर, पवित्र रख सका था । जो कोने मे बैठकर उपन्यास पढ़ा करते हैं, उनकी अपेक्षा खुले मैदान मे खेलनेवालों के विचार अधिक पवित्र रहते हैं ।—इसीलिए फुटबाल और हॉकी के खिलाडी रघुनाथ को कभी स्त्री विषयक कल्पना ही नही होती थी, वह मानवी सृष्टि मे अपनी माता को छोडकर और स्त्रियो के होने या न होने से अनभिज्ञ था । विवाह उसकी दृष्टि में एक आवश्यक किंतु दुर्ज्ञेय बधन था जिसमे सब मनुष्य फसते हैं और पिता के आज्ञानुसार वह विवाह के लिए घर उसी रुचि से आ रहा था जिससे कि कोई पहले पहल थियेटर देखने जाता है । कुए पर इतनी स्त्रियो को इकट्ठा देखकर वह सहम गया, उसके ललाट पर पसीना आ गया और उसका बस चलता तो वह विना पानी पिए ही लौट जाता। अस्तु, चुपचाप डोर-लोटा लेकर एक कोने पर जा खडा हुआ और डोर खोलकर फासा देने लगा।

प्रयाग के बोर्डिंग की टोटियो की कृपा से, जन्म भर कभी कुए से पानी नही खीचा था, न लोटे मे फासा लगाया था । ऐसी अवस्था मे उसने सारी डोर कुए पर बखेर दी और उसकी जो छोर लोटे से बाधी, वह कभी तो लोटे को एक सौ बीस अश के कोण पर लटकाती और कभी सत्तर पर । डोर के जब बट खुलते हैं तब वह बहुत पेंच खाती है । इन पेंचो मे रघुनाथ की बाहे भी उलझ गई । सिर नीचा किए ज्योंही वह डोर को सुलझाता था, त्योंही वह उलझती जाती थी । उसे पता नही था कि गाव की स्त्रियो के लिए वह अद्भुत कौतुक नयनोत्सव हो रहा था ।

धीरे धीरे टीका-टिप्पणी आरम्भ हो गई । एक ने हँसकर कहा, "पटवारी है, पैमाइश की जरीब फैलाता है ।"

दूसरी बोली, "ना, बाजीगर है, हाथ पाव बाधकर पानी में कूद पडेगा और फिर सूखा निकल आएगा।"

तीसरी बोली, 'क्यों लल्ला, घरवालो से लडकर आए हो ?"

चौथी ने कहा, "क्या कुए म दवाई डालोगे ? इस गाव मे तो बीमारी नही है।"

इतने मे एक लडकी बोली, "काहे की दवाई और कहा का पटवारी ?

अनाडी है, लोटे मे फासा देना नही आता। भाई, मेरे घडे को मत कुए मे डाल देना, तुमने तो सारी मेड ही रोक ली।" यो कहकर वह सामने आकर अपना घडा उठाकर ले गई।

पहली ने पूछा, "भाई, तुम क्या करोगे ?"

लडकी बात काटकर बोल उठी, "कुए को बाधेंगे।"

पहली—"अरे! बोल तो।"

लडकी—"मा ने सिखाया नही।"

सकोच, प्यास, लज्जा और घबराहट से रघुनाथ का गला रुक रहा था, उसने खासकर कठ साफ करना चाहा। लडकी ने भी वैसी ही आवाज की। इस पर पहली स्त्री बढकर आगे आई और डार उठाकर कहने लगी, क्या चाहते हो ? बोलते क्यो नही ?"

लडकी—"फारसी बोलेंगे।"

रघुनाथ ने शर्म मे कुछ आखें ऊची की, कुछ मुह फेरकर कुए स कहा, "मुझे पानी पीना है,—लोटे से निकाल रहा • निकाल लूगा।'

लडकी—"परसो तक।"

स्त्री बोली, "तो हम पानी पिला दें। ला भागवती गगरी उठा ला। इनको पानी पिला दें।"

लडकी गगरी उठा लाई और बोली, "ले मामी के पालतू, पानी पी ले, शरमा मत, तेरी बहू से नही कहूगी।"

इस पर सब स्त्रिया खिलखिलाकर हँस पडी। रघुनाथ के चेहरे पर लाली दौड गई और उसने यह दिखाना चाहा कि मुझे कोई देख नही रहा है, यद्यपि दस-बारह स्त्रिया उसके भौंचक्केपन को देख रही थी। सृष्टि के आदि से कोई अपनी झेंप छिपाने को समर्थ न हुआ, न होगा। रघुनाथ उलटा झेंप गया।

"नही, नही, मैं आप ही ••"

लडकी—"कुए म कूद के।"

इस पर एक और हँसी का फौवारा फूट पडा।

रघुनाथ ने कुछ आखें उठाकर लडकी की ओर देखा। कोई चौदह पद्रह बरस की लडकी, शहर की छोकरियो की तरह पीली और दुबली नही, हृष्ट पुष्ट और प्रसन्नमुख। आखो के डेल काले, कोए सफेद नही, कुछ मटिया नीले और पिघलते हुए। यह जान पडता था कि डेल अभी पिघलकर बह जाएगे। आखो के चौतरग हँसी, ओठों पर हँसी और सारे शरीर पर नीरोग स्वास्थ्य की हँसी। रघुनाथ की आखें और नीची हो गई।

स्त्री ने फिर कहा, "पानी पी ला जो, लडकी खडी है।"

रघुनाथ ने हाथ धोए। एक हाथ मुह के आगे लगाया, लडकी गगरी से

पानी पिलाने लगी। जब रघुनाथ आधा पी चुका था तब उसने श्वास लेते-लेते आँखें ऊँची कीं। उस समय लड़की ने ऐसा मुँह बनाया कि ठि-ठि करके रघुनाथ हँस पड़ा, उसकी नाक में पानी चढ़ गया और सारी आस्तीन भीग गई। लड़की चुप।

रघुनाथ को खाँसते, डगमगाते देखकर वह स्त्री आगे चली आई और गगरी छीनती हुई लड़की को झिड़ककर बोली, "तुझे रात-दिन उतपन ही सूझता है। इन्हें गलसूंड चला गया। ऐसी हँसी भी किस काम की। लो, मैं पानी पिलाती हूं।"

लड़की—"दूध पिला दो, बहुत देर हुई, आंसू भी पोंछ दो।"

सच्चे ही रघुनाथ के आंसू आ गए थे। उसने स्त्री से जल लेकर मुंह धोया और पानी पिया। धीरे से कहा, 'बस जी, बस।"

लड़की—"अब के आप निकाल लेंगे।"

रघुनाथ को मुंह पोंछते देखकर स्त्री ने पूछा, "कहां रहते हो?"

"आगरे।'

"इधर कहां जाओगे?"

लड़की—(बीच ही में)—"सिकारपुर! वहां तेमों का गुरद्वारा है।" स्त्रियां खिलखिला उठीं।

रघुनाथ ने अपने गांव का नाम बताया। "मैं पहले कभी इधर आया नहीं, कितनी दूर है, कब तक पहुंच जाऊंगा? अब भी वह सिर उठाकर बात नहीं कर रहा था।

लड़की—"यही पंद्रह-बीस दिन में, तीन-चार सौ कोस तो होगा।"

स्त्री—"छि, दो-ढाई भर है, अभी घण्टे-भर में पहुंच जाते हो।"

"रास्ता सीधा ही है न?"

लड़की—"नहीं तो, बायें हाथ को मुड़कर चौड़ के पेड़ के नीचे दाहिने हाथ को मुड़ने के पीछे सातवें पत्थर पर फिर बायें मुड़ जाना, आगे सीधे जाकर कहीं न मुड़ना, सबसे आगे एक गीदड़ की गुफा है, उसमें उत्तर को बाड़ उलांघकर चले जाना।

स्त्री—"छोकरी, तू बहुत सिर चढ़ गई है, किकर-किकर करती ही जाती है! नहीं जी, एक ही रास्ता है, सामने नदी आवेगी, परले पार बायें हाथ को गांव है।'

लड़की—"नदी में भी यों ही फांसा लगाकर पानी निकालना।"

स्त्री उसकी बात अनसुनी करके बोली, "क्या उस गांव में डाकबाबू होकर आए हो?"

रघुनाथ—"नहीं, मैं तो प्रयाग में पढ़ता हूं।"

लडकी ···"ओ हो, पिराग जी मे पढते है ! कुए से पानी निकालना पढते होगे ?"

स्त्री—"चुप कर, ज्यादा बक-बक काम की नही, क्या इसीलिए तू मेरे यहा आई है ?"

इस पर महिला-मडल फिर हँस पडा। रघुनाथ ने घबराकर इलाही की ओर देखा तो वह मजे मे पेड के नीचे चिलम पी रहा था। इस समय रघुनाथ को हाजी इलाही की ईर्ष्या होने लगी। उसने सोचा कि हज से लौटते समय समुद्र मे खतरे कम हैं, और कुए पर अधिक।

लडकी—"क्यो जी, पिराग जी मे अक्ल भी बिकती है ?"

रघुनाथ ने मुह फेर लिया।

स्त्री—"तो गाव मे क्या करने जाते हो ?"

लडकी— "कमाने-खाने।"

स्त्री—"तेरी कैंची नही बद होती ! यह लडकी तो पागल हो जाएगी।"

रघुनाथ—"मैं वहा के बाबू शोभाराम जी का लडका हू।"

स्त्री—'अच्छा, अच्छा, तो क्या तुम्हारा ही ब्याह है ?'

रघुनाथ ने सिर नीचा कर लिया।

लडकी—"मामी मामी, मुझे भी अपने नये पालतू के ब्याह मे ले चलना। बडा ब्याहने चला है। यह घोडी है और वह जो चिलम पी रहा है नाना बनेगा। वाह जी वाह, ऐसे बुद्धू के आगे भी कोई लहँगा पसारेगी !"

स्त्री लडकी की ओर झपटी। लडकी गगरी उठाकर चलती बनी। स्त्री उसके पीछे दस ही कदम गई थी कि स्त्री महिलामडल एक अट्टहास से गूज उठा।

रघुनाथ इलाही के पास लौट आया। पीछे मुडकर देखने की उसकी हिम्मत न हुई। उसके गले मे भस्म का सा स्वाद आ रहा था। जीवन-भर मे यही उसका स्त्रियो से पहला परिचय हुआ। उसकी आत्मलज्जा इतनी तेज थी कि वह समझ गया कि मैं इनके सामने बन गया हू। जीवन मे ऐसी स्त्रियों से आधा ससार भरा रहेगा और ऐसी ही किसीसे विवाह होगा। तुलसीदास ने ठीक कहा है कि 'तुलसी गाय बजाय के दियो काठ मे पाव।' स्त्रियो की टोली के वाक्य उसे गड रहे थे और सब वाक्यो के दुःस्वप्न के ऊपर उस पिघलती हुई आखो वाली कन्या का चित्र मडरा रहा था।[1]

बडे ही उदास चित्त से रघुनाथ घर पहुचा।

१ देखें इसी ग्रथ के द्वितीय खण्ड मे गुलेरी जी की 'विवाह की नाटरी' शीर्षक टिप्पणी।
—सम्पादक

[४]

सात बजे तक भी जब रघुनाथ नदी पर न पहुँचा तो पूजन को निकला। दूसरी ओर, जहाँ रास्ता सघन भाग पर जाता और पहाड़ उनके इस गाँव का घेरकर खड़े थे, किनारे-किनारे सीधे पुल से सड़क के समीप तक हरी हुई जमीन उस पर अपनी गुलाबजलों की नीली टिमटिमा और बादल के संग झाड़ियों और पहाड़ी झाड़ों की तरह न भरे हुए थे। हरीतिमा का आदर था वृक्षों ने लिया है। किनारे पर खड़े हुए बादल। बीच-बीच बगीचे पहाड़ों की चोटियाँ छिपे देख। साथ अलग भाग बड़ी थी जानी और खिलती हुई का नाम सब न रानी बड़ी हुई जान पड़ती नदी से निकली हुई रानी रानी अलग-अलग जा नाम बन पत्थर का ढकेर लिए उठा नदी की पथरीली नालियों में जा मिलती —इस तरह दूर-दूर तक के घरों के घर और खेतों की महक से बिल्कुल छिपे थे। जगह-जगह रघुनाथ का मन नहा गया और नदी के उभार पहाड़ की सिरों से बरबस बहू नदी की चट्टानों की सीध में डाल दिया। एक आर आम के पेड़ थे जो बीरों और बेरियों से लदे हुए थे उनके पास पास के नाले के किनारे नाली झिलमिल झिलमिल करता हुआ निकल रहा था। जहाँ उन जंगली झाड़ों के बीच में होकर जाना पड़ता था और जहाँ छोटे छोटे झरने जो नदी में जा मिले थे, लाँघने पड़ते थे। इन प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लेता हुआ हमारा परिव्राजक नदी की ओर बढ़ा।[1]

इस समय वहाँ कोई न था। रघुनाथ ने एक अद्भुत बात—चोरी छिपी—नदी पार होकर नदी की धारा देखी और सोचा कि स्नान करके यहाँ बैठकर पाठ करें। नदी की गम्भीरता के प्रभाव से गम्भीरता और भावुकता की लहरियाँ उसकी चाल को ढँक चुकी ही थी। उसके दृश्य ने एक आईना भी दिखा दिया। रघुनाथ उसी शिला के पास पर बैठ गया और अपने मुख की आवाज पर उठते हुए कोमल भावों को मिटाने के लिए मन-ही-मन इस देवी कथा का गाने लगा।

कवियों को सोचने का समय पाखाने में मिलता है और मुसाफिरों का स्वयं स्नान करते में। यदि कोई होता तो नगर के सनातनियों में कभी सहज पाठ जाता। इसकी वैज्ञानिक युक्ति मुझे एक विद्यार्थी ने बताई थी। वह बहुतेरा तर्क और युक्तियों से सिद्ध कर रहा था कि पुरानी पोथियों में सूक्ष्म वैसा लिए रहस्य भरे पड़े हैं। यही नहीं कि माता बच्चे के सिर में रखकर तो सवारी के

१ ठोर नक्श आम।
२ बाद में यह 'पद्य' तक का अंश मूल पाण्डुलिपि में खण्डित था। इसलिए यहाँ पाठ टाल में जोड़ा गया पाठ गुलेरी जी के पुत्र श्री योगेश्वर गुलेरी ने अपनी ओर से जोड़ा है। यहाँ पर सब साभार उद्धृत किया जाता है। —सम्पादक

लिए जो काजल का टीका लगा देती है अथवा दूध पिलाए पीछे बच्चे को धूल की चुटकी चटा देती है—इसका भी वह बिजली के विज्ञान से समाधान कर रहा था। उसने कहा कि हजामत बनाते या बनवाते समय रोम खुल जाने से मस्तिष्क तक के स्नायु-तारो की बिजली हिल जाती है और वहा विचारशक्ति की खुजलाहट पहुच जाती है। अस्तु।

रघुनाथ की खुजलाहट का आरभ यो हुआ कि यह नदी सहस्रो वर्षो से यो ही बह रही है और यो ही बहती जाएगी। किनारे के पहाडो ने, ऊपर के आकाश ने और नीचे की मिट्टी ने उसको यो ही देखा है और यो ही वे उसे देखते जाएगे। यही क्या, नदी का प्रत्येक परमाणु अपने आने वाले परमाणु की पीठ को और पीछे वाले परमाणु के सामने देखता जाता है। अथवा, क्या पहाड को या तलेटी को नदी की खबर है ? क्या नदी के एक परमाणु को दूसरे की खबर है ? मैं यहा बैठा हू, इन परमाणुओ को, इन पत्थरो को, इन बादलो को मेरी क्या खबर है ? इस समय आगे-पीछे, नीचे ऊपर, कौन मेरी परवाह करता है ? मनुष्य अपने घमड मे त्रिलोकी का राजा बना फिरे, उसे अपने आत्माभिमान के सिवा पूछता ही कौन है ? इस समय मेरा यह क्षौर[1] बनाना किसके लिए ध्यान देने योग्य है ? किसे पडी है कि मेरी लीलाओ पर ध्यान रक्खे।

इसी विचार की तार मे ज्योही उसने सिर उठाया त्योही देखा कि कम-से-कम एक व्यक्ति को तो उसकी लीलाए ध्यान देने योग्य हो रही थी जो उनका अनुकरण करती थी। रघुनाथ क्या देखता है कि वही पानी पिलाने वाली लडकी सामने एक दूसरी शिला पर बैठी हुई है और उसकी नकल कर रही है।

उस दिन की हँसी की लज्जा रघुनाथ के जी से नही हटी थी। वह लज्जा और सकोच के मारे यही आशा करता था कि फिर कभी वह लडकी मुझे न दिखाई पडे और अपनी ठठोलियो से मुझे तग न करे। अब, जिस समय वह यह सोच रहा था कि मुझे कोई न देख रहा है, वही लडकी उसके हजामत बनाने की नक्ल कर रही है। उसने हाथ मे एक तिनका ले रखा है। जब रघुनाथ उस्तरा चलाता है तब वह तिनका चलाती है। जब रघुनाथ हाथ खीचता है तब वह तिनका रोक लेती है।

रघुनाथ ने मुह दूसरी ओर किया। उसने भी वैसा ही किया। रघुनाथ ने दाहिना घुटना उठाकर अपना आसन बदला। वहा भी ऐसा ही हुआ। रघुनाथ ने बायी हथेली धरती पर टेककर अगडाई ली। लडकी ने भी वही मुद्रा की। ये सब प्रयोग रघुनाथ ने यह निश्चय करने के लिए ही किए थे कि यह लडकी क्या वास्तव मे मेरा मखौल कर रही है। उसने हल्का सा खखारा। रघुनाथ ने उतना

1. हजामत

ही खखारना उधर से सुना। अब सन्देह नहीं रह गया।

ऐसे अवसर पर बुद्धिमान लोग जो करना चाहते हैं, वही रघुनाथ ने किया। अर्थात् वह मुह बदलकर अपना काम करता गया और उसने विचार किया कि मैं उधर न देखूगा। इस विचार का वही परिणाम हुआ जो ऐसे विचारों का होता है अर्थात् दो ही मिनट में रघुनाथ ने अपने को उसी ओर देखते हुए पाया। अब लडकी ने भी अपना आसन बदल लिया था। रघुनाथ ने कई बार विचार किया कि मैं उधर न देखूगा, पर वह फिर उधर ही देखने लगा। आखें, जो मानो अभी पानी होकर बह जाएगी, सफेद हलका नीला कोआ, जिसमें एक प्रकार की चचलता, हँसी और घृणा तैर रही थी।

यह लडकी या पिंड नहीं छोडेगी। मैंने इसका क्या बिगाडा है ? इससे पूछू तो फिर बँस बनाएगी ? पर खैर, आज तो अकेली यही है। इसकी चोटों पर साधुवाद करने के लिए महिला मडल तो नहीं है। यह सोचकर रघुनाथ ने जोर से खखारा। वही जवाब मिला। उसने हाथ बढाकर अगडाई ली। वहा भी कगा तोडे गए। रघुनाथ ने एक पत्थर उठाकर नदी में फेका, उधर से ढेला फेंका गया और खलब करके पानी में बोला।

वह बिना वचनों की छेड रघुनाथ से सही न गई। उसने एक छोटी सी ककरी उठाकर लडकी की शिला पर मारी। जवाब में वैसी ही एक ककरी रघुनाथ की शिला में आ बजी। रघुनाथ ने दूसरी ककरी उठाकर फेंकी जो लडकी के समीप जा पडी। इस पर एक ककरी आकर रघुनाथ की पॉकेट बुक के आईने पर पट से बोली और उसे फोड गई। रघुनाथ कुछ चिप गया, उसकी हिम्मत कुछ बढ गई, अबके उसने जो ककरी मारी कि वह लडकी के हाथ पर जा लगी।

इस पर लडकी ने हाथ को झट से उठाया और स्वय उठी। जहा रघुनाथ बैठा था, वहा आई और उसके देखते देखते उसके सामने से टोपी, उस्तरा और पॉकेट-बुक तथा साबुन की बट्टी को उठाकर नदी की ओर बढी। जितना समय इस बात को लिखने और बाचने में लगा है उतना समय भी नहीं लगा कि उसने सबको पानी में फेंक दिया। रघुनाथ उसके हाथ को नदी की ओर बढते हुए देख उसका तात्पर्य समझकर किंकर्तव्यविमूढ सा हो ज्योंही दो कदम आगे धरता है कि पकाली शिला पर उसका पैर फिसला और वह धडाम से सिर के बल पानी में गिर पडा।

रघुनाथ तैरना नहीं जानता था यद्यपि वह मित्रों के साथ जाकर दारागज की गगा में नहा आया करता था। परतु चाहे कितना ही तैराक हो, औंधे सिर पानी में गिरने पर तो गोता खा ही जाता है। रघुनाथ का सिर पैंदे के पास पहुचते ही उसने दो गोते खाए और सीधा होते-होते उसकी सास टूट गई। यों

तो नदी मे पानी रघुनाथ के सिर से कुछ ही ऊंचा था और धीरज से उसके पैर टिक जाते तो वह हाथ फटफटाकर किनारे आ लगता, क्योंकि वह बहुत दूर नहीं गया था। पर फिसलने की घबराहट, सास का टूटना, गले म पानी भर जाना, नीचे दलदल—इन सबसे वह भौंचक होकर बीस-तीस हाथ बढता ही चला गया। नदी की तलैटी मे चट्टान थी, जो पानी के बहाव से क्रमश खिरती जाती थी। वहा पानी का नाला कुछ जोर से टकराकर चक्कर खाता था। वहा पहुचकर, पानी कम होने पर भी, हाथ-पाव मारने पर भी रघुनाथ के पैर नही टिके और उछलता हुआ पानी उसके मुह मे गया। वह नदी के बहाव की ओर जाने लगा। बालिका ने जान लिया कि बिना निकाले वह पानी से निकल न सकेगा। वह झट मारी से कछौटा कसकर पानी मे कूद पडी। जल्दी से तैरती हुई आकर उसने रघुनाथ का हाथ पकडना चाहा कि इतने मे रघुनाथ एक और चक्कर काटकर सिर पानी के नीचे करके खासने लगा। लडकी के हाथ उसकी चमडे की पेटी आयी थी जो उसने पतलून के ऊपर बांध रखी थी। वह एक हाथ से उसे खीचती हुई रघुनाथ को छर्रे के बहाव से निकाल लाई और दूसरे हाथ से पानी हटाती हुई किनारे की ओर बढने लगी। अब रघुनाथ भी सीधा हो गया था। पानी चीरने म खडा या मुडा आदमी लेटे हुए की अपेक्षा बहुत दुख दायी होता है। हाफती हुई कुमारी ने बिडराए हुए रघुनाथ को किनारे लगाया। रघुनाथ मुह और बालो का पानी निचोडता हुआ तरबतर कुरते और पतलून से धाराए बहाता हुआ चट्टान पर जा बैठा। पाच सात बार खासने पर, आंखें पोछने पर उसने देखा कि भीगी हुई कुमारी उसके सामने खडी है और उन्ही पिघलती हुई आखो से घृणा, दया और हँसी झलकाती हुई कह रही है कि—इस अनाडी के सामने भी कोई अपना लहँगा पसारेगी ?

ये सब घटनाए इतनी जल्दी-जल्दी हुई थी कि रघुनाथ का सिर चकरा रहा था। अभी पानी की गूज कानो को ढाल किए हुए थी और मानसिक क्षोभ और लज्जा से वह पागल सा हो रहा था। उसके मन की पिछली भित्ति पर चाहे यह अंकित रहा हो कि इस लडकी ने मुझे नदी मे से निकाला है, पर सामने की भित्ति पर यही था कि शब्द के कोडो से यह मेरी चमडी उधेडे डालती है।[1] रघुनाथ उसे पकडने के लिए लपका और लडकी दो खेतो की बाड के बीच की तग सडक पर दौड भागी। रघुनाथ पीछा करने लगा।

गांव की लडकिया हड्डियो और गहनो का बडल नही होती। वहा व दौडती हैं, कूदती हैं, हँसती हैं, गाती हैं, खाती हैं और पचाती हैं। नगरो म आकर वे खूंटे से बधकर कुम्हलाती है, पीली पड जाती हैं, भूखी रहती है, सोती हैं, रोती है और

१ 'उसने कहा था' क आरम्भ म भी इस भाषा का प्रयोग है। —सम्पादक

मर जाती हैं। रघुनाथ न मील को दौड मे इनाम पाया था। उस समय का दौडना उसने बहुत गुण बठा। पानी म गोते खाने के पीछे की शरीर की सारी शू यता मिटने लगी। पाव मील दौडने पर लडकी जितने हाथ आगे बढती थी व घटने लगे। सौ गज और जात जाते अचानक चीख मारकर लडखडाकर वह गिरने लगी। रघुनाथ उसके पास जा पहुचा। अवश्य ही रघुनाथ को इतन हफानेवाले श्रम के और मानसिक क्षोभ के पीछे यही भाव था कि इस लडकी को गुस्ताखी के लिए दड दू। रघुनाथ ने उस दोना बाहे डालकर पकड लिया। रघुनाथ क लिए स्त्री का और उस लडकी क लिए पुरुष का यह पहला स्पश था। रघुनाथ कुछ सोच भी न पाया था कि मैं क्या करू इतने मे लडकी ने मुह उसके सामने करक अपने नखा म उसकी पीठ म और बगल म बहुत तेज चुटकिया काटी। रघुनाथ की बाह ढीली हुई पर क्रोध नही। उसने एक मुक्का लडकी की नाक पर जमाया। लडकी सास लते रुकी। इतने म दौडने के वग स जा अभी न रुका था और मुक्के स दोनो नीच गिर पड। दोना धूल म लोटम लोट हो गए।

रघुनाथ धूल झाडता हुआ उठा। क्या दखता है कि लडकी के नाक स लहू बह रहा है। अपनी विजय का पहला आवेश एकदम स भूलकर वह पश्चात्ताप और दुख क पाश म फस गया। उसका मुह पसीना-पसीना हो गया। वह चाहता था कि इन लहू की बूदो के साथ मै भी धरती म समा जाऊ और उनके साथ ही अपनी आखें भूमि म गडा भी रहा था। परतु फिर क्षण म आखें उठ आई। लडकी अपने भीग और धूल लग हुए आचल स नाक पाछती हुई उन्ही आखो मे वही घृणा की और पछतावे की दृष्टि डालती हुई कह रही थी—

वाह अच्छे मद हो। बड बहादुर हो। स्त्रिया पर हाथ उठाया करते हैं?

रघुनाथ चुप।

वाह पिराग जी म खूब इलम पढा। स्त्रियो पर हाथ उठाते हाग?

रघुनाथ ने नीचे सिर म आखें न उठाकर कहा—

मुझसे बडी भूल हो गई। मुझ पता ही नही था कि मैं क्या कर रहा हू। मरा सिर ठिकाने नही है। मुझ चक्कर

अभी चक्कर आवेंग। स्त्रियो पर हाथ नही चलाया करते हैं।

सडक यहा चौडी हो गई थी। कचनार की एक वेल आम पर चढी हुई थी और आम के तले पत्थरो का चाबला था। सुनसान था। दूर से नदी की कलकल और रह रहकर खातीचिड की ठकठक ठकठक आ रही थी। इस समय रघुनाथ का घाघापन हटने लगा और स्त्रिया की ओर से झप इम पिघलती हुई आखा वाली क वचन बाणा के नीचे भागने लगी। ढाढस कर उसने पूछा—

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"भागवन्ती।"

"रहती कहा हो ?"

"मामी के पास—वही जिसने कुए पर पानी नही पिलाया था !"

उस दिन का स्मरण आते ही रघुनाथ फिर चुप हो गया। फिर कुछ ठहरकर बोला—"तुम मेरे पीछे क्यो पडी हो ?"

'तुम्हे आदमी बनाने को। जो तुम्हे बुरा लगा हो, तो मैंने भी अपने किए का लहू बहाकर फल पा लिया। एक सलाह दे जाती हू।"

"क्या !"

"कल से नदी मे नहाने मत जाना।"

"क्या ?'

"गोते खाओगे तो कोई बचानेवाला नही मिलेगा।"

रघुनाथ झेंपा, पर सम्हलकर बोला, "अब कोई मेरी जान बचाएगा तो मैं पीछा नही करूगा, दो गाली भी सुन लूगा।"

"इसलिए नहीं, मैं आज अपने बाप के यहा जाऊगी।"

"तुम्हारा घर कहा है ?"

'जहा अनाडियो के डबने के लिए कोई नदी नही है।"

"हू ! फिर वही बात लाई। तो वहा पर चिढानेवाला के भागने के लिए रास्ता भी न होगा।"

"जी, यहा जो मैं आपके हाथ आ गई।"

"नही तो ?"

"काटा न लगता तो पिराग जी तक दौडते तो हाथ न आती।"

"काटा ! काटा कैसा ?"

'यह देखो।"

रघुनाथ ने देखा कि उसके दाहने पैर के तलवे मे एक काटा चुभा हुआ है। उसको यह सूझी कि यह मेरे दोष से हुआ है। बालिका के सहारे वह घुटने के बल बैठ गया और उसका पैर खीचकर रूमाल से धूल झाडकर काटे को देखने लगा।

काटा मोटा था, पर पैर मे बहुत पैठ गया था। वह उठकर बाड से एक और बडा काटा तोड लाया। उससे और पतलून की जेब के चाकू से उसने काटा निकाला। निकालते ही लोहू का डोरा बह निकला। काटा प्राय दो इच लबा और जहरीली कटीली का था।

"ओफ !' कहकर रघुनाथ ने कमीज की आस्तीन फाडकर उसके पाव मे पट्टी बाध दी।

बालिका चुप बैठी थी। रघुनाथ काटे को निरख रहा था।

"अब तो दर्द नही ?'

"कोई एहसान थोडा है, तुम्हारे भी काटा गड जाए तो निकलवाने आ जाना।"

"अच्छा।" रघुनाथ का जी जल गया था। यह बर्ताव !

"अच्छा क्या ? जाओ, अपना रास्ता लो।"

"यह काटा मैं ले जाऊगा। आज की घटना की यादगारी रहेगी।"

"मैं इसे जरा देख लू।"

रघुनाथ ने अगूठे और तर्जनी स काटा पकडकर उसकी ओर बढाया।

अपनी दो अगुलियो से उसे उठाकर और दूसरे हाथ से रघुन थ को धक्का देकर लडकी हँसती-हँसती दौड गई। रघुनाथ धूल मे एक कलामुडी खाकर ज्योही उठा कि बालिका खेतो को फादती हुई जा रही थी।

अब की दफा उसका पीछा करने का साहस हमारे चरित्रनायक ने नही किया। नदी-तट पर जाकर कोट उठाया और चौधियाये मस्तिष्क से घर की राह ली।

[५]

रघुनाथ के हृदय मे स्त्री-जाति की अज्ञानता का भाव और उससे पृथक् रहने का कुहरा तो था ही, अब उसके स्थान मे उद्वेगपूर्ण ग्लानि का धूम इकट्ठा हो गया था। पर उस धूम के नीचे-नीचे उस चपल लडकी की चिनगारी भी चमक रही थी। अवश्य ही अपने पिछले अनुभव से वह इतना चमक गया था कि किसी स्त्री से बाते करने की उसकी इच्छा न थी, परतु रह-रहकर उसके चित्त मे उस पिघलती हुई आखावाली का और अधिक हाल जानने और उसके वचन-कांडे सहने की इच्छा होती थी। रघुनाथ का हृदय एक पहेली हो रहा था और उस पहेली मे पहेली उस स्वतत्र लडकी का स्वभाव था। रघुनाथ का हृदय धुए से घुट रहा था और विवाह के पास आते हुए अवसर को वह उसी भाव से देख रहा था, जैसे चैत्रकृष्ण मे बकरा आनेवाले नवरात्रो को देखता है।

इधर पिता जी और चाचा घर खोज रहे थे। आसपास गावो मे तीन चार पात्रियां थी, जिनके पिता अधिक धन के स्वामी न होने से अब तक अपना भार न उतार सके थे और अब बृहस्पति के सिंह का कवल हो जाने को अपने नरक-गमन का परवाना-सा देखकर भी आत्मघात नही कर रहे थे। हिंदू-समाज मे धौंस से कुछ नही होता, जरूरत से सब हो जाता है। बडे से बडा महाराज थैलियो के मुह खुलवाकर भी शास्त्र-जड लोगो से यह नही कहला सकता कि 'अष्टवर्षा भवेद् गौरी' पर हरताल लगा दो। उलटा अष्ट का अर्थ गर्भाष्ट

करके साल वर्ष तीन महीने की आयु निकाल बैठेंगे। परन्तु कभी शुक्र का छिपना, और कभी बृहस्पति का भागना, कभी घर का न मिलना और कभी पल्ले पैसा न होना, कभी नाडी विरोध और कभी कुछ—समझदार आदमी चाह तो कन्या को चौदह-पद्रह वर्ष की करके काशीनाथ से लेकर आजकल के महामहोपाध्यायो तक को अगूठा दिखला सकता है।

दो घर तो ज्योतिषी ने खो दिए। तीसरे के बारे मे भी उन्होंने लत्तापात करना चाहा था, पर कुछ तो ज्योतिषी के डाकखाने के द्वारा मनीआर्डर का ग्रहो पर प्रभाव पडा और कुछ रघुनाथ के पिता के इस बिहारी के दोह के पाठ का ज्योतिषी जी पर—

सुत पितु मारक जोग लखि, उपज्यो हिय अति सोग।
पुनि विहँस्यो गुन जोयसी, सुत लखि जारज जोग॥[1]

विधि मिल गई। झडीपुर मे सगाई निश्चित हुई। बीस दिन पीछे बरात चढेगी और रघुनाथ का विवाह होगा।

[६]

कन्यादान के पहले और पीछे वर-कन्या को, ऊपर एक दुशाला डालकर एक दूसर का मुह दिखाया जाता है। उस समय दुलहा दुलहिन जैसा व्यवहार करते हैं उससे ही उनके भविष्य दाम्पत्य सुख का थर्मामीटर माननेवाली स्त्रिया बहुत ध्यान से उस समय के दोनो के आकार विकार को याद रखती हैं। जो हो, झडीपुर की स्त्रिया मे यह प्रसिद्ध है कि मुह-दिखौनी के पीछे लडके का मुह सफेद फक् हो गया और विवाह मे जो कुछ होम वगैरह उसने किए व पागल की तरह। मानो उसने कोई भूत देखा था। और लडकी ऐसी गुम हुई कि उसे काटो तो खून नही। दिन-भर वह चुप रही और बिड़रायी आखो से जमीन देखती रही, मानो उसे भी भूत दिख रहे हो। स्त्रियों ने इन लक्षणो को बहुत अशुभ माना था।

१ सपादक द्वारा प्रस्तुत पाठातर—

(क) चित पितुमारक जाग गुनि, भयो भये सुत साग।
फिर हुलस्यो जिय जोयसी समुझ्यो जारज जाग॥
—बिहारी बोधिनी लाला भगवान दीन दीन, छद ६४६

(ख) चित पितमारक-जोगु गनि भयौ भयैं सुत सोगु।
फिरि हुलस्यौ जिय जोइसी, समुझैं जारज जोगु॥
—बिहारी-रत्नाकर सम्पादक जगन्नाथदास 'रत्नाकर, छद ५७७

(ग) चित पितमारक जोग गुनि, भयो भएँ सुत साग।
फिर हुलस्यौ जिय जोयसी, समुझैं जारज जोग॥
—बिहारी विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छद १७७

दुलहिन डोले मे बिदा होकर ससुराल आ रही थी। रघुनाथ घोडे पर था दोपहर चढने से कहारो और बरातियो ने एक बड की छाया के नीचे बावडी के किनारे डेरा लगाया कि रोटी-पानी करके और धूप काटके चलेगे। कोई नहाने लगा, कोई चूल्हा सुलगाने लगा। दुलहिन पालकी का पर्दा हटाकर हवा ले रही थी और अपने जीवन की स्वतत्रता के बदले मे पाई हुई हथकडियो और चादी की वेडियो को निरख रही थी। मनुष्य पहले पशु है, फिर मनुष्य। सभ्यता या शाति का भाव पीछे आता है, पहले पाशविक बल और विजय का। रघुनाथ ने पास आकर कहा—

"क्या कहा था, ऐसे मर्द के आगे कौन लहँगा पसारेगी?"

सिर पालकी के भीतर करके बालिका ने परदा डाल लिया।

रघुनाथ ने यह नही सोचा कि उसके जी पर क्या बीतती होगी। उसने अपनी विजय मानी और उसी की अकड मे बदला लेना ठीक समझा।

"हा, फिर तो कहना, इस बुड्ढ के आगे कौन लहँगा पसारेगी?"

चुप।

"क्यो, अब वह कैंची-सी जीभ कहा गई?"

चुप।

कहा तो रघुनाथ छेड से चिढता था, अब कहा वह स्वय छेडने लगा। उसकी इच्छा पहले तो यह थी कि यह बोली कभी न सुनू, परतु अब वह चाहता था कि मुझे फिर वैसे ही उत्तर मिले। विवाह के पहले अचभे के पीछे उसने दुख की आह के साथ-ही-साथ एक सतोष की आह भरी थी, क्योकि पहले दिनो की घटनाओ ने उसके हृदय पर एक बडा अद्भुत परिवर्तन कर दिया था।

"कहो जी, अब प्रयागवालो को अकल सिखाने आई हो? अब इतनी बातें कैसे सुनी जाती हैं?"

"मैं हाथ जोडती हू, मुझसे मत बोलो। मै मर जाऊगी।"

"तो नदी मे डूबते हुए बुद्धुओ को कौन निकालेगा?"

"अब रहने दो। यहा से हट जाओ। चले जाओ।"

"क्यो?"

"क्यो क्या, अब इस चक्की मे ऐसा ही पिसना है। जनम-भर का रोग है, जनम भर का रोना है।"

"नही, मुझे अकल सीखने का—" रघुनाथ ने व्यग्य से आरभ किया था, पर इतने म एक कहार चिलम मे तमाखू डालने आ गया। भूमिका की सफाई बिना कहे और बिना हुए ही रह गई।

[७]

हिंदू-घरो मे, कुछ दिनो तक, दपत्ती चोरो की तरह मिलते है। यह सयुक्त कुटुम्ब-प्रणाली का वर या शाप है। रघुनाथ ने ऐसे चोरी के अवसर आगरे आकर ढूढने आरभ किए, पर भागवन्ती टल जाती थी। उसने रघुनाथ को एक भी बात कहने का, या सुनने का मौका न दिया।

जुलाई मे रघुनाथ इलाहाबाद जाकर थर्ड इयर में भरती हो गया। दशहरे और बडे दिन की छुट्टियो मे आकर उसने बहुतेरा चाहा कि दो बाते कर सके, पर भागवन्ती उसके सामने ही नही होती थी। हा, कई बार उसे यह सदेह हुआ कि वह मेरी आहट पर ध्यान रखती है और छिप-छिपकर मुझे देखती है, पर ज्योही वह इस सूत पर आगे बढता कि भागवन्ती लोप हो जाती।

पढने की चिंता मे विघ्न डालनेवाली अब उसको यह नयी चिता लगी। यह बात उसके जी मे जम गई कि मैंने अमानुष निर्दयता से और बोली-ठोली से उसके सीधे हृदय को दुखा दिया है। परतु कभी-कभी यह सोचता कि क्या दोष मेरा ही है? उसने क्या कम ज्यादती की थी? जो ताने-तिश्ने उस समय उसके हृदय को बहुत ही चीरते हुए जान पडे थे, वे अब उसको स्मृति मे बहुत प्यारे लगने लगे। सोचता था कि मैं ही जाकर क्षमा मागूगा। जिन जाघो ने उसका पीछा किया था उन्हे बाधकर उसके सामने पडकर कहूगा कि उस दिनवाली चाल से मुझे कुचलती हुई चली जा। अथवा यह कहूगा कि उसी नदी मे मुझे ढकेल दे। यो तरह-तरह के तर्क-वितर्कों मे उसका समय कटने लगा। न 'हॉकी' मे अब उसकी कदर रही और न प्रोफेसर की आखें वैसी रही। उसी कीचड लगे हुए पतलून को मेज पर रखकर सोचता, सोचता, सोचता रहता।

होली की छुट्टिया आई। पहले सलाह हुई कि घर न जाऊ, काशी मे एक मित्र के पास ही छुट्टिया बिताऊ। उस मित्र ने प्रसग चलने पर कहा, "हा भाई, ब्याह के पीछे पहली होली है, तुम काहे को चलते हो!" वह रघुनाथ के हृदय के भार को क्या समझ सकता था? रघुनाथ ने हँसकर बात टाल दी। रात को सोचा कि चलो छुट्टियो मे बोर्डिंग मे ही रहू, पास ही पब्लिक-लाइब्रेरी है, दिन कट जाएगे। रात को जब सोया तो पिघलती हुई आखें, वही नाक से बहता हुआ खून और वह आसुओ से न ढकनेवाली हँसी! नीद न आ सकी। जैसे कोई सपने मे चलता है, वैसे बेहोशी मे ही सबरे टिकट लेकर गाडी मे बैठ गया। *पता नही कि मैं किधर जा रहा हू। चेत तब हुआ जब कुली 'टुडला', 'टुडला'* चिल्लाए। रघुनाथ चौका। अच्छा, जो हो, अब की दफा फिर उद्योग करूगा। यो कहकर हृदय को दृढ करके घर पहुचा।

होली का दिन था! जैसे कोजागर पूर्णिमा[1] को चोरो के लिए घर के दर-

1 शरत्पूर्णिमा को होने वाला एक त्योहार, शरत्पूर्णिमा

वाजे खुले छोडकर हिंदू सोते है, वैसे माता-पिता टल गए थे। मा पक्वान पका रही थी और बाप—खैर, बाप भी कही थे। रघुनाथ भीतर पहुचा। भागवन्ती सिर पर हाथ धरे हुए कोने मे बैठी थी। उसे देखते ही खडी हो गई। वह दरवाजे की तरफ बढने न पाई थी कि रघुनाथ बोला, "ठहरो, बाहर मत जाना।"

वह ठहर गई। घूघट खीचकर कोने की पीढी के बान को देखने लगी।

"कहो, कैसी हो? आज तुमसे बातें करनी हैं।"

चुप।

"प्रसन्न रहती हो? कभी मेरी भी याद करती हो?"

चुप।

"मेरी छुट्टिया तीन ही दिन की है।"

चुप।

"तुम्हे मेरी कसम है, चुप मत रहो, कुछ बोलो तो, जवाब दो—पहले की तरह ताने ही से बोलो, मेरी शपथ है—सुनती हो?"

"मेरे कानो मे पानी थोडा ही भर गया है।"

"हा, बस, यो ठीक है, कुछ ही कहो, पर कहती जाओ। अच्छा होता यदि तुम मुझे उस दिन न निकालती और डूब जाने देती।"

"अच्छा होता यदि मेरा काटा न निकालते और पैर गलकर मैं मर जाती।"

"तुमने कहा था कि कोई एहसान थोडा है, काटा गड जाए, तो मैं भी निकाल दूगी।"

"हा, निकाल दूगी।"

"कैसे।"

"उसी काटे से।"

"उसी काटे से! वह है कहा?"

"मेरे पास।"

"क्यो?—कब से।"

"जब से पतलून ट्रक मे बद होकर आगरे गई तब से।"

न मालूम पीढी का बान कैसा अच्छा था, निगाह उस पर से नही हटी। शायद तात गिनी जा रही थी।

"अनाडी की बात की नकल करती हो?"

गिनती पूरी हो गई। अब अपने नखो की बारी आई।

"क्यो, फिर चुप?"

"हा!"—नखो पर से ध्यान नही हटा।

रघुनाथ ने छत की ओर देखकर कहा—"अनाडियों की पीठ नख आजमाने

के लिए अच्छी होती है।"

नख छिपा लिए गए।

"काटा निकालोगी ?"

"हा !"

"काटा छत मे थोडा ही है।"

"तो कहा है ?"

"मैं तो अनाडी हू, मुझे लल्लो पत्तो करना नही आता, साफ कहना जानता हू, सुनो !" यह कहकर रघुनाथ बढा और उसने उसके दोनो हाथ पकड लिए।

उसने हाथ न हटाए।

"उस समय मैं जगली था, वहशी था, अधूरा था। मनुष्य जब तक स्त्री की परछाईं नही पा लेता है तब तक पूरा नही होता।[1] मेरे बुद्धूपन को क्षमा करो। मेरे हृदय मे तुम्हारे प्रेम का एक भयकर कांटा गड गया है। जिस दिन तुम्हे पहले-पहल देखा उस दिन से वह गड रहा है और अब तक गडा जा रहा है। तुम्हारी प्रेम की दृष्टि से मेरा यह शूल हटेगा।"

घूघट के भीतर, जहा आखें होनी चाहिए, वहा कुछ गीलापन दिखा।

"देखो, मैं तुम्हारे प्रेम के बिना जी नहीं सकता। मेरा उस दिन का रूखापन और जगलीपन भूल जाओ। तुम मेरी प्राण हो, मेरा काटा निकाल दो।"

रघुनाथ ने एक हाथ उसकी कमर पर डालकर उसे अपनी ओर खीचना चाहा। मालूम पडा कि नदी के किनारे का किला, नीव के गल जाने से, धीरे-धीरे धम रहा है। भागवन्ती का बलवान् शरीर, निस्सार होकर, रघुनाथ के कधे पर झूल गया। कधा आसुओ से गीला हो गया।

"मेरा कसूर—मेरा गँवारपन—मै उजड्ड—मेरा अपराध—मेरा पाप—मैने क्या कह डा · डा···डा·· आ···" घिग्घी बध चली।

उसका मुह बद करने का एक ही उपाय था। रघुनाथ ने वही किया।

[प्रथम प्रकाशन अज्ञात, रचनाकाल . सन् १९११-१५ के मध्य]

१ (क) 'यावज्जाया न विन्दते असर्वो हि तावदभवति' अर्थात् जब तक पत्नी प्राप्त नही करता, मनुष्य अपूर्ण ही रहता है। (शतपथ ब्राह्मण) —सम्पादक

(ख) गुलेरी जी ने अपने 'वाजपय' लेख म लिखा है—'जाया अपना अध है, जब तक मनुष्य उसे नहीं पाता तब तक फिर नहीं उपज सकता, अधूरा रहता है, उसे पाकर पूरा हो जाता है, फिर उत्पन्न हो सकता है।" देखें गुलेरी-ग्रथ-१, पृ० ४६, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, स० २००० वि०। —सम्पादक

उसने कहा था

[१]

बडे-बडे शहरो के इक्के-गाडी वालों की जबान के कोडो से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गये हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर मे बम्बूकार्ट वालों की वोली का मरहम लगायें। जब बडे-बडे शहरो[1] की चौडी सडको पर घोडे की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले कभी घोडे की नाभि से अपना निकट[2] सबध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलो की आखो के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरो की अगुलियो के पोरो को चीथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और ससार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर मे उनकी बिरादरी वाले, तग चक्करदार गलियो मे, हरएक लड्ढी वाले के लिए ठहरकर, सब्र का समुद्र उमडाकर, 'बचो खालसा जी', 'हटो भाई जी', 'ठहरना भाई', 'आने दो लालाजी', 'हटो बाछा'[3] कहते हुए सफेद फेंटो, खच्चरो और बतको, गन्ने और खोमचे और भारे वालों के जगल म से राह[4] खेते हैं। क्या मजाल है कि जी और साहब बिना सुने किसी को हटना पडे। यह बात नही कि उनकी जीभ चलती ही नही, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढिया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नही हटती तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—हट जा, जीणे जोगिए, हट जा, करमा वालिए, हट जा, पुत्ता प्यारिए, बच जा, लबी वालिए। समष्टि मे इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यो वाली है, पुत्रो को प्यारी है,

१ जबकि बड शहरा—गुलरी
२ निकट यौन सम्बध स्थिर करत है, कभी उसके गप्त गुह्य अगा स डाक्टरा को लजाने वाला परिचय दिखाते हैं।—गुलरी
३ बादशाह
४ राह किनारा—गुलेरी

लंबी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है? बच जा।

ऐसे बम्बूकार्ट वालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दुकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियां। दुकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

'तेरे घर कहा है?'

'मगरे में,—और तेरे?'

'मांझे में,—यहा कहा रहती है?'

'अतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते है।'

'मैं भी मामा के आया हू, उनका घर गुरु-बजार में है।'

इतने में दुकानदार निबटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुसकरा कर पूछा—'तेरी कुड़माई[1] हो गई?' इस पर लड़की कुछ आंखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गई और लड़का मुंह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जी वाले के यहा, या दूध वाले के यहा, अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा, 'तेरी कुड़माई हो गई?' और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की सम्भावना के विरुद्ध बोली—'हां, हो गई।'

'कब?'

'कल,—देखते नही यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू[2]!' लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ी वाले की दिन भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभी वाले के ठेले में दूध उड़ेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अंधे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुंचा।

[२]

'राम-राम, यह भी कोई लड़ाई है। दिन-रात खन्दकों में बैठे हड्डियां अकड़ गई।

१. मंगनी
२ (क) ओढ़नी
(ख) देखें गुलेरी ग्रंथ-१, पृ० २११, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं० २००० वि०

लुधियाने से दस गुना जाड़ा, और मेह और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। गनीम कहीं दिखता नहीं,—घण्टे दो घण्टे में कान के पड़दे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का जलजला सुना था, यहा दिन में पचीस जलजले होते हैं। जो कहीं खन्दक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।'

'लहनासिंह और तीन दिन है। चार तो खन्दक में बिता ही दिये। परसों रिलीफ आ जायगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका[1] करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उसी फरंगी[2] मेम के बाग में—मखमल का सा हरा घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है—'तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।'

'चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ा कर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जरमनों को अकेला मार कर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अँधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोडा था। पीछे से जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो—'

'नहीं तो सीधे बर्लिन पहुच जाते। क्यों?' सूबेदार हजारासिंह ने मुसकरा कर कहा, 'लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गये तो क्या होगा?'

'सूबेदारजी सच है' लहनासिंह बोला, 'पर करें क्या? हड्डियों-हड्डियों में तो जाडा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं और खाई में दोनों तरफ से चम्बे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय तो गरमी आ जाय।'

'उदमी[3], उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने बाल्टियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको।' महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदला दे।' यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगे।

१ बकरा मारना (काटना)
२ फ्रेंच
३ उद्यमी

वजीरासिह पलटन[1] का विदूषक था। बाल्टी मे गँदला पानी भर कर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—'मै पाधा बन गया हू। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण।' इस पर सब खिलखिला पडे और उदासी के बादल फट गये।

लहनासिह ने दूसरी बाल्टी भर कर उसके हाथ मे देकर कहा—'अपनी बाडी के खरबूजो मे पानी दो। ऐसा खाद का पानी पञ्जाब भर मे नही मिलेगा।'

'हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लडाई के बाद सरकार से दस घुमा[2] जमीन यहाँ माँग लूंगा और फलो के बूटे[3] लगाऊँगा।'

'लाडी होरा[4] को भी यहा बुला लोगे ? या वही दूध पिलाने वाली फरगी मम—'

'चुपकर। यहाँ वालो को शरम नही।'

'देस-देस की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तमाकू नही पीते। वह सिगरेट देने मे हठ करती है, ओठो मे लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुलक के लिए लडेगा[5] नही।'

'अच्छा, अब बोधसिंह कैसा है ?'

'अच्छा है।'

'जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रात भर तुम अपने दोनो कम्बल उसे उढाते हो और आप सिगडी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकडी के तख्तो पर उसे सुलाते हो। आप कीचड मे पडे रहते हो। कही तुम न माँदे पड जाना। जाडा क्या है मौत है और 'निमोनिया' से मरने वालो को मुरब्बे[6] नही मिला करते।'

'मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के आम के पेड की छाया होगी।'

वजीरासिह ने त्योरी चढा कर कहा—'क्या मरने मराने की बात लगाई है ? मरें जर्मनी और तुरक ! हाँ भाइयो कैसे—

१. पल्टन—गुलेरी
२ जमीन की नाप
३ पेड
४ स्त्री होरां=आदरवाचक
५ लडेगा—गुलेरी
६ नई नहरों के पास वर्ग-भूमि

दिल्ली शहर तें पिशौर नु जादिए,
कर लेणा लौगा दा बपार मडिए;
कर लेणा नाडेदा सौदा अडिए—
(ओय) लाणा चटाका कदुए नुं।
कद्दू बणया वे मजेदार गोरिए
हुण लाणा चटाका कदुए नुं ।।[1]

कौन जानता था कि दाढियों वाले, घरबारी सिख ऐसा लुच्चों का गीत गायेंगे, पर सारी खन्दक इस गीत से गूंज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गये, मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

[३]

दो पहर रात गई है। अँधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली विसकुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंह के दो कम्बल और एक बरानकोट[2] ओढकर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खडा हुआ है। एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

'क्यों बोधा भाई, क्या है?'

'पानी पिला दो।'

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा—'कहो कैसे हो?' पानी पीकर बोधा बोला—'कँपनी[3] छुट रही है। रोम-रोम मे तार दौड रहे है। दाँत बज रहे है।'

'अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।'

'और तुम?'

'मेरे पास सिगडी है और मुझे गर्मी लगती है, पसीना आ रहा है।'

'ना, मैं नही पहनता, चार दिन से तुम मेरे लिए—'

'हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलायत से मेमें बुन-बुन कर भेज रही है। गुरु उनका भला करें।' यो कह कर लहना अपना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

'सच कहते हो?'

१. अरी दिल्ली शहर से पेशावर को जाने वाली, लौंगो का व्यापार कर ले और इजारबन्द का सौदा कर ले। औम चटचटा कर कद्दू खाना है। गोरी! कद्दू मजेदार बना है। अब चटचटा कर उसे खाना है।

२. ओवरकोट

३. कँपकँपी

'और नही झूंठ?' यों वह कर नांही करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता भर पहन कर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने मे खाई के मुंह से आवाज आई—'सूबदार हजारासिंह!'

'कौन? लपटन साहब? हुकुम हुजूर' कह कर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

'देखो, इसी दम धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से जियादह[1] जर्मन नही है। इन पेड़ो के नीचे-नीचे दो खेत काट कर रास्ता है। तीन चार घुमाव हैं। जहां मोड़ है वहां पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूं। तुम यहां दस आदमी छोड़ कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खन्दक छीन कर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहां रहेगा।'

'जो हुक्म।'

चुपचाप सब तैयार हो गये। बोधा भी कम्बल उतारकर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुंह फेर कर खड़े हो गये और जेब मे सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—

'लो तुम भी पियो'

आंख मारते मारते[2] लहनासिंह सब समझ गया। मुंह का भाव छिपाकर बोला—'लाओ, साहब'। हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुंह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गये और उनकी जगह कैदियों के से कटे हुए बाल कहाँ से आ गये?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है? लहनासिंह ने जांचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेंट मे थे।

'क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जायेंगे?'

१ ज्यादा—गुलेरी
२. आँख पलकते पलकते—गुलेरी

लडाई खत्म होने पर। क्या क्या यह देश पस द नही ?

नही साहब, शिकार के वे मज यहाँ कहाँ ?[1] याद है पारसाल नकली लडाई के पीछे हम आप जगाधरी के जिल म शिकार करन गय थ— हाँ हाँ —वही जब आप खाते[2] पर सवार थ और आपका खानसामा अवदुल्ला रास्त क एक म दिर म जल चढाने को रह गया था ? वेशक पाजी कहा का —सामन स यह नीलगाय निकली कि ऐसी बडी मैंने कभी न दखी थी।[3] और आपकी एक गोली क ध म लगी और पुटठ म निकली। एस अफसर के साथ शिकार खलने म मजा है। क्यो साहब शिमल स तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रजमट की मैस म लगायेंग। हाँ पर मने वह विलायत भेज दिया —ऐस बड बड सीग ! दो दो फुट क तो हाग ?

हाँ लहनासिह दो फुट चार इच के थे। तुमने सिगरेट नही पिया ?

पीता हूँ साहब दियासलाई ले आता हूँ —कह कर लहनासिह खन्दक म घुसा। अब उसे स देह नही रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।[4]

अँधेरे म किसी सोन वाल स वह टकराया।

'कौन ? वजीरासिह ?

हाँ क्या लहना ? क्या कयामत आ गई ? जरा तो आँख लगने दी होती ?

[४]

होश म आओ। कयामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आई है।

क्या ?

लपटन साहब या तो मारे गय है या कैद हो गय है। उनकी वर्दी पहन कर यह कोई जमन आया है। सूबेदार ने इसका मुह नही देखा। मैंने देखा है और बातें की है। सोहरा साफ उदू बोलता है पर किताबी उदू। और मुझ पीने को सिगरेट दिया है ?

तो अब ?

अब मारे गये। धोखा है। सूबेदार होरा कीचड म चक्कर काटते फिरेंग

१ वह शिकार के मज यहा कहा ? गुलेरी
२ गधे
३ कि एसी बडी मैंने कभी नही देखा।—गुलेरी
४ उसने झटपट विचार लिया कि क्या करना चाहिए।—गुलेरी
५ ससुरा (गाली)

और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले म धावा होगा। उठो एक काम करो। पल्टन के पैरो क निशान देखत-देखत दौड जाओ। अभी बहुत दूर न गये होंगे। सूबेदार स कहो कि एकदम लौट आवें। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ खन्दक के पीछे स निकल जाओ। पत्ता तक न खुडके। देर मत करो।'

हुकुम तो यह है कि यहीं—'

'ऐसी तैसी हुकुम की ! मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहा सबसे बडा अफसर है उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूँ। पर यहा तो तुम आठ ही हो।'

आठ नही दस लाख। एक एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।

लौट कर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया।[1] उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब म बेल के बराबर तीन गोले निकाले।[2] तीनों को जगह जगह खन्दक की दीवारों[3] म घुसेड दिया और तीनों म एक तार सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी जिसे सिगडी के पास रक्खा। बाहर की तरफ जाकर एक दियासलाई जला कर गुत्थी पर रखने—

बिजली[4] की तरह दोनो हाथो से उलटी बन्दूक को उठा कर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तान कर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ स दियासलाई गिर पडी। लहनासिंह ने एक कुन्दा[5] साहब की गर्दन पर मारा और साहब 'आँख ! मीन गौट्ट'[6] कहते हुए चित्त हो गये। लहनासिंह ने तीनो गोले बीन कर खन्दक के बाहर फेंके[7] और साहब को घसीट कर सिगडी के पास लिटाया। जेबो की तलाशी ली। तीन चार लिफाफे और एक डायरी निकाल कर उन्हे अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँस कर बोला—क्यों लपटन साहब ? मिजाज कैसा है ? आज मैंने बहुत बात सीखी। यह सीखा कि सिख सिगरट

१ पल्टन के पैरो के खोज देखते-देखते दौड़ जाओ।—गुलेरी
२ लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दिवाल से चिपक गया।—गुलेरी
३ उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से तीन बेल के बराबर गोले निकाले।—गुलेरी
४ दीवालों—गुलेरी
५ इतने में बिजली की तरह।—गुलेरी
६ कुन्द—गुलेरी
७ हाय ! मेरे राम ! (जर्मन)
८. फके—गुलेरी

पीत है। यह सीखा कि जगाधरी के जिले म नीलगायें[1] हाती हैं और उनक दो फुट चार इच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तिया पर जल चढाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढते हैं। पर यह तो कहो एसी साफ उर्दू कहाँ म सीख आय ? हमारे लपटन साहब तो बिना डैम क पाँच लफ्ज भी नहीं बोला करत थ।

लहना ने पतलून की जेबो की तलाशी नहीं ली थी। साहब न मानो जाड स बचाने के लिए दोनो हाथ जबो म डाल।

लहनासिंह कहता गया— चालाक तो बडे हो पर माझ का लहना इतन बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उस चकमा देन क लिए चार आँखें चाहिए। तीन महीने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव म आया था। औरतो को बच्च होने के तावीज बाँटता था और बच्चो को दवाई देता था। चौधरी क बड क नीचे मजा[2] बिछा कर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जमनी वाल बड पण्डित है। वेद पढ पढकर उसम से विमान चलान की विद्या जान गय है। गौ को नहीं मारत। हिदुस्तान म आ जायेंगे तो गोहत्या बन्द कर दग। मण्डी के बनिया को बहकाता था कि डाकखान स रुपय निकाल लो। सरकार का राज्य जाने वाला है। डाक बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्लाजी की दाढी मूड दी थी और गाँव स बाहर निकाल कर कहा था कि जो मरे गाँव म अब पैर रक्खा तो—

साहब की जब म स पिस्तौल चला[3] और लहना की जाँघ म गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिनी क दो फायरो न साहब की कपाल क्रिया कर दी। धडाका सुनकर सब दौड आय।

बोधा चिल्लाया— क्या है ?

लहनासिंह न उस तो यह कहकर सुला दिया कि एक हडका हुआ कुत्ता आया था, मार दिया और औरो स सब हाल कह दिया। सब ब दूकें लकर तैयार हो गय। लहना ने साफा फाडकर घाव क दोनो तरफ पट्टियाँ कस कर बाँधी। घाव मास म ही था। पट्टियो के कसन से लहू निकलना ब द हो गया।

इतने म सत्तर जमन चिल्लाकर खाई म घुस पड। सिक्खो की ब दूको की बाढ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहा थ आठ (लहनासिंह तक तककर मार रहा था— वह खडा था और और लेटे हुए थे) और व सत्तर। अपने मुर्दा भाइयो के शरीर पर चढकर जमन आगे घुस आते थ। थोड स मिनिटो म व—

१ नीलगाए—गलेरी
२ खटिया
३ साहब की जब मे से पिस्तौल चली—गुलेरी

अचानक आवाज आई—"वाह गुरुजी की फतह ! वाह गुरुजी का खालसा !! ' और धडाधड बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पडने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच म आ गये। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के सगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी सगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—"अकाल सिक्खा दी फौज आई ! वाह गुरुजी दी फतह ! वाह गुरुजी दा खालसा ! सत श्रीअकालपुरुख !!! और लडाई खतम हो गई। तिरेसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खा म पन्द्रह के प्राण गये। सूबेदार के दाहने[1] कन्धे म म गोली आरपार निकल गई। लहनासिंह की पसली म एक गोली लगी। उसने घाव को खन्दक की गीली मट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कसकर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना के दूसरा घाव—भारी घाव—लगा है।

लडाई के समय चाद निकल आया था, ऐसा चाँद जिसके प्रकाश से सस्कृत-कवियों का दिया हुआ क्षयी नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्ट की भाषा मे 'दन्तवीणोपदेशाचार्य्य'[2] कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन मन भर फ्रास की भूमि मेरे बूटो स चिपक रही थी जब मैं दौडा दौडा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागजात पाकर व उसकी तुरत बुद्धि का सराह रहे थ और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लडाई की आवाज तीन मील दाहनी[3] ओर की खाई वालों ने सुन ली थी। उन्होने[4] पीछे टेलीफोन[5] कर दिया था। वहाँ स झटपट दा डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाडिया चली, जो कोई डेढ घण्टे के अन्दर-अन्दर आ पहुँची। फील्ड अस्पताल नजदीक था।[6] सुबह होते होते वहाँ पहुँच जायँगे, इस लिए मामूली पट्टी बाँधकर एक गाडी म घायल लिटाय गय और दूसरी मे लाशें रक्खी गईं। सूबदार ने लहनासिंह की जाघ म पट्टी बँधवानी चाही।[7] पर उसने यह

१ दहने—गुलेरी
२ 'दातो को वीणा का उपदेश दने वाली इतनी ठण्डा कि दाँत आपस म टकराकर टक् टक बजन लगें। (कादम्बरी) —सम्पादक
३ दहनी—गुलरी
४ उनने—गुलेरी
५ टैलीफोन—गुलेरी
६ वहाँ से भटपट दो डाक्टर और दो बीमारा को ढोने की गाडिया चली जो एक डढ घट म अन्दर अन्दर आ पहुची। फील्ड असपताल नजदीक था।—गुलेरी
७ सूबदार ने लहनासिह की जाँघ म पट्टी बँधवाना चाही।—गुलेरी

कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सबेरे देखा जाएगा। बोधासिंह ज्वर मे बर्रा[1] रहा था। वह गाडी मे लिटाया गया। लहना को छोडकर सूबेदार जाते नही थे।[2] यह देख लहना ने कहा[3]—

"तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनीजी की सौगन्द है जो इस गाडी मे न चले जाओ।"

"और तुम?"

"मेरे लिए वहाँ पहुँच कर गाडी भेज देना। और जर्मन मुरदो के लिए भी तो गाडियाँ आती होगी। मेरा हाल बुरा नही है। देखते नही मैं खडा हू ?[4] वजीरासिह मेरे पास है ही।"

"अच्छा, पर—"

"बोधा गाडी पर लेट गया? भला। आप भी चढ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरा को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैंने कर दिया।"

गाडिया चल पडी थी। सूबेदार ने चढते-चढते लहना का हाथ पकड़कर कहा—"तैंने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था?'

"अब आप गाडी पर चढ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना और कह भी देना।"

गाडी के जाते ही लहना लेट गया। 'वजीरा, पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है'।

[५]

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनायें एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यो के रग साफ होते है, समय की धुन्ध बिलकुल उन पर से हट जाती है।

× × ×

लहनासिह बारह वर्ष का है। अमृतसर मे मामा के यहा आया है। दही वाले के यहा, सब्जीवाले के यहा, हर कही, उसे एक आठ वर्ष की लडकी मिल जाती है। जब वह पूछता है कि तेरी कुड़माई हो गई ? तब 'धत्' कहकर वह

१. बर्रा—गुलेरी
२ सूबेदार लहना को छोडकर जाते नहीं थे।—गुलेरी
३. उसने कहा—गुलेरी
४. देखते नहीं म खडा हुआ हू ?—गुलेरी

भग जाती है।[1] एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा—"हा, कल हो गई, देखते नही यह रेशम के फूलोवाला सालू ?" सुनते ही लहनासिह को दुख हुआ। क्रोध हुआ। क्यो हुआ ?

'वज़ीरासिह, पानी पिला दे"।

× × ×

पच्चीस[2] वर्ष बीत गये। अब लहनासिह न० ७७ रैफल्स मे जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नही। सात दिन की छुट्टी लेकर ज़मीन के मुकद्मे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहा रेजिमेंट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है। फ़ौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हज़ारासिह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिह भी लाम पर जाते है। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ चलेंगे। सूबेदार का गांव रास्ते मे पडता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिह सूबेदार के यहां पहुँचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार वेढे[3] मे से निकलकर आया। बोला – लहना, सूबेदारनी तुमको जानती है। बुलाती है। जा मिल आ। लहनासिह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती है ? कब से ? रेजिमेंट के क्वार्टरो मे तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नही। दरवाज़े पर जाकर 'मत्था टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिह चुप।

'मुझे पहचाना ?'

'नही'।

"तेरी कुडमाई हो गई ?—धत्—कल हो गई···देखते नही रेशमी बूटो वाला सालू—अमृतसर मे—"

भावो की टकराहट मे मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

'वजीरा, पानी पिला'—'उसने कहा था'।

× × ×

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है—"मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गये। सरकार ने बहादुरी

१. वो 'धत्' कहकर भग जाती है।—गुलेरी
२. पचीस—गुलेरी
३ जनाने

का खिताब दिया है, लायलपुर मे जमीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियो[1] की एक घँघरिया[2] पलटन *क्यों न बना* दी जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती ? एक बेटा है। फौज मे भरती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार हुए, पर एक भी नही जिया"। सूबेदारनी रोने लगी। "अब दोना जाते हैं। मरे भाग ! तुम्हे याद है, एक दिन टाँगे वाले का घोडा दही वाल की दुकान के पास बिगड गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घाडो की लातो म चले गये थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खडा कर दिया था। ऐमे ही इन दोनो को बचाना[3]। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।"

रोती-रोती सूबेदारनी ओवरी[4] मे चली गई। लहना भी आँसू पोछता हुआ बाहर आया।

'वज़ीरासिह, पानी पिला'—'उसने कहा था'

× × ×

लहना का सिर अपनी गोदी तर रक्खे वजीरसिंह बैठा है।[5] जब मागता है, तब पानी पिला देता है। आध घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—

"कौन ? कीरतसिह ?'

वजीरा ने कुछ समझकर कहा, 'हा'।

'भाइया, मुझे और ऊंचा कर ले। अपने पट्ट[6] पर मेरा सिर रख ले।'

वजीर ने वैसा ही किया।

'हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस। अब के हाड[7] मे यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यही बैठकर आम खाना। जितना बडा तेरा भतीजा है उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था उसी महीने मे मैने इसे लगाया था।'

वज़ीरासिह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।[8]

१ स्त्रिया
२ घघरिया—गुलेरी
३ ऐसे इन दोनो को बचाना।—गुलेरी
४ अन्दर का घर
५ लहना का सिर अपनी गोदी पर लिटाए वजीरसिंह बैठा है।—गुलेरी
६ जाँघ
७ आषाढ
८. वजीरा सिंह के आँसू टप टप पड़ रहे थे।—गुलेरी

× × ×

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—

फ्रांस और बेलजियम[1]—६८वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

[प्रथम प्रकाशन सरस्वती जून, १९१५ ई०]

१. बेल्जियम—मुनेरो



निबंध

कछुआ-धरम

'मनुस्मृति' में कहा गया है कि जहाँ गुरु की निन्दा या असत्कथा हो रही हो वहाँ पर भले आदमी को चाहिए कि कान बंद कर ले या कहीं उठकर चला जाए। यह हिन्दुओं के या हिन्दुस्थानी सभ्यता के कछुआ धरम का आदर्श है। ध्यान रहे कि मनु महाराज ने न सुनने जोग गुरु की कलंक-कथा के सुनने के पाप से बचने के दो ही उपाय बताए हैं। या तो कान ढककर बैठ जाओ या दुम दबाकर चल दो। तीसरा उपाय, जो और देशों के सौ में नब्बे आदमियों को ऐसे अवसर पर पहले सूझेगा, वह मनु ने नहीं बताया कि जूता लेकर, या मुक्का तानकर सामने खड़े हो जाओ और निन्दा करने वाले का जबड़ा तोड़ दो या मुँह पिचका दो कि फिर ऐसी हरकत न करे। यह हमारी सभ्यता के भाव के विरुद्ध है। कछुआ ढाल में घुस जाता है, आगे बढ़कर मार नहीं करता। अश्वघोष महाकवि ने बुद्ध के साथ-साथ चले जाते हुए साधु पुरुषों की यह उपमा दी है—

देशादनार्यैरभिभूयमाना-महर्षयो धर्ममिवापयान्तम्।[1]

अनार्य लोग देश पर चढ़ाई कर रहे हैं। धर्म भागा जा रहा है। महर्षि भी उसके पीछे-पीछे चले जा रहे हैं। यह कर लेंगे कि दक्षिण के अप्रकाश देश को कोई अग्नि या अगस्त्य यज्ञों और वेदों के योग्य बना ले तब तक ही जब तक कि दूसरे कोई राक्षस या अनार्य उसे भी रहने के अयोग्य न कर दें ''पर यह नहीं कि डटकर सामने खड़े हो जावें और अनार्यों की बाढ़ को रोकें। पुराने से पुराने आर्यों की अपने भाई असुरों से अनबन हुई। असुर असुरिया में रहना चाहते थे, आर्य सप्तसिन्धुओं को आर्यावर्त बनाना चाहते थे। आगे चल दिए। पीछे वे दबाते आए। विष्णु न अग्नि और यज्ञपात्र और अरणि रखने के लिए तीन गाड़ियाँ बनाईं, उसकी पत्नी ने उनके पहियों की चूल को घी से आज दिया।

१ *अनार्यों द्वारा अपमानित महर्षि देश से उसी तरह चले जा रहे थे मानो धर्म ही चला जा रहा हो।*

ऊखल, मूसल और सोम कूटने के पत्थरो तक को साथ लिए हुए यह 'कारवा' मूजवत् हिन्दुकुश के एकमात्र दर्रे खैबर मे होकर सिन्धु की घाटी मे उतरा। पीछे से श्वात, भ्राज, अम्भारि, वम्भारि, हस्त, सुहस्त, कृशन, शण्ड, मर्क मारते चले आते थे, वज्र की मार से पिछली गाडी भी आधी टूट गई, पर तीन लम्बी डग भरने वाले विष्णु ने पीछे फिर कर नही देखा और न जमकर मैदान लिया। पितृभूमि अपने भ्रातृव्यो के पास छोड आए और यहा 'भ्रातृव्यस्य वधाय', 'सजाताना मध्यमेष्ठ्याय' देवताओ को आहुति देने लगे। चलो, जम गए। जहाँ जहाँ रास्ते मे टिके थे वहाँ वहाँ यूप खडे हो गए। यहा की सुजला सुफला शस्यश्यामला भूमि मे ये बुलबुलें चहकने लगी। पर ईरान के अंगूरो और गुलो का, यानी मूजवत् पहाड की सोमलता का, चसका पडा हुआ था। लेने जाते तो वे पुराने गन्धर्व मारने दौडते। हा, उनमे से कोई-कोई उस समय का चिलकौआ नकद नारायण लेकर बदले मे सोमलता बेचने को राजी हो जाते थे। उस समय का सिक्का गौएं थी। जैसे आजकल लखपति, करोडपति, कहलाते हैं वैसे तब 'शतगु', 'सहस्रगु' कहलाते थे। ये दमडीमल के पोते करोडीचन्द अपने 'नवग्वा', 'दशग्वा' पितरों मे शरमाते न थे, आदर से उन्हे याद करते थे। आजकल के मेवा बेचने वाले पेशावरियो की तरह कोई-कोई सरहदी यहा पर भी सोम बेचने चले आते थे। कोई आर्य सीमाप्रान्त पर जाकर भी ले आया करते थे। मोल ठहराने मे बडी हुज्जत होती थी जैसी कि तरकारियो का भाव करने मे कुजडिनो से हुआ करती है। ये कहते कि गौ की एक कला मे सोम बेच दो। वह कहता कि वाह! सोमराजा का दाम इससे कही बढकर है। इधर ये गौ के गुण बखानते। जैसे बुड्ढे चौबेजी ने अपने कधे पर चढी बालवधू के लिए कहा था कि याही मे बेटी और याही मे बेटा, ऐसे ये भी कहते कि इस गौ से दूध होता है, मक्खन होता है, दही होता है, यह होता है, वह होता है। पर काबुली काहे को मानता, उसके पास सोम की मानोपली थी और इन्हे बिना लिए सरता नही। अन्त को गौ का एक पाद, अर्ध, होते-होते दाम तै हो जाते। भूरी आँखो वाली एक बरस की बछिया मे सोमराजा खरीद लिए जाते। गाडी मे रखकर शान से लाए जाते। जैसे मुसलमानो के यहा सूद लेना तो हराम है, पर हिन्दू साहूकारो को सूद देना हराम होने पर भी देना ही पडता है वैसे यह तो फतवा दिया गया कि 'पापो हि सोमविक्रयी' पर सोम क्रय करना—उन्ही गन्धर्वो के हाथ गौ बेचकर सोम लेना—पाप नही कहला सका। तो भी सोम मिलने मे कठिनाई होने लगी। गन्धर्वों ने दाम बढा दिए या सफर दूर का हो गया, या रास्ते मे डाके मारने वाले 'वाहीक' आ बसे, कुछ न कुछ हुआ। तब यह तो हो गया कि सोम के बदले मे पूतिक लकडी का ही रस निचोड लिया जाय, पर यह किसी को न सूझी कि

जिस से जितना चाहे उतना साम घर बैठे मिले। उपमन्यु को उसकी मा ने और अश्वत्थामा को उसके बाप ने जैसे जल मे आटा घोलकर दूध कहकर पतिया लिया था, वैसे पूतिक की सीखो से देवता पतियाए जाने लगे।

अच्छा, अब उसी पचनद मे वाहीक आकर बसे। अश्वघोष की फडकती उपमा के अनुसार धर्म भागा और दड कमडल लेकर ऋषि भी भागे। अब ब्रह्मावर्त, ब्रह्मर्षिदेश और आर्यावर्त की महिमा हो गई और वह पुराना देश — न तत्र दिवस वसेत्। युगन्धरे पय पीत्वा कथ स्वर्गं गमिष्यति।।।

बहुत वर्ष पीछे की बात है। समुद्र पार के देशो मे और धर्म पक्के हो चले। वे लूटते मारते तो सही धर्म भी कर देते। बस, समुद्रयात्रा बन्द। कहा तो राम के बनाए सेतु का दर्शन करके ब्रह्महत्या मिटती थी और और कहा नाव मे जाने वाले द्विज का प्रायश्चित्त कराकर भी सग्रह बन्द। वही कछुआ धर्म! ढाल के अन्दर बैठे रहो।

पुर्तगाली यहा व्यापार करने आए। अपना धर्म फैलाने की भी सूझी। 'विपृत-जघना को विहातु समर्थ ?' कुए पर सैकडो नर-नारी पानी भर रहे और नहा रहे थे। एक पादरी ने कह दिया कि मैंने इसमे तुम्हारा अभक्ष्य डाल दिया है। फिर क्या था? कछुए को ढाल वल उलट दिया गया। अब वह चल नही सकता। किसी ने यह नही सोचा कि अज्ञात पाप पाप नही होता। किसी ने यह नही सोचा कि कुल्ले कर लें, घडे फोड दें या कै ही कर डालें। गाव के गाव ईसाई हो गए। और दूर-दूर के गावो के कछुओ को यह खबर लगी तो बम्बई जाने मे भी प्रायश्चित्त कर दिया गया।

हिंदू से कह दीजिए कि विलायती खाड खाने मे अधर्म है। उस मे अभक्ष्य चीजें पडती है। चाहे आप वस्तुगति से कहे, चाहे राजनैतिक चालबाजी से कहे, चाहे अपने देश की आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए उसकी सहानुभूति उपजाने को कहे। उसका उत्तर यह नही होगा कि राजनैतिक दशा सुधरनी चाहिए। उसका उत्तर यह नही होगा कि गन्ने की खेती बढे। उसका केवल एक ही कछुआ उत्तर होगा—वह खाड खाना छोड देगा, बनी-बनाई मिठाई गौओं को डाल देगा, या बोरिया गगाजी मे बहा देगा। कुछ दिन पीछे कहिए कि देसी खाड के बेचनेवाले भी सफेद बूरा बनाने के लिए वही उपाय करते है। वह मैली खाड खाने लगेगा। कुछ दिन ठहरकर कहिए कि सस्ती जावा या मोरस की खाड मैली करके बिक रही है। वह गुड पर उतर आवेगा। फिर कहिए कि गुड के शीरे मे भी सस्ती मोरिस की मैल का मल है। वह गुड छोडकर पितरो की तरह शहद (मधु) खाने लगेगा, या मीठा ही खाना छोड देगा। वह सिर निकालकर यह न देखेगा कि सात सेर की खाड छोडकर डेढ सेर की कब तक खाई जायगी, यह न सोचेगा कि बिना मीठे कब तक रहा जाएगा। यह नही देखेगा कि उसकी

सी मति वाले शरबत न पीने वालो की सख्या घटती-घटती दहाइयो और इका-इयो पर आ जा रही है, वह यह नही विचारेगा कि बन्नू से कलकत्ते तक डाक-गाडी मे यात्रा करनेवाला जून के महीने मे झुलसते हुए कठ को बरफ मे ठडा किए बिना नहीं रह सकता। उसका कछुआपन कछुआ-भगवान् की तरह पीठ पर मदराचल की मथनी चलाकर समुद्र से नए-नए रत्न निकालने के लिए नही है। उसका कछुआपन ढाल के भीतर और भी सिकुडकर घुस जाने के लिए है।

किसी बात का टोटा होने पर उसे पूरा करने की इच्छा होती है, दुख होने पर उसे मिटाना चाहते हैं। यह स्वभाव है। अपनी अपनी समझ है। ससार मे त्रिविध दुख दिखाई पडने लगे। उन्हे मिटाने के लिए उपाय भी किए जाने लगे। 'दृष्ट' उपाय हुए। उनसे सतोष न हुआ तो सुने सुनाए (आनुश्रविक) उपाय किए। उनसे भी मन न भरा। साख्यो ने काठ कडी गिन गिनकर उपाय निकाला, बुद्ध ने योग म पक्कर उपाय खोजा, किसी ने कहा कि बहस, बकझक, वाक्छल, बोली की चूक पकडने और कच्ची दलीलों की सीवन उधेडने मे ही परम पुरुषार्थ है। यही शगल सही। किसी न किसी तरह कोई न कोई उपाय मिलता गया। कछुओ ने सोचा, चोर को क्या मारें, चोर की मा का ही न मारें। न रहे बास न बजे बासरी। यह जीवन ही तो सारे दुखों की जड है। लगी प्रार्थनाए होने—

"मा देहि राम! जननीजठरे निवासम्" "ज्ञात्वेत्थ न पुनः स्पृशन्ति जननी-गर्भार्भकत्व जना"[1] और यह उस देश मे जहां कि सूर्य का उदय होना इतना मनोहर था कि ऋषियों का यह कहते कहते तालु सूखता था कि सौ बरस इसे हम उगता देखें, सौ बरस सुनें, सौ बरस बढ बढकर बोले, सौ बरस अदीन होकर रहें—सौ बरस ही क्यों, सौ बरस से भी अधिक। भला जिस देश मे बरस मे दो ही महीने घूम-फिर सकते हो और समुद्र की मछलिया मारकर नमक लगाकर सुखाकर रखना पडे कि दस महीने के शीत और अँधियारे मे क्या खाएगे, वहा जीवन से इतनी ग्लानि हो तो समझ मे आ सकती है पर जहा राम के राज मे 'अकृष्ट-पच्या पृथिवी पुटके पुटके मधु'[2] बिना खेती के फसलें पक जायें और पत्ते पत्ते मे शहद मिले, वहा इतना वैराग्य क्यों?

हयग्रीव या हिरण्याक्ष दोनो मे से किसी एक दैत्य से देव बहुत तग थे। कवि कहता है—

१ 'हे राम! जननी के गर्भ मे निवास मत देना।'
'ऐसा ज्ञान होने पर जननी के गर्भ का स्पर्श मनुष्यों को नहीं करना पडता।'

२ बिना जोते बोए धरती अन्न देती थी और पत्ते पत्ते मे शहद मिलता था।—सम्पादक

विनिर्गतं मानदमात्ममन्दिराद्भवत्युपश्रुत्य यदृच्छयापि यम्।
ससम्भ्रमेन्द्रद्रुतपातितार्गला निमीलिताक्षीव भियामरावती ॥

महाशय यों ही मौज से घूमने निकले हैं। सुरपुर में अफवाह पहुंची। बस, इंद्र ने झटपट किवाड़ बंद कर दिए, आगल डाल दी। मानो अमरावती ने आंखें बंद कर लीं।

यह कछुआ-धरम का भाई शुतुर्मुर्ग-धरम है। कहते हैं कि शुतुर्मुर्ग का पीछा कीजिए तो वह बालू में सिर छिपा लेता है। समझता है कि मेरी आंखों से पीछा करनेवाला नहीं दीखता तो उसे भी मैं नहीं दीखता। लंबा-चौड़ा शरीर चाहे बाहर रहे, आंखें और सिर तो छिपा लिया। कछुए ने हाथ-पांव-सिर भीतर डाल लिया।

इस लड़ाई में कम-से-कम पांच लाख हिन्दू आगे-पीछे समुद्र पर जा आए हैं। पर आज कोई पढ़ने के लिए विलायत जाने लगे तो हुनोज़ रोज़ अव्वल अस्त! अभी पहिला ही दिन है! सिर रेत में छिपा है!!

[प्रथम प्रकाशन प्रतिभा दिसम्बर, १६१६ ई०]

मारेसि मोहिं कुठाऊँ

जब केकयी[1] ने दशरथ मे यह वर मागा कि राम को वनवास दे दो तब दशरथ तलमला उठे, कहने लगे कि चाहे मेरा सिर माग ले, अभी दे दूगा किन्तु मुझे राम के विरह से मत मार। गोसाईं तुलसीदास जी के भाव भरे शब्दो मे राजा ने सिर धुनकर, लबी सास भरकर कहा कि 'मारेसि मोहि कुठाऊँ'—मुझे बुरी जगह पर घात किया। ठीक यही शिकायत हमारी आर्य समाज से है। आर्य समाज ने भी हमे कुठावें मारा है, कुश्ती मे बुरे पेच से चित पटका है।

हमारे यहा पजी शब्दो की है, जिससे हमे काम पडा, चाहे और बातो मे हम ठगे गये पर हमारी शब्दो की गाठ नही कतरी गई। राज के और धन के गठकटे यहा कई आये पर शब्दो की चोरी (महाभारत के ऋषियो की कमल नाल की तात की चोरी की तरह) किसी ने न की, यही नही, जो आया उससे हमने कुछ ले लिया।

पहले हमे काम असुरो से पडा, असीरिया वालो से। उनके यहा असुर शब्द बडी शान का था। असुर माने प्राण वाला, जबरदस्त। हमारे इन्द्र की भी यही उपाधि हुई, पीछे चाह शब्द का अर्थ बुरा हो गया। फिर काम पडा पणिया से फिनीशियन व्यापारियो से। उनसे हमने पण् धातु पाया जिसका अर्थ लेन दन करना, व्यापार करना है। एक पणि उनमे से ऋषि भी हो गया जो विश्वामित्र के दादा गाधि या गाधि की कुर्सी के बराबर जा बैठा। कहते है कि उसी का पोता पाणिनि था जो दुनिया को चकराने वाला सर्वांग-सुन्दर व्याकरण हमारे यहा बना गया। पारस के पर्शवों या पारसियो मे काम पडा तो वे अपने सूबेदारो की उपाधि क्षत्रा या क्षत्रपावन् या महाक्षत्रप हमारे यहा रख गये और गुस्तास्प, विस्तास्प के वजन के कृशवाश्व, श्यावाश्व, वृहदश्व आदि ऋषियो और राजाओ के नाम दे गय। यूनानी यवनो से काम पडा तो वे यवन की लिपि यवनानी शब्द हमारे व्याकरण के भेट कर गये। साथ ही बारह राशिया मेष, वृष, मिथुन आदि भी

[1] कैकेयी

यहां पहुंचा गये। इन राशियों के ये नाम तो उनकी असली ग्रीक शक्लों के नामों के संस्कृत तद्भव हैं, पुराने ग्रंथकार तो शुद्ध यूनानी नाम आर, तार, जितुम आदि काम में लेते थे। ज्योतिष में यवनसिद्धांत को आदर से स्थान मिला। वराहमिहिर की स्त्री खना यवनी रही हो या न रही हो, उसने आदर से कहा है कि म्लेच्छ यवन भी ज्योतिःशास्त्र जानने से ऋषियों की तरह पूजे जाते हैं। अब चाहे वेल्यूपेवल सिस्टम भी वेद में निकाला जाय पर पुराने हिन्दू कृतघ्न और गुम्मार नहीं थे। सेल्यूकस निकेटर की कन्या चन्द्रगुप्त मौर्य के जनाने में आई, यवन राजदूतों ने विष्णु के मंदिरों में गरुडध्वज बनाये और यवन राजाओं की उपाधि सोटर त्रातार का रूप लेकर हमारे राजाओं के यहां आ लगी। गन्धार से न केवल दुर्योधन की मां गान्धारी आई, बालवाली भेड़ों का नाम आया। वल्ख से केसर और हींग का नाम बाल्हीक आया। घोड़ों के नाम पारसीक, काम्बोज, वनायुज, वाल्हीक आये। शकों के हमले हुए तो 'शाकपार्थिव' वैयाकरणों के हाथ लगा और शक संवत् या शाका सर्व साधारण के। हूण वक्षु (Oxus) नदी के किनारे पर से यहां चढ आये तो कवियों को नारंगी की उपमा मिली कि ताजा मुंडे हुए हूण की ठुड्डी की-सी नारंगी। कलचुरि राजाओं को हूणों की कन्या मिली। पंजाब में वाहीक नामक जंगली जाति आ जमी तो बेवकूफ बौडम के अर्थ में (गौर्वाहीक) महाविरा चल गया। हां, रोमवालों से कोरा व्यापार ही रहा पर रोमक सिद्धान्त ज्योतिष के कोश में आ गया। पारसी राज्य राज्य न रहा पर सोने के सिक्के निष्क और द्रम्म (दिरहम) और दीनार (डिनारियल) हमारे भंडार में आ गये। अरबों ने हमारे 'हिंद से' लिये तो ताजिक, मुथहा, इत्थशाल आदि दे भी गये। कश्मीरी कवियों को प्रेम के अर्थ में हेवाक दे गये। मुसलमान आये तो सुलतान का सुरत्राण, अमीर का हम्मीर मुगल का मुङ्गल मसजिद का मसीति कई शब्द आ गये। लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तान अब एक हो रहा है, हम कहते हैं कि पहले एक था अब बिखर रहा है। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा वैज्ञानिक परिभाषा का कोष बनाती है उसी की नाक के नीचे बाबू लक्ष्मीचन्द वैज्ञानिक पुस्तकों में नई परिभाषा काम में लाते हैं, पिछवाड़े में प्रयाग की विज्ञान परिषद् और ही शब्द गढती है। मुसलमान आये तो कौन सी बाबू श्यामसुन्दर की कमिटी बैठी थी कि सुलतान को सुरत्राण कहो और मुगल को मुङ्गल? तो भी कश्मीरी कवि या गुजराती कवि या राजपूताने के पण्डित सब सुरत्राण कहने लग गये। एकता तब थी कि अब?

बौद्ध हमारे यहीं से निकले थे, उस समय के वे आर्यसमाजी ही थे, उन्होंने भी हमारे भंडार को भरा, हम तो देवानां प्रिय मूर्ख को कहा करते थे, उन्होंने पुण्यश्लोक धर्माशोक के साथ यह उपाधि लगाकर इसे पवित्र कर दिया हम

निर्वाण के माने दिये का बिना हवा के बुझना ही जानते थे, उन्होंने मोक्ष का अर्थ कर दिया, अवदान का अर्थ परम सात्विक दान भी उन्होंने किया।

बकौल शेक्सपीयर के जो मेरा धन छीनता है वह कूड़ा चुराता है, पर जो मेरा नाम चुराता है वह सितम ढाता है, आर्यसमाज ने वह मर्मस्थल पर मार की है कि कुछ कहा नहीं जाता, हमारी ऐसी चोटी पकड़ी है कि सिर नीचा कर दिया, औरों ने तो गाँठ का कुछ न दिया, इन्होंने अच्छे-अच्छे शब्द छीन लिये इसीसे कहते हैं कि मारेसि मोहि कुठाऊँ, अच्छे अच्छे पद तो यों सफाई से ले लिये हैं कि इस पुरानी जमी हुई दुकान का दिवाला निकल गया ।! लेने के देने पड़ गये !!!

हम अपने आपको 'आर्य' नहीं कहते, 'हिंदू' कहते हैं, जैसे परशुराम के भय से क्षत्रियकुमार माता के लहँगों में छिपाये जाते थे वैसे विदेशी शब्द हिन्दू की शरण लेना पड़ती है और आर्यसमाज पुकार-पुकारकर जले पर नमक छिड़कता है कि हैं ! क्या करते हो ? हिन्दू माने काला, चोर, काफिर !! अरे भाई ! कहीं हमने भी दोगे ? हमारी मंडलियाँ भले 'सभा' कहलावें, 'समाज' नहीं कहला सकतीं ? न आर्य रहे न समाज रहा तो क्या अनार्य कहें और समज कहें (समज पशुओं का टोला होता है) ? हमारी सभाओं के पति या उपपति (गुस्ताखी माफ, उपसभापति से मुराद है) हो जावें किंतु प्रधान या उपप्रधान नहीं कहा सकते ? हमारा धर्म वैदिकधर्म नहीं कहलायेगा, उसका नाम रह गया है—सनातन धर्म, हम हवन नहीं कर सकते, होम करते हैं, हमारे संस्कारों की विधि संस्कार विधि नहीं रही वह पद्धति (पैर पीटना) रह गई उनके समाज मंदिर होते हैं, हमारे सभाभवन होते हैं। और तो क्या, 'नमस्ते' का वैदिक फिकरा हाथ से गया—चाहे जय रामजी कह लो, चाहे, जय श्रीकृष्ण, नमस्ते मत कह बैठना। ओंकार बड़ा मांगलिक शब्द है, कहते हैं कि यह पहले पहल ब्रह्मा का कंठ फाड़कर निकला था। (प्रत्येक मंगल कार्य के आरंभ में हिंदू श्रीगणेशाय नम कहते हैं। अभी इस बात का श्रीगणेश हुआ है—इस मुहावरे का अर्थ है कि अभी आरंभ हुआ है। एक वैश्य यजमान के यहाँ मृत्यु हो जाने पर पंडित जी गरुडपुराण की कथा कहने गये। आरम्भ किया श्रीगणेशाय नम । सेठ जी चिल्ला उठे—वाह महाराज हमारे यहाँ तो यह बीत रहा है और आप कहते हैं कि श्रीगणेशाय, नम माफ करो। जब से चाल चल गई है कि गरुडपुराण की कथा में श्रीगणेशाय नम नहीं कहते श्रीकृष्णाय नम कहते हैं) उसी तरह अब सनातनी हिंदुओं न बोल सकते हैं, न लिख सकते हैं, सन्ध्या या यज्ञ करने पर जोर नहीं देते, श्रीमद्-भागवत की कथा या ब्राह्मण भोजन पर संतोष करते हैं।

और तो और, आर्यसमाज ने तो हमें झूठ बोलने पर लाचार किया, यों हम लिल्लाही झूठ न बोलते, पर क्या करें। इश्कबाजी और लड़ाई में सब कुछ

जायज है। हिरण्यगर्भ के मान सान की काचरी पहन हुए कृष्णचंद्र करना पडता है चत्वारि शृंगावाल मंत्र का अर्थ मुरली करना पडता है अष्टवर्षोऽष्टवर्षो वा म अष्ट च अष्ट च एरं शष करना पडता है, शतपथ ब्राह्मण के महावीर नामक कपाला को मूर्तियां बनाना पडता है। नाम तो रह गया हिंदू। तुम चिढ़ात हो कि इसके माने होते है काला चोर या काफिर। अब क्या करें? कभी तो इसकी व्युत्पत्ति करते हैं कि हि×इन्दु। कभी मरु तंत्र का सहारा लेते हैं कि हीनं च दूषयत्येव हिन्दुरित्युच्यते प्रिये।' यह उमामहेश्वर संवाद है कभी सुभाषित के श्लोक 'हिंदवो विन्ध्यमाविशन्' को पुराना कहते है और यह उडा जाते हैं कि उसी के पहले 'यवनैरवनि क्रान्ता' भी कहा है कभी महाराज कश्मीर के पुस्तकालय म कालिदासरचित विक्रम महाकाव्य म 'हिन्दपति पाल्यताम्' पद प्रथम श्लोक म मानना पडता है इसके लिए महाराज कश्मीर क पुस्तकालय की कल्पना कि जिसका सूचीपत्र डाक्टर स्टाइन न बनाया हो वहां पर कालिदास के कल्पित काव्य की कल्पना कालिदास के विक्रम संवत चलाने वाले विक्रम के यहां होन की कल्पना तथा यवनों म असंपृक्त (यवन माने मुसलमान! भला यूनानी नहीं) समय म हिंदूपद के प्रयोग की कल्पना कितना दुख तुम्हारे कारण उठाना पडता है!!

बाबा दयानंद ने चरक के एक प्रसिद्ध श्लोक का हवाला दिया कि सोलह वर्ष स कम अवस्था की स्त्री म पचीस वर्ष स कम पुरुष का गर्भ रहे तो या तो वह गर्भ म ही मर जाय या चिरजीवी न हो या दुर्बलेन्द्रिय होकर जीवे। हम समझ गये कि यह हमारे बालिका विवाह की जड कटी—नहीं बालिकारंभस पर कुठार चला। अब क्या करें। चरक कोई धर्मग्रंथ तो है नहीं कि जाड की दूसरी स्मृति म से दूसरा वाक्य तुर्की बतुर्की जवाब म दे दिया जाय। धर्मग्रंथ नहीं है आयुर्वेद का ग्रंथ है इसलिए उसके चिरकाल न जीने या दुर्बलेंद्रिय होकर जीने की बात का मान भी कुछ अधिक हुआ। यों चाहे मान भी नेति—और व्यवहार मे मानते ही हैं—पर बाबा दयानन्द ने कहा तो उसकी तरदीद होनी चाहिए। एक मुरादाबादी पंडित जी लिखते है कि हमारे पडदादा के पुस्तकालय म जो चरक की पोथी है उसमें पाठ है—

ऊन द्वादशवर्षायामप्राप्त पञ्चविंशतिम्।

लीजिए चरक तो बारह वर्ष पर ही 'एज ऑफ कन्सेंट बिल' देता है बाबा

१ हे प्रिये! जो हीनता नीचता से द्वेष करे वही हिंदू है।
२ हिंदू विंध्य पर्वत मे घुस आए।
३ यवनों द्वारा पृथ्वी आक्रांत हुई।
४ बारह वर्ष स कम की कन्या और पच्चीस स कम का वर। —सम्पादक

जी क्यों सोलह कहते हैं ? चरक की छपी पोथियों में कहीं यह पाठ न मूल में है, न पाठान्तरों में। न हुआ कर—हमारे पड़दादा की पोथी में तो है!

इसीलिए आर्यसमाज से कहते हैं कि 'मारेसि मोहिं कुठाऊँ'।

[प्रथम प्रकाशन प्रतिभा सितम्बर, १९२० ई०]

देवकुल

'हर्षचरित' के आरभ मे महाकवि बाण ने भास के विषय मे यह श्लोक लिखा है—

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकै ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

अर्थात् जैसे कोई पुण्यात्मा देवकुल (देवालय) बनाकर यश पाता है वैसे भास ने नाटको से यश पाया। देवकुलो का आरभ सूत्रधार (राजमिस्त्री) करते है, भास के नाटको मे भी नादी रगमच पर नही होती, पर्दे की ओट मे ही हो जाती है।

नाटक का आरभ 'नान्द्यन्ते तत प्रविशति सूत्राधार', नादी के पीछे सूत्रधार ही आकर करता है। मदिरो मे कई भूमिकाए (खड या चौक) होते है, भास के नाटको मे भी कई भूमिकाए (पार्ट) है। मदिरो पर पताकाए (ध्वजाए) होती हैं, इन नाटको मे भी पताका (नाटक का एक अग) होती है। यो देवकुल सदृश नाटको से भास ने यश पाया था। किंतु आधुनिक ऐतिहासिक खोज मे यह एक बात और निकली कि भास ने 'देवकुल' से ही यश पाया।

महामहोपाध्याय पडित गणपति शास्त्री के अध्यवसाय से ट्रावकोर मे भास के कई नाटक उपलब्ध हुए हैं। वे त्रिवेंद्रम सस्कृत ग्रथमाला मे छपे हैं। उनमे एक प्रतिमानाटक भी है। उसका नाम ही प्रतिमा यो रखा गया है कि कथानक का विकास प्रतिमाओ से होना है। नाटक रामचरित के बारे मे है। भरत ननिहाल ककय देश मे गया है। शत्रुघ्न साथ नही गया है, इधर अयोध्या मे ही है। भरत को वर्षों से अयोध्या का परिचय नही। पीछे केकयी ने वर मागे, राम वन चले गए, दशरथ ने प्राण दे दिए। मत्रियो के बुलाने पर भरत अयोध्या को लौटा आ रहा है। इधर अयोध्या के बाहर एक दशरथ का प्रतिमागृह, देवकुल, बना हुआ

है। इतना ऊंचा है कि महलो मे भी इतनी ऊंचाई नही पाई जाती।[1] यहा राम वनवास के शोक से स्वर्गगत दशरथ की नई स्थापित प्रतिमा को देखने के लिए रानियां अभी आने वाली हैं। आर्य सभव की आज्ञा से वहा पर एक सुधाकर (सफेदी करनेवाला) सफाई कर रहा है। कबूतरो के घोसले और बीट, जो तब से अब तक मदिरो को बिगारते आए है, गर्भगृह (जगमोहन) मे से हटा दिए गए हैं। दीवालो पर सफेदी और चदन के हाथो के छापे (पचागुल) दे दिए गए हैं।[2] दरवाजो पर मालाए चढा दी गई हैं। नई रेत बिछा दी गई है। तो भी सुधाकर काम से निबटकर सो जाने के कारण सिपाही के हाथ से पिट जाता है। अस्तु। भरत अयोध्या के पास आ पहुचा। उसे पिता की मृत्यु, माता के षड्यंत्र और भाई के बनवास का पता नही। एक सिपाही ने सामने आकर कहा कि अभी कृत्तिका एक घडी बाकी है, रोहिणी मे पुरप्रवेश कीजिएगा। ऐसी उपाध्यायों की आज्ञा है। भरत ने घोडे खुलवा दिए और वृक्षों मे दिखाई देते हुए देवकुल मे विश्राम के लिए प्रवेश किया। वहा की सजावट देखकर भरत सोचता है कि किसी विशेष पर्व के कारण यह आयोजन किया गया है या प्रतिदिन की आस्तिकता है? यह किस देवता का मदिर है? कोई आयुध, ध्वज या घटा आदि बाहरी चिह्न तो नही दिखाई देता। भीतर जाकर प्रतिमाओं के शिल्प की उत्तत्ष्टता देखकर भरत चकित हो जाता है। वाह, पत्थरो मे कैसा क्रियामाधुर्य है। आकृतियो म कैसे भाव झलकाए गए है। प्रतिमाए बनाई तो देवताओ के लिए हैं, किंतु मनुष्य को धोखा देती हैं। क्या यह कोई चार देवताओं का सघ है?[3] यो सोचकर भरत प्रमाण करना चाहता है, किंतु सोचता है, कि देवता है, चाहे जो हो, सिर झुकाना तो उचित है किंतु बिना मत्र और पूजाविधि के प्रमाण करना शूद्रो का-सा प्रणाम होगा। इतने ही मे देवकुलिक (पुजारी) चौंककर आता है कि मै नित्यकर्म से निबटकर प्राणिधर्म कर रहा था कि इतने मे यह कौन घुस आया कि जिसमे और प्रतिमाओ मे बहुत कम अतर है? वह भरत को प्रणाम करने से रोकता है। इस देवकुल म आने-जाने की रुकावट न थी, न कोई

१ इद गृह तत्प्रतिमा नृपस्य न समुच्छ्रयो यस्य स हर्म्यदुर्लभ।

२ आजकल भी चदन के पूरे पज के चिह्न मागलिक माने जाते हैं और त्योहारो तथा उत्सवो पर दरवाजो और दीवारो पर लगाए जाते हैं। जब सतिया सहमरण के लिए निकलती थीं तब अपने किले के द्वार पर अपने हाथ का छापा लगा जाया करती थी। वह छापा खोदकर पत्थर पर उसका चिह्न बनाया जाता था। बीकानेर के किले के द्वार पर ऐसे कई हस्तचिह्न हैं। मुगल बादशाहो के परवानो और खास रुक्को पर बादशाह के हाथ का पजा होता था जो अगूठे के निशान की तरह स्वीकार का बोधक था।

३ अहो क्रियामाधुर्य पाषाणानाम्। अहो भावगतिराकृतिनाम। देवतोद्दिष्टानामपि मानुष विश्वासतासा प्रतिमानाम। किन्नु खलु चतुर्दैवतोऽय स्तोम?

पहरा था। पथिक बिना प्रणाम किए ही यहा सिर झुका जात थ।[1] भरत चौक कर पूछता है कि क्या मुझस कुछ कहना है ? या किसी अपने स बड की प्रतीक्षा कर रहे हो जिससे मुझ रोकत हो ? या नियम से परवश हो ? मुझ क्यों कनव्य धम से राकत हा ? वह उत्तर दता है कि आप शायद ब्राह्मण है इन्हे दवता जान कर प्रणाम मत कर बैठना य क्षत्रिय है इक्ष्वाकु हैं। भरत क पूछने पर पुजारी परिचय देने लगता है और भरत प्रणाम करता जाता है। यह विश्वजित यज्ञ का करन वाला दिलीप है जिसन धम का दीपक जलाया था।[2] यह रघु है जिसके उठने बैठते हजारा ब्राह्मण पुण्याह शब्द स दिशाआ को गुजा देत थ। यह अज है जिसने प्रियावियोग स राज्य छोड दिया था और जिसक रजोगुणोदभव दोष नित्य अवभृथ स्नान से शात होते थे। अब भरत का माथा ठनका। इस ढग से चौथी प्रतिमा उसीके पिता की होनी चाहिए। निश्चय के लिये वह फिर ताना प्रतिमाओ के नाम पूछता है। वही उत्तर मिलता है। देवकुलिक म कहता है कि क्या जीत हुआ की भी प्रतिमा बनाई जाती है ? वह उत्तर देता है कि नही केवल मरे हुए राजाआ की। भरत सत्य को जानकर अपन हृदय की वेदना छिपाने के लिए देवकुलिक से विदा होकर बाहर जाने लगता है किंतु वह रोक कर पूछता है कि जिसने स्त्रीशुल्क के लिय प्राण और राज्य छोड दिए उस दशरथ की प्रतिमा का हाल तू क्या नही पूछता ? भरत को मूर्च्छा आ जाती है। देव कुलिक उसका परिचय पाकर सारी कथा कहता है। भरत फिर मूर्च्छित होकर गिर पडता है। इतने म रानिया आ जाती है। हटो बचो की आवाज होती है। सुमन्त्र किसी अनजाने बटोही को वहा पडा समझकर रानिया को भीतर जाने स रोकता है। देवकुलिक कहता है कि बेखटके चली आआ यह तो भरत है।[3] प्रतिमाए इतनी अच्छी बनी हुई थी कि भरत की आवाज सुनकर सुमन्त्र के मुह

१ अप्रतिहारप्रतिहारकागतैर्बिना प्रणाम पथिकैरुपास्यते।

२ विश्वजित यज्ञ का विशषण सन्निहितसवरत्न दिया है। इसका सीधा अथ तो यह है कि जहा ऋत्विजा को दक्षिणा देने के लिए सब रत्न उपस्थित थ (कालिदास का सवस्वदक्षिणम)। दूसरा अथ यह भी है कि राजा के रत्न—प्रजा प्रतिनिधि—सब वहा उपस्थित थे अर्थात सारी प्रजा की प्रतिनिधिलब्ध सहानुभूति से यज्ञ हुआ था। राजसूय प्रकरण म उन प्रजा क प्रधान रत्नो का उल्लेख है जिनके यहा राजा जाकर यज्ञ करता और तुहफ दता। यह राजसूय का पूर्वांग है। (द० गुलेरी ग्रथ म पृष्ठ ५८ ८३ —सपा०)

३ भाम के समय म पर्दा कुछ था आजकल के राजपूता का सा नही। प्रतिमानाटक मे जब सीता राम के साथ वन को चलती है तब लक्ष्मण ता रीति क अनुसार हटाओ हटाओ की आवाज लगाता है किंतु राम उसे रोककर सीता को घघट अलग करने की आज्ञा देता है और पुरवासियो को सुनाता है—

सर्वे हि पश्यन्तु कलत्रमेतद बाष्पाकुलाक्षैर्वदनैर्भवन्त।
निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च॥

से निकल आता है कि मानो महाराज (दशरथ) ही प्रतिमा म मे बोल रहे है। और उसे मूच्छित पडा हुआ देखकर सुमन्त्र वयस्थ पार्थिव (जवानी के दिनो का दशरथ) समझता है। आगे भरत, सुमन्त्र और विधवा रानियो की बातचीत होती है। बडा ही अद्भुत तथा करुण दृश्य है।

इससे पता चलता है कि भास के समय म देवमदिरो (देवकुलो) के अतिरिक्त राजाओ के देवकुल भी होते थे जहा मरे हुए राजाओं की जीवित-सदृश प्रतिमाए रखी जाती थी। एक वश या राजकुल का एक ही देवकुल होता था जहा राजाओ की मूर्तिया पीढीवार रखी होती थी। य देवकुल नगर के बाहर वृक्षो से घिरे हुए होते थे। देवमदिरो से विपरीत इनमे झडे, आयुध, ध्वजाए या कोई बाहरी चिह्न न होता था, न दरवाजे पर रुकावट या पहरा होता था। आने वाले बिना प्रणाम किए इन प्रतिमाओ की ओर आदर दिखाते थे। कभी-कभी वहा सफाई और सजावट होती थी तथा एक देवकुलिक रहता था। देवकुलिक के वर्णन से सदेह होता है कि प्रतिमाओ पर लेख नही होते थे, किंतु लेख होने पर भी पुजारी और मुजाविर वर्णन करते ही हैं। अथवा कवि ने राजाओ के नाम और यश कहलवाने का यही उपाय सोचा हो।

भास के इक्ष्वाकुवश के देवकुल के वर्णन म एक शका होती है। क्या चारो प्रतिमाए दशरथ के मरने पर बनाई गई थी, या दशरथ के पहले के राजाओ की प्रतिमाए वहा यथासमय विद्यमान थी, दशरथ की ही नई पधराई गई थी? चाहिए तो ऐसा कि तीन प्रतिमाए पहले थी, दशरथ की अभी बनकर रखी गई थी, किंतु सुमन्त्र के यह कहने से कि 'इद गृह तत् प्रतिमानृपस्य न' और भट के इस कथन से कि 'भट्टिणो दसरहस्स पडिमागेह दट्ठु' यह धोखा होता है कि प्रतिमागृह दशरथ ही के लिए बनवाया गया था, और प्रतिमाए वहा उसके अनुपम से रखी गई थी। माना कि भरत बहुत समय से केकय देश मे था, वह अपनी अनुपस्थिति मे स्थापित दशरथ की प्रतिमा को देखकर अचरज करता, किंतु वह तो इक्ष्वाकुओ के देवकुल, उसकी तीन प्रतिमा, उसके स्थान, चिह्न और उपचार व्यवहार तक से अपरिचित था। क्या उसने कभी इस इक्ष्वाकु-कुल समाधि-मदिर के दर्शन नही किए थे, या इसका होना ही उसे विदित न था? बातचीत से वह इस मदिर से अनभिज्ञ, उसकी रीतियो से अनजान दिखाई पडता है। सारा दृश्य ही उसके लिए नया है। क्या ही अच्छा सविधानक होता यदि परिचित देवकुल मे भरत अपने 'पितु प्रपितामहान्' का दर्शन करने जाता, वहा पर चिरदृष्ट तीन की जगह चार प्रतिमाओ को देखकर अपनी अनुपस्थिति की घटनाओ को जान लेता। इसका समाधान यह हो सकता है कि भास का भरत बहुत ही छोटी अवस्था मे अयोध्या से चला गया हो और वहा के दर्शनीय स्थानो से अपरिचित हो। या कोई ऐसा सप्रदाय होगा कि पिता के जीते जी राजकुमार देवकुल मे

नहीं जाया करते हों। राजपूताने में अब भी कई जीवत्पितृक मनुष्य श्मशान में अथवा शोक-सहानुभूति (मातमपुर्सी) में नहीं जाते। राजवंश के लोग नई प्रतिमा के आने पर ही देवकुल में आवें ऐसी कोई रूढ़ि भी हो सकती है। अस्तु।

भास का समय अभी निश्चित नहीं हुआ। पंडित गणपति शास्त्री उसे ईसवी पूर्व तीसरी चौथी शताब्दी का अर्थात् कौटिल्य चाणक्य से पहले का मानते हैं।[1] जायसवाल महाशय उसे ईसवी पूर्व पहली शताब्दी का मानते हैं। प्रतिमानाटक में भास यह देवकुल का प्लाट कहाँ से लाया? सुबंधु ने वासवदत्ता में पाटलिपुत्र को अदिति के पेट की तरह अनेक देवकुलों में पूरित लिखा है[2] यहाँ देवकुल में देवताओं के परिवार और देवमंदिर का श्लेष है। क्या यह संभव है कि भास ने पाटलिपुत्र का शैशुनाक देवकुल देखा हो और वहाँ की सजीव सदृश प्रतिमाओं से प्रतिमानाटक का नाम तथा कथावस्तु चुना हो। इक्ष्वाकुओं के देवकुल के चतु

१ प० गणपति शास्त्री ने पाणिनि विरुद्ध बहुत से प्रयोगों को देखकर भास को पाणिनि के पहले का भी माना था। कौटिल्य से पहले का मानने में मान एक श्लोक है जो प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटक तथा अर्थशास्त्र दोनों में है। अर्थशास्त्र में भास के नाटक से उसे उद्धृत मानने के लिए उतना ही प्रमाण है जितना भास के नाटक में उसके अर्थशास्त्र से उद्धृत होने का दूसरा मान प्रतिमानाटक में बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र का उल्लेख है कौटिल्य का नहीं। किंतु यह कवि की अपने पात्रों की प्राचीनता दिखाने की कुशलता हो सकती है। मैंने इंडियन एंटिक्वेरी (जिल्द ४२ सन १९१३ पृ० ५२) में दिखाया था कि पृथ्वीराज विजय के कर्त्ता जयानक और उसके टीकाकार जोनराज के समय तक यह साहित्यिक प्रवाद था कि भास और व्यास समकालीन थे। उनकी काव्यविषयक स्पर्धा की परीक्षा के लिए भास का ग्रंथ विष्णुधर्म व्यास के किसी काव्य के साथ साथ अग्नि में डाला गया तो अग्नि ने उसे उत्कृष्ट समझकर नहीं जलाया। पंडित गणपति शास्त्री ने बिना मेरा नाम उल्लेख किए पृथ्वीराजविजय तथा उसकी टीका के अवतरण के भाव को यों कहकर उड़ाना चाहा है कि विष्णुधर्मात् कर्म का बहुवचन का य का नाम नहीं किंतु विष्णुधर्मात् हेतु की पंचमी का एकवचन है कि अग्नि मध्यस्थ था परीक्षक था विष्णु के स्थानापन्न था उसने विष्णुधर्म से भास के काव्य को नहीं जलाया। विष्णु को यहाँ घुसेड़ने की क्या आवश्यकता थी? मैं अब भी मानता हूँ कि भास-कृत विष्णुधर्म नामक ग्रंथ व्यास (?) कृत विष्णुधर्मोत्तर पुराण के जोड़ का हो सकता है तथा भास व्यास की समकालिकता का प्रवाद अधिक विचार चाहता है। महाभारत के टीकाकार नीलकंठ ने आरंभ ही में जय शब्द का अर्थ करते हुए पुराणों से विष्णुधर्मों को अलग ग्रंथ गिना है। यहाँ भी बहुवचन प्रयोग ध्यान देने योग्य है। नीलकंठ के श्लोक ये हैं—

अष्टादश पुराणानि रामस्य चरितं तथा।
कार्ष्णं वेदं पञ्चमं च यन्महाभारतं विदुः॥
तथैव विष्णुधर्माश्च शिवधर्माश्च शाश्वताः।
जयेति नाम तेषां च प्रवदन्ति मनीषिणः॥

२ अदितिजठरमिवानेकदेवकुलाध्यासितम्।

दैवत स्तोम'[1] की ओर लक्ष्य दीजिए। पाटलिपुत्र के स्थापन से नवनदो द्वारा शैशुनाको का उच्छेद होने तक पाच शैशुनाक राजा हुए। उनमे से अतिम राजा की तो राज्यापहारी नद (महापद्म) ने काह की प्रतिमा खडी की होगी। अतएव शैशुनाक देवकुल मे भी चार ही प्रतिमाए होगी। इस चतुर्दैवत स्तोम मे से अज, उदयिन् तथा नदिवर्धन की प्रतिमाए तो इडियन म्यूजियम मे हैं। तीसरी को हाकिस ले गया। चौथी अगम कुए के पास पुजती हुई कनिंघम ने देखी थी। सभव है कि इनका भी पता चल जाय।

परखम की मूर्ति भी सभव है कि राजगृह के शैशुनाको के राजकुल की हो। यह हो सकता है कि वह किसी बडी भारी विजय या अवदान के[2] स्मरण मे परखम मे ही खडी की गई हो। किंतु यह भी असभव नही कि राजगृह से वहा पहुची हो। मूर्तियो के बहुत दूर-दूर तक चले जाने के प्रमाण मिले हैं। जीतकर मूर्तियो का ले आना विजय की प्रशस्तियो मे बडे गौरव से उल्लिखित किया गया मिलता है। दिल्ली तथा प्रयाग के अशोकस्तभ भी जहा आजकल है, वहा पहले न थे। बडे परिश्रम से तथा युक्तियो से उठवाकर पहुचाए गए हैं।

१ यह ध्यान देने की बात है कि इक्ष्वाकु-कुल म दिलीप, रघु, अज और दशरथ—ये चार नाम लगातार या तो भास मे मिले हैं या कालिदास के रघुवश म। दशरथ को अज का पुत्र तो वायु विष्णु और भागवत पुराण तथा रामायण सब मानते हैं। कुमारदास के जानकीहरण और अश्वघोष के बुद्धचरित में भी ऐसा है। वायुपुराण की वशावली म दिलीप और रघु के बीच म एक राजा और है, फिर रघु, अज दशरथ हैं। भागवत में दिलीप और रघु के बीच में १५ राजाओ और रघु और अज के बीच म पृथुश्रवा का नाम है। विष्णुपुराण म दिलीप और रघु के बीच म १७ नाम हैं, फिर रघु, अज, दशरथ हैं। वाल्मीकि रामायण म दिलीप और रघु के बीच मे दो पुरुष हैं, रघु और अज के बीच मे १२ नाम हैं। भास और कालिदास दोनो किसी और नाराशसी या पौराणिक गाथा पर चले हैं। चमत्कार यह है कि दोनो महाकवि एक ही वशावली को मानते हैं।

२ लोकोत्तर सात्त्विक दान को अवदान कहते हैं। बुद्ध के अवदान प्रसिद्ध हैं। अवदान का सस्कृत रूप अपदान है। काश्मीरी कवि इसका प्रयोग करते हैं। आबू म प्रसिद्ध वस्तुपाल तेजपाल के मदिर के सामने दोनो भाइयों तथा उनकी स्त्रिया की प्रतिमाए हैं। विमलशाह के मदिर में भी स्थापक की प्रतिमा है। राजपूताना म्यूजियम अजमेर म राजपूत दपति की मूर्तियां हैं जो उनके सस्थापित मदिर के द्वार थी। पृथ्वीराजविजय म लिखा है कि सोमेश्वर (पृथ्वीराज के पिता) ने वैद्यनाथ का मदिर बनाया और वहा पर अपने पिता (अर्णोराज) की घोडे-चढी मूर्ति रीति धातु की बनवाई। इससे आगे का श्लोक नष्ट हो गया है किंतु टीका से उसका अर्थ जाना जाता है कि पिता के सामने उसने अपनी मूर्ति भी उसी धातु की बनवाई थी (दत्तेहरिहयनेव शुद्धरीतिमये हरौ। प्रकृति लम्भितस्तत्र शुद्धरीतिमय पिता ॥८।६६॥ किंतु रीतिमयस्य रीतिवाहारूढस्य प्रतिष्ठापितस्याग्रे रीतिमय स्वात्मान प्रतिष्ठाप्य राजा स सर्व त्रिधा रीतिमय कविरिवाकरोत ॥)। यों वैद्यनाथ का मदिर चौहानों का देवकुल हुआ।

नानाघाट की गुफा मे पहले सातवाहनवशी राजाओं की कई पीढियो की मूर्तिया है। वह सातवाहनो का देवकुल है। मथुरा के पास शक (कुशन) वशी राजाओ के देवकुल का पता चला है। कनिष्क की मूर्ति खडी और बहुत बडी है। उसके पिता वेम कैडफेसस की प्रतिमा बैठी हुई है। इसपर के लेख मे 'देवकुल' शब्द इसी रूढ अर्थ मे आया है। इस राजा को लेख मे 'कुशनपुत्र' कहा है। वही पर एक और प्रतिमा के खड मिले है। यह कनिष्क के पुत्र की होगी। तीसरी मूर्ति पर के लेख को फोजल ने 'मस्टन' पढा था, किंतु बाबू विनयतोष भट्टाचार्य ने उसे 'शस्तन' पढकर सिद्ध किया है कि यह 'चश्तन' नामक राजा की मूर्ति है। यह टालमी नामक ग्रीक भूगोलवेत्ता का समसामयिक था, क्योंकि उसने 'टियातनीस' की राजधानी उज्जैन का उल्लेख किया है। चश्तन भी शक होना चाहिए, वह कनिष्क का पुत्र हो, या निकट सबधी हो। अतएव कनिष्क का समय ईसवी सन् ७० से सन् १३० के बीच होना चाहिए, ईसवी पूर्व की पहली शताब्दी नही।

भास के लेख तथा शैशुनाक, सातवाहन और कुशन राजाओं के देवकुलों के मिलने से प्रतीत होता है कि राजवशो मे मृत राजाओ की मूर्तियो को एक देवकुल मे रखने की रीति थी।

देवपूजा का पितृपूजा से बडा सबध है। देवपूजा पितृपूजा से ही चली है। मदिर के लिए सबसे पुराना नाम चैत्य है, जिसका अर्थ चिता (दाहस्थान) पर बना हुआ स्मारक है। 'शतपथ ब्राह्मण' मे उल्लेख है कि शरीर को भस्म करके धातुओं मे हिरण्य का टुकडा मिलाकर उन पर स्तूप का चयन (चुनना) किया जाता था। बुद्ध के शरीर-धातुओ के विभाग तथा उन पर स्थान-स्थान पर स्तूप बनने की कथा प्रसिद्ध ही है। बौद्धो तथा जैनो के स्तूप और चैत्य पहले स्मारक-चिह्न थे, फिर पूज्य हो गए।

देवकुल शब्द का बडा इतिहास है। मदिर को राजपूताने मे 'देवल' कहते हैं, छोटी मढी को 'देवली' कहते है। समाधि स्तभो को भी 'देवली', 'देउली' या 'देवल' कहते हैं। शिलालेखो मे मदिरो को 'देवकुल' कहा है, सतियो तथा वीरो के स्मारक-चिह्नों को भी 'देवल' या 'देवली' कहा है। देवली का सस्कृत देवकुली या देवकुलिका लेखो मे मिलता है। पुजारी को 'देवलक' कहते हैं, लेखो म 'देवकुलिक' मिलता है। सती माता का देवल, सती की देउली यह अब तक यहा व्यवहार है। बगाल मे ऊचे शिखर के छोटे मदिर को 'देवली' कहते है। राजपूताने म मदिर के अदर छोटे मदिर को भी 'देवली' कहते हैं। पजाबी म वह लकडी का सिंहासन जिसमे गृहस्थो के ठाकुर जी रखे जाते हैं, 'देहरा' कहलाता है। ग्राम तथा नगरो के नाम मे देहरा पद भी उनके देवस्थान होने का सूचक है। जैसे प्राकृत देवल का सस्कृत रूप देवकुल लेखा म आता था, वैसे राजाओं की उपाधि रावल का सस्कृत रूप राजकुल मिलता है। राजकुल का अर्थ 'राज-

वश्य' है। मेवाड के राजाओ की रावल शाखा प्रसिद्ध है। उनके लेखो मे 'महाराजकुल अमुक' ऐसा मिलता है। पजाबी पहाडी म सती के स्मारक-चिह्न को देहरी तथा सतियो को समष्टि मे 'देहरी' कहते है।[1] यो देवकुल पद देवमदिर का वाचक भी है, तथा मनुष्यो के स्मारक चिह्न का भी।[2]

सतियो तथा वीरो की देउलिया वही पर बनती है जहा उन्होने देहत्याग किया हो। *सांभर के पास देवयानी के तालाब पर एक घोडे की देवली है जो लडाई मे काम आया था।*[3]

रजवाडों मे राजाओ की छतरिया या समाधि-स्मारक बनते है। उनमे सुदर विशाल चारो ओर से खुले मकान बनाए जाते हैं। कही कही उनमे शिवलिंग स्थापन कर दिया जाता है, कही अखड दीपक जलता है, कही चरण-पादुका होती हैं, कही मूर्ति तथा लेख होते हैं, परतु कई योही छोड दी जाती हैं। जोधपुर के राजाओ की छतरिया शहर से बाहर मडोर के किले के पास है। जयपुर के राजाओ मे जितने आमेर मे थे उनके श्मशानो पर उनकी छतरिया आमेर मे हैं, जो जयपुर बसने के पीछे प्रयात हुए उनकी गेटोर मे शहर के बाहर हैं। महाराजा ईश्वरीसिंह जी का दाहकर्म महलो मे ही हुआ था, इसलिए उनकी छतरी महलो के भीतर ही है। डूगरपुर मे वर्तमान महारावल के पितामह की छतरी मे

१ सतियो के लिए 'महासती' पद का व्यवहार सारे देश मे मिलने से देश की एकता का अद्भुत प्रमाण मिलता है। मेवाड के महाराणाओं की सतियो के समाधिस्थान को 'महासती' कहते हैं, जैसे, 'दरबार महासत्या दरसण करण ने पधार्या है'। मैसूर के पुरातत्त्वविभाग की रिपोर्ट से जाना जाता है कि वहा पर सतीस्तभ 'महासतीकल' कहे जाते हैं। विपरीतलक्षणा से पजाबी पहाडी म 'महासती' या 'म्हास्ती' दुराचारिणी स्त्री के लिए गाली का पद हो गया है। पति के लिए सहमरण करने वाली स्त्रियो को ही 'सती' कहते हैं, किंतु कई देवलिया पोतासतियो की भी मिली हैं जो दादिया अपने पोते के दुख से सती हुईं।

२. कोयम्बतूर जिले (मद्रास) मे कुछ पुरानी समाधिया हैं। वे 'पाडुकुल' कहलाती है। यह भी देवकुल का स्मरण है। ऐतिहासिक अधकार के दिनो म जो पुरानी तथा विशाल चीज दिखाई दी वही पाडवो के नाम थोप दी जाती थी, कही भीमसेन की कूंडी, कहीं पाडवो की रसोई। दिल्ली के पास विष्णुगिरि पर विष्णुपद का चिह्न (बहुत बडा चरण) है। उसे कई साहसी लोग भीमसेन के पाँव की नाप मानने ही नही, सिद्ध भी करना चाहते हैं। बहुत से विष्णुपद मिले हैं, सभी इस हिसाब से भीमसेन के पैर के चिह्न होने चाहिए।

३. लेख के ऊपर कमान और सजे हुए घोडे की मूर्ति है। नीचे यह लेख है—।।१ श्रीराम जी (१) राजश्री नवाव मुक्तार दौला बहादुरजी के मैं सन् १२२७, (२) सवत् १८६८ मिती वैसाख वदि ७ सोमवार के रोज जो वन, (३) रपें भगरा भयो तामैं प० श्रीलाला जवाहर मौधजी को, (४) घाड़ा सुरग काम आयो ताको देवली साभर मैं श्रीदेउदा, (५) नीजी कै ऊपर बनाई कारीगर खुआजवगस गजधर नैं बना, (६) ई॥

उनकी प्रतिमा सजीव सदृश है। बीकानेर के पहले दो-तीन राजाओ की छतरिया तो शहर के मध्य मे लक्ष्मीनारायण के मंदिर के पास हैं, कुछ पुराने राजाओ की छतरियाँ लाल पत्थर के एक छोटे अहाते मे हैं, बाकी राजाओ की छतरिया एक विशाल दीवाल से घिरे अहाते मे क्रम से बनी हुई है। प्रत्येक पर चरणपादुका हैं जहा प्रतिदिन पूजा होती है। प्रत्येक पर मूर्ति है जिसमे राजा घोडे पर सवार बनाया हुआ है। जितनी रानिया उसके साथ सती हुई उनकी भी मूर्तिया उसी पत्थर पर बनी हुई हैं। शिलालेख प्रत्येक पर है जिसमे विक्रम सवत्, शक सवत्, मास, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, सूर्योदय घटी आदि प्रयाण के दिन का पूरा पचाग दिया है। वही सहमरण करनेवाली रानियो, दासियों आदि की सख्या लिखी है। किसी मे पाचक, पुरोहित, सेवक या घोडे के सहमरण का भी उल्लेख है। पास मे देवीकुड होने से यह स्थान भी 'देवीकुड' कहलाता है।[१] यहा के पुजारी शाकद्वीपी ब्राह्मण (सेवग, भोजक, या मग) हैं। ऐसे ही धर्माचार्यों, ठाकुरो, धनियो आदि के भी समाधि-स्मारक स्थान होते हैं।

इन देउलियों और छतरियो तथा भास वर्णित इक्ष्वाकुओं के या शैशुनाक और कुशनो के देवकुलो मे यह भेद है कि देउली या छतरी सती या राजा के दाहस्थल पर बनती तथा एक ही की स्मारक होती, देवकुल श्मशान मे नही होते थे। उनमे एक ही भवन म एक वश के कई राजाओ की मूर्तिया वशक्रम के अनुसार रखी जाती थी। छतरियो के शिल्प और निवेश मे मुसलमानी रोजो और मकबरो का बहुत कुछ प्रभाव पडा है, देवकुल की चाल प्राचीन थी।

पजाब के कागडा जिले के पहाडी प्रात मे, जो राजमार्गों से विदूर तथा मुसलमानी विजेताओ तथा प्रभावो स तटस्थ रहा, अब तक देवकुल की रीति चली जाती है। वहा प्रत्येक ग्राम के पास जलाशय पर मर हुओ की मूर्तिया रखी जाती हैं। मेरे ग्राम गुलेर क देवकुल का वर्णन सुन लीजिए। गुलेर बहुत ही पुराना ग्राम है। कटोचवश की बडी शाखा की राजधानी वह हुआ, छोटा वश कागडे मे राज्य करता रहा। श्मशान तो नदी के तीर पर है जहा पर कई कुलो की सतियो की 'देहरिया' हैं। गाव के बाहर, श्मशान से पौन मील इधर, बछूहा (वत्स+खूहा=वत्सकूप) नामक जलाशय है जिस पर वत्सेश्वर महादेव हैं। उसके पुजारी रौलु (रावल) नामक ब्राह्मण (?) होते हैं जो मृतक के वस्त्रो के अधिकारी हैं। वत्सकूप तथा महादव के मदिर के पूर्व एक निवारा सा है। छत गिर गई है। खभे और कुछ दीवालें बची हैं। वहा पर सैकडो प्रतिमाए है जिन्हे मूहरे (मोहरे) कहत है। मृत्यु होने के पीछे ग्यारहवें दिन जब महाब्राह्मणो को

१ पडित हरप्रसाद शास्त्री ने भ्रमवश दवगढ लिखा है। (बि० उ० रि० सो० ज०, दिसबर, १९१९)।

शय्यादान करते हैं उस समय लगभग एक फुट ऊचे पत्थर पर मृतक की मूर्ति कुराई जाती है। मूर्ति बनानेवाले गाव के पुश्तैनी पत्थर गढनेवाले हैं जो अन-चक्कियो के घरट बनाते है। मूर्ति सिंदूर लगाकर शय्या के पास रख दी जाती है। दान के पीछे शय्या और उपकरण महाब्राह्मण ले जाता है। मूर्ति इस देवकुल मे पहुचा दी जाती है। उस कुल के आदमी जलाशय पर स्नान-सध्या करने आते है तब मूर्ति पर कुछ दिनो तक जल चढाते रहते हैं। मकान तो खडहर हो गया है, पर उसके आसपास वत्सेश्वर के नदि के पास, जलाशय पर, जगह जगह मूहरे बिखरे पडे हैं। कई जलाशय की मेड, सीढियो तथा फर्श की चुनाई मे लग गए है। कई निर्भय मनुष्य इन पत्थरो को मकानो की चुनाई के लिए ले भी जाते हैं। सभी उच्च जातियो के मृतक, मूर्तिरूप मे, इस देवकुल म गाव बसाकर रहते हैं। गुलेर के राजाओ तथा रानियो के मूहरे भी यही हैं। वे दो ढाई फुट ऊचे हैं। उनके नीचे 'राजा'-'राणी' अक्षर भी लडकपन मे हम लोग पढा करते थे। गाव के बुड्ढे पहचान लेते हैं कि यह अमुक का मूहरा है। कई वर्षों तक हम अपने पितामह की प्रतिमा को पहिचानते तथा उस पर जल चढाते थे। पिछले वर्षों म खेलते हुए लडको ने या किसी और ने निवेश बदल दिया है। पत्थर रेतीला दर-याई बालू का है, इसलिए कुछ ही वर्षों की धूप और वर्षा से खुदाई बेमालूम हो जाती है।[1] पुरुष की मूर्ति बैठी बनाई जाती है, स्त्री की खडी। पुरुषमूर्ति के दोनो ओर कही-कही चामरग्राहिणिया भी बनी होती है। राजाओ की मूर्ति घोडे पर होती है। वस्त्र-शस्त्र भी दिखाए जाते हैं। उस प्रान्त मे जहा-जहा बा, नौण, तला आदि है[2] वहा सब जगह मूहरे रखे जाते हैं। सडक के किनारे जो जलाशय मिलता है वहा गाव पास हो तो ८-१० प्रतिमाए रखी मिलेगी। कुल्लू, मडी तथा शिमले के कुछ पहाडी राज्यो मे भी यही चाल है। यह प्राचीन देवकुल की रीति अब तक उन प्रान्तो म है जहा परिवर्तन बहुत कम हुए हैं।

[प्रथम प्रकाशन नागरी प्रचारिणी पत्रिका सन् १९२० ई०]

१ पत्थर का यह हाल है कि वहीं जवाली ग्राम मे गुलेर के एक राजा का बनाया हुआ एक मदिर है जिसकी छाया की ओर की खुदाई की मूर्तिया ज्यो की त्यो हैं किंतु बौछाडवाले पखवाड पर सब मूर्तिया साफ हो गई हैं। उसी की रानी के बनवाए हुए जवाली के नौण पर शिलालेख था जिसके कुछ पक्तियो की आदि के अक्षर आठ वर्ष हुए पढे जाते थे, किंतु दो वर्ष बीते जब मैं वहा गया तो उतने अक्षर भी नहीं पढे जा सकते थ, सब के सब खिर गए थे। इस समय इतना ही पढा जाता था—आ स्वस्ति श्रीगणेशा (१) वदति पर पु (प्र) (२) मीश्वर (३) पा (श) (४) (५) (६) (७) (८)या (९) नाधि (पि) (१०) भूयो भूयो (११) राजराज (१२) लेपालनोदो (१३) कृतोयम्। ' (१४)। ये अक पक्तियो के अत के सूचक हैं।

२ बॉ=(सस्कृत) वापी, (बिहारी कवि) बाय, (मारवाडी) बाव। नौण=(सस्कृत) निपान (पाणिनि का निपानमाहाव) (मारवाडी) निवाण। तला=(सस्कृत) तडाग या तटाक (हिंदी) तालाब।

भाषा

पुरानी हिंदी

हिंदुस्तान का पुराने से पुराना साहित्य जिस भाषा मे मिलता है उसे 'सस्कृत' कहते हैं, परतु जैसा कि उसका नाम ही दिखाता है, वह आर्यों की मूल भाषा नही है। वह मँजी, छँटी, सुधरी भाषा है। कितने हजार वर्ष के उपयोग से उसका यह रूप बना, किस 'कृत' से वह 'सस्कृत' हुई, यह जानने का कोई साधन नही बच रहा है। वह मानो गगा की नहर है, नरोन के बाँध से उसमे सारा जल खैच लिया गया है उसके किनारे सम हैं, किनारो पर हरियाली और वृक्ष है, प्रवाह नियमित है। किन टेढ मेडे किनारो वाली, छोटी बडी, पथरीली, रेतीली नदियों का पानी मोडकर यह अच्छोद नहर बनाई गई और उस समय के सनातन-भाषा प्रेमियो ने पुरानी नदियो का प्रवाह 'अविच्छिन्न' रखने के लिए कैसा कुछ आदोलन मचाया या नही मचाया, यह हम जान नही सकते। सदा इस सस्कृत नहर को देखते देखते हम असस्कृत या स्वाभाविक, प्राकृतिक नदियो को भूल गए और फिर जब नहर का पानी आगे स्वच्छद होकर समतल और सूत से नपे हुए किनारो को छोडकर जल-स्वभाव से कही टेढा, कही सीधा, कही गदला, कही निखरा, कही पथरीली, कही रेतीली भूमि पर और कही पुराने सूखे मार्गों पर प्राकृतिक रीति से बहन लगा तब हम यह कहने लगे कि नहर से नदी बनी है, नहर प्रकृति है और नदी विकृति—[हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण का आरभ ही यो किया है कि सस्कृत प्रकृति है, उससे आया इसलिए प्राकृत कहलाया] यह नही कि नदी अब सुधारको के पजे मे छूटकर फिर सनातन मार्ग पर आई है।

इस रूपक को बहुत बढा सकते है। सभव है कि हमे इसका फिर भी काम पडे। वेद या छदस् की भाषा का जितना सात्म्य पुरानी प्राकृत से है उतना सस्कृत से नही। सस्कृत मे छाना हुआ पानी ही लिया गया है। प्राकृतिक प्रवाह का मार्गक्रम यह है—

१. मूल भाषा २. छंदस् की भाषा→ | ३ प्राकृत→५.अपभ्रंश
| ४. संस्कृत

संस्कृत अजर-अमर तो हो गई किंतु उसका वंश नहीं चला, वह कलमी पेड था। हां, उसकी संपत्ति से प्राकृत और अपभ्रंश और पीछे हिंदी आदि भाषाएं पुष्ट होती गईं और उसने भी समय-समय पर इनकी भेंट स्वीकार की।

वैदिक (छंदस् की) भाषा का प्रवाह प्राकृत में बहता गया और संस्कृत में बंध गया। इसके कई उदाहरण हैं—(१) वेद में देवाः और देवासः दोनों हैं, संस्कृत में केवल 'देवा' रह गया और प्राकृत आदि में 'आसस्' (दुहरे 'जस्') का वंश 'आओ' आदि में चला, (२) देवैः की जगह देवेभिः (अधरेहिं) कहने की स्वतंत्रता प्राकृत को रिक्थक्रम (विरासत) में मिली, संस्कृत को नहीं, (३) संस्कृत में तो अधिकरण का 'स्मिन्' सर्वनाम में ही बंध गया, किन्तु प्राकृत में 'म्मि', 'म्हि', होता हुआ हिंदी में 'में' तक पहुंचा, (४) वैदिक भाषा में षष्ठी या चतुर्थी के यथेच्छ प्रयोग की स्वतंत्रता थी वह प्राकृत में आकर चतुर्थी विभक्ति को ही उड़ा गई, किंतु संस्कृत में दोनों, पानी उतर जाने पर चट्टानों पर चिपटी हुई काई की तरह, जहां की तहां रह गईं, (५) वैदिक भाषा का 'व्यत्यय' और 'बाहुलक' प्राकृत में जीवित रहा और परिणाम यह हुआ कि अपभ्रंश में एक विभक्ति 'ह', 'हें', 'हीं, बहुत से कारकों का काम देने लगी, संस्कृत की तरह लकीर ही नहीं पिटती गई, (६) संस्कृत में पूर्वकालिक का एक 'त्वा' ही रह गया और 'य' भिच गया, इधर 'त्वान' और 'त्वाय' और 'य' स्वतंत्रता से आगे बढ़ आए (देखो, आगे)। (७) क्रियार्थी क्रिया (Infinitive of Purpose) के कई रूपों में से (जो धातुज शब्दों के द्वितीया, षष्ठी या चतुर्थी के रूप हैं) संस्कृत के हिस्से में 'तुम्' ही आया और इधर कई, (८) कृ धातु का अनुप्रयोग संस्कृत में केवल कुछ लम्बे धातुओं के परोक्ष भूत में रहा, छंदस् की भाषा में और जगह भी था, किंतु अनुप्रयोग का सिद्धान्त अपभ्रंश और हिंदी तक पहुंचा। यह विषय बहुत ही बढ़ाकर उदाहरणों के साथ लिखा जाना चाहिए, इस समय केवल प्रसंग से इसका उल्लेख ही कर दिया गया है।

अस्तु। अकृत्रिम भाषाप्रवाह में (१) छंदस् की भाषा, (२) अशोक की धर्म-लिपियों की भाषा, (३) बौद्ध ग्रंथों की पाली, (४) जैन सूत्रों की मागधी, (५) ललितविस्तर की गाथा या गडबड संस्कृत और (६) खरोष्ठी और प्राकृत शिलालेखों और सिक्कों की अनिर्दिष्ट प्राकृत ये ही पुराने नमूने हैं। जैन सूत्रों की भाषा मागधी या अर्द्धमागधी कही गई है। उसे 'आर्ष प्राकृत' भी कहते हैं। पीछे से प्राकृत वैयाकरणों ने मागधी, अर्धमागधी, पैशाची, शौरसेनी, महाराष्ट्री आदि देश-भेद के अनुसार प्राकृत भाषाओं की छांट की, किंतु मागधीवाले कहते हैं कि मागधी ही मूल भाषा है जिसे प्रथम कल्प के मनुष्य, देव और ब्राह्मण

बोलते थे।[1] जिन पुराने नमूनों का हम उल्लेख कर चुके हैं वे देश-भेद के अनुसार इस नामकरण में किसी एक में ही अंतर्भूत नहीं हो सकते। बौद्ध भाषा संस्कृत पर अधिक सहारा लिये हुए है, सिक्कों तथा लेखों की भाषा भी वैसी है। शुद्ध प्राकृत के नमूने जैन सूत्रों में मिलते हैं। यहां दो बातें और देख लेनी चाहिए। एक तो जिस किसी ने प्राकृत का व्याकरण बनाया, उसने प्राकृत को भाषा समझकर व्याकरण नहीं लिखा। ऐसी साधारण बातों को छोड़कर कि प्राकृत में द्विवचन और चतुर्थी विभक्ति नहीं है, सारे प्राकृत व्याकरण केवल संस्कृत-शब्दों के उच्चारण में क्या-क्या परिवर्तन होते हैं इनकी परिसंख्या-सूची मात्र हैं। दूसरी यह कि संस्कृत नाटकों की प्राकृत को शुद्ध प्राकृत का नमूना नहीं मानना चाहिए। वह पंडिताऊ या नकली या गढ़ी हुई प्राकृत है, जो संस्कृत में मसविदा बनाकर, प्राकृत व्याकरण के नियमों से—'त' की जगह 'य' और 'क्ष' की जगह 'ख' रखकर, सांचे पर जमाकर, गढ़ी गई है। वह संस्कृत मुहाविरों का नियमानुसार किया हुआ रूपांतर है, प्राकृत भाषा नहीं। हां, भास के नाटकों की प्राकृत शुद्ध मागधी है। पुराने काल की प्राकृत रचना, देश-भेद के नियत हो जाने पर, या तो मागधी में हुई या महाराष्ट्री प्राकृत में, शौरसेनी पैशाची आदि केवल भाषा में विरल देश-भेद मात्र रह गई, जैसा कि प्राकृत व्याकरणों में उन पर कितना ध्यान दिया गया है, इससे स्पष्ट है। मागधी, अर्धमागधी तो आर्ष प्राकृत रहकर जैन सूत्रों में ही बंद हो गई, वह भी एक तरह की छंदस् की भाषा बन गई। प्राकृत व्याकरणों ने महाराष्ट्री का पूरी तरह विवेचन कर, उसीको आधार मानकर शौरसेनी आदि के अंतर को उसीके अपवादों की तरह लिखा है। यों कह दो कि देश-भेद से कई प्राकृत होने पर भी प्राकृत-साहित्य की प्राकृत एक ही थी। जो पद पहले मागधी का था वह महाराष्ट्री को मिला। वह परम प्राकृत और सूक्ति-रत्नों का सागर कहलाई। राजाओं ने उसकी कदर की। हाल (सातवाहन) ने उसके कवियों की चुनी हुई रचना की 'सतसई' बनाई, प्रवरसेन ने सेतुबंध से अपनी कीर्ति उसके द्वारा सागर के पार पहुंचाई, वाक्पति ने उसी में गौडवध किया, किंतु यह पांडिताऊ प्राकृत हुई, व्यवहार की नहीं। जैनों ने धर्म-भाषा मानकर उसका स्वतंत्र अनुशीलन किया और मागधी की तरह महाराष्ट्री भी जैन-रचनाओं में ही शुद्ध मिलती है। और छंदों के होने पर भी जैसे संस्कृत का 'श्लोक' अनुष्टुप् छंदों का राजा है, वैसे प्राकृत की रानी 'गाथा' है, सब छंद प्राकृत में आए कि संस्कृत की परछाईं स्पष्ट देख पड़ी। प्राकृत-कविता का आसन

१. हेमचंद्र ने 'जिणिदाण वाणी' को दशोनाममाला के आरंभ में 'असेसभ सपरिणामिणी' कहकर वंदना करते हुए क्या अच्छा अवतरण दिया है—

देवा देवीं नरा नारीं शबराश्चापि शार्वरीम्।
तिर्यञ्चोऽपि हि तैरश्ची मेनिरे भगवद्गिरम्॥

ऊचा हुआ। यह कहा गया है कि देशी शब्दो से भरी प्राकृत कविता के सामने सस्कृत की कौन सुनता है[1] और राजशेखर ने, जिसकी प्राकृत उसकी सस्कृत के समान ही स्वतत्र और उद्भट है, प्राकृत को मीठी और सस्कृत को कठोर कह डाला।[2]

शौरसेनी और पैशाची (भूतभाषा)

इन प्राकृतो के भेदो[3] मे से हमे शौरसेनी और पैशाची का देशनिर्णय करना है। यद्यपि ये दोनो भाषाए मागधी और महाराष्ट्री से दब गई थी और इनका विवेचन व्याकरणो मे गौण या अपवाद रूप से ही किया गया है तथापि हिंदी से इनका बडा सबध है। शौरसेनी तो मथुरा व्रजमडल आदि की भाषा है। इसमे कोई बडा स्वतत्र ग्रथ नही मिलता, किंतु इसका वही क्षेत्र है जो व्रजभाषा, खडीबोली और रेखते की प्रकृत भूमि है। पैशाची का दूसरा नाम 'भूतभाषा' है। यह गुणाढ्य की अद्भुतार्था बृहत्कथा से अमर हो गई है। वह 'वड्डकथा' अभी नही मिलती। दो कश्मीरी पडितो (क्षेमेंद्र और सोमदेव) के किए उसके सस्कृत अनुवाद मिलते हैं (बृहत्कथामजरी और कथासरित्सागर) कश्मीर का उत्तरी प्रात पिशाच (पिश् कच्चा मास, अश् —खाना) या 'पिशाश देश' कहलाता था और कश्मीर ही मे बृहत्कथा का अनुवाद मिलने से पैशाची वहा की भाषा मानी जाती थी। किंतु वास्तव मे पैशाची या भूतभाषा का स्थान राजपूताना और मध्यभारत है। मार्कण्डेय ने प्राकृत व्याकरण मे बृहत्कथा को केकय पैशाची मे गिना है। केकय-तो कश्मीर का पश्चिमोत्तर प्रात है। सभव है कि मध्यभारत की भूतभाषा की मूल बृहत्कथा का कोई रूपातर उधर हुआ हो जिसके आधार पर कश्मीरियो

१ ललिए महुरक्खरए जुवईजणवल्लहे ससिंगारे।
सन्ते पाइयकव्वे को सक्कइ सक्कय पढिउ ॥—(वज्जालग्ग, २६)
[ललित, मधुराक्षर, युवतीजनवल्लभ, सशृगार प्राकृत कविता के होते हुए सस्कृत कौन पढ सकता है ?]

२ परुसा सक्कअबधा पाउअबधो वि होइ सुउमारो।
पुरुप महिलाण जत्तिअमिहन्तर तेत्तियमिमाण ॥ (कर्पूरमजरी)
[सस्कृत की रचना परुष और प्राकृतरचना सुकुमार होती है, जितना पुरुष और स्त्रियो म अतर होता है उतना इन दोनों में है।]

३ अगले लेखो म इस विषय पर कुछ और आता जाएगा।

के संस्कृतानुवाद हुए हैं।[1] राजशेखर ने, जो विक्रम संवत् की दसवीं शताब्दी के मध्यभाग में था, अपनी काव्यमीमांसा में एक पुराना श्लोक उद्धृत किया है जिसमें उस समय के भाषानिवेश की चर्चा है—"*गौड़ (बंगाल) आदि संस्कृत में* स्थित हैं, लाटदेशियों की रुचि प्राकृत में परिचित है, मरुभूमि, टक्क (टांक, दक्षिण-पश्चिमी पंजाब) और भादानक[2] के वासी अपभ्रंश प्रयोग करते हैं, अवंती (उज्जैन), पारियात्र (बेतवा और चंबल का निकास) और दशपुर (मंदसोर) के निवासी भूतभाषा की सेवा करते हैं, जो कवि मध्यदेश में (कन्नौज, अंतर्वेद पंचाल आदि) रहता है वह सर्व भाषाओं में स्थित है। राजशेखर को भूगोल विद्या में बड़ी दिलचस्पी थी। काव्यमीमांसा का एक अध्याय का अध्याय भूगोल-वर्णन को देकर वह कहता है कि विस्तार देखना हो तो मेरा बनाया भुवनकोश देखो। अपने आश्रयदाता की राजधानी महोदय (कन्नौज) का उसे बड़ा प्रेम था। कन्नौज और पांचाल की उसने जगह-जगह पर बहुत बड़ाई की है। महोदय (कन्नौज) को मानो भूगोल का केंद्र माना है, कहा है दूरी की नाप महोदय से ही की जानी चाहिए, पुराने आचार्यों के अनुसार अंतर्वेदी से[3] नहीं। इस महोदय की केन्द्रता को ध्यान में रखकर उसका बताया हुआ राजा के कवि समाज का निवेश बड़ा चमत्कार दिखाता है। वह कहता है कि राजा कवि-समाज के मध्य में बैठे, उत्तर को संस्कृत के कवि (कश्मीर पांचाल), पूर्व को प्राकृत (मागधी की भूमि मगध), पश्चिम को अपभ्रंश (दक्षिणी पंजाब और मरुदेश) और दक्षिण को भूतभाषा (उज्जैन, मालवा आदि) के कवि बैठें।[4] मानो राजा का कवि-समाज भौगोलिक भाषानिवेश का मानचित्र हुआ। यों कुरुक्षेत्र से प्रयाग तक अंतर्वेद, पांचाल और शूरसेन, और इधर मरु, अवंती, पारियात्र और दशपुर—शौरसेनी और भूतभाषा के स्थान थे।

१ सावोटे वियना ओरिएंटल सोसाइटी का जर्नल, जिल्द ६४, पृ० ६५ आदि।

२ बीजोल्यां के लेख में भी भादानक का उल्लेख है यह प्रांत राजपूताने में ही होना चाहिए।

३ विनशनप्रयागयोर्गङ्गायमुनयोश्चान्तरम् अन्तर्वेदी। तदपेक्षया दिशो विभजेत इत्याचार्याः। तत्रापि महोदयं मूलमवधीकृत्य इति यायावरः। (काव्यमीमांसा, पृ० ९४)

४, वही, पृ० ५४-५५

अपभ्रंश

बाध मे बचे हुए पानी की धाराए मिलकर अब नदी का रूप धारण कर रही थी। उनमे देशी की धाराए भी आकर मिलती गई। देशी और कुछ नही, बाध मे बचा हुआ पानी है या वह जो नदी मार्ग पर चला आया, बाधा न गया। उसे भी कभी-कभी छानकर नहर मे ले लिया जाता था। बाध का जल भी रिसता-रिसता इधर मिलता आ रहा था। पानी बढने से नदी की गति वेग से निम्नाभिमुखी हुई, उसका 'अपभ्रश' (नीचे को बिखरना) होने लगा। अब मूत से नये किनारे और नियत गहराई नही रही। राजशेखर ने सस्कृत वाणी को सुनने योग्य प्राकृत को स्वभावमधुर, अपभ्रश को सुभव्य और भूतभाषा को सरस कहा है।[1] इन विशेषणो की साभिप्रायता विचारने योग्य है। वह यह भी कहता है कि कोई बात एक भाषा मे कहने से अच्छी लगती है, कोई दूसरी मे, कोई दो तीन मे[2]। उसने काव्यपुरुष का शरीर शब्द और अर्थ का बनाया है जिसमे सस्कृत को 'मुख', प्राकृत को 'बाहु', अपभ्रश को 'जघनस्थल', पैशाच को 'पैर' और मिश्र को 'उरु' कहा है। विक्रम की सातवी शताब्दी से ग्यारहवी तक अपभ्रश की प्रधानता रही और फिर वह पुरानी हिंदी मे परिणत हो गई। इसमे देशी की प्रधानता है। विभक्तिया घिस गई हैं, खिर गई हैं, एक ही विभक्ति 'हूँ', या 'आहँ' कई काम देने लगी है। एक कारक की विभक्ति से दूसरे का भी काम चलने लगा है। वैदिक भाषा की अविभक्तिक निर्देश की विरासत भी इसे मिली। विभक्तियो के खिर जाने से कई अध्याय या पद लुप्तविभक्तिक पद के आगे रखे जाने लगे, जो विभक्ति ।नही हैं। क्रियापदो मे मार्जन हुआ। हा, इसने केवल प्राकृत ही के तद्भव और तत्सम पद नही लिए, किंतु धनवती अपुत्रा मौसी से भी कई तत्सम पद लिए[3]। साहित्य की प्राकृत साहित्य की भाषा ही हो चली थी, वहा गत भी गय और गज भी गय, काच, काक, काय=(शरीर) कार्य सबके लिए काय। इसमे भाषा के प्रधान लक्षण सुनने से अर्थबोध—का व्याघात होता था। अपभ्रश मे दोनो प्रकार के शब्द मिलते हैं। जैसे शौरसेनी, पैशाची, मागधी आदि भेदो के होते हुए भी प्राकृत एक ही थी वैसे शौरसेनी अपभ्रश, पैशाची अपभ्रश,

१ बालरामायण

२ काव्यमीमासा पृ० ४८

३ तद्भव प्रयोगो के अधिक घिस जाने पर भाषाओ म एक अवस्था आती है जब शुद्ध तत्समो का प्रयोग करने की टेव पड़ जाती है। हिंदी म अब कोई जस या गुनवत नहीं लिखता यश और गुणवान लिखते हैं। बोलें चाहे तरों, परसोतम और हर्‌किसुन, लिखेंगे तरह पुरुषोत्तम और हरकृष्ण।

महाराष्ट्री अपभ्रश आदि होकर एक ही अपभ्रश प्रबल हुई । हेमचन्द्र ने जिस अपभ्रश का वर्णन किया है वह शौरसेनी के आधार पर है । मार्कण्डेय ने एक 'नागर' अपभ्रश की चर्चा की है जिसका अर्थ नगरवासी (चतुर, शिक्षित, गवई से विपरीत) लोगो की भाषा या गुजरात के नागर ब्राह्मणो या नगर (वडनगर, वृद्ध नगर) के प्रात की भाषा हो सकती है । गुजरात की अपभ्रश-प्रधानता की चर्चा आगे है। किंतु उसके उस नगर का वडनगर या नगर-नाम प्राचीन नही है। इसलिए 'नगर की भाषा' अर्थ मानने पर मार्कण्डेय के व्याकरण की प्राचीनता मे शका होती है ।

राजशेखर ने काव्यमीमासा मे कई श्लोक दिए हैं जिनमे वर्णन किया है कि किस देश के मनुष्य किस तरह सस्कृत और प्राकृत पढ सकते हैं । यहा एक पाठ-शैली के वर्णन की चर्चा कर देनी चाहिए। यह वर्णन रोचक भी है और कई अशो मे अब तक सत्य भी । उच्चारण का ढग भी कोई चीज है। वह कहता है कि काशी से पूर्व की ओर जो मगध आदि देशो के वासी हैं वे सस्कृत ठीक पढते है किंतु प्राकृत भाषा मे कुठित हैं। बगालियों की हँसी मे उसने एक पुराना श्लोक उद्धृत किया है जिसमे सरस्वती ब्रह्मा से प्रार्थना करती है कि मैं बाज आई, मैं इस्तीफा पेश करती हू, या तो गौड लोग गाथा पढना छोड दें, या कोई दूसरी ही सरस्वती बनाई जाए।[1]

गौड देश मे ब्राह्मण न अतिस्पष्ट, न अश्लिष्ट, न रुक्ष न अतिकोमल, न मद और न अतितार स्वर से पढते हैं। चाहे कोई रस हो, कोई गुण हो, कर्णाट लोग घमड से अत मे टकारा देकर पढते हैं। गद्य, पद्य, मिश्र कैसा ही काव्य हो द्रविड कवि गाकर ही पढेगा । सस्कृत के द्वेषी लाट प्राकृत को ललित मुद्रा से सुन्दर पढते हैं। सुराष्ट्र[2], त्रवण[3] आदि सस्कृत मे अपभ्रश के अश मिलाकर एक ही तरह पढते हैं। शारदा के प्रसाद से कश्मीरी सुकवि होते हैं किंतु उनका पाठ-क्रम क्या है मानो कान मे गिलोय की पिचकारी है। उत्तरापथ के कवि बहुत सस्कार होने पर भी गुन्ना (नाक मे) पढते हैं। पाचाल देश वालो का पाठ तो

१ ब्रह्मन् विज्ञापयामि त्वां स्वाधिकारजिहासया ।
गौडस्त्यजतु वा गाथामन्या वास्तु सरस्वती ॥

२ सोरठ—गुजरात काठियावाड ।

३ पश्चिमी राजपूताना । जोधपुर के राजा बाउक के वि० स० ८९४ के शिलालेख म उसके चौथ पूर्वपुरुष शिलुक का त्रवणी और वल्ल देश तक अपने राज्य की सीमा नियत करना कहा गया है । वल्ल देश भाटिया का जैसलमर है, त्रवणी उसके दक्षिण म होना चाहिए ।

कानो मे शहद बरसाता है, उनका कहना ही क्या ।[1]

पुरानी अपभ्रश सस्कृत और प्राकृत से मिलती है और पिछली पुरानी हिंदी से। हम ऊपर दिखा चुके हैं कि शौरसेनी और भूतभाषा की भूमि ही अपभ्रश की भूमि हुई और वही पुरानी हिंदी की भूमि है। अतर्वेद, व्रज, दक्षिणी पजाब, टक्क, भादानक, मरु, त्रवण, राजपूताना, अवती, पारियात्र, दशपुर और सुराष्ट्र—यही की यह भाषा एक ही मुख्य अपभ्रश थी जैसे पहले देशभेद होने पर भी एक ही प्राकृत थी। अभी अपभ्रश के साहित्य के अधिक उदाहरण नही मिले है, न उस भाषा के व्याकरण आदि की ओर पूरा ध्यान दिया गया है। अपभ्रश कहा समाप्त होती है और पुरानी हिंदी कहाँ आरभ होती है इसका निर्णय करना कठिन, किंतु रोचक और बड़े महत्त्व का है। इन दो भाषाओं के समय और देश के विषय मे कोई स्पष्ट रेखा नही खीची जा सकती। कुछ उदाहरण ऐसे हैं जिन्हे अपभ्रश भी कह सकते हैं, पुरानी हिंदी भी। सस्कृत-ग्रथो मे लिखे रहने के कारण अपभ्रश और पुरानी हिंदी की लेखशैली की रक्षा हो गई जो मुखसुखार्थ लेखनशैली मे बदलती-बदलती ऐसी हो जाती कि उसे प्राचीन समझने का कोई उपाय नही रह जाता। उसी प्राचीन लेखशैली को हिंदी की उच्चारणानुसारिणी शैली पर लिख दें (जिस प्रकार कि वह अवश्य ही बोली जाती होगी) तो अपभ्रश कविता केवल 'पुरानी-हिंदी' हो जाती है और दुर्बोध नही रहती। इसलिए यह नही कह सकते कि 'पुरानी हिंदी' का काल कितना पीछे हटाया जाए। हिंदी उपमावाचक 'जिमि' या 'जिम' ऐसी पुरानी कविता मे 'जिम्वँ' लिखा मिलता है। उसके उच्चारण मे प्रथम स्वर सयुक्ताक्षर के पहले होने से गुरु नही हो सकता (जिम्मुव) क्योकि जिस छद मे वह आया है उसका भग होता है। इसलिए चाहे वह 'जिम्वँ' लिखा हो उसका उच्चारण 'जिंव' या जो 'जिम' ही है। सस्कृत 'उत्पद्यते' का प्राकृत रूप 'उप्पज्जइ' है जो छट-खिरकर 'उप्पजइ' के रूप मे है। अब यह 'उप्पजइ' अपभ्रश माना जाए या पुरानी हिंदी? 'जइ' का उच्चारणानुसार लेख करने से 'उपजै' हो जाता है (सयुक्त पकार के कारण उ की मात्रा की गुरुता मानकर ऊपजै सही) जिसे हम हिंदी पहचानते हैं। सभव है कि जैसे आजकल हिंदी के विद्वानो मे 'गये, गए' पर दलादली है वैसे ही 'उपजइ, उपजइ, उपजै, ऊपजैं' पर कई शताब्दियो तक चली हो, यद्यपि उसे अरुतुद बनाने के लिए छापाखाना न था।

१. मार्गानुगेन निनदेन निधिर्गुणानाम्,
सपूर्णवर्णरचनो यतिभिर्विभक्त ।
पाञ्चालमण्डलभुवां सुभग कवीनां
श्रोत्रे मधु क्षरति किञ्चन काव्यपाठ ॥

इन पोथियो के लिखनेवाले सस्कृत के पडित या जैन साधु थे। सस्कृत-शब्दो को तो उन्होंने शुद्धि से लिखा, प्राकृत को भी, किंतु इन कविताओं की लेखशैली पर ध्यान नही दिया। कभी पुराना रूप रहने दिया, कभी व्यवहार मे परिचित नया रूप धर दिया। यह आगे के पाठातरो से जान पडेगा।

ऐसी कविता के लिए 'पुरानी हिंदी' शब्द जान-बूझकर काम मे लिया गया है। पुरानी गुजराती, पुरानी राजस्थानी, पुरानी पश्चिमी राजस्थानी आदि नाम कृत्रिम हैं और वर्तमान भेद को पीछे की ओर ढकेलकर बनाए गए हैं। भेदबुद्धि दृढ करने के अतिरिक्त इनका कोई फल भी नहीं है। कविता की भाषा प्राय सब जगह एकही सी थी। जैसे नानक से लेकर दक्षिण के हरिदासो तक की कविता 'ब्रजभाषा' कहलाती थी वैसे अपभ्रश को 'पुरानी हिंदी' कहना अनुचित नही, चाहे कवि के देशकाल के अनुसार उसमे कुछ रचना प्रादेशिक हो।

पिछले समय मे भी हिंदी कवि सत लोग विनोद के लिए एकाध पद गुजराती या पजाबी मे लिखकर अपनी वाणियाँ भाखा म लिखते रहे जैसे कि कुछ शौरसेनी, पैशाची का छीटा देकर कविता महाराष्ट्री प्राकृत मे ही होती थी। मीराबाई के पद पुरानी हिंदी कहे जाए या गुजराती या मारवाडी? डिंगल कविता गुजराती है या मारवाडी या हिंदी? कवि की प्रादेशिकता आने पर भी साधारण भाषा 'भाखा' ही थी। जैसे अपभ्रश मे कही-कही सस्कृत का पुट है वैसे तुलसीदास जी रामायण को पूरबी भाषा मे लिखते-लिखते सस्कृत मे चले जाते है।[1] यदि छापाखाना, प्रातीय अभिमान, मुसलमानो का फारसी अक्षरो का आग्रह और नया प्रातिक उद्बोधन न होता तो हिंदी अनायास ही देशभाषा बनी जा रही थी। अधिक छपने छापने, लिखने और झगडो ने भी इस गति को रोका।

आजकल लोग पृथ्वीराजरासे की भाषा को हिंदी का प्राचीनतम रूप मानते है, उसका विचार हम अपभ्रश के अवतरणो के विचार के पीछे करेंगे किंतु इतना कहे देते है कि यदि इन कविताओ को पुरानी हिंदी नही कहा जाए तो रासे की भाषा को राजस्थानी या 'मेवाडी-गुजराती-मारवाडी-चारणी-भाटी' कहना चाहिए, हिंदी नही। ब्रजभाषा भी हिंदी नही और तुलसीदास जी की मधुर उक्तिया भी हिंदी नही।

यह पुरानी कविता बिखरी हुई मिलती है कोई मुक्तक शृगार रस की कविता, कोई वीरता की प्रशसा, कोई ऐतिहासिक बात, कोई नीति का उपदेश, कोई लोकोक्ति और वह भी व्याकरण के उदाहरणो मे या कथाप्रसग मे उद्धृत।

१ जैसे—कबिहिं अगम जिमि ब्रह्मसुख अहममलिनजनपु।
रन जीति रिपुदलमध्यगत पश्यामि राममनामयं॥ इत्यादि।

मालूम होता है कि इस भाषा का साहित्य बडा था। उसमे महाभारत और रामायण की पूरी, या उनके आश्रय पर बनी हुई छोटी-छोटी कथाए थी। ब्रह्म और मुज नाम के कवियो का पता चलता है। जैसे प्राकृत के पुराने रूप भी शृगार की चटकीली मुक्तक गाथाओ मे (सातवाहन की सप्तशती) या जैन धर्म-ग्रथो मे हैं, वैसे पुरानी हिंदी के नमूने भी या तो शृगार वा वीर रस के अथवा कहानियो के चुटकुले हैं या जैन-धार्मिक रचनाए। हेमचद्र की बडी बडाई कीजिए कि उसने प्राकृत उदाहरणो मे तो पद वा वाक्यो के टुकडे ही दिए, पर ऐसी कविताओ के पूरे छद उद्धृत किए। इसका कारण यही जान पडता है कि जिन पडितो के लिए उसने व्याकरण बनाया वे साधारण मनुष्यो की 'भाखा' कविता को वैसे प्रेम से नही कठस्थ करते थे जैसे सस्कृत और प्राकृत को।

सस्कृत के श्लोक और गाथा की तरह इस कविता का राजा दोहा है। सोरठा, छप्पय, गीत आदि और छद भी हैं, पर इधर दोहा और उधर गाथा ही पुरानी हिंदी और प्राकृत का भेदक है। 'दोहा' का नाम कई सस्कृताभिमानियो ने 'दोधक'[1] बनाया है किंतु शाब्दिक समानता को छोडकर इसमे कोई सार नही है और सस्कृत मे दोधक छद दूसरा होने से इसमे धोखे की सामग्री भी है। दोहा पद की निरुक्ति दो की सख्या से है, जैसे चौपाई और छप्पय की— दो + पद, दो + पथ, या दो + गाथा। प्रबधचिंतामणि म एक जगह एक प्राकृत का 'दोधक' भी दिया है जो दोहा छद मे है। पूर्वार्ध सपादलक्ष (अजमेर-सांभर) के राजा ने समस्या की तरह भेजा था और उत्तरार्द्ध की पूर्ति हेमचद्र ने की थी[2]। यह ऐसा ही विरल विनोद जान पडता है जैसा कि आजकल हमारे मित्र भट्ट मथुरानाथ जी ने सस्कृत के मनहर दडक और सवैये। प्रबधचिंतामणि मे ही एक जगह दो चारणो को 'दोहाविद्यया स्पर्धमानौ' अर्थात् दोहा विद्या से होडाहोडी करते हुए कहा गया है। उनकी कविताओ म एक दोहा है, एक सोरठा, किंतु रचना 'दोहाविद्या' कही गई है यह बात ध्यान देने योग्य है। इसी प्रकार रेखता छद से रेखते की बोली कहला गई थी (रेखते के उस्ताद तुम ही नही हो गालिब!)।

पुरानी हिंदी का गद्य बहुत कम लिखा हुआ मिलता है। पद्य दो तरह रक्षित हुआ है, मुख से और लेख मे। दोनो तरह की रक्षा में लेखक के हस्तमुख और वक्ता के मुखसुख से इतने परिवर्तन हो गए हैं कि मूल शैली की विरूपता ही गई है। लिखनेवाला प्रचलित भाषा के ग्रथो या लोकप्रिय काव्यो मे 'मक्खी के लिए मक्खी' नही लिखता। उसकी बिना जाने ही कलम नये रूपों पर चल जाती है।

१ प्रबधचिंतामणि, पृ० ५६, १५७

२ पइली ताव न अनुहरइ गोरीमुहकमलस्स।
अदिट्ठी पुनि उन्नमइ पडिपयली चदस्स॥ प्र० चि०, पृ० १५७

गुसाईं जी के 'तइसइ' 'जुगुति' 'कालसुभाउ', 'अउरउ' अब क्रम से 'तैसेहिं', 'युक्ति', 'कालस्वभाव' और 'औरो' हो गए है। जो कविता मुख से कान, मुख से कान, चलती है उसमे तो बहुत ही परिवर्तन हो जाते हैं। हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण (आठवें अध्याय) के उदाहरणो मे एक 'अपभ्रंश' या पुरानी हिंदी के दोहे को लीजिए। अपभ्रंश और पुरानी हिंदी मे सीमारेखा बहुत ही अस्पष्ट है और, जैसा कि आगे स्पष्ट हो जाएगा, पुरानी हिंदी का समय बहुत ऊपर चढ जाता है। वह दोहा यह है—

वायसु उड्डावन्तिअए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तडत्ति॥

(वियोगिनी कौआ उडाने लगी कि मेरा पिया आता हो तो उड जा। इतने मे उसने अचानक पिया को देख लिया। वहा तो वह वियोग मे ऐसी दुबली थी कि हाथ बढाते ही आधी चूडिया जमीन पर गिर पडी और वहा हर्ष से इतनी मोटी हो गई कि बाकी चूडिया तड-तडकर चटक गई।)

चारणो के मुख मे कई पीढियो तक निकलते निकलते राजपूताने मे इस दोहे का यह मजा हुआ रूप प्रचलित है—

काग उडावन जांवती पिय दीठो सहसत्ति।
आधी चूडी कागगल आधी टूट तडित्ति॥

निशाना ठीक लग गया, चूडिया जमीन पर न गिर कर कौए के गले मे पहुच गई और चूडी टूटने का अशकुन भी मिट गया।

उसी व्याकरण मे से एक दोहा और लीजिए—

पुत्तें जाएँ कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पीकी भुहडी चम्पिज्जइ अवरेण॥

(उस बेटे के जन्म लेने से क्या लाभ और मर जाने से क्या हानि कि जिसके होते बाप की धरती पर दूसरा अधिकार कर ले।)

इस दोहे का परिवर्तन होते होते यह रूप हो गया है—

बेटा जायाँ कवण गुण अवगुण कवण धियेण[1]।
जो ऊभा[2] घर[3] आपणी गजीजैं[4] अवरेण[5]॥

१. धी से, पुत्री से।
२ खडे खड।
३. पृथ्वी, धरा।
४ गजन की जाए, जीती जाए।
५ मलसीसर के ठाकुर श्री भूरसिंह जी का विविध संग्रह, पृ० ४८। इस संग्रह मे यह दोहा तथा 'एहि ति घोडा एहि थल०—' वाला दोहा ठाकुर साहब ने कविवर हेमचंद्र के नाम से दिया है, किंतु ये हेमचंद्र की रचना नही है, उससे पहले के हैं, उसने अपने व्याकरण मे उदाहरण की तरह और बहुत सी कविता के साथ दिए हैं। 'एहि ति घोडा ०' की चर्चा यथास्थान होगी।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि मूल दोहे में 'मुये पुत्र से क्या अवगुण' कहा गया है किंतु पीछे, स्त्री जाति की ओर अपमान बुद्धि बढ़ जाने और उसका उत्तराधिकार न होने से 'धी (=पुत्री, संस्कृत दुहितृ, पंजाबी धी) से क्या अवगुण, हो गया है। अस्तु। ऐसी दशा में जो पुरानी कविता या गद्य संस्कृत और प्राकृत के व्याकरण और छंद आदि के ग्रंथों में, बच गया है, वह पुराने वर्णविन्यास की रक्षा के साथ उस समय की भाषा का वास्तविक रूप दिखाता है।

[प्रथम प्रकाशन नागरी प्रचारिणी पत्रिका सन् १९२१ ई०]

डिंगल

डिंगल शब्द के अर्थ में कई मतभेद हैं। राजपूताने की प्राचीन कविता जिसमें देशी अपभ्रंश अधिक आते हैं और कर्कश शब्दों का अधिक प्रयोग होता है, 'डिंगल' कहलाती है। डिंगल कविता का समय हो नहीं चुका, अब भी चारण वैसी कविता करते हैं। राजपूताने के कवि और कविता जानने वाले ब्रजभाषा की सुकुमार कविता को तो 'पिंगल' कहते हैं और कर्कश शब्द प्रचुर देशी कविता को 'डिंगल'। 'पिंगल' तो छंद के आचार्य हैं, यह नहीं कि 'डिंगल' कविता के छंद कोई दूसरे हैं, किंतु 'डिंगल' के छंद 'पिंगल' सूत्रों में लिखे छंदों में अन्तर्भूत हो जाते हैं, किंतु व्यवहार में शृंगार का दोहा जिसकी भाषा सुकुमार हो 'पिंगल' कहलाएगा। (लक्षण-शास्त्र का लक्ष्य पर उपचार) और दानस्तुति, निंदा (भूंडा) या वीरता का देशी दोहा डिंगल।

एक महाशय ने तो 'डिंगल' को प्राचीन राजस्थानी भाषा का नाम मान लिया है और राजपूताने की चटशालाओं की अखरावट को 'डिंगल' की वर्णमाला कह दिया है। इसका अत्यासक्ति को छोड़कर कोई प्रमाण नहीं। कुछ लोग 'डिंगल' का अर्थ 'डगर की बोली' करते हैं पर 'डगर' क्या है और कहां है, इसका कुछ पता नहीं। पहाड़ी या रेतली भूमि अर्थ करने से भी डिंगल कविता के क्षेत्र का यह नाम होना सिद्ध नहीं होता। एक चारण महाशय इसकी व्युत्पत्ति में कहते हैं कि 'म्हें डगल भेळा करां हां' अर्थात् ब्रजभाषा के कवि तो कटे-छटे-तराशे पत्थरों से मकान बनाते हैं, हम मिट्टी के टेढ़े-मेढ़े डगल या ढेले दो दो जोड़ कर झोंपड़ा चुनते हैं, इस 'डगल' से डिंगल बन गया। इस निर्वचन में भी 'डगल' डिंगल के श्रुतिसाम्य के अतिरिक्त कुछ तत्त्व नहीं।

मेरे मत में 'डिंगल' केवल अनुकरण शब्द है, 'काफिया न मिलेगा तो बोसों

तो मरेगा' की कहावत के अनुसार पिंगल के भेद दिखाने के लिए बना लिया गया है। जैसे 'वासवदत्ता' के विषय में (अधिकृत्य) बनाई गई कहानी 'वासवदत्ता' कहलाती है वैसे ही लक्षण-शास्त्र और लक्ष्य रचना के अभेदोपचार से हिंदी कविता पिंगल कहलाई। उससे भेद करने के लिए, श्रुति कटु टवर्ग बहुल भाषा की कविता के लिए डिंगल' एक यदृच्छा शब्द है, डित्थ आदि की पहचान की तरह इसका कोई अर्थ नहीं है।

निश्चित अर्थ के वाचक किसी शब्द से, उससे भेद दिखाने के लिए उसी की छाया पर दूसरा अनर्थक शब्द बनने और उसके दूसरे अर्थ के वाचक हो जाने के कई उदाहरण मिलते हैं।

१ कर्म का अर्थ सब जानते हैं। कुछ धातु द्विकर्मक होते हैं, जिनके साथ एक कर्म गौण या अनुक्त होता है और दूसरा प्रधान या उक्त। इस अनुक्त या 'अकीर्तित' कर्म के लिए वैयाकरणों के यहां 'कल्म' संज्ञा है। यह संज्ञा भाष्यकार पतंजलि ने बनाई या परोक्षा, भवन्ती आदि की तरह पुराने आचार्यों की बनाई है इसका कोई पता नहीं, किंतु इसका अर्थ कुछ नहीं है, केवल 'कर्म' से भेद करने के लिए उससे मिलता-जुलता नाम बना लिया है। स्वामी दयानंद ने केवल परिष्कार जानने वाले नवीन वैयाकरणों को चकराने के लिए इसका उपयोग किया किंतु 'कल्म, कर्म' ऐसे ही हैं जैसे डिंगल-पिंगल।

२ 'कुमार' का अर्थ बालक है। उसके तद्भव 'कुंवर' का अर्थ उस मनुष्य में रूढ हो गया है जिसका पिता जीता हो। किसी राजपूत को पिता के जीते 'कंवर' न कहकर 'ठाकुर' कहना बाप को गाली समझा जाता है। 'कंवर रामसिंह' का अर्थ हुआ — रामसिंह जिसका पिता जीता है, पिता के मरने पर वह ठाकुर हो जाएगा। अब यदि रामसिंह के पुत्र हो जाए तो वह क्या कहलावेगा ? उसका पिता स्वयं कंवर है। इसलिए दादा के सामने पोते के लिए सांकेतिक नाम बनाया गया—भंवर। भंवर का कोई अर्थ नहीं है, न भ्रमर से संबंध है, यह केवल कंवर से भेद करने के लिए मिलता जुलता शब्द है। वैसे ही पडदादा के जीते दुर्लभ पड-पोते को 'तंवर' या 'टंवर' कहते हैं।

३ जातियों के विभाग में दस्सा और बीसा पद आते हैं। दस्सा का अर्थ 'दासी का पुत्र' या मातृपक्ष से हीन है। दासी से 'दस्सा' बना है। इस शब्द के प्रचलित होने पर असल या शुद्ध जाति वालों ने 'दस्सा' को संख्या समझकर और बीस विस्वे की पूर्णता के उपचार से अपना नाम 'बीसा' रख लिया। दस्सा का दस से कुछ संबंध नहीं है, न बीसा का बीस से, किंतु दास से बनने वाले दस्सा को हीन पक्ष पर रूढ देखकर उसका दस की संख्या से श्रुतिसाम्य मानकर उससे भेद करने के लिए और अपने को बीसों विस्वा 'असल' बनाने के लिए बीसा नाम गढ़ लिया गया।

४ 'रुक्का' का अर्थ पत्र है। साकेतिक व्यवहार मे एक रियासत मे पत्रो के क्रमानुसार दर्जे हैं जैसे कैफियत, परवाना, रूबकार आदि। रुक्का नीचे के अधिकारी के नाम ऊँचे अधिकारी की लिखावट के अर्थ मे रूढ हो गया है। 'रुक्के' से नीचे दर्जे की लिखावट के लिए 'सुक्का' नाम बनाया गया है। सुक्का का कोई अपना अर्थ नही, न इसका सूखे से कोई सबध है, केवल रुक्के से भेद बताने के लिए यह सुक्के का तुक्का चलाया गया है।

५. पजाबी 'अढाई घर' सारस्वतो की 'पचजाति', कुमडिये, जैतली, झिगण, तिक्खे और मोहलो से भेद दिखाने के लिए ही 'चार घर' की जातियो के नाम कुछ विकृत करके लुमडिये, पेतली, पिगण, पिक्खे और बोहले रक्खे गए। (सारस्वत सर्वस्व, पृ० २३२-३) इन पदो का कोई अर्थ नही है पहले नामो से भेदमात्र दिखाने को परिवर्तन किया है।

[प्रथम प्रकाशन, नागरी प्रचारिणी पत्रिका . सन् १९२२ ई०]

अमंगल के स्थान में मंगल शब्द

साधारण बोलचाल मे अमंगल या अश्लील शब्दों की जगह अच्छे शब्दो का प्रयोग बहुत उदाहरणो मे पाया जाता है। ऐसे शब्द या तो बिल्कुल उलटा अर्थ बताने वाले होते हैं और विपरीत लक्षण से उस शब्द के अर्थ को बताते हैं जो अमगल समझकर छिपाया जाता है, अथवा उसी भाव को हल्के रूप मे प्रकट करते है।

'दिया बुझ गया'—कहना अमगल समझा जाता है। क्योकि 'बुझना' मृत्यु का भाव सूचित करता है। इसलिए 'दिया बुन गया'—'दिया नद गया'—'दिया बडा हो गया'—'दिया ठण्ढा हो गया'—'दिया बढ गया' आदि प्रयोग काम मे लाये जाते हैं। बिहारी लिख गया है—

दिया बढाये हू रहत, बडो उजेरो गेह।[1]

'होली जल गई' की जगह राजपूताने मे 'होली मगल गई' कहते हैं। 'जलना'

१. पाठांतर . (क) दिया बढ़ाये हू रहै, बडो उजेरो गेह।
—बिहारी बोधिनी : लाला भगवानदीन 'दीन' छद : १४७.
(ख) दिया बढ़ाऐं हूँ रहै, बड़ो उज्यारो गेह।
—बिहारी-रत्नाकर · जगन्नाथदास रत्नाकर, छद, ६६.
(ग) दिया बढ़ाएँ हूँ रहै, बड़ो उज्यारो गेह।
—बिहारी . विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छद, २.—सम्पादक

और उसके उपकरणों का सम्पर्क शवदाह से होने के कारण चूल्हा 'जलाते' या 'बालते' नहीं, उसे 'चिताते' हैं, और 'चिताने मे' भी 'चिता' शब्द के आ जाने से उसे 'जगाते' हैं। 'मरने' के बदले 'शान्त होना' या 'चल बसना' कहा जाता है। 'लकडी' या 'काठ' को लोग 'समिध' या 'ईंधन' या 'मुगधणा' (राजपूताने मे) कहते हैं। चिता के लिए 'लकडी की काठी' जाती है और रसोई के लिए 'ईंधन का भारा'। 'पानी देना'—या 'जल देना'—तर्पण का सूचक होने से—'पानी पिलाना'—ही व्यवहार मे आता है। चूल्हे मे—'आग देना' कहने से नई बहू डाटी जाती है। 'आग' को भी 'बैसादर (वैश्वानर)' या 'वासदे' या 'बास्ती' (वैश्वदेव, बलि के लिए पाक होने से ?) कहते है। इसीसे यह कहावत प्रसिद्ध है—

'दूसरे के घर लगे तो बैसादर, अपने घर लगे तो आग।'

'दुकान बन्द' करने से दिवाला निकलने या कारोबार बन्द होने की ध्वनि निकलती है। इससे दुकान या किवाड 'बढ़ा' कर साहजी रात को घर जाते हैं।

'घडा फूट गया' अमगल बचन है। इसलिए घडा 'उतर' जाता है या 'बिखर' जाता है। 'चूडी टूटना' वैधव्य का सूचक है। इसलिए चूडी 'मौल' जाती है, 'मुरक' जाती है, 'बध (बढ)' जाती है या 'बडी' हो जाती है।

'चूडा' पहनना विधवा के 'नाते' या पुनर्विवाह का द्योतक होने से राजपूताने मे चूडा 'धारण' किया जाता है। नही तो प्रश्न होता है—'चूडा पहनना ? किसका ?।' राजपूतो मे 'घोडा छूट गया' या 'घोडा खुल गया' का अर्थ घोडे का मरण होता है। इसलिए नौकर 'घोडा ढल गया' चिल्लाते फिरते हैं। घोडी के लिए ब्याना (बच्चा देना) नही कहते, 'ठाठा' (=स्यान, अर्थात् तबेला) देना कहते हैं। मृत्यु का समाचार देने वाले पत्र मे 'चिट्ठी' शब्द रूढ हो जाने से और पत्र 'कागद' कहलाते है। 'तुम्हारे घर से चिट्ठी आई है' सुनकर मारवाड वाले बुरा मानते हैं। वे कह बैठते हैं, 'तुम्हारे ही घर से आई होगी, हमारे तो आज ही राजी-खुशी का 'कागद' आया है।

अशौच का अर्थ अशुद्धि है। जन्म और मरण दोनो ही अवसरो पर धार्मिक अशुद्धि मानने वाला हिन्दू 'जन्माशौच' को केवल 'सूतक' कहता है और 'अशौच' को 'मृताशौच' ही समझता है। खाने का ग्रास 'पिण्ड' नही कहा जाता और न 'कर्म, क्रिया, कृत्य' शब्द ही शुद्ध कार्यों के लिए कहे जाते हैं। मरण के पीछे के सोलह श्राद्ध 'षोडशी' कहकर बुरे नाम से बताये जाते है और न्हान (स्नान) की रूढि अशौचान्त स्नान मे होने से सूतिकास्नान 'जल-पूजा' या 'जलुवा पूजना' ही कहाता है।' गरुडपुराण का सम्बन्ध मृत्यु मे होने से और अवसरो पर उसे 'तार्क्ष्य' कहते हैं।

बाल मुडाने का सम्पर्क मरण के साथ होने के कारण बालक के शुभ प्रथम मुण्डन को 'चूडाकर्म' या 'चौल' ही कहते हैं। इसी अशुभ चर्चा से रात को क्षौर या नापित का नाम नही लिया जाता और सस्कृत कोशो मे नाई का नाम 'दिवाकीर्ति' हो गया है। साधारण क्षौर का पर्याय 'बाल बनवाना' या 'सवार (शृगार) करवाना' जैसे लोकभाषा मे है वैसे ही सस्कृत 'गृह्यसूत्रो मे 'कुशली कर्म' या 'कुशलीकरण' और वात्स्यायन के कामसूत्र मे 'आयुष्य' (आयु के लिए हित) है। इसी अर्थ मे 'भद्राकरण' (भद्र = कुशल) भी है, परन्तु उपचार से भद्र होने (भद्र कराने) का फिर भी अमगल अर्थ हो जाने पर 'भद्राकरण' भले अर्थ मे आने लगा, जिसका कि पाणिनी ने उल्लेख (५।४।६७) किया है।

यात्रा करते समय यह पूछना कि आप कहा जाते हैं, अपशकुन समझा जाता है। इसीलिए राजपूताने मे पूछने का ढग है 'सिध पधारते हो ?' । इसमे मगल-वाचक सिद्ध शब्द भी आ गया और अमगल जिज्ञासा-वाचक किम्' का प्रयोग भी न आने पाया। मृत्यु मे सहानुभूति दिखाने के लिए जाने को 'फिरने जाना' कहते हैं और मैथिल लोग इसी भाव को 'जिज्ञासा' शब्द से प्रकट करते है। शवदाह के लिए बगाली 'सत्कार' शब्द काम मे लाते हैं।

अमगल, कटु या दुर्भावसूचक शब्दो के लिए कोमल पदो के प्रयोग के विषय मे भी कुछ कहना अनुचित न होगा। वेश्या को 'सदासुहागिन', व्यभिचारिणी को 'महासती', 'अमगलमुखी' को 'भद्रमुखी', उल्लू[1] को 'रात का राजा' कहने की चाल पड गई है। महत् शब्द के प्रयोग से हड्डी को 'महाशख', चर्बी को 'महातैल', मनुष्य-मास (या गोमास) को 'महामास', यम को 'महावैद्य', कटिहा को 'महा-ब्राह्मण', श्मशान यात्रा को 'महायात्रा', यमलोक के मार्ग को 'महामार्ग' और मृत्यु को 'महानिद्रा' के नाम से उल्लेख किया जाता है। वल्लभ कुल की सेवा मे ब्रजभाषा को छोडकर दूसरी भाषा के व्यवहार न करने का नियम होने के कारण मुसलमान 'बडी जाति' कहाते है। चोरो की भाषा मे जेल का नाम 'बडा घर' या 'सुसराल' है।

'हत्, तेरा भला हो', 'तेरा वश बढै'—इन गालियो मे भले का अर्थ बुरा और बढने का अर्थ नष्ट होना है। सर्वत्र प्रचलित 'ऐसी की तैसी' वाक्य मे दोनो सर्वनाम किसी सम्बन्धिनी स्त्री के विषय की गन्दी उक्ति को छिपाते है।

किसी मनुष्य को सामने खडा देखकर पहला प्रश्न होता है कि 'क्यो, क्या

१ तत्तष्यमेव किमकारणकण्टक त्वा
यद्धर्मराज इति काल ! जना स्तुवन्ति।
लोका न किं जगदमगलमूल कोप
शसन्ति मगलविहगम इत्युलूकम् ? ॥ (जगद्धर, स्तुतिकुसुमाजलि ६।७१)

है ?' इसका साधारण उत्तर यही होना चाहिए कि 'कुछ नहीं'। पर ऐसे दुःशकुन-सूचक उत्तर से बचने के लिए कुछ पंजाबी गृहपति इसी अर्थ में 'सब कुछ' उत्तर चाहते हैं।

गृह्यसूत्रों में ब्रह्मचारियों के लिए, स्नातक होने के पीछे यह कड़ा नियम किया गया है कि व शुक्त अर्थात् अमंगल या अश्लील शब्द न कहा करें। इनके कुछ उदाहरण भी देखे गए हैं।

गर्भिणी विजन्येति ब्रूयात् ॥ १० ॥
सकुलमिति नकुलम् ॥ ११ ॥
भगालमिति कपालम् ॥ १२ ॥
मणिधनुरितीन्द्रधनु ॥ १३ ॥ (पारस्कर २।७)

गर्भिणी को विजन्या (जननेवाली) कहे, क्योंकि गर्भ शब्द का प्रयोग न करना चाहिए। नकुल (नउल) को सकुल कहे, क्योंकि 'कुल नहीं' कहना अशुभ है। कपाल (खप्पर) को भगाल कहे क्योंकि स्नातक अब भीख मांगना छोड़ चुका है।[1] और खप्पर भीख का द्योतक है। 'प्रकृत्या भगाल' सूत्र (पाणिनि ६।२।१३७) के उदाहरणों में काशिका में भगाल, नदाल,—आदि शब्द कपाल के पर्याय माने गए हैं। इन्द्रधनु को मणिधनु कहे, क्योंकि इन्द्रधनुष देखने और दिखाने में पाप है।

इसी तरह उपनिषदों और गृह्यसूत्रों में स्त्री-सहवास के लिए 'उपहास' या अधोपहास'[2] शब्द काम में लाया गया है और भाष्यकार पतंजलि ने 'काम' की जगह 'खेद' शब्द लिखकर नीचे उद्धृत किये हुए अंश में कितना ओज और सौन्दर्य भर दिया है—

'खेदात् स्त्रीषु प्रवृत्तिर्भवति। समानश्च खेदविरहोगम्यायां चागम्यायां च। तत्र नियमः क्रियते—इयं गम्या, इयमगम्येति।'

कुछ गांवों के नाम अशुभ माने जाते हैं। सुबह उठकर उनका नाम लेने से यह भय होता है कि भोजन न मिलेगा। उनके नाम बदलकर 'राजा का शहर', 'जव-वाला गांव,' डेढ कोस का गांव', 'मोटा गांव', 'तलाब वाला गांव', आदि रख दिए जाते हैं। कभी कभी गांव का दुर्भाग्य नये नाम को भी नहीं छोड़ता, तब नये नाम की जगह और नाम गढ़ा जाता है। ऐसे नाम मेरी जानकारी में बहुत से हैं, परन्तु उनका यहां लिखना एकदेशी और उनके निवासियों के अकारण चिढ़ाने का कारण हो सकता है।

शहरों के नाम बदलने की चाल बहुत पुरानी है। पतंजलि ने महाभाष्य में

१ न ह वै स्नात्वा भिक्षेत, अप ह वै स्नात्वा भिक्षां जयतीति श्रुतेः (पारस्कर २।७।६)
२ पारस्कर २।७।६, बृहदारण्यक ६।४।३ आदि।

जहा मणिवाचक वैदूर्य शब्द को सिद्ध करने वाले पाणिनि के सूत्र (४।३।८४) की व्याख्या की है वहा यह प्रश्न किया है कि यह मणि विदूर — नगर मे तो निकलता है नही, उसके पास वालवाय पर्वत मे निकलता है, विदूर मे लाकर तराशा जाता है—तो इसका नाम वैदूर्य कैसे ? इसका समाधान आचार्य ने यो किया है कि 'वालवाय' शब्द की जगह विदूर आदेश हुआ मान लो, या उस पर्वत का विदूर ही नाम सही, नही तो जित्वरी की तरह उपचार मानो जैसे व्यापारी लोग वाराणसी (बनारस) को जित्वरी (जीतने वाली) नगरी कहते है वैसे ही वालवाय का नाम विदूर समझो ।

मासाहारियो को अपने भक्ष्य के लिए, 'तरकारी' शब्द का प्रयोग करते देख निरामिषाशी तरकारी के बदले 'साग' या भाजी' ही शब्द काम म लाते है। जहा कही पहली श्रेणी के लोग अपने भक्ष्य को भाजी' कहते है, वहा दूसरी श्रेणी के लोग 'तरकारी' को अपना लेते हैं। उर्दू पढी हुई दिल्ली की नई बहू यदि 'खाना तैयार है, खाना खा लो, खाना पकाऊ ?' कहने लगती है तो वैष्णव श्वसुर शब्दो के साहचर्य से डरकर खाना पर हाथ रखता है। शाक को काटना या चीरना नही कहा जाता, बनारना या बंदारना (विदारण) कहा जाता है। और जिस शस्त्र से यह क्रिया की जाती है उसे 'छुरी' न कहकर केवल 'चाकू' कहते है।

सस्कृत मे 'सपत्राकरण' और 'निष्पत्राकरण'—य दो मुहावरे है। य अत्यन्त पीडा पहुँचाने के अर्थ मे (अति व्यथने) आते है। पाणिनि न इनके लिए एक निराला सूत्र (५।४।६१) बनाया है। तीर के पिछले हिस्से मे पख लगे रहते हैं, जो तीर के दूर जाने मे सहायक होते हैं। यदि तीर शिकार के शरीर मे इस ज़ोर से धस जायें कि पर ही पर बाहर रह जायें तो इस क्रिया को सपत्राकृ० कहते है। और यदि बाण इस वेग के चलाया जाय की परो सहित समूचा बाण पार निकल जाय[1] तो इस अर्थ मे निष्पत्राकृ० धातु काम मे आता है। टीकाकारो ने उदाहरणो म यही समझाया है। प्रत्युदाहरणो मे यह भी दिखाया है कि सपत्र (पत्रो सहित) और निष्पत्र (पत्तो रहित) करने के अर्थ म सपत्राकर० और निष्पत्राकर० प्रयोग नही हो सकते, जैसे—

सपत्र वृक्ष करोति जल सेचक ।
निष्पत्र वृक्षतल करोति भूमिशोधक ॥ (काशिका)

यह अप्रकरण-चर्चा नही है। तमाशा देखिए। भाष्यकार पतजलि बड़े

1 पत्री
वयस्य नेत्र विवरे मद्दिपस्य दत्त ।
निर्भिद्य विग्रहमशोणितलिप्तपुङ्खस्त पातया प्रथममास पपात पश्चात् ॥ (रघुवश)

मसखरे थ। व कहते हैं कि जैसे कुम्हार के यहा जाकर वह आते हो कि घडे की जरूरत है, घडा बना दो, वैसे वैयाकरण क यहा जाकर कोई नही कहता कि शब्द गढ दो, हमे प्रयोग करना है। इसी तरह एक और स्थान पर व्यग्य स वे यह झलकाते हैं कि वैयाकरणों के अनुबधो को भी हाथ जोडकर राजाओं की इच्छा के अधीन होकर नाचना पडता है। धन के लोभी मौर्य *यदि सोने की अर्चायें (प्रतिमायें) चलात है तो वहा 'जीविकार्थे चापण्ये'* (५।३।९९) सूत्र का 'क' प्रत्यय मुह देखता रह जाता है। प्रयोजन यह कि शब्दो का अर्थ और प्रयोग लोक व्यवहार के अधीन है, वैयाकरणो के अधीन नही। व्याकरण को छोडकर उपमान, कोश, आप्तवाक्य, व्यवहार, सान्निध्य आदि भी तो शक्तिग्रह के कारण है।

राठौड राजा अमोघवर्ष प्रथम (ईसवी दसवी शताब्दी) के समय मे जैन शाकटायन ने एक व्याकरण बनाया और उसकी अमोघवृत्ति नामक टीका लिखी। इन दोनो मुहावरो पर जैन शाकटायन ठिठके। व्याकरण को भी तो हिंसा से बचाना चाहिए। रघुवश आदि महाकाव्य कितने ही अच्छे हो पर उनमे 'मिथ्यात्व भरा पडा है। इसलिए धर्मशर्माभ्युदय या चन्द्रप्रभचरित पढना चाहिए, यह धारणा जैसे वर्तमान जैनों की है वैसे ही उस समय भी थी। *क्या करें?* पहले 'निष्पत्राकरण' को लिया। इसका अर्थ तो सीधा हो गया 'पत्त अलग करना'। पुराने वैयाकरणा के प्रत्युदाहरण की कौन चलाई, जिसम इसी अर्थ का खडन किया गया है। और जैन-धर्म के अनुसार पत्तो और वृक्षा मे भी तो जीव है और हरे वृक्ष के पत्ते काटने म उतना ही *'अतिव्यथन'* है जितना असली 'निष्पत्राकरण मे। बस, निष्पत्राकरण का अर्थ हुआ वृक्ष के पत्ते उखाडना। *अब रहा सपत्राकरण। यहा क्या करे? यहा वह लोकरीति काम आई जिस पर* यह लेख लिखा गया है—

'सपत्राकरोत्यपि मगलाभिप्रायेण वृक्षस्य निष्पत्राकरणमेवाख्यायत। यथा दीपो नन्दतीति विध्वस। (३।४।५०)

सपत्राकरण का अर्थ भी वृक्ष के पत्ते नोचना ही है, केवल मगल के लिए निष्पत्र को सपत्र कह दिया है। जैसे दीपक बुझने को 'नन्दना' कहते है!।

इस प्रसग मे प्रोफेसर के० बी० पाठक न यह सूचित किया है कि कन्नडी भाषा म 'नन्दु' धातु का अर्थ बुझना भी होता है।

ऊपर के कई उदाहरणो मे हम 'नकुल' के 'सकुल' होते और 'बुझने' के 'नदना' होने को देख चुके है। अतएव हम जैन शाकटायन की युक्ति की प्रशसा करते है। इस सबध म हम इतना ही कहना चाहते है कि मार्च सन् १९१५ की सरस्वती म 'प्राणपणा' की समालोचना के उपान्त्यवाक्य में जो कुछ कहा गया है वह, और बृहदारण्यक उपनिषद् के *'काममेना षण्ड्या वा पाणिना वोपहत्यातिक्रामेत्'*

के आर्य्य समाजी भाष्यकार पर जो, कुछ समय हुआ, सरस्वती में कहा गया था वह किसी नई बात की चर्चा नहीं है—वह हमारे दार्शनिकों के एक परिचित उदाहरण पीलिया रोगवाले के रूपग्रहण—का स्मारक मात्र है।

[प्रथम प्रकाशन सरस्वती मई, सन् १६१५ ई०]

विज्ञान

आँख

[१]

'य एषोक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मति
होवाचैतदमृतमभयमेतद ब्रह्म' —छान्दोग्य ४।१५।१[1]
"अक्षि चष्टेरनक्तेरित्याग्रायणस्तस्मादेते
व्यक्ततरे इव भवत —निरुक्त १।३।४

परमेश्वर की रचना में यों तो एक से एक अद्भुत, अनुपम और सुन्दर पदार्थ हैं, सारा विश्व ब्रह्माण्ड ही ऐसा है कि अपने गुणों से अपने कर्त्ता के लिए वह बारम्बार कहलाता है कि—

यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह[3]

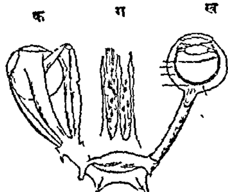
तथापि मनुष्यदेह से अधिक कोई पदार्थ अद्भुत नहीं। यही ईश्वर का प्रथम मन्दिर है यही जगत् की सब लीलाओं का केन्द्र है। यदि किसी घर का

१ यह आँख में जो पुरुष दिखाई देता है, यही आत्मा है। यही अमृत है, यही अभय है और यही ब्रह्म है। —सम्पादक

२ अक्षि शब्द चक्षु धातु से निष्पन्न होगा। अञ्ज (प्रकाशित होना या करना) से ('अक्षि शब्द') बनेगा ऐसा आग्रायण (आचार्य) मानते हैं। (ब्राह्मण ग्रंथों से) यह पता लगता है कि— इस कारण यह (आँख) अन्य अंगों की अपेक्षा अधिक व्यक्त सी होती है।
इस पर डा० वाचस्पति उपाध्याय की टिप्पणी इस प्रकार है— अक्षि शब्द की व्युत्पत्ति यास्क ने चक्ष देखना धातु से मानी है। यास्क से प्राचीन आचार्य आग्रायण ने 'अञ्ज' (प्रकाशित होना या करना) धातु से अक्षि शब्द की निष्पत्ति मानी थी। ब्राह्मण-ग्रंथकारों को भी अञ्ज धातु से ही अक्षि शब्द बनाना अभीष्ट था। इसी दृष्टि से यास्क ने किसी ब्राह्मण का तस्माद एते व्यक्ततरे इव भवत यह वाक्य उद्धृत किया, जिसमें यह कहा गया है कि आँख अधिक व्यक्त सी होती हैं। —सम्पादक

३ जहाँ न पहुँचकर वाणी मन के साथ लौट आती है। —सम्पादक

रहनेवाला अपने निवास का हाल न जाने तो वह हास्यास्पद होता है, किन्तु इस पवित्र घर मे रहते भी हम इसका वृत्तान्त न जानने के अपराधी है। इस घर की प्रधान खिड़की आँख ऐसी विलक्षण है कि न्यूटन के कथनानुसार आँख की परीक्षा नास्तिकता की परम महौषधि है। ऊपर लिखी श्रुति का अभिप्राय यह है कि ज्ञानी लोग आँख ही के द्वारा सच्चिदानन्द का ज्ञान प्राप्त करते है। निरुक्तकार 'अक्षि' का अर्थ यह करते है कि वह स्वय बहुत व्यक्त होती है अथवा सब चीजो को व्यक्त करती है। साधारण कहावत है कि आँख मूदने पर कुछ भी नही रहता। सच है, आँख की आवश्यकता और उपयोगिता की महिमा तब तक कदापि कम नहीं हो सकती जब तक कि मनुष्य जाति और इन्द्रिय उत्पन्न न कर लें। दूरबीन प्रभृति विज्ञान के मुकुट स्वरूप यन्त्र आँख के परिशिष्ट पूरक है। आँख न होने से वे किसी काम के नही। विशेष करके चञ्चलता और त्वक् से सम्बन्ध होने के कारण आँख ने मानो जगत् के ज्ञान-साम्राज्य को ठोकर ही मार दी। ऐसी अनुपम इन्द्रिय का वृत्तान्त किसको न रुचेगा? नैयायिको के अनुसार कृष्णतारा के अग्रभाग मे स्थित चक्षु इन्द्रिय आलोक-सयोग, और उद्भुत रूप सयोग से, उद्भुत रूप, रूपवान् द्रव्य, पृथकत्व, सख्या, विभाग, सयोग, परत्व, अपरत्व, स्नेह, द्रवत्व और परिमाण तथा क्रिया जाति और समवाय का ग्रहण करती है। गवेषणा के नायक पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने आँख पर क्या क्या लिखा है उसका एकसाथ समावेश करना अति दुष्कर है। तथापि उसका सार देने का यत्न किया जाता है।



चित्र १

क बाईं आँख स्नायु दिखाती हुई ग मसु, और इन्द्रिया
ख दाहनी आँख का असली रूप।

आँख बाहर से प्राय गोलाकार होती है। सामने ही जो काँच की सी झिल्ली दिखाई देती है उसे 'कार्निया' कहते है। इसके पीछे थोडी दूर पर आइरिस नाम की झिल्ली है, यह वही रङ्गहीन गोल पदार्थ है। जो आँख के सफ़ेदे के बीच मे दिखाई देता है। इस झिल्ली के बीच मे एक छिद्र होता है। यह मनुष्य की आँख मे गोल होता है, बिल्ली की आँख मे तङ्ग और लम्बा होता है। इसीके द्वारा किरण आँख के भीतर प्रवेश करते है। प्रकाश के प्रवेश को नियमित करने के लिए यह फैल और सिकुड सकता है। इसके पीछे,

बहुत पास ही दोनों ओर से उन्नतोदर एक काँच या उसके सदृश पदार्थ है। यह भी फैल और सिकुड सकता है। इस ताल को यथास्थान रखने के लिए सिलिएरी स्नायु नामक एक मांस का छल्ला है जो ऊपर के ढक्कन स्क्लेरोटिक में ही लगा हुआ है। इसके पीछे का सब भाग आँख के पिछवाड़े तक अण्डे के रस के सदृश चिपचिपे पारदर्शक पदार्थ से भरा हुआ होता है जिसे काचीय अंक कहना उचित होगा। आगे काच और कानिया के बीच में भी ऐसा ही विमल रस है जिसे जलीय अंक कहते हैं। आँख के अन्दर का सब पिछला भाग रेटिना नामक मुलायम श्वेत और विमल झिल्ली से मढ़ा हुआ है। यह मानो उस ज्ञानतन्तु का जाल की तरह फैला हुआ अग्रभाग है जो यहां से मस्तिष्क तक जाने तथा दर्शन का ज्ञान कराने के कारण चाक्षुष ज्ञानतन्तु कहलाती है। रेटिना ही दर्शनेन्द्रिय का प्रधान तथा दुर्बोध भाग है। ज्ञानतन्तु पीछे से आकर तन्तु शिराओं के रूप में अन्दरी सतह पर फैले हुए हैं यहाँ से पीछे को मुड़कर मस्तिष्क के प्रथम स्वरूप गोल गोल कणों की तरह व्याप्त है या छड़ों से अथवा शंकु के से टकडों का रूप धारण करके आड़े पड़े हुए हैं। मनुष्य की आँख में इन शंकुओं की संख्या ३३ ६० ००० मानी गई है छड़ियों की संख्या का पता नहीं। इन छड़ियों में एक प्रकार का रङ्ग है जो प्रकाश में उड़ जाता है और अंधेरे में फिर व्याप्त हो जाता है। इन छड़ी शङ्कुओं का पूरा कर्तव्य क्या है सो तो मालूम नहीं हुआ आकारपरिज्ञान तथा रङ्गज्ञान में यह काम देते हैं। यदि आलोक ज्ञानतन्तु के एक ऐसे स्थान पर पड़े जहां कोई शंकु न हो तो कुछ देख नहीं पड़ता इस स्थान का नाम अन्धबिन्दु है। इसके विरुद्ध एक दूसरे स्थान पर बहुत से शङ्कु रक्खे हुए हैं वहां पर बहुत तीव्र दर्शन होता है। इस स्थान को पीतबिन्दु कहते हैं। यह सब आँखों में एक स्थान पर नहीं होता तथा मृत्यु के पीछे बहुत कम देर तक रहता है। बकरे की आँख में इस बिन्दु को मैंने स्वयं देखा है। रेटिना के पीछे एक ओर कोरोइड नामक झिल्ली है। उसमें कुछ काले गोल दानों के समान पदार्थ है जो उन किरणों को शोष लेता है जो दर्शन में काम नहीं दे सकती। अन्त में यही कहना है कि स्क्लेरोटिक नाम की झिल्ली आँख को घेरे हुए है और आगे आकर कानिया में मिल गई है। यह सफेद ढक्कन आँख को सुरक्षित रखता है। इसी में पतली ढकनी से ढका हुआ छिद्र काच की खिड़की का काम देता है।



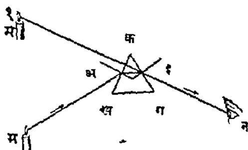
चित्र २

१ कानिया। २ इरिस। ३ काच। ४ रेटिना। ५ काली चद्दर। ६ स्क्लेरोटिक। ७ ज्ञानतन्तु।

आँख की विशेष उपयोगिता इसी में है कि इसके प्रबन्ध के लिए कितने ही स्नायु हैं जो इसको समय-समय पर मोड वा बदल सकते हैं। अन्दर के सीलिमरी छल्ले का हाल कह ही चुके हैं। यह समीपावलोकन के लिए काच को दबाकर अधिक उन्नतोदर कर देता है। बाहर की तरफ कपाल की हड्डी से लगे हुए स्नायु हैं। उनमें से चार तो खडे हैं और डेल को ऊपर-नीचे घुमाने का काम देते हैं, और दो अगल-बगल में रहकर आँख को तिरछा घुमा सकते हैं। इनसे आँख की धुरी बदल सकती है और हम पदार्थों को ध्यानपूर्वक देख सकते हैं। यदि आँख का डेला स्थिर होता तो आँख से बहुत कम ज्ञान मिलता। इस चञ्चलता से पदार्थपरिज्ञान में बड़ा काम निकलता है।

नेत्र द्वारा ज्ञान का मुख्य करण दोनों ओर से उन्नतोदर इस काच को ही गिनना चाहिए, क्योंकि आलोक इसीके द्वारा भीतर जाकर ज्ञानतन्तु सम्बन्धी प्रकम्पन में परिणत होता है। अतएव, यहा पर ताल, काच और उन पर आलोक पड़ने के प्रभाव पर कुछ कहना अनुचित न होगा।

यहाँ काच वा ताल से 'दर्पण' का अभिप्राय नहीं है, किन्तु ऐसे काच के टुकड़े से अभिप्राय है जिसके दोनों किनारे एक-दूसरे के समानान्तर न होकर किसी कोण को बनाते हुए झुके हों। सुप्रसिद्ध तिकोने काच में पदार्थों को उठा हुआ देखने के दृष्टान्त और इस चित्र से जान पड़ेगा कि आलोक की किरणें तरल पदार्थ से अधिक घने पदार्थ में घुसती बेर मुड जाती हैं।



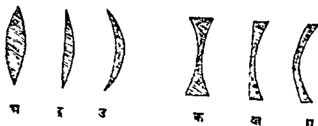
चित्र ३

म मोमबत्ती, क ख ग ताल, अ इ प्रकाश की किरण के मुड़ने के स्थान 'न' अन्ध 'मों' मोमबत्ती का प्रतिबिम्ब।

[२]

आलोक की किरण जिस पदार्थ में प्रवेश कर रही है उसकी सतह पर लम्ब खींचा जाय तो तरल पदार्थ में उस किरण का लम्ब के साथ बना हुआ कोण, घने पदार्थ में बने हुए कोण से बडा होगा। 'क ख ग' ताल में 'म' मोमबत्ती की किरण आ रही है। वह 'अ' 'इ' स्थानों पर उपर्युक्त नियमानुसार दो बेर मुड़कर 'न' नेत्र में पहुँची। अतएव 'न' नेत्र को, 'म' अपने स्थान में नहीं किन्तु 'न इ' सिलसिले में 'म'' पर दिखाई देगी। अर्थात् निपार्श्व में देखे जाने से,

पदार्थ, उसकी चोटी की तरफ, किरणों के वक्रीभवन से, बदले हुए दिखाई देते हैं। प्रकाश को दो बेर मोड देने का यह गुण, तालों के विषय में जो कुछ कहा जायगा, उसका आधार है।



(चित्र ४)

ताल ६ प्रकार के होते हैं और उन्हें दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं। इनके गुणों के विचार के लिए 'अ' और 'क' का ही विचार बस होगा, क्योंकि उस उस समूह के और-और तालों के गुण उनके ही सदृश हैं।

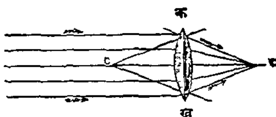
अ	उभयोन्नतोदर	केन्द्राकर्षक
इ	समोन्नतोदर	
उ	मध्यस्थूल अर्धचन्द्र	
क	उभय नतोदर	केन्द्रापसारक
ख	समनतोदर	
ग	मध्यकृश अर्धचन्द्र	

उन्नतोदर ताल—यदि दो वृत्त एक दूसरे को काटें तो जो भूमि दोनों वृत्तों में समान होगी वही उभयोन्नतोदर ताल होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। इन दोनों वृत्तों के केन्द्र गुलाई के केन्द्र, और उन दोनों केन्द्रों को जोड़नेवाली ताल में होकर जानेवाली रेखा प्रधान धुरी कहलाती है। काच के दोनों किनारों से समान दूरी पर प्रधान धुरी पर जो बिन्दु हो उसे दर्शन केन्द्र कहना उचित होगा। ऐसी और कोई रेखा जो दर्शनकेन्द्र में होकर जाय, किंतु गुलाई के केन्द्रों से दूर रहे उसे गौण धुरी कहेंगे। प्रधान धुरी एक ही होती है गौण धुरी अनन्त हैं। अनन्त सरल रेखाओं के मिलने से वक्र रेखा वा वृत्त बनता है। अतएव अ इ उ तालों को हम अनन्त त्रिपार्श्वों के एक के आधार में दूसरे तथा दूसरे के आधार में तीसरे के, जुड़ने से बना हुआ मान सकते हैं। क ख ग तालों को इसके विरुद्ध चोटी की तरफ जुड़े हुए मान लें। अब यह समझना कठिन न होगा कि उन्नतोदर ताल केन्द्राकर्षक क्यों होते हैं और नतोदर केन्द्रापसारी क्यों होते हैं। क्योंकि त्रिपार्श्व में किरणें दो दफा मुड़कर आधार की तरफ जाती हैं। उन्नतोदर में जुड़े अनन्त त्रिपार्श्वों का आधार बीच की तरफ और नतोदर में ऊपर की तरफ होता है। इसीलिए उन्नतोदर में किरण बीच में आती

हैं और ननोदर मे ऊपर की ओर उड जाती हैं।

(१) मान लीजिए कि किसी उन्नतोदर ताल पर बहुत दूर के पदार्थ की किरणें पड रही है -- इतनी दूर से कि वह एक स्थान से प्रचलित न दिखाई देकर समानान्तर दिखाई देती हो, जैसे सूर्य की किरणें, तो उन किरणो मे से जो किरण प्रधान धुरी पर जाती है वह तो मानो समानान्तर ताल मे होकर जा रही है और बिना वक्र हुए निकल आती है। इससे कुछ दूर की किरण, नियमानुसार दो दफा मुडती है और मध्यकिरण से समानान्तरता नष्ट होने पर उससे मिलती है। उससे अधिक दूर की किरण, अधिक झोकवाले त्रिपार्श्व मे टकराने से, अधिक झोक खाकर मुडती है, क्योकि ताल की झोक केन्द्र से ऊपर की तरफ बढती जाती है। इसीलिए यह मुडकर पहली दो किरणो से उसी स्थान पर मिलती है जहा वे मिली थी। ऐसे ही अधिक अधिक दूर की किरणें, अधिक अधिक झोक खाकर, प्रधान धुरी के ऊपर या नीचे, एक बिन्दु 'अ' पर मिलती है।

यो समानान्तर किरणजाल केन्द्राकृष्ट किरणजाल बनकर एक बिन्दु पर मिलता है। इस बिन्दु का नाम अशुनाभि है। वास्तव मे यह सूर्य का चित्र है। उन्नतोदर ताल ही 'आतिशी शीशा' कहाता है। इस नाभि मे आलोक ही नही, उष्णता भी इकट्ठी होकर जलाने का काम दे सकती है। ताल पर जिस तरफ मे किरणें आती है उसके दूसरी तरफ यह बनता है। जितनी काच की गुलाई अधिक होगी, उतनी ही यह नाभि छोटी और उष्ण होगी। यह नाभि सच्ची है अर्थात् ताल के पीछे कपडा या कागज रखने से दिखाई देगी।



(चित्र ५)

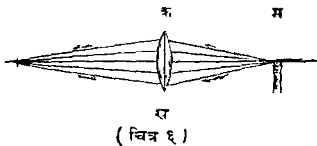
क ख ताल। अ अशुनाभि

(२) अब मान लीजिए कि आलोक का पदार्थ (मोमबत्ती) अधिक समीप आ गया है, किन्तु अशुनाभि से दूर है। समानान्तर किरणो की अपेक्षा इनमे एक-दूसरे से कम अन्तर है, इसीलिए ताल के दूसरी ओर निकलकर यह उतनी जल्दी केन्द्राकृष्ट नही होनी, किन्तु अशुनाभि से हटकर अगाडी मिलती है।

[३]

यहा 'म'' को म का सयोगी केन्द्र कहना पडता है, अर्थात् यदि मोमबत्ती 'म'

पर हो तो छाया चित्र 'म' पर और वह 'म' पर हो तो 'म'' पर होगा। ऐसी नाभियो की कोई सख्या नियत नही। उनके लिए यही नियम है कि आलोक का



(चित्र ६)

क ख ताल। म प्रकाश का सयोगी केन्द्र म' और म' का म है।

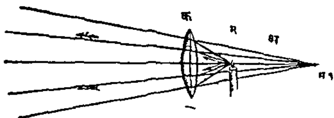
पदार्थ अशुनाभि के जितना समीप हो, उसका सयोगी केन्द्र उतना ही दूर होगा— "विपरीते विपरीतम्"। उपपत्ति यह है कि पदार्थ से आनेवाली किरणें ज्यो-ज्यो अधिक केन्द्रापसारी होती जाएगी त्यो-त्यो उनकी छायाकिरणें अधिक केन्द्रापसृत होकर दूर पर मिलेंगी।

(३) अब कल्पना कीजिए कि 'म' मोमबत्ती ताल के समीप आते-आते अशुनाभि पर आ गई। मैं (१) मे जो कह चुका हू उसके अनुसार इसमे से निकलनेवाली किरणें ताल के पार जाकर समानान्तर हो जाएगी और कही भी उनका चित्र न बनेगा। वास्तव मे अनन्तता और अशुनाभि ये दोनो (२) के अनुसार परस्पर सयोगी केन्द्र है, अनन्तता से आई किरणें अशुनाभि पर मिलती है और अशुनाभि से चली हुई अनन्त दूरी पर मिलती हैं। चित्र ५ देखिए।

(४) अब तक हमने जिन नाभियो व चित्रा का वर्णन किया है वे सच्चे हैं अर्थात् जिधर से ताल पर किरणें आती है उसके दूसरी ओर कागज वा परदा लगाने से वे दिखाई देती हैं। किन्तु, यदि आलोक का पदार्थ अशुनाभि और ताल के बीच मे आ जावे तो और ही तमाशा होगा। अर्थात् झूठी नाभि बनेगी। हम देखते आये हैं कि किरणें ज्यो-ज्यो ताल के समीप आती गई, त्यो-त्यो केन्द्र से छायाकिरणो की अपसारण की मात्रा बढती गई। यहा तक कि अशुनाभि के प्रकाश की किरणें समानान्तर हो गई। अब अधिक समीप आने से बाहर निकलने वाली किरणें और भी केन्द्रापसृत होगी (चित्र ७) देखिए। अतएव चित्र बनने के बजाय देखनेवाला यह समझेगा कि ये किरणें 'म' से न आकर 'म'' से आई हैं, जहा पर अपसर्पिणी रेखाए बढाने से मिलती है। यह भ्रममात्र है, यह चाक्षुष छल है।

तो उभयोन्नतोदर ताल के ये गुण हुए—(१) धुरी के समानान्तर रेखाओ

का सच्चा चित्र अंशुनाभि पर और अशुनाभि से चलनेवाली किरणों का चित्र, दूसरी ओर निकल कर, अनन्त दूरी पर बनता है। (चित्र ५) (२) अशुनाभि से दूर के पदार्थों का चित्र दूसरी ओर अशुनाभि के समीप, और समीप के पदार्थों का दूर पडता है। ऐसी नाभि सयोगी केन्द्र कहलाती है (चित्र ६)(३) अशुनाभि और ताल के बीच के पदार्थों का चित्र झूठा, और जिधर पदार्थ होता है उधर ही, बनता है। (चित्र ७ को नीचे देखिए) अब तक आलोक को एक बिन्दु से आता मानकर इस विलक्षण ताल के गुण समझाए गए है। अब मान लीजिए



चित्र ७

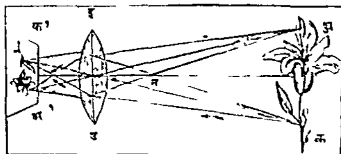
क ख ताल। म मोमबत्ती, अशुनाभि म और ताल के बीच म है।
इससे झूठा चित्र म' बनता है।

कि आलोकदायक पदार्थ गणितबिन्दु न होकर कोई बडा पदार्थ है। पहले मोमबत्ती के आलोक बिन्दु ही को हम देख रहे थे, उस समय यदि हम ध्यान देते तो स्वय मोमबत्ती के भी चित्र बनते हुए देखते। अस्तु, जिन पाठकों ने बिन्दु-चित्र को ध्यान से पढा है वे पदार्थ चित्र को भी ठीक-ठीक समझ जाएगे।

(१) समानान्तर किरणों का आना सूर्य से या किसी ऐसे ही विप्रकृष्ट पदार्थ से हो सकता है। अतएव अशुनाभि पर बना चित्र किसी बिन्दु की नही किन्तु सूर्य की मूर्त्ति है। यह चित्र रङ्ग मे और तेज मे भी सूर्य के समान ही है। चित्र काच के समीप होने के कारण छोटा है और अपनी समीपता के अनुसार तेज रखता है। इतना और जान लीजिए कि यह चित्र उलटा है, किन्तु सूर्य के गोल होने से उलटेपन से कोई क्षति नही। विशेष हाल पहले कहा ही गया है।

(२) यदि कोई पदार्थ किरणाकर्षक ताल के सामने प्रधान धुरी से दूर रक्खा जाय तो ताल के दूसरी ओर परदा डालने से उसी पदार्थ का उल्टा चित्र दिखाई देगा। रङ्ग, ढङ्ग और सफाई मे यह बहुत ही ठीक उतरता है, यह पदार्थ की ठीक नकल है, इसमे दोष है तो यही कि वह उलटा है। इसकी बनावट समझना बहुत सहज है। नाभियों के विचार म प्रधान धुरी के विषय मे जो कहा गया है, गौण धुरी के विषय मे भी वही सब सच है। पहले आलोकदायक बिन्दु को प्रधान धुरी

पर मानकर मीमांसा की गई थी, किन्तु यहां कई गौण धुरियों पर कई आलोक-दायक बिन्दु हैं। चित्र ८ पर ध्यान देने से किरणों के मार्ग खूब साफ दिखाई देंगे। प्रत्येक धुरी गुलाई के केन्द्र में होकर जाती है, अतएव प्रकट है कि जिस धुरी का एक सिरा ऊपर होगा उसका सिरा ताल में होकर निकलने के बाद नीचे जाएगा। अतएव 'अ' बिन्दु की सब किरणें गुलाई के केन्द्र में होकर उस बिन्दु से आने वाली धुरी के दूसरे सिरे पर 'म' में कहीं होंगी। अर्थात् अ' 'अ' का संयोग केन्द्र, अर्थात् चित्र है। यों ही 'क' का चित्र 'क'' पर बनता है। अब देखिए 'अक' पदार्थ के प्रत्येक बिन्दु का चित्र (संयोगी केन्द्र) अपनी-अपनी धुरी पर बन गया अर्थात् अ' क' छोटा और उलटा चित्र बन गया। छोटा इसलिए कि पदार्थ की अपेक्षा ताल के वह अधिक समीप है और उलटा इसलिए कि गौण धुरियां पदार्थ और उसके चित्र के बीच में ताल की गुलाई के केन्द्र पर परस्पर काटती हैं।



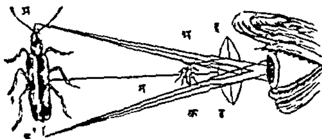
चित्र ८

इ उ ताल। न अंशुनाभि।
अ क पदार्थ का उलटा छायाचित्र अ' क'

कोई यह न समझे कि उन्नतोदर ताल में उलटा सच्चा चित्र पदार्थ से छोटा ही होता है, नहीं यदि पदार्थ समीप हो तो चित्र बड़ा भी हो सकता है। संयोगी केन्द्रों के परस्पर सम्बन्ध याद रखने से जान पड़ेगा कि यदि चित्र ८ में वास्तव पदार्थ अ' क' होता तो उससे निकलकर किरणें पहले की तरह मार्ग पर चलती हुई 'अक' पर बड़ा चित्र बनातीं। उन्नतोदर ताल पास के पदार्थों का उलटा चित्र दूर और दूर के पदार्थों का उलटा चित्र समीप डालते हैं।

यह सिद्धान्त विज्ञानशास्त्र में बहुत काम देता है। इन सच्चे चित्रों के अतिरिक्त ये ताल झूठे चित्र भी बनाते हैं। जब पदार्थ ताल और अंशुनाभि के बीच में होता है तब झूठा चित्र वैसे ही बनता है जैसे चित्र ७ में उपकेन्द्र या झूठी नाभि बन गई थी। चित्र ६ को देखने से प्रतीत होगा कि पदार्थ 'अक' की किरणें

बाहर निकलती बेर ताल से टकराती हुई जब दूसरी ओर निकलती हैं तब वे



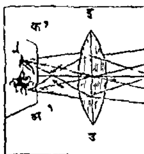
चित्र ९

इ उ ताल । न समुनाभि
अ क पदार्थ का सीधा, बड़ा, झूठा, चित्र अ' क'

अपसारिणी बन जाती है अर्थात् उलटे गोपुच्छ के आकार में हो जाती हैं। उनके आँख में पहुँचने पर यह भ्रम होता है कि किरण जाल 'अ' से न चलकर अ' से चला है जहाँ कि बढ़ाने पर यह मिल जायेगा और जो इस अवसर्पि-किरण-जाल का शिखर है। अतएव 'अक' पदार्थ का बड़ा हुआ चित्र अ' क' दिखाई देता है। यह चाक्षुष भ्रम ही है। यह न परदे पर देखा जा सकता है और न वास्तव में ही। वास्तव चित्र सदा उलटा होता है किन्तु उसके विरुद्ध यह सदा सीधा और बड़ा होता है। सीधा इसलिए होता है कि पदार्थ से आनेवाले किरण मुड़कर भी आँख तक आते-आते परस्पर नहीं काटते, और बड़ा इसलिए कि यह चित्र 'अ' 'क' में होकर जानेवाली गौण धुरियों के सम्पातबिन्दु से पदार्थ की अपेक्षा अधिक दूर है।

अवनतोदर तालों की भी दो-चार बातें सुन लीजिए। पहले कह चुके हैं कि नतोदर ताल की मुटाई बीच में बहुत छोटी होती है। उन्नतोदर काच में दोनों पार्श्वों का एक-दूसरे की ओर झुकाव केन्द्र से छोरों की तरफ बढ़ता जाता है, किन्तु यहाँ उलटी बात है। इसीलिए फल भी उलटा है। अर्थात् उन्नतोदर ताल किरणों को दो बेर उसी तरफ को मोड़कर प्रधान धुरी की ओर केन्द्राकृष्ट करते हैं। वैसे ही ये दो बेर मोड़कर केन्द्र से अधिक दूर कर देते हैं। चित्र १० देखिए। ताल में होकर आनेवाली किरणें दो दफा मुड़कर आधार की ओर खिंच आती हैं। उन्नतोदर ताल में आधार बीच में और नतोदर में ऊपर होता है। इन सब ऊपर कही हुई बातों को याद करके कह सकते हैं कि पदार्थ 'अ क' से आनेवाली किरणें दो बेर मुड़कर अधिक अपसृत हो जाती हैं। इस मोड़ से यह फल हुआ कि किरण जाल 'अ'' बिन्दु से आता हुआ प्रतीत होता है। इसी प्रकार क से आनेवाली किरणें 'क'' से आती ज्ञात होती हैं। फल यह हुआ कि एक छोटा

पर मानवर मीमांसा की गई
दायक बिन्दु हैं। चित्र ८ पर
प्रत्येक धुरी गुलाई के केन्द्र मे
एक सिरा ऊपर होगा उसका
अतएव 'अ' बिन्दु की सब कि
वाली धुरी के दूसरे सिरे पर 'म
अर्थात् चित्र है। या ही 'क' का
के प्रत्येक बिन्दु का चित्र (सयोगी
अ' क' छोटा और उलटा चित्र ब
ताल के वह अधिक समीप है और
उसके चित्र के बीच म ताल की गु



इ उ ता
अ क पदार्थ क

कोई यह न समझे कि उन्नतो
ही होता है, नहीं यदि पदार्थ समीप
केन्द्रा के परस्पर सम्बन्ध याद रख
पदार्थ अ' क' होता तो उससे निक
हुई 'अक' पर बडा चित्र बनाती। उ
दूर और दूर के पदार्थों का उलटा
यह सिद्धान्त विज्ञानशास्त्र मे
अतिरिक्त म ताल झूठे चित्र भी ब
बीच मे होता है तब झूठा चित्र वैसे
नाभि बन गई थी। चित्र ६ को देख

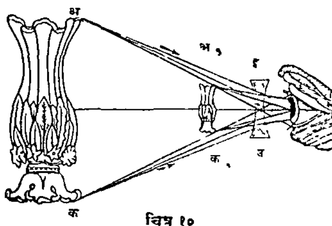
आकार के कई तरह के चित्र और तडित् फोटो, खुर्दबीन मे बाल को सोटे का-सा और मच्छर को पेड का-सा आकार दिखा देना भी इन तालो का ही काम है। जिस चाक्षुष प्रत्यक्ष का हम वर्णन कर रहे हैं वह भी इन तालो ही की कृपा है। बुड्ढे और जवानो के चश्मे, जिनसे प्राकृतिक ताल की उपयोगिता बढती जाती है, इन्ही तालो से बनते है।

जब पाठक तालो के विषय मे इतनी बातें जान गये हैं तब यह समझना कुछ भी कठिन नही है कि 'आँख' एक प्रकार का 'कॅमरा आवसेक्यूरा' है। आँख मे वही प्रक्रिया होती है जो चित्र १ और चित्र २ मे दर्शित हैं। बाहर के पदार्थों की किरणें आँख के काच मे होकर बीच मे परस्पर काटती हुई रेटिना रूपी पर्दे पर उलटा छोटा सच्चा चित्र बनाती हैं। यहा तक पदार्थ विज्ञान का काम है। जब यह उलटा चित्र रेटिना पर पडता है तब वहा पर पदार्थ का प्रकम्पन स्नायुओं के प्रकम्पन मे परिणत हो जाता है। इस बात को जरा समझ लेना चाहिए। पहले वैज्ञानिको का यह मत था कि प्रकाशवान् पदार्थ मे से कई छोटे-छोटे कण सब दिशाओ की ओर फॅके जाते है और वे असीम वेग से सरल रेखाओ मे दौडते चले जाते है। किन्तु अब विज्ञान का और ही सिद्धान्त है। सब वैज्ञानिक इस बात पर एक मत हैं कि एक अत्यन्त द्रव और सूक्ष्म पदार्थ ईथर नामक है। इसे संस्कृत वैज्ञानिको का आकाश कह सकते हैं। आकाश केवल शब्द-गुण का ही नही है, किन्तु भिन्न-भिन्न प्रकम्पनो से भिन्न-भिन्न तरङ्ग उसमे आलोक, उष्णता और शब्द उत्पन्न कर सकते हैं।

आलोकदायी पदार्थों मे से बन्दूक की गोली की तरह कोई चीज नही छूटती। उस पदार्थ के कण बिलकुल नहीं चलते। किन्तु अपने ही स्थान पर एक प्रकार का प्रकम्पन करते है। उस हरकत से आसपास के ईथर मे प्रकम्पन की तरगें, जैसे रस्सी के एक छोर को हिलाने से दूसरे छोर तक कम्प होता है, वैसी उठती हैं। वही प्रकम्पन चलता हुआ हमे आलोक की भावना देता है। ऐसे ही एक भिन्न प्रकार के प्रकम्पन उष्णता वा शीत का ज्ञान देते हैं। प्रकम्पन एक ही है। किन्तु आँख, कान वा त्वचा के भेद से तीन भेद हो जाते हैं। इन्ही प्रकम्पमान किरणो की तेजी मन्दी से रङ्ग का ज्ञान होता है। जो किरणें प्रति सेकण्ड ४५८ अयुतायुत (दश लाख गुना दश लाख) कम्प भोगती हैं वे लाल होती हैं। और जो ७२७ अयुतायुत प्रकम्पन पाती है, वे बैंगनी होती हैं। इस प्रकार प्रति सेकण्ड १,८०,००० मील चलनेवाली आलोक की किरणें अपने कम या ज्यादह प्रकम्पन के अनुसार, लाल, नारङ्गी, पीत, हरित, आसमानी, नीला, बैंगनी इन सात अकृत्रिम रङ्गो मे प्रगट होती हैं।

सूर्य्य के प्रकाश को श्वेत मत समझिए। उस मे ये सातो रङ्ग हैं। पदार्थो मे भिन्न-भिन्न रङ्ग होने का कारण यह है कि जो पदार्थ और रङ्गो की किरणें

चित्र असत्य अ' क' पर दिखाई देता है। यह चित्र असत्य है और गुलाई के केन्द्र के पास होने से छोटा है। नतोदर ताल मे यही हो सकता है।



चित्र १०

इ उ ताल
अ क पदार्थ का छोटा झूठा चित्र अ' क'

तालो के बारे में जो कुछ कहना था हम कह चुके। जो कुछ है उससे आँख मे सम्बन्ध नही और उसके लिखने का यह स्थान भी नही है। तथापि जिन तालो ने इतनी देर तक हमारे साथ रहकर ज्ञानोपदेश दिया उनसे इतनी जल्दी विदा भी नही हो सकते। अतएव इतना और जान लीजिए कि ताल अपने गुणो से हमको सहस्रो काम देते है, और वैज्ञानिक उनके गुणो का बखान कर, यश लेते हैं। उन्नतोदर ताल सूर्य की किरणो की गर्मी आकृष्ट करके जलाने का काम देते है। यदि भरी हुई बन्दूक पर उनको यो रख दीजिए कि बारूद उनकी अक्षुनाभि पर हो तो मध्याह्नकाल म वे 'फायर' भी कर देत हैं। पानी भरे हुए गोल काच के घर के अन्दर रक्खी हुई मछलिया मर जाती है। समुद्र मे जो रोशनीघर होते है उनम दीपक के चारो ओर समोन्नत ताल यो रक्खे रहते है कि दीपक उनकी अक्षुनाभि मे हो। अतएव य काच आलोक की किरणो को समानान्तर करके दूर-दूर तक प्रकाश का प्रतिस्फलन कर देते है। समीप रक्खे हुए छोटे पदार्थ का बडा चित्र बताने के लिए खुर्दबीन का और दूर के पदार्थो का चित्र समीप बताकर दूरबीन का काम भी यही काच दते है। मैजिक लैण्टर्न मे भीतर रक्खे हुए छोटे पदार्थों का बाहर की ओर यही बडा चित्र दिखाते हैं। और फोटोग्राफ केमेरा के बाहर रक्खे हुए बडे पदार्थ का उलटा छोटा चित्र, मसालेदार काच पर डालकर, छाया चित्र भी यही बना देते है। भूत-प्रेतो के घटते-बढते चित्र, एव

आकार के कई तरह के चित्र और तड़ित् फोटो, खुर्दबीन मे बाल को सोटे का-सा और मच्छर को पेड का सा आकार दिखा देना भी इन तालो का ही काम है। जिस चाक्षुष प्रत्यक्ष का हम वर्णन कर रहे हैं यह भी इन तालो ही की कृपा है। बुड्ढे और जवानो के चश्मे, जिनसे प्राकृतिक ताल की उपयोगिता बढती जाती है, इन्ही तालो से बनते हैं।

जब पाठक तालो के विषय मे इतनी बातें जान गये हैं तब यह समझना कुछ भी कठिन नही है कि 'आँख' एक प्रकार का 'कैमरा आवसेक्यूरा' है। आँख मे वही प्रक्रिया होती है जो चित्र १ और चित्र २ मे दर्शित हैं। बाहर के पदार्थों की किरणें आँख के काच मे होकर बीच मे परस्पर काटती हुई रेटिना रूपी पर्दे पर उलटा छोटा सच्चा चित्र बनाती हैं। यहां तक पदार्थ विज्ञान का काम है। जब यह उलटा चित्र रेटिना पर पडता है तब वहा पर पदार्थ का प्रकम्पन स्नायुओं के प्रकम्पन मे परिणत हो जाता है। इस बात को जरा समझ लेना चाहिए। पहले वैज्ञानिकों का यह मत था कि प्रकाशवान् पदार्थ मे से कई छोटे-छोटे कण सब दिशाओं की ओर फेंके जाते है और वे असीम वेग से सरल रेखाओ मे दौडते चले जाते हैं। किन्तु अब विज्ञान का और ही सिद्धान्त है। सब वैज्ञानिक इस बात पर एक मत हैं कि एक अत्यन्त द्रव और सूक्ष्म पदार्थ ईथर नामक है। इसे संस्कृत-वैज्ञानिक का आकाश कह सकते हैं। आकाश केवल शब्द-गुण का ही नही है, किन्तु भिन्न भिन्न प्रकम्पनो से भिन्न-भिन्न तरङ्ग उसमे आलोक, उष्णता और शब्द उत्पन्न कर सकते हैं।

आलोकदायी पदार्थों मे से बन्दूक की गोली की तरह कोई चीज़ नही छूटती। उस पदार्थ के कण बिलकुल नही चलते। किन्तु अपने ही स्थान पर एक प्रकार का प्रकम्पन करते हैं। उस हरकत से आसपास के ईथर मे प्रकम्पन की तरगें, जैसे रस्सी के एक छोर को हिलाने से दूसरे छोर तक कम्प होता है, वैसी उठती हैं। वही प्रकम्पन चलता हुआ हमे आलोक की भावना देता है। ऐसे ही एक भिन्न प्रकार के प्रकम्पन उष्णता वा शीत का ज्ञान देते हैं। प्रकम्पन एक ही है। किन्तु आँख, कान वा त्वचा के भेद से तीन भेद हो जाते है। इन्ही प्रकम्पमान किरणो की तेजी मन्दी से रङ्ग का ज्ञान होता है। जो किरणें प्रति सेकण्ड ४५८ अयुतायुत (दश लाख गुना दश लाख) कम्प भोगती हैं वे लाल होती हैं। और जो ७२७ अयुतायुत प्रकम्पन पाती है, वे बैंगनी होती हैं। इस प्रकार प्रति सेकण्ड १,६०,००० मील चलनेवाली आलोक की किरणें अपने कम या ज्यादह प्रकम्पन के अनुसार, लाल, नारङ्गी, पीत, हरित, आसमानी, नीला, बैंगनी इन सात अकृत्रिम रङ्गो मे प्रगट होती हैं।

सूर्य के प्रकाश को श्वेत मत समझिए। उस मे ये सातो रङ्ग हैं। पदार्थों मे भिन्न भिन्न रङ्ग होने का कारण यह है कि जो पदार्थ और रङ्गों की किरणें

शोषकर, जिसकी किरणें प्रतिफलित करे, वह उसी रङ्ग का है। वृक्ष का पत्ता और रङ्गो की किरणें शोषकर केवल हरी किरणें प्रतिफलित करता है। ये किरणें आँख में टकराकर हरा ज्ञान उत्पन्न करती हैं। अब हम फिर पहली बात पर आ गये। पदार्थ ने जिस रङ्ग की किरणें और रङ्ग की किरणों को शोषकर प्रतिफलित की हैं वे आँख म ताल के पार पहुँची। कहना नहीं होगा, किरणें सूक्ष्म प्रकम्पन मात्र हैं। यह प्रकम्पन रेटिना में उलटा चित्र बना देगा। वहाँ पर उस प्रकम्पन के धक्के से चाक्षुष ज्ञानतन्तु में प्रकम्पन शुरू हो जायगा जोकि मस्तिष्क तक पहुँचकर ज्ञान उत्पन्न करने का सहायक होगा। यह न समझना चाहिए कि उस भीतर बने हुए चित्र को कोई देखता है। वह मस्तिष्क में देखने की शक्ति है। ज्ञानतन्तु-प्रकम्पन के साथ-साथ चाक्षुष प्रत्यक्ष की चेतना हो जाती है। बस, ज्ञानतन्तु-प्रक्रिया के साथ मानसिक प्रक्रियायें हो जाया करती हैं। यहाँ भी पदार्थ के प्रकम्पन के होने से मानसिक ज्ञान "मैं देखता हूँ"—हुआ। इस प्रकार वैज्ञानिक नियमो के अनुसार चित्र बनकर उसके प्रकम्पन के साथ-साथ ही ज्ञान होने का नाम ईक्षण, अवलोकन, दर्शन वा रूप-संवेदन है।

ज्ञान-प्रकार

हमे आँख से स्वभावत एक रङ्गदार सतह ही का ज्ञान होता है, और कुछ नहीं। यह जान पडता है कि यह सतह हमारे समीप है वा हम पर प्रभाव डालती है, किन्तु उस सम्बन्ध मे अनुभव और तर्क करने से हम अपने ज्ञान को बहुत बढा सकते है। यह बात 'लाक' आदि कई दार्शनिकों ने अनुमान की थी, किन्तु १७०१ ई० मे 'अवलोकन का नया सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ में पहले-पहल 'बर्कले' ने ही यह सिद्ध किया कि हमे रैखिक अर्थात् रेखा सम्बन्धिनी दूरी का ज्ञान आँखों से होता ही नही। सामने देखती बेर हमे रङ्गदार सतह का ज्ञान होता है सही, किन्तु वह कितनी दूर पर है, सो हम नही कह सकत। उक्त दार्शनिक न अपनी खोज मे पहले अवलोकन के विषय म इन प्रश्नो का विचार किया है—आँख से, स्वाभाविक रीति पर, हम क्या देखते हैं? किस इन्द्रिय के द्वारा हमे पदार्थों के प्रथम गुण ज्ञात होते हैं? त्वक् अर्थात् त्वचा आँख की कहा तक सहायता करती है? बर्कले का सिद्धान्त यह है कि आँख से हम खाली रङ्ग जान पडता है। यह सिद्धान्त उसन पदार्थों के (१) दूरत्व (२) आकृति और (३) स्थान की गवेषणा से निकाला है।

[४]

पहले, दूरता स्वयं नही दिखाई दे सकती, क्योंकि यह ऐसी रेखा है जिसका लम्बाव में आँख की तरफ होने के कारण एक छोर रेटिना पर है और दूसरा

अदृश्य है। किन्तु हम इसको देखते हैं, इसलिए यह किसी दूसरे भाव की मध्यस्थता से मन को सूचना द्वारा ज्ञान देती होगी, क्योंकि मन भावों के द्वारा ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है। उस समय के लोग कहते थे कि 'चाक्षुष धुरी' कोण बनाती है और उससे दूरत्व का ज्ञान होता है। किन्तु पदार्थों को दूर देखते समय तो हमें किसी कोण का ज्ञान नही होता। दोनों आंखो से किसी पदार्थ को देखकर जो हम उसकी दूरी का फैसला करते हैं सो केवल अनुभव का फल है और इसमे तीन सहायक हैं। (१) आंख मे फेर-फार की स्नायु-सम्बन्धी भावना, (२) मन मे, धुंधलेपन और दूरता के जो भिन्न-भिन्न दरजे हैं उनमें, सदा यह ज्ञान होने से कि पदार्थ का धुंधलापन दूरता के साथ बदला करता है, आदत से माना हुआ सम्बन्ध और (३) दूर-दृष्टि के समय आंख पर जोर पड़ने की भावना। ये तीनो भाव मन मे अधिक या न्यून दूरता का विचार उत्पन्न करते हैं। यदि कोई जन्मान्ध देखने मे समर्थ हो जाय, तो पहले पहल उसको नजर से दूरता का ज्ञान न होगा। सूर्य और तारे, सुदूर और सुनिकट पदार्थ उसे सब ही आंख मे, अर्थात् मन मे, प्रतीत होगे। चक्षु वास्तव मे रङ्ग मात्र का प्रत्यक्ष कराती है। जैसे कान से दूरता का ज्ञान नही होता वैसे इससे भी नही होता, दोनो दशाओं मे त्वचा की पहली भावनाओं से ही दूरता का अनुमान होता है। बहुत काल तक इस बात का अनुभव करते रहने से कि त्वचा से जाने हुए कुछ भावो (दूरता, स्पृश्य आकार, स्थूलता आदि) के साथ आंख के भाव भी सबद्ध हैं, मैं, आंख के उन भावो के उपस्थित होने पर, उसी दम अनुमान करता हू कि कौन से त्वचा के भाव, अभ्यास के अनुसार, अब मिलेंगे। सो यदि ठीक ठीक कहा जावे तो मैं न तो दूरता देखता हू, न किसी पदार्थ को किसी दूरी पर देखता हू। वह विस्तार और आकार जो मैं आंख से देखता हू, त्वचा से छुए हुए आकार और विस्तार से बहुत भिन्न है।

दूसरे। जैसे हम दूरी देखते हैं, वैसे ही, हम आकृति देखते हैं। दृश्य आकृति जो दिखाई देने वाले पदार्थ के सम्बन्ध मे अपना स्थान बदलती ही रहती है, हमे स्पृश्य आकृति की सूचना देती है। स्पृश्य आकृति ही सच्ची है (१) दृश्य पदार्थ की आकृति वा विस्तार, (२) उसकी बाह्य रेखाओं की सफाई वा झिलमिलाहट, (३) उसके रङ्गो की तेजी वा धुंधलापन, (४) बीच मे स्थित पदार्थों का आकार, सख्या और स्थिति और (५) आंख के विन्यास विशेष के विशेष सज्ञान—ये सब चाक्षुष चिह्न हैं जो जीवों को सचेत करते है कि अपने देह को अमुक पदार्थ से, जो दूरी पर है, छुआने पर क्या भला वा बुरा फल होगा। दिखाई देने वाले चिह्न और स्पृश्य आकृतियो म यह सम्बन्ध सहज नही है। हम किसी पदार्थ की ठीक-ठीक आकृति नही देखते, किन्तु कुछ रङ्गदार बिन्दु दिखाई देते हैं, जिनकी सख्या, अवलोकन क्षेत्र मे, एक पदार्थ के लिए उतनी ही होने के कारण, हमें आंख

से आकृति-ज्ञान का अभ्यास हो गया है।

तीसरे। अपने देह से भिन्न पदार्थों की सच्ची स्थिति वास्तव मे अदृश्य है। कई बेर यह प्रश्न उठाया गया है कि यदि रैटिना पर छायाचित्र उलटा होता है, तो हम पदार्थों को खडा क्यो देखते है? इस कठिनाई का कारण यह है कि मैं नही समझता कि स्पृश्य पदार्थ और दृष्टि से पाये हुए ज्ञान मे कोई सम्बन्ध नही है। जो कुछ मैं देखता हू वह प्रकाश और रङ्गो का भेद-विशेष है, जो कुछ मैं छूता हू वह कठोर वा मुलायम, गरम वा ठडा, खरखरा या मृदु है। उन भावो का इन भावो से भला क्या सम्बन्ध है? 'ऊँचा' 'नीचा', 'ऊपर' 'तले' यह भेद हमको त्वक् से मालूम होता है। पदार्थ के चित्र मे कोई गडबड नही होती जब तक उसमे दृश्य पृथ्वी से दृश्य पैर समीप, और दृश्य सिर दूर प्रतीत होते है। अभ्यास से, ये अपने मुकाबिले के त्वक् के सवेदनो को सुझा देते हैं। वे पदार्थ, जिनका चित्र रेटिना के निचले भाग पर पडता है, आँख उठाने मे साफ देख पडते है। इसी लिए हम उन्हे 'ऊपर' समझते है। यो ही वे पदार्थ जो आँख के ऊपरी भाग पर चित्रित हैं आँख नीची करने मे साफ दिखाई देते हैं, अतएव वे 'नीचे' माने जाते है। 'बर्कले' अपनी मीमासा को यह सिद्ध करके समाप्त करते है कि *"विस्तार, आकृति आदि आँख से जाने हुए भाव त्वक् के उन भावो से बिलकुल भिन्न है जो इन्ही नामो से प्रसिद्ध है। और दोनो इन्द्रियो मे कोई भाव भी समान नही है। क्योकि मैं आलोक और रङ्ग के सिवा कुछ नही देख सकता और वह, वा उनके अवान्तर भेद कदापि त्वक् के भाव नही है। हम स्पृश्य रेखा वा सतह मे दृश्य रेखा वा सतह नही जोड सकते। इससे सिद्ध होता है कि ये* दोनो भिन्न है। यदि अन्धे आदमी को आँख हो जाय तो वह उन पदार्थों को नही पहचानेगा जो उसे त्वक् मे परिचित हैं। जैसे शब्द भावो के लिए चिह्न हैं वैसे ही दृश्य आकार स्पृश्य आकारो के चिह्न है। किन्तु यह प्रकृति की भाषा सर्वसाधारण और सरल है, क्योकि बहुत जल्दी बाल्यावस्था मे ही सीख ली जाती है। इसका फल यह है कि हम ससार के व्यवहारो मे सचेत हो जायँ। दृष्टि वास्तव मे 'दूरदृष्टि' है, त्वक् से जो भाव प्रतीत होते हैं उनका आभास दृष्टि से हो जाता है।

[५]

बस। ईश्वरीय नियमो से दृश्य आभास भूत वा भविष्यत् त्वक् के सवेदनो के विश्वस्त चिह्न हो गये हैं। दर्शन के चिह्नो का यह ज्ञान स्वाभाविक नही है, किन्तु दोनो प्रकार के सवदनो के भूत सम्बन्ध से क्रमश सीखा जाकर कल्पनाओ को सुझाता है।

इस तरह बर्कले ने सिद्ध किया है कि "पदार्थ हम दूर दिखाई देते है", यह

केवल भ्रममात्र है, आँख से दूरत्व का ज्ञान नही होता, केवल कुछ स्पर्श के सवेदनो की सूचना हो जाती है जिसे हम व्यवहार मे 'दूरत्व' मान लेते हैं। इसके बाद 'बर्कले' ने सिद्ध किया है कि दूरत्व ही कल्पना से उत्पन्न नही है, किन्तु यह बाह्य जगत् भी वैसा ही है। 'मन' से अतिरिक्त कोई पदार्थ नही है। सब सवेदन मन की शक्ति का ही विकास हैं। जड जगत् (Matter) कोई चीज नही है, सब 'माया' ब्रह्म ही ने कल्पित की है। इस विषय को हम फिर कभी विस्तृत रूप से प्रतिपादन करेंगे।

दर्शनेन्द्रिय के विषय मे 'बर्कले' के इस सिद्धान्त की पुष्टि उन अन्धे मनुष्यो की चेष्टाओ ने की है जिनकी जन्मान्ध आँखें प्रयोग द्वारा सुधारी गई हैं। हैमिल्टन ने ऐसे कई प्रयोगो का हाल लिखा है जिनमे से हम यहाँ तीन लिखते हैं

चेसलडन प्रयोग डाक्टर चेसलडन ने, १७२७ ई० मे, एक १३।१४ वर्ष के जन्मान्ध की आँख सुधारी। आँखो से दूरता जानना तो दूर रहा, उसे सब पदार्थ आँखो से वैसे ही छूते हुए मालूम हुए जैसे छुए हुए पदार्थ त्वक् पर मालूम होते हैं। उसे मुलायम पदार्थ अच्छे मालूम होते थे, किन्तु वह देखकर पदार्थों मे भेद नही जान सकता था। अतएव कई पदार्थ रोज सीखकर भी वह भूल जाता था। पदार्थों को देखकर फिर पहचानने के लिए उन्हे छूकर अपने मन मे वह उनका ज्ञान उत्पन्न करता था। कुत्ते-बिल्ली का भेद वह बार-बार भूल जाता था। अतएव बिल्ली को पकडने के बाद स्पर्श द्वारा पहचान कर, उसे बहुत दर देखता रहता और फिर बोलता—"अच्छा, पुस, अब मैं तुम्हे पहचान गया।" चित्रो मे उसको पदार्थों का ज्ञान न होता था, चित्र उसे केवल रग बिरगे समधरातल प्रतीत होते थे। प्राय दो महीने बाद उसे ज्ञान हुआ कि वह स्थूल पदार्थों के चित्र है। पहले उसे वहम हुआ कि अशो के ऊँचे-नीचे दिखाई देने से चित्रो मे भी ऊँचाई निचाई होगी, किन्तु जब उसने छूकर देखा कि वे अश जो प्रकाश और छाया (Light and shade) के कारण गोल मालूम देते हैं, स्पर्श मे चिपटे ही हैं, तब बहुत दिनो तक वह पूछता रहा कि—"कौनसा इन्द्रिय झूँठा है, आँख वा त्वक् ?"

फ्रान्ज प्रयोग १८४१ ई० मे लीपजिक् के डाक्टर फ्रान्ज न एक १७ वर्ष के जन्मान्ध की आँख ठीक की। उसके सामने एक कागज के टुकडे पर 'वर्ग' व बीच मे 'वृत्त' का चित्र बनाकर रक्खा गया। उसने दोनो पहचान लिए। फिर एक मोटा चौकोर लकडी का टुकडा और उस पर वैसा ही गोला रखकर परीक्षा ली गई तो उसने उन्हें समधरातल पर बने 'वर्ग' और 'वृत्त' पहचाना। अर्थात् उसे मोटाई का कुछ भी ज्ञान न हुआ। घन टुकडे के स्थान पर कागज रखने स भी उसे वही भाव हुआ। एक शङ्कु का उसने 'त्रिकोण' कहा। पूछने पर मालूम

हुआ कि वह पहले तो उन पदार्थों को पहचान नही सकता था, किन्तु उसकी उँगलियो पर उन पदार्थों के छून का सा ज्ञान हुआ, अतएव वह उन्हे जान सका। हाथ स छूकर वह उन तीनो चीजो को (घन, गोल, शङ्कु को) पहचान गया। पहले-पहल वह झिझकता था कि कही पदार्थ (जो उससे दूर थे) उससे टकरा न जायें। स्पर्श से यह जान कर भी कि नाक ऊँची है, और आँखें नीची, वह मनुष्यो के चेहरो को सपाट ही देखता था। इससे सिद्ध हुआ कि नेत्र ऊपर का आकार तो जान सकते है, किन्तु मोटाई नही, और जिस प्रकार दो भाषाओ के पढने वाले बिना एक का दूसरी मे अनुवाद किए आगे नही बढ सकते वैसे ही त्वक् प्रत्यक्ष और चाक्षुष-प्रत्यक्ष का हम मिलान करना पडता है। वह बालक, आँख ठीक होने पर भी, बिना बात सुने, आने वालो को नही पहचान सकता था। तब तक उसे स्वप्न मे माता-पिता आदि का स्पर्श और शब्द ही मालूम पडता था, किन्तु अब रूप भी जान पडने लगा।

ट्रिञ्चिनेटो प्रयोग डा० ट्रिञ्चिनेटो ने एक ११ और १० वर्ष के भाई और बहन की आँखें बनाई। सामने नारङ्गी रखने पर, और उसे लेने को कहे जाने पर, भाई ने आँख पर हाथ मारा, और खाली मुट्ठी बन्द करने से लज्जित हो, क्रमश हाथ मारते मारते उसने नारङ्गी पाई। बहन ने एक बेर तो आँख पर ही विफल मुट्ठी बन्द की किन्तु फिर आँख की सरल रेखा मे तर्जनी उँगुली चलाकर उसने नारङ्गी उठाने का उद्योग किया।

सो, दूरत्वज्ञान आँख का गुण नही है, तो भी हम आँख से दूरी जानना सीख सकते हैं, क्योकि यद्यपि हम अपने से दूरी नही सूझती, तथापि दोनो छोरो के बीच मे दूरी वाले पदार्थ देखने से हमे बडी सहायता मिलती है। इसके सिवा इन बातो से भी हमे आँख से विप्रकर्ष के ज्ञान मे सहायता मिलती है।

(१) समीप के पदार्थों को देखने मे आँख का डेला जरा सकुचित होता है, और ताल कुछ उन्नतोदर हो जाता है। यह क्रिया बदल की होने पर भी एच्छिक और सचेतन है। अतएव, आँख पर कुछ दबाव होने से हम जान लेते हैं कि दृश्य पदार्थ पास ही है।

(२) दूर के पदार्थों से आनेवाले प्रकाश के किरण समानान्तर ही होते है। इसीलिए उन्हे लेते समय नेत्र यथावस्थित रहता है। पास के पदार्थों के किरण विसर्पी होते हैं इसीलिए उन्हे लेने मे हुआ आयास, आँख को गेंद के द्वारा नही, किन्तु स्नायु सम्बन्धी छल्ले के द्वारा मन को पहुँचाया जाता है।

(३) जब पदार्थ दूर होते हैं तब तक आँख से, या दोनो आँखो से देखने से रेटिना पर बने चित्र मे कुछ अन्तर नही होता। पास होने पर भेद अवश्य होता है। *किसी पुस्तक को बन्द करके उसकी पीठ को, पहले एक आँख और फिर*

दोनो आंखों से, २० फीट और एक फुट की दूरी पर रखकर इस भेद को जान सकते है।

(४) पदार्थों के समीप या दूर होने से रेटिना पर बने हुए चित्रो मे अपक्षाकृत भेद होता है। आँख के पास रक्खे हुए एक पैसे से सूर्य भी ढक सकता है, परन्तु दूर होने पर पैसा रेटिना का बहुत थोडा स्थान रोक सकता है।

(५) पदार्थों के दूर होने से उनसे आनेवाली किरणें धुंधला और समीप होने से साफ चित्र बनाती है अतएव हम अनुमान करते है कि धुंधले चित्रवाला पदार्थ दूर और साफ चित्रवाला पदार्थ समीप होगा।

(६) पदार्थों की दूरता के ज्ञान मे हमे उन पदार्थों से भी ज्ञान मिलता है जो हमारी आँख और उन पदार्थों के बीच मे है, और जिन पर आँख टिकती है। बीच मे ज्यादा पदार्थ होने से दृश्य पदार्थ दूर, और कम होने से समीप, जाना जाता है। इससे दूरता का अन्दाज बहुत जल्दी होता है, किन्तु बहुधा भूल भी हो जाती है।

(७) प्राय. पदार्थों की दूरता का ज्ञान उनके माने हुए आकार से होता है। हमारे नेत्र मे किसी मनुष्य के चित्र का कोई आकार बसा हुआ है। उससे कम या अधिक होने से हम देखे हुए पदार्थ को दूर या समीप मान लेते है।

अवश्य ही यहा सच्ची दूरी का विचार किया गया है। मानसिक दूरी बडी विलक्षण है। विद्यार्थियो को घर से मदरसे की दूरी, मदरसे से घर की दूरी से दूनी मालूम होती है। प्रेमिक को प्रेयसी के घर की दूरी का जो अभ्यास है, वह वास्तविक दूरी से बहुत भिन्न है।

सम्पादित परिवेदन

अनुभव और तर्क के द्वारा हमे कृत्रिम, प्राप्त, या सम्पादित ज्ञान इन्द्रियो से होते है। वास्तव मे जिह्वा से 'रसानुभव' मात्र ज्ञात होता है। किन्तु बारम्बार अभ्यास से हम यह जानने लगते हैं कि यह रस जल का है, यह इमली का है। गन्ध मे भी नासाग्र की चेतना ही पहले-पहल पाई जाती है। किन्तु अनुभव, गुलाब और चमेली के गन्ध मे भेद, गन्ध इधर है वा उधर, पास है वा दूर, इत्यादि कई ज्ञान सिखा देता है। स्पर्श म, असल मे, शरीर की सतह पर किसी सत्ता का ही अनुभव होता है, किन्तु अभ्यास से भिन्न भिन्न भाव जाने जाते हैं और यह भी जान पडता है कि स्पर्श उष्ण है या शीत, सुखदायक है या दुखदायक। शब्द भी, पहले कर्णचालन मात्र होकर, अभ्यास से, दहने है या बायें, मनुष्य की आवाज है या ढाल की इत्यादि भेद बता सकता है। स्नायु-सम्बन्धी इन्द्रिय से भी भिन्न-भिन्न चोटो का भेद जानना सीखा जाता है। ऐसे ही आँख से दूरी का कृत्रिम ज्ञान होता है।

जिन पदार्थों का कद हम जानते हैं उनके उपमान से हम और पदार्थों की ऊँचाई समझते हैं। आगरे के ताज के बुर्जों पर चढ़े हुए मनुष्यों की तुलना से हमें बुर्ज की ऊँचाई का अनुमान होता है। चित्रकार चित्र के मकान की ऊँचाई दरसाने को, उसके सामने आदमी का चित्र बना देता है। और 'बछडा है' यह समझाने को बछडे के चित्र मे गौ बना देता है।

द्विनेत्रावलोकन से हमे पदार्थों की स्थूलता का ज्ञान होता है। लम्बाई, मोटाई, चौडाई तीनो का ज्ञान तो स्पर्श तथा स्नायु से होता है, किन्तु दोनों आँखें दोनो तरफ के भिन्न-भिन्न चित्र दिखाती है। इसलिए हम मोटाई का भाव जान पडने लगता है। नेत्रो के अभाव म और इन्द्रिय कहाँ तक सहायता करते हैं यह जानकर आश्चर्य होता है। साडरसन नामक अन्धा गणितज्ञ, हाथ से ही, कई रोमन तमगो म से जाली तमगे को पहचान सकता था। जब कभी वह अपनी पाठशाला के बाग मे बैठा होता तब वह सूर्य पर बादल आते ही जान लेता। यह इन्द्रिय-विशेष की उन्नति का ही नही, किन्तु बची हुई इन्द्रियों की ओर अधिक ध्यान देने के अभ्यास का फल है। एक अन्धे ने, एक घोड़े की परीक्षा करते समय, उसे अन्धा बताया। यह बात सत्य थी, किन्तु किसी परीक्षक ने यह नही पहचाना था। अन्धे ने यह कारण बताया कि घोडे की टाप की आवाज मे एक प्रकार की सचेतता और डर पाया जाता था! दूसरे ने ऐसे ही मौके पर एक घोडे को काना बताया और हेतु यह कहा कि एक आँख दूसरी की अपेक्षा शीतल थी!! अन्धे दार्शनिक डाक्टर मायस गन्ध से अपने मित्रो की काली पोशाक पहचानते थे। अन्धे मनुष्य प्राय स्पर्श से रङ्ग जान लेते है। एक ऐसे अन्धे ने 'बायल' साहब से कहा था कि उसे काला, खुरखुरा और नीला पदार्थ बहुत मुलायम प्रतीत होता है। डाक्टर रश दो अन्धे भाइयो का हाल लिखते हैं कि वे, सडक पर चलते हुए, खम्भे के पास की जमीन की आवाज से, खम्भा जानकर, हट जाते थे! और अपने प्यारे पालतू कबूतरो के उडने ही से उन्हे नाम लेकर पुकार सकते थे!! अमेरिका के आदिम निवासी और भारतवर्ष के मीने पहाडो मे दुश्मनों के पैरो के चिह्न पहचान लेते हैं, और उनकी सख्या तक बतला देते हैं!!!

किन्तु, कभी-कभी ऐसा खयाल होता है कि इन्द्रिय धोखा देते हैं। प्राचीन लोग तो इन्द्रियो को छली मानते थे। परन्तु सवेदन और परिवेदन सब ठीक होते हैं। भ्रम के कारण हमीं ही है! नियमित इन्द्रिय-प्राप्त ज्ञान को अनियमित और पर्याप्त मानकर हम जो अनुमान या उपमान करते है भ्रम उसी मे है। ऐसे धोखे आँख के सम्बन्ध मे बहुत होते है, क्योंकि ज्ञान का बडा भारी भाग आँख के द्वारा ही होता है। बडे भारी मैदान, तालाब या समुद्र की दूसरी तरफ दिखाई देनेवाले पदार्थों को हम बहुत समीप समझते हैं। रेल पर चलते समय पेड और

पर्वत चलते और रेल ठहरी हुई प्रतीत होती है। बडी ऊँची इमारतो मे घुसते हुए मनुष्य इमारत के सामने निरे बच्चे प्रतीत होते है।

यहा पर मनोविज्ञान की एक और बात जान लेनी चाहिए। वह यह कि मनुष्य के कितने इन्द्रिय है, उनमें क्या-क्या विशेपता है, और वस्तु ज्ञान के हिसाब से उनका क्या उपयोग है। उनका परस्पर सम्बन्ध और आंख की प्रधानता जान बिना विषय ठीक-ठीक नहीं खुलेगा।

त्वक्, रसना, घ्राण, कान और आँख ये पाच ज्ञानेन्द्रिय है। इन इन्द्रिया के द्वारा हमे 'भावो' (Feelings) का ज्ञान होता है। भाव सुख या दु ख के बोधक है। तो बताइए पेट का दर्द किस इन्द्रिय का भाव है ? इसलिए मानना पडता है कि 'साधारण इन्द्रिय' या 'दैहिक इन्द्रिय' और है जो इन सबके नीचे है और इन सबका आदिम स्वरूप है। साधारण इन्द्रिय के भाव प्राय एक ही प्रकार के होते हैं, किन्तु ज्यो-ज्यो विशेपता बढती जाती है त्यो-त्यो भावो का भेद भी बढता जाता है। इन्द्रियो मे हम भावो का ही काम नही लेते हैं किन्तु ज्ञान का भी। इन्द्रियों का सामान्य क्रम ऐसा है—साधारण इन्द्रिय, त्वक्, रसना, घ्राण, दृष्टि और श्रोत्र। ज्ञान के अनुसार यह क्रम बिलकुल बदल जाता है। यथा—साधारण इन्द्रिय, रसना, घ्राण, श्रोत्र, स्पर्श और दृष्टि।

पशुओ मे घ्राण अधिक ज्ञान देता है। जो सुना हुआ ज्ञान है उसके विषय मे तो 'श्रोत्र' को सबसे आगे मानना चाहिए, किन्तु परिज्ञान की दृष्टि मे स्पर्श और चक्षु ही प्रधान है। इनसे कई भाव और कई ज्ञान एक ही काल मे जाने जाते हैं। आँख की प्रधानता इससे प्रकट हुई, किन्तु एक और इन्द्रिय है जिससे मिलकर आँख और सब इन्द्रियो का बादशाह बन गई है। हम मे एक छठी इन्द्रिय भी है—उसका नाम स्नायवीय इन्द्रिय या कर्मेन्द्रिय है। जब हम इच्छा-पूर्वक कुछ काम करते है, तब हमे, कार्य विचार के साथ ही चेतना होती है। इस चेतना का ज्ञान हमें इस कर्मेन्द्रिय से होता है। हम चल सकते हैं, हम हिल सकते हैं, हमारे स्नायु हमारे आधीन है—यह ज्ञान इसी का दिया हुआ है। यह विलक्षण इन्द्रिय है। यह पराधीन रूप से भाव नहीं ग्रहण करती, और अब तक जाने हुए इन्द्रियों से भिन्न होने के कारण पृथक् नहीं दिखाई पडती। यह इन्द्रिय यद्यपि ७०-८० वर्ष से ही जानी गई है, परन्तु यह इन्द्रियो के हक मे बडे काम की है। क्योकि यह उन्हे पराधीन से स्वाधीन बना देती है। जो कुछ किसी इन्द्रिय के पास है, उसीका हम ज्ञान होगा, जो नही है उसे हम नही पा सकते। पर स्नायु-शक्ति के कारण अकर्त्ता इन्द्रिय कर्त्ता बन जाते है। जब हमे ज्ञान होता है कि हम—कर्त्ता बनकर—स्वय सवेदन कर रहे हैं, तब जानना चाहिए कि कर्मेन्द्रिय के योग से वह इन्द्रिय 'कर्त्ता' बन गया। उदाहरण लीजिए। साधारण इन्द्रिय तो अकर्मण्य अर्थात् पराधीन इन्द्रिय का नमूना है। 'रस' मे

दोनों रूप है—एक तो जीभ पर रक्खी हुई चीज का रस चखना और एक इच्छापूर्वक जीभ बढ़ाकर रस लेना। 'घ्राण' पराधीन ही है, परन्तु, हम सूंघ या सांस ले सकते हैं। श्रोत्र मे दोनों रूप हैं, एक यथास्थित सुनना, दूसरा ध्यान देकर सुनना। चक्षु मे इन्द्रिय अतीव चचल है। वह कई आसन धारण करती है। त्वक् का मुख्य कारण हाथ भी अति चचल है। अतएव, कर्मेन्द्रिय के योग से, ये दोनों चलन फिरनेवाले इन्द्रिय, स्वाधीन इन्द्रियों के नमूने हैं।

इस बात पर इतना ज़ोर क्यो दिया गया? इसलिए कि स्वाधीन इन्द्रिय परिवेदन मे बडा काम देते है। सवेदन—अर्थात् पराधीन इन्द्रियों का ज्ञान—एक कल्पना मात्र है, चेतना मे यह कभी नही होता। हम खरखरापन, मुलायमी, गर्मी, सर्दी आदि त्वक् के गुणो का किसी पदार्थ पर मढते है। हम यह नही कहते कि हम रग देखते है, किन्तु कहते है कि हम 'गुलाब' देखते है। 'लड्डू' कहने से पाठको को पहले गोल चीज़ का ज्ञान होगा, पीछे मिठास का। सो, इन्द्रियों के जाने हुए भावों को अपने से पृथक् किसी पदार्थ पर लगा देने का व्यापार रात-दिन होता है, और इसका नाम परिज्ञान या परिवेदन (Perception) है। परिवेदन, विशेष करके पदार्थपरिवेदन, वह चेतना है जो खर्च की हुई स्वाधीन शक्ति के ज्ञान पर, अर्थात् कर्मेन्द्रिय पर अवलम्बित है।

परिवेदन बिना कर्मेन्द्रिय का प्रयोग नही होता। किसी पदार्थ को देखकर या छूकर मैंने कह दिया कि यह 'किताब' है। अब विचारना चाहिए कि यह ज्ञान कहा स आया। पराधीन इन्द्रिया के सवेदन से तो रग, गन्ध या स्वाद जाना जा सकता है। उस स्वाद, गन्ध या रग का आधार हमने कैसे बना लिया? यह जानना कर्मेन्द्रिय की सहायता से स्वाधीन नेत्र और त्वक् का काम है। पदार्थों म दो गुण हैं, विस्तार और रोध। इन्हींके होने से पदार्थ पदार्थ होते हैं, और यदि य गुण न हों तो पदार्थ पदार्थ ही नही। एक पदाथ अवश्य ऐसा है जिसमे विस्तार है, किन्तु रोध नही, जैस आकाश। किन्तु यह सबसे प्रधान गुण विस्तार और उसस कुछ ही कम प्रधान रोध किसी भी पराधीन इन्द्रिय से नहीं जाने जाते। ये स्वाधीन इन्द्रिय से, अथवा दृष्टि और त्वक् से मिली हुई कर्मेन्द्रिय से ही जाने जा सकते है, और इसीसे समझ लेना चाहिए कि पदार्थपरिवेदन मे स्नायविक शक्ति कितना काम करती है।

[६]

इन्द्रियों से केवल गुणो का सवेदन होता है। किन्तु हम गुणो को स्वतन्त्र गुण नही कहते, किन्तु किसी पदार्थ का गुण कहते हैं। सवेदन परिवदन मे बदल जाता है, अर्थात् पराधीन इन्द्रियों से जान गये गुण, कर्मेन्द्रिय से जाने परिवेदन से मिला दिये जात हैं। सबसे बडा प्रश्न जो उठता है, वह यह है कि जब इन्द्रिय केवल

गुणों को बताते हैं तो हम उन्हे 'परिवेदन से जाने हुए पदार्थ या गुण' कैसे कहते हैं। लड्डू का जो दृष्टान्त अभी दिया जा चुका है उसमे इन्द्रियो से तो मिठास, रग, विस्तार, गध यही न जान गये थे ? हम 'लड्डू' इस भाव को कहा से ले आये, और लड्डू की मिठास, लड्डू की गोलाई, लड्डू का रग, लड्डू का गन्ध कैसे कहने लग गये ? यहाँ पर दर्शनशास्त्र और मनोविज्ञान में भेद हो जाता है। दर्शनशास्त्र तो ऊपर कहे प्रश्नों का समाधान करके इस विचार मे लगता है कि वास्तव मे कोई चीज मन के बाहर और इन्द्रियों के बनाये गुणों से पृथक् है जिसमें वे सब गुण रहते हैं। मन से भिन्न कोई पदार्थ है या सब मन ही की कल्पना है। इन सब गुणो को लड्डू कह दिया है, या लड्डू कुछ चीज है भी। मनोविज्ञान इस प्रश्न को नही उठाता। वह इसी मे सन्तुष्ट है कि इन्द्रिया के बनाये गुण किसी एक पदार्थ पर कैसे जड दिये जाते है, इसकी खोज करे। मनोविज्ञान के छात्र उस प्रकार की खोज करते हैं, जिससे सवेदन (गुण) का परिवेदन (पदार्थ) हो जाता है, और इस खोज को दार्शनिको के लिए छोड देते है कि परिवेदन सच्चा है, या केवल माया ही है।

हम लोग मनोविज्ञानियो का मार्ग लेते है। यह जाना गया कि गुणो का पदार्थों पर आरोप किया जाता है। किन्तु भिन्न-भिन्न मनुष्य कही-कही पर भिन्न-भिन्न प्रकार का आरोप करते हैं। चाकू से मेरी अँगुली कट जाय, तो मै चाकू मे चमक और अँगुली मे पीडा मानता हूँ। सभी ऐसा करते है। ऐसा कोई नही है जो अँगुली मे चमक और चाकू मे पीडा मान ले। यहा पर सब का आरोप एक ही प्रकार का होता है। किन्तु कहीं-कही आरोप मे भेद भी होता है। गुलाब के फूल को वर्णान्ध मनुष्य पत्तो के रग का कहेगा, और मैं लाल कहूगा। नैयायिको के पुराने दृष्टान्त मे पीलिए का रोगी शख को पीला कहेगा। यहाँ आरोप मे भेद हो गया। अवश्य ही गुलाब दोनो रग का नही है, और न शख दुरगा है। मैंने, और दूसरे देखने वाले ने, जो अपनी-अपनी ओर से आरोप किया है वह मानो गुलाब का अपनी-अपनी भाषा मे तर्जुमा कर लिया है। वास्तव मे गुलाब पदार्थ गुलाब है। न इस रग का है, न उसका। अब देखना चाहिए कि पदार्थ क्या है, और कौनसे इन्द्रिय से उसका ज्ञान होता है। मेरे सामने एक खम्भा है। यदि इसका रग काला न होकर लाल होता तो भी यह खम्भा ही रहता। यदि यह लोहे का न होकर लकडी का होता, और बजाने से और तरह का टकार सुनाता, तो भी इसके खम्भे होने मे सन्देह नही होता। यदि इसमे तारपीन का गन्ध न आकर इत्र की खुशबू आवे, तो भी इसका खम्भापन नही छूटेगा। यदि यह इतना मोटा, लम्बा और गोल न दिखाई देकर, तिकोना या पतला दिखाई दे, तो भी और तरह का खम्भा कहलाएगा, किन्तु रहेगा खम्भा ही। किन्तु यदि इसमें रोधकता न हो अर्थात् यदि मैं इसमे से निकल जा सकू, या इससे टकराने से मेरा

सिर न फूटे, तो इसका नाम खम्भा नहीं है। इससे सिद्ध हुआ कि वास्तव पदार्थ का ज्ञान कर्मण्य त्वक् से होता है, और कर्मण्य त्वक् से कर्मण्य आँख ऐसी मिली हुई है कि छुड़ाई नहीं जा सकती। पदार्थ वास्तव मे रोधक और विस्तृत हैं याने पहले वे स्पृश्य और दृश्य हैं और पीछे घ्रेय, स्वाद्य और पेय।

यद्यपि परिवेदन मे चक्षु की ही प्रधानता है, चक्षु ही परिवेदन का प्रधान तथा एकमात्र अग है, तथापि, बर्कले के मत से परिवेदन वास्तव मे स्पर्श है। बिना आँख बच्चे जनमते हैं, किन्तु बिना त्वक् नहीं। बिना चक्षु के त्वक् से जगत् जाना जाता है किन्तु त्वक् के बिना चक्षु से नहीं। अन्धे के लिए जगत् है, किन्तु त्वक्हीन के लिए नहीं। चक्षु का काम कितना ही बड़ा हो तथापि ऊपरी 'पालिश' नीव तो त्वक् ही डालती है। आँख रग सकती है, गढ नहीं सकती। अतएव 'त्वक्' परिज्ञान तत्त्व आरम्भ करना चाहिए।

विस्तार और रोध दोनो ही केवल कर्मेन्द्रिययुक्त त्वक् से जाने जात हैं। यह स्नायविक कर्तृता दो प्रकार की होती है,—स्वतन्त्र और रुकती हुई। पहली स विस्तार और दूसरी से रोध जाना जाता है। किन्तु यह काम खाली स्नायु का ही नहीं है, त्वक् के ज्ञान से भी इस विषय मे बड़ी सहायता मिलती है। हम जो कहते हैं, कि "यह पदार्थ एक-दूसरे से इतने दूर है' सो पहले हमें दो भिन्न-भिन्न स्पर्श ही मालूम देते हैं। रोध के छ प्रकार हैं—(१)(२) बोझ और दबाव। इनमे स्नायुबल की मुख्यता है। (३) (४) खरखरापन और चिकनाई। इनमे त्वक् प्रधान है। (५) (६) कठिनाई और मुलायमी। इनमे दोनो बराबर-बराबर है। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि कई रोध वाले स्पर्श, एक ही काल मे एक ही क्रम से दोहराये जाने से, भिन्न-भिन्न स्पर्श नहीं मालूम देते, किन्तु एक विस्तृत पदार्थ के रूप मे जाने जाते हैं। यह अभ्यास का फल और पदार्थ-परिवेदन का मूल है। कुछ लोग 'विस्तार-ज्ञान' को स्वभाव से उत्पन्न, मानते हैं। उनकी दृष्टि में यह गुण जन्म मे ही उत्पन्न होता है, और विज्ञान इसकी उत्पत्ति का हेतु नहीं बता सकता। यह तो विषय को छोड़कर भागना ही हुआ, किन्तु प्रथम मतवालो का भी समाधान ठीक नहीं। उत्तरोत्तर एक काल मे कई स्पर्श होने से समकालिकता हो मकती है, किन्तु समकालिकता विस्तार नहीं है। यह कहना कि स्नायु शक्ति से, उल्टे-सीधे कई स्पर्शों का भास होने से, वे अन्त मे विस्तारयुक्त पदार्थ का रूप लेते हैं, बिल्कुल ठीक नहीं है। पदार्थों को विस्तृत कहने के पहले हमे यह कहना चाहिए कि हमें, पदार्थ स्वय कैसे दिखाई दिए? यद्यपि विस्तार ही सब पदार्थों का साधारण गुण है, कोई पदार्थ विस्तारहीन नहीं, तो भी हमे पहले 'रोध' ज्ञान का वैज्ञानिक हेतु बतलाना चाहिए। आकाश जानने के पीछे हम रोधक पदार्थों को नहीं जानते, किन्तु रोधक पदार्थों के अभाव को आकाश कहने लगते हैं। जो

हमारी शक्ति को रोकें वही चीज है और 'रोकना' ही रोधकता है। रोधकता उस शक्ति से जानी जाती है जो स्पर्श के बढ़ने के साथ बढ़ती जाती है।

अपनी कर्तृत्व शक्ति का कुछ धुन्धला आभास, उसके रुकने का ख्याल और कठोरता का कुछ भान ही बालक के लिए पदार्थ-परिवेदन की जड़ है। पहले-पहल जननेन्द्रिय के स्पर्श और स्तनपान मे ओठो के दबाव से ही बालक का संसार आरम्भ होता है। पहला पदार्थ जिसको वह जानेगा अपना ही देह है, क्योंकि वह कभी दूर नही होता और उसमे अपनी शक्ति रखने का दृष्टान्त क्षण-क्षण पर दिखाई देता है। भिन्न-भिन्न त्वक् मे भिन्न भिन्न रूप से स्पर्श शक्ति है, और भिन्न अगो को छूने मे हाथ को भिन्न-भिन्न परिश्रम होता है। इसीमे बालक अपने देह के विस्तार और भिन्न-भिन्न अगो को पहचानने लगता है। इसीमे हम त्वक्सम्बन्धी द्वित्व जानते-जानते त्वक्सम्बन्धी दूरत्व जानने लगते हैं। देह पर कम्पास के दोनो छोर रखने से हमे खाली दो स्पर्श ही नही मालूम होते, किन्तु कुछ दूरी भी प्रतीत होती है। क्यो ? इसलिए कि उन दो स्थानो पर स्पर्शो मे भेद है और उनके स्पर्श के लिए हाथ चलाने की जो शक्ति है उससे हमे उन्ही मे अन्तर ज्ञान पड़ने लगता है। किसी भाग को छूने के लिए कितनी शक्ति लगती है, इससे और सुलभ-स्पर्श-यन्त्र हाथ से, देह के प्रत्येक भाग का दूसरे भाग से स्थानीय सम्बन्ध हो जाता है। इस बात मे एक अपवाद भी है। यदि मध्यमा अँगुली को तर्जनी पर चढ़ाकर दोनो के बीच मे कोई छोटी चीज रखी जाय, तो हमे एक विस्तृत पदार्थ वा दूरस्थ बिन्दुओ का ज्ञान न होकर दो पदार्थों का ज्ञान होता है। इसका कोई समाधान नही। हां, तर्जनी के स्पर्श को हम ऊपर मानते हैं और मध्यमा के स्पर्श को नीचे। सो तो ठीक है, क्योंकि यहाँ उगलियो का क्रम बदला हुआ होने पर भी अभ्यास पहले ही क्रम का है।

कर्तृत्व से हमे जब इतना ज्ञान हो जाता है तब चेष्टा किये ही हमे विस्तारज्ञान हो जाता है। अधेरे मे मेज पर हाथ और हाथ पर किताब रखने से, बिना हाथ चलाये भी 'मेज' और 'पुस्तक' विस्तृत अर्थात् पदार्थ-जान पड़ते हैं। क्यो ? इसलिए कि हम अपने हाथ का विस्तार जानते है और उससे 'रूल' का काम लेते है।

स्थूलता का ज्ञान पहले-पहल ओष्ठो में होता है। वह हिल सकते और स्पर्श भी कर सकते हैं। इससे वही स्थूलत्वपरिवेदन मे काम आते है। हाथ से भी स्थूलता का ज्ञान होता है। जब अँगूठा और अँगुलियो से मिलना चाहता है, वा एक हाथ दूसरे से नहीं मिल सकता, तब हम स्थूलता का ज्ञान होता है। पुस्तक पर हाथ के दबाव से रोध, हाथ रखकर कई स्पर्श होने देने से विस्तार और दोनो हथेलियो के बीच पुस्तक रखने से स्थूलता का ज्ञान होता है।

इन सब कामों मे आँख बडी सहायता देती है। त्वक् मे तथा उसमे बहुत

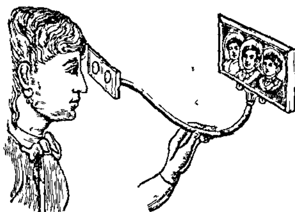
समानता है। सारे रेटिना मे दर्शनेन्द्रिय और सारी त्वक् मे स्पर्शेन्द्रिय व्याप्त है, किन्तु 'पीतबिन्दु' और 'हाथ' ही सब कुछ है। दोनों की चञ्चलता ही इन इद्रियों को इतना उपयोगी बनाती है। त्वक् म हाथ बढकर छू लेता है, और आँख मे स्नायु के द्वारा पीतबिन्दु को ताल चाहे जिस ओर घुमाया जा सकता है। खम्भा देखते ही मैं उससे सिर क्यो नही टकरा देता और अधेरे मे खम्भे को छूकर उसका आकार कैसे जान सकता हू ? पहले दृष्टात मे, मैं छूता नही और दूसरे मे देखता नही। *किन्तु प्रकाश म चीज़ देखने पर मुझे उसके स्पर्श का ख्याल होता है और* अन्धकार म स्पर्श करने पर उसके रूप का ख्याल होता है। अतएव इन दोनो मे बडा भारी सम्बन्ध है। आँख, हमे अपनी भाषा मे प्रकाश और रग तथा समधरातल और रैखिक विस्तार का ज्ञान देती है। आँख से रोध का ज्ञान नही होता। और इसीसे स्थूलता का ज्ञान गौण रीति से होता है। आँख बहुत दूर देख सकती है, किन्तु इधर-उधर घूमकर पदार्थों को पकड नही सकती। अतएव स्पर्श से हमे जिस विस्तार का सूत्र मिल गया है, उस पर यह भाष्य बनाती है। सो स्वय आँख रग और प्रकाश से कुछ नही दिखाती, किन्तु त्वक् की बात सदा सच्ची है, आँख की बात कभी कभी धोखा दे दिया करती है। स्पर्शज्ञान ही वास्तव ज्ञान है। वास्तव विस्तार त्वक् का बताया विस्तार है। पृथ्वी का वास्तव आकार आँख से नही जाना जाता किन्तु स्पर्श करने वाले पैरो की सख्या से। सूर्य हमे थाली सा दिखाई देता है, क्योकि उसकी तुलना सारे दृश्य आकाश से होती है और आकाश की तुलना स्पृश्य पृथ्वी से होती है। अतएव स्पर्श ही सूर्य को थाली सा दिखाता है। आँख कवल कुछ चिह्न बताती है जिनका अर्थ हम त्वक् के सहारे करते हैं। तारे और पहाडो के शिखर जो स्पर्श स दूर हैं व भी आँख के आधीन तो हैं, किन्तु आँख दूरत्व अथवा वास्तविक सत्ता का ज्ञान नही उत्पन्न करती।

यह कोई न समझे कि 'रेटिना के चित्र से पदार्थों का दृश्य विस्तार जाना जाता है। रेटिना का चित्र बहुत सूक्ष्म होता है, और उस पार्थिक सत्ता का, उसकी सहचारिणी मानसिक सवेदना से, कोई सम्बन्ध नही। स्पर्श से ही विस्तार जाना जाता है क्योकि पदार्थ दूर होने पर आँख उसका विस्तार बहुत ही छोटा देखती है।

रेटिना के चित्र के उल्टे होने पर भी हमे पदार्थ सीधे क्या दिखाई देते हैं ? यह आँख के विज्ञान का एक मुख्य प्रश्न है। कुछ लोग कहते है कि 'उल्टा' 'सीधा' यह द्वन्द्व परस्पर सबद्ध है, जहाँ सभी उल्टा है वहाँ सीधा नही। इससे सभी पदार्थ सीधे अर्थात् एकाकार दिखाई देते हैं। किन्तु सीधा शब्द स्पर्श की भाषा का है। पदार्थ की चोटी वह है जिसे छूने के लिए हम हाथ ऊँचा करना पडे। वास्तव म यदि चित्र उल्टा न हो तो हम पदार्थ सीधा ही न दिखाई दे। नेत्र गोल है, इसस पदार्थ की चोटी देखती बेर छाया पीतबिन्दु के ऊपर पडती है, और

'कार्निया' ऊँचा करने से 'पीतबिन्दु' नीचे आ जाता है। यदि किरणें एक दूसरे को बिना काटे भीतर जाती तो आँख उठाने मे पीतबिन्दु नीचे हो जाता, और नीचे करने से नीचा होता। अतएव आँख से और, और स्पर्श से और ही ज्ञान होता। चोटी देखने को हमे आँख नीची करनी पडती और चरण देखने के लिए ऊँची!! चोटी छूने को हाथ ऊँचे करने पडते हैं, और चरण छूने को नीचे। इन दोनो भावो को मिलाने के लिए चित्र का उल्टा होना आवश्यक है।

एक और बात विचारणीय है। हमे दो आँखो मे एक पदार्थ क्या दिखाई देता है? इसका एक उत्तर तो यह है कि यदि दो आँखो से अप्रसन्न हो तो एक आँख फोड डालो। आचार्य जगदीशचन्द्र बोस का सिद्धान्त है कि जब एक आँख देखती है तब दूसरी विश्राम लेती है। यह बात ठीक नही, कि दोनो रेटिनाओ के दोनो चित्र मिलकर एक भाव पैदा करते है। जिस पदार्थ को हम ताक रहे है उसके अतिरिक्त सब पदार्थ वास्तव मे दो दो ही दिखाई देते है। किन्तु त्वक् से उन्हे एक जानकर एक ज्ञान दृढ करना पडता है। अवश्य ही सूर्य को नही छू सकते। किन्तु और सब पदार्थों से अनुमान करते है कि वह भी एक ही है। बेन के अनुसार हम एक आँख से देखते है और दूसरी से उस चित्र को पूर्ण करते है। तो नेत्र होने से ही हमे स्थूलता का ज्ञान होता है। एक आँख से हमे एक तरफ



चित्र ११

स्टीरियोस्कोप

उन्नतोदर ताल के दो टुकडो मे दो चित्र देखने से एक प्रतीत होता है।

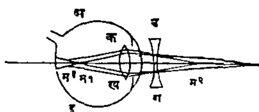
से अधिक दीखता है और दूसरी से दूसरी तरफ से। दोनो मिलकर हमे एक उभडा हुआ चित्र दिखाती हैं। यही तत्त्व 'स्टीरियास्कोप' नामक यन्त्र मे है।

यदि दो चित्र बनाये जाय और एक मे दाहनी ओर और दूसरी मे बाई ओर

अधिक दिखाया जाय और यदि वे दोनो चित्र एक उन्नतोदर ताल के दो टुकडो को दोनो आँखो पर रखकर देखे जाय तो एक स्थूल पदार्थ का भान होता है। जैसा कि इस चित्र मे दोनो फोटोग्राफो का एक ही फोटोग्राफ प्रतीत होता है, और वास्तव मे पदार्थ को देखने का-सा सन्देह होता है। यदि चित्रो के स्थान बदल दिये जाय तो ऊँचाई की जगह निचाई और निचाई की जगह ऊँचाई प्रतीत होगी। पृथक्-पृथक् रङ्गो को दोनो आंखो के सामने रखने से मिश्रित रङ्ग प्रतीत होता है। यदि दोनो चित्र समान हो तो नया चित्र बिलकुल चिपटा होगा। इससे जाली नोट, नक्ली दस्तावेज आदि पकडे जा सकते हैं। अतएव *दो नेत्रो के होने से स्थूलत्व और दूरत्व के ज्ञान म बडी सहायता मिलती है। एक आँख बन्द करके हम सुई नही पिरो सकते।*

अब आँख के बारे मे केवल तीन बाते कहना रह गई हैं—समीपदृष्टि, वृद्ध दृष्टि, वर्णान्धता।

(१) रेटिना तथा काच की बनावट के अनुसार कई लोग समीप तो देख सकते है किन्तु दूर नही। वे आँख के पास ले जाकर देखते है, और अधेरे मे अच्छा देख सकते हैं। इसका हेतु आँख क ताल का अधिक उन्नतोदर होना है।



चित्र १२

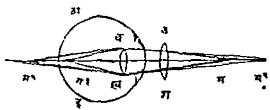
समीपदृष्टि

अ इ रेटिना। म पदाथ। क ख नेत्र। म' धुघला चित्र। उ ग चश्मा। म' पदाथ कल्पित स्थान। म' साफ चित्र।

इसीलिए उनके किरणों का छायाचित्र रेटिना से कुछ इधर ही 'म' बनता है। (चित्र १२ देखो) इससे पदार्थ धुघला दिखाई देता है। पदार्थ समीप लाने से 'म' चित्र ठिकाने पर बनता और पदार्थ दिखाई देता है। ऐसे मनुष्य कुछ आँख मूदने से, या छिद्र मे होकर देखने से, अच्छा देख सकते हैं। क्योकि उससे डेला छोटा हो जाता है और आँख मे जाने वाली किरणमाला छोटी होने से किरणें ताल को केन्द्र ही मे काटती है और केन्द्र पर अधिक गोलाई होने से दूर अर्थात् रेटिना पर चित्र बनाती हैं, अर्थात् अवस्था बढने से आँख की गोलाई कम हो जाती है। इसम उनकी आँख उस समय सुधर जाती है जब कि औरो की आँख वृद्धदृष्टि से बिगड जाती है। इस रोग की वृद्धि सभ्यता की वृद्धि के साथ होती है। आफ्रिका म किसी को यह रोग नही होता, किन्तु प्रकाश म काम करने से सभ्य देशो मे बहुत अधिक होता है।

(२) वृद्धदृष्ट—उम्र अधिक होने से, काच की गोलाई कम होने के कारण

किरणें रेटिना पर चित्र न बनाकर उससे कुछ आगे 'म४' चित्र बनाती हैं। (चित्र १३ देखो किन्तु) पदार्थ को दूर हटाने से चित्र ठिकाने पर आ जाता है। अतएव बुड्ढे आदमी पास के पदार्थ को ज़रा दूर हटाकर देखते हैं।



चित्र १३

वृद्धदृष्टि।

म इ रेटिना। म पदार्थ। क ख नेत्र। म१ धुंधला चित्र उ ग चश्मा। म१ पदार्थ का कल्पित स्थान। म१ साफ चित्र

समीपदृष्टि, केन्द्रापसारक ताल आँख के सामने लगाने से, मिट जाती है। आँख से प्रवेश करने से पहले किरणें अवसर्पिणी होने के कारण आँख के ताल की अणुनाभि हटकर 'म'' बन जाती है। वृद्धदृष्टि के लिए केन्द्राकर्षक तालों की जरूरत है। इससे ताल में घुसने के पहले किरणें केन्द्राकृष्ट होने से रेटिना के पार नहीं किन्तु रेटिना पर ही चित्र बनाती हैं।

बहुत दिनों तक उभयनतोदर और उभयउन्नतोदर काचों ही का प्रयोग होता था, किन्तु अब उनके बदले अर्द्धचन्द्र (उ, तथा ग, चित्र ४) काचों का प्रयोग होता है। इससे आँखें सब दिशाओं में देख सकती है और थकती नहीं। अतएव जिन्हें समीपदृष्टि का रोग हो उन्हें, हमारी तरह, बाल्यावस्था में ही नतोदर चश्मा लगाना चाहिए जिससे बड़ी उम्र में आँखें औरों से अच्छी हो जाय।

(३) लोक में कहावत है कि श्रावण के अन्धे को सब कुछ हरी ही सूझती है। जो लोग नहीं देख सकते वे तो उनके समान हैं जो कुछ नहीं सुन सकते। जो लोग रङ्ग नहीं देख सकते वे उनके समान है जिन्हें अच्छे या बुरे राग में भेद नहीं मालूम देता। पहले सब पदार्थ एक ही रङ्ग के प्रतीत होते थे। मनुष्य-जाति ने रङ्गज्ञान धीरे धीरे प्राप्त किया है। कुछ बन्दर वर्णान्ध होते हैं, अर्थात् नारङ्गी के फल और पत्तों को एक ही रङ्ग का मानते है। मक्खियों का वर्ण-परिज्ञान तो बहुत ही कच्चा है। वे केवल उजला, अंधेरा ही पहचानती हैं। अभी विलायत के एक डाक्टर ने एक ऐसे मनुष्य की आँख देखी जिसको सूर्यकिरण का सप्तरङ्ग एक आँख से भूरा दिखाई देता था और दूसरी से आसमानी और लाल रङ्ग—दोनों छोर के रङ्ग मात्र वह देखता था। बीच में सब भूरा था। मनुष्य को भी पहले-पहल किनारे के दोनों रङ्ग दिखाई दिये, और बीच में केवल भूरा रङ्ग। फिर उस भूरे में क्रमशः दोनों कोनों के दोनों रङ्ग नारङ्गी और नीले दिखाई दिये। बीच की भुराई ने कुछ काल बीतने पर और दो रङ्ग प्रकट किये।

सम्भव है कि हमारे वंशज हमसे अधिक रङ्ग देख सकें। हमारे पूर्वजों से हम अधिक रङ्ग देखते हैं। जो पूर्वज जितने प्राचीन हैं उनका वर्ण-परिज्ञान उतना ही कम है। अजण्टा गुफाओं में चित्रों के आसपास हरी आभा बनी है जो वास्तव में गुलाबी होनी चाहिए। ऐसे ही हम पुराणों में हरे घोड़े का वर्णन पढ़ते हैं। पीत को कई पुराने मनुष्यों ने 'रक्त हरित' कहा है। 'राम' 'कृष्ण' को नवजलधर श्याम कहने का अभिप्राय भी शायद उस समय के वर्णपरिज्ञान के अनुसार हो। वास्तव में, हम भी सच्चे और वे भी सच्चे, क्योंकि अपनी-अपनी आँख के अनुसार सभी रङ्ग मानते हैं। किन्तु यों नये-नये रङ्ग जानकर मनुष्य ने कुछ खोया भी है। जङ्गली बहुत कम रङ्ग पहचानते हैं और उनकी दृष्टि बड़ी तीव्र होती है। सातों रङ्ग और उनके अनेक सङ्कर देखनेवाले हम सभ्यगण 'शार्टसाइट' (मन्द-दृष्टि) से घबरा रहे हैं।[1] सम्भव है कि रङ्गदर्शन-विहीन काल में मनुष्य बहुत दूर तक देख सकता रहा हो। इन सात रङ्गों से आगे भी एक रङ्गों का सप्तक है जिसके लिए हम सब वर्णान्ध हैं। सम्भव है, कभी कालान्तर में वह भी हमारे वंशजों को दिखाई देने लगे।

अस्तु लेख के बहुत बढ़ने की क्षमा माँगकर यही कहना है कि—'य इमां चाक्षुषीं विद्यां नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति न तस्य कुलेऽन्धो भवति इति।'—चाक्षुषोपनिषद्

[प्रथम प्रकाशन क्रमशः सरस्वती फरवरी, मार्च, मई, जून, अगस्त तथा सितम्बर, १९०५ ई० के अंकों में।]

१ (क) गैनो रावर्टसन, मैकाश, शली, वक्ली प्रभृति के आधार से लिखित।

(ख) जो इस चक्षु-सम्बन्धी विद्या को नित्य पढ़ता है उसे कभी आँख का रोग नहीं होता और न ही उसके कुल में कोई अंधा होता है। —सम्पादक

(ग) गुलेरी जी ने इस लेख के अन्त में, पादटिप्पणी में—"क्या हिंदी रसिक और इन्द्रियों का भी ऐसा वर्णन पसंद करेंगे?"—लिखा तो 'सरस्वती' के सम्पादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपनी पादटिप्पणी में लिखा—"खुशी की बात है कि यह लेख आज पूरा हो गया।" —सम्पादक

लोक और कला

संगीत*

मुझे इतना समय नही रह गया है कि आपके सामने ऐसी कहावते रक्खू कि रोना और गाना सबको आता है, न मेरी यही रुचि है कि सगीत न जानने वाले को द्विपद मृग और पुच्छविषाणहीन पशु बताने वाले श्लोक यहां पर उद्धृत करू, और इसके लिए भी समय अनुकूल नही है कि ऐसे वाक्यो के प्रमाण दू जिनमे कहा गया है कि शिशु, पशु और सर्प ही गीत का रस जानते हैं या साक्षात् शङ्कर ही जानते है, और विष्णु ने कहा है कि मैं, न तो वैकुण्ठ मे रहता हूँ और न योगियो के हृदया मे, परन्तु मेरे भक्त जहां गाते हैं वही मैं रहता हू। मेरा प्रयोजन आज यह कहने से भी नही है कि ब्रह्मा के सामगान और विष्णु के वशीवादन और शंकर के ताण्डवनृत्य को और सरस्वती की वीणा को सामने धरकर गीत, वाद्य, नाट्य का दैव रूप आपको दिखाऊ। मुझे केवल दो बातें कहनी हैं—

एक तो यह कि भारतवर्ष की वर्तमान उन्नति मे जिस समाज वा जिस प्रात ने आगे पैर बढाया है उसने सगीत का सहारा लिया है, अथवा गणित वालों के शब्दा मे, जिस अनुपात मे जो समाज वा प्रात गानविद्या से विमुख है अथवा नही है उसी अनुपात से वह समाज समृद्धि के मार्ग मे पीछे पडा हुआ अथवा बढ़ा हुआ है।

इस पर थोडे ही से विचार की आवश्यकता है। ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज और प्रार्थना समाजो ने सगीत और वाद्य की अपने विचारों के प्रचार मे बहुत सहायता ली है। नई सनातनधर्म सभाओ ने भी भजन मण्डलियो और नगर-कीर्तनो से अपने को रहित नही रक्खा है। बङ्ग देश की सभ्य ब्राह्मी महिलाएँ, बम्बई प्रात की परभू जाति की कुलवतियां, मद्रास की उच्च ब्राह्मणी से लेकर

* एक व्याख्यान का पिछला भाग। पीछे से लिखा गया।

नैयर जाति तक की, ललनाए अपन-अपने प्रांतो की उन्नति लक्ष्मी की मूर्तिया बनकर सगीत और वाद्य का प्रेम दिखाती हैं। जैसा इधर के प्रातो मे सगीत को नीच जातियो का विषय मानने का पुराग्रह है जैसी ही स्त्रियो की उन्नति को रोकने की कुप्रथा है वैसे ही यहाँ पर उन्नतिदेवी का आना दूर है। पजाब मे भी जो कुछ जागृति दिखाई देती है तो उसके साथ ही साथ विष्णु दिगम्बर पुलुस्कर के गन्धर्व महाविद्यालय की चर्चा सुनाई पडती है।

मालूम होता है कि जैसे कृस्तान धर्म क पुराणकर्ताओ ने सब लोको के घूमने मे एक प्रकार का अनाहत नाद होना माना है जो परमेश्वर के सिहासन के चारो ओर विजय-सगीत का स्वर सुनाता है, वैसा ही देशो की, मनुष्यो की और हृदयो की उन्नति मे सगीत का एक तानलय प्रभाव है जो उन्नति की विजयपताका को उडाता हुआ चलता है।

हिन्दू शास्त्रकारो को कही पर सगीत, वाद्य आदि को गर्हित ठहराने वाला कहा जाता है परतु सब वाक्यो की मीमासा करने पर माराश यही निकलता है कि असत् गीत-वाद्यादिक की निन्दा से ही वहा तात्पर्य है, विनोद और उच्च आनन्दमय आह्लाद-प्रधान सगीत की निन्दा से नही। नही तो पतजलि यह काहे को कहते कि 'ये वीणाया गायन्ति ते धन सनय' और काहे को पवित्र यज्ञो मे वीणागाथियो के गान और सन्मान की बातें जगह-जगह सुनाई पडती ?

मरे वक्तव्य का दूसरा अश यह है कि हिन्दू और विशेषत उच्च आर्य जातियो के प्रतिनिधि यदि सगीत की निन्दा और अपमान करते है तो वे उस मार्ग से दूर जा रहे है जिस पर उनके पूर्व पितर' चले थे, यही नही वे पितरो के कर्मो के विरुद्ध चल रहे है क्योकि व गवैया के बेटे-पोते हैं—उनके बहुत पुराने पुरुषा गवैये थे।

आप आश्चर्य करेंगे। मैं फिर कहता हू कि आपके बाप-दादा गवैये थे। सक्षेप से इस बात को विचारिये। सब वर्णों की उत्पत्ति आठ गोत्रकार ऋषियो से ही है। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी उनही गोत्रकार ऋषियो की सन्तान हैं। शूद्रो को जरा देर के लिए छोड दीजिए, क्योकि वे गान की और गवैयो की निन्दा नही करते। क्षत्रिय और वैश्य कुलो के वे ही ऋषि हैं जो ब्राह्मण कुलो के। और ब्राह्मण कुलो के ऋषि न केवल वदो के द्रष्टा थे, वे वेद मन्त्रो के ऋक्, यजु, साम नामक त्रिधा भिन्न स्तुति, कर्म और गान रूप प्रथा के चलाने वाले थे। जहा पर वैदिक कम म 'ऋग्भि शसति', और 'यजुर्भिर्जुहोति' है। वही पर 'सामभिर्गायति' भी है। कौन ब्राह्मण का बच्चा कह सकता है कि मैं इन गवैये ऋषियो की सन्तान नही हू ? कौन ब्राह्मण का बच्चा यह कहने का साहस कर सकता है कि ये ऋषि सामगान नही करते थे ? और सगीत से नाक चढाकर कौनसा ब्राह्मण इन सात्त्विक गवैयो का अपमान नही कर रहा है ? तुम्बुरु का

तम्बूरा ब्राह्मणों के वाद्य के सम्बन्ध का और राजर्षि भरतमुनि का नाट्यशास्त्र क्षत्रियो के वाद्य, नृत्य के साथ निकट सम्बन्ध का सदा साक्षी रहेगा।

क्षत्रियो और वैश्यों के गोत्रकर्ता ऋषि वे ही हैं जो ब्राह्मणो के है। इस बात को छोड दीजिए। आजकल की क्षत्रिय-जातियो के वशधर अपने आप को प्रधानत दो कुलो का बतलाते है—सूर्यवश का और चन्द्रवश का। सूर्यवश की प्रत्येक वशावली दशरथ के पुत्र रामचन्द्र के पुत्र कुश और लव के साथ मिलाई जाती है और चन्द्रवश की वशावलिया भी देवकी-पुत्र कृष्ण तक पहुचाई जाती हैं। इन्ही दोनो कुलो की बात सुन लीजिये।

चन्द्रवश की वश-परम्पराओ के आदिकमल वासुदेव कृष्ण को जो अपना पूर्वज मानते है वे किस मुँह से गाने बजाने की निन्दा करते है? कृष्णचन्द्र ने न केवल स्वय गीतागीत गाया प्रत्युत उसके कारण गाए हुए पञ्चगीत आज भी सस्कृत साहित्य के प्रियतम रत्नो मे से हैं। और उनकी वशी बजाने की महिमा का तो कहना ही क्या? मनुष्यो और देवताओं पर ही उसका व्यामोहन नही चलता था, पशु, पक्षी, तरु, लता, नदी, पर्वत—सब उस धुन से मस्त थे। यहा पर पञ्चगान के दो-तीन पद जरा ध्यान से सुन लीजिए, मैं मूल सस्कृत नही कहता, मथुरा के मारवाडी सेठ कन्हैयालाल पोद्दार के मधुर अनुवाद मे से सुनाता हू—

गो कृष्ण के मुख कढ्यो वह वेनु-गान—
पीयूष-पान करती जु उठाय कान।
त्यों वत्स हू पय भरे स्तन-ग्रास छाडे,
ठाडे रहे सु प्रभु को हिय राखि गाढे॥

वशी ध्वनि सुनि नदी गति होत भग्ना,
आवर्त सूचित-मनोभव मे निमग्ना।
लै के तरङ्ग भुज सो कमलोपहारु,
गाढे गहे सु हरि के पद-पद्म-चारु॥

गो-गोप-साथ रसरी धरि कँ सु काधं,
वशी बजात जब ही सुर सप्त साधं।
रोमाग वृक्ष रु रहे चल जीव ठाडे,
हा! चित्र!! चेतन अचेतन भाव छाड़े॥

दूर ते हि मृग-गौ-गन सारे,
वेणु-नाद-हत-चित्त विचारे।
दात-ग्रास-धरि कान लगावें,
नैन मूदि सम-चित्र लखावें॥

चतुर गोप शिशु खेलन माही,
वेणु-वाद नव-रीति महाही।
जब अरी यसुदा ! तव ताता,
ओष्ठ बिम्ब धरि वणु बजाता॥

तबहिं सो सुनि सबै सुरवृन्दा,
ब्रह्म इन्द्र शिव-पाय अनदा।
नमित-ग्रीव चित ध्यान लगावें,
राग भेद नहिं जानि लजावे॥

वरत हास उरु कटाक्ष विलासा,
हा ! तबै हम बध स्मर-पासा।
तरु समान गति होय हमारी,
भूलि जाहि कबरी अरु सारी॥

पति सुतादि को छाडि कुल गली,
तव समीप हा ! आ गईं छली !
सरस गीत सों मोहि जो गईं,
तियन रैन म को तजै ? दई !

ऐस बडे उस्ताद के वशधरो की क्या, जाति भाइयो की भी क्या, एक देश-वासियो तक की गाने बजाने से प्रीति होनी चाहिए। हा, यदि कोई मेरा युवा मित्र यह कह उठे कि यह तो कविया की कल्पना है सच्ची बात थोडी है तो मैं चुपके से उसके कान म कहूगा कि सस्कृत की एक प्रसिद्ध कहावत के अनुसार एक ही मुर्गी का एक हिस्सा पकाने के और दूसरा हिस्सा अडा देने के काम म नही आ सकता मैं मानता हू कि यह कविया की रचना है परतु तुम्हारी वशावली का कृष्ण स मिलना भी क्या कवियो की रचना नही है ?

अब मर्यादा पुरुषोत्तम राजा रामचद्र क दोनो पुत्रो की ओर आइए। उनके नाम कुश और लव थ। य कुछ निराले स नाम है, पहले के और पीछे क राजाओ मे बहुत ही कम (शायद नहीं भी) मिलते है। दोनो जोडल भाई थे, वाल्मीकि ने इनके सब सस्कार साथ ही किये थ, शब्द ब्रह्म का नया श्लोकमय विवर्त वाल्मीकीय रामायण इनने साथ ही साथ पढा उस गा-गाकर लोकापवाद-भीरु रामचद्र की निकाली हुई सीता के वियोग दुःख को व कुछ कुछ कम करते थे और उनका लोकोत्तर गान सुनकर रामचद्र ने जब उनस पूछा कि गेय को नु विनेता वा ? (तुम्हे गाना किसने सिखाया) तो उन्होने वाल्मीकि का नाम लिया और पीछे राम ने उन्ह पहचान कर स्वीकार किया। बडो रोचक और करुण रस की कथा है। उन दोनो का नाम समास करके 'कुशलवौ' ऐसा भी आता है और

कई जगह वाल्मीकीय रामायण मे 'कुशीलवौ' भी आता है, जैसे—

अभिषिच्य महात्मानावुभौ राम कुशीलवौ ।

(रामायण उत्तरकाड)

कुश और लव का समास करने पर बीच मे ई का आ घुसना नई बात हाने पर भी सस्कृत-व्याकरण के जानने वालों के लिए नई नही है। क्योंकि वहा बालक का नाम तो हरिचद्र होता है, एक खास राजर्षि का नाम उन्ही शब्दा से बनकर हरिश्चद्र हो जाता है, दुनिया का दोस्त इस अर्थ मे विश्व + मित्र बनता है और उसी मे एक खास ऋषि का नाम होने से आ' आ जाता है और वह शब्द विश्वामित्र हो जाता है। आजकल किसी पार करने वाने का नाम पारकर' होगा, परतु एक ऋषि का उसी अर्थ का नाम पारस्कर है। व्याकरण को भाषा की उन्नति के अधीन मानने वाले लोग कहेंगे, ये पुराने शब्द है व्याकरणा के बनने के पहल भाषा के चालू सिक्को मे आ चुके थे, और पीछे वैयाकरणों ने अपनी बुद्धि के अनुसार जिन शब्दा को न बना पाया उन्हे निपातन करके अलग छाट दिया। ठीक है, मेरा उनसे कोई झगडा नही है। वे ये मानेंगे कि आजकल यदि दो जोडले भाई या सदा साथ रहनेवाल दो जनो के नाम कुश और लव हा तो उन्हे 'कुशलवौ' कहा जाएगा, परतु उन दोना भाइयो को 'कुशीलवौ' नही कहेंग, वह केवल वाल्मीकि के शिष्य और मैथिली के कुमारो पर रूढ है।

अच्छा, जरा देखिए तो सस्कृत मे कुशीलव का क्या अर्थ है ? इसका अर्थ गाने-बजाने मे कुशल, कीर्त्ति सचारक, नट वा चारण, गायक मिलता है। इन दोनो भाइयो के अर्थ म भी कुशीलव पद पाया जाता है। कुशीलवो की विद्या क चलाने वाले वाल्मीकि मुनि का भी यह शब्द वाचक है। और इन अर्थों के वाचक कुशीलव शब्द की व्युत्पत्ति कोशकार यह करत है कि "कुत्सित शील अस्त्यर्थे व, कुशील वाति वा'। कु = खोटा, शील = चरित्र, व = है, वाति वा = जो खोटे चरित्र को लिये फिरते है। इस बचपन की व्युत्पत्ति को मैं बेसमझी का टक्कर मारना कहता हू। यह उसी पजाबी कहावत का नमूना है कि —

उणादि का प्रत्यय आया डुलक, डिया डोलाना,
मा धातु स सिद्ध हुआ मुलक, मियाँ मौलाना !!

वाल्मीकि रामायण के पहले किसी ग्रथ मे गवैयो के अर्थ मे कुशीलव शब्द नही मिलता। अतएव मेरा सिद्धात यह है कि ये दोनों भाई कुशीलव इतने बढिया गवैये थे कि उनके पीछे गवैयो भर का नाम कुशीलव हो गया।

भाषा-विज्ञान के खोजी जानते हैं कि विशेष सज्ञा नामो से साधारण गुण नाम बन जाते हैं। एक कादम्बरी उपन्यास के पीछे मराठी भाषा मे उपन्यास

मात्र का साधारण नाम कादम्बरी हो गया है। एक भगीरथ के हिमालय पर्वत से समुद्र तक गङ्गा नदी को लाने के परिश्रम को देखकर बडे हिम्मत के कामो मे 'भगीरथ प्रयत्न' कहने लग गये हैं। हिंदी मे एक प्रसिद्ध अधा सूरदास नामक हो गया है जिसके पीछे अधे अधे सभी सूरदास जी कहलाते हैं। एक जसवन्तराव होलकर काने के पीछे सभी कान जसवन्तराव हो गए है। 'नव्वाबी', 'सिखाशाही' आदि शब्द भी एक विशेष प्रकार की शासन-प्रणाली के वाचक होकर वैसे गुणो वाली सभी प्रणालियो के लिए लाए जाते है। आजकल भी एक पायोनियर अखबार की प्रसिद्धि से लोगो न पायनियर को अखबार मात्र का सर्वनाम बना लिया है, जैसे "आपके हाथ मे कौनसा पायनियर है?" ढोला नाम का एक ऐसा प्रेमिक हो गया है जिसे अपनी प्रेयसी से वियोग क्षण-भर भी इष्ट न था, इसलिए अब राजपूताना म प्रेमी मात्र को ढोला कहने लग गए है और चकवा-चकवी की तरह साथ रहन वाले प्रेमियो को ढोला-मारू। पीछे वैयाकरणो ने इस प्रेममय शब्द को प्राकृत के 'दुल्लहो' और सस्कृत 'दुर्लभ' और हिंदी 'दूलह' से मिलाकर अपना काम किया है। इसमे सदेह नही कि 'ढोला राय' को 'दुर्लभराय' का विकृत रूप मानना पडेगा, परतु अत्यासक्त प्रेमी का अर्थ न दुर्लभ म है न दूलह मे है, ढोला मे जो वह आया है वह उस विशेष व्यक्ति के गुणो वा जाति मात्र मे आरोप होने से हुआ।

ऐसे उदाहरण पचासो दिए जा सकते हैं। भाषा-विज्ञान के आचार्यों ने यह उदाहरण दिया है। किसी वस्तु का नाम 'हरा' था और उसका यह डित्थ कपित्थ की तरह अनर्थक नाम था। उ।मे हरा (हरित) गुण भी था। अब लोगो को जो चीज हरित दिखाई पडती उसे व सादृश्य के कारण "हरा! हरा!!" चिल्लाने लगे। होते होते हरित गुण की वस्तु मात्र का साधारण नाम हरा हो गया जो एक विशेष अनर्थक नाम से निकल कर गुणवाचक हो गया।

यही 'कुशीलव' के साथ हुआ होगा। अयोध्यावासियो के इतिहास मे अपन राजा की खोई हुई रानी और पुत्रा का मिलना बडी भारी हलचल पैदा करने वाली घटना हुई होगी। राम ने 'लोक एव जानाति किमपि' कहकर सारा पुण्य-पाप का भार प्रजा पर रख दिया था। राम के छोटे भाई अपने अग्रज की निःसतानता पर दुःखी थे जैसा भवभूति ने चद्रकेतु और सुमत के मुँह से कहलाया है।[1] प्रजा भी अपने भविष्यशून्य सिंहासन को देखकर दुखी थी। इसी अवसर

१ अप्रतिष्ठे रघुज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य न।
इति दुःखेन पीड्यन्ते वयो न पितरोऽपरे।
मनोरथस्य यद्बीज तद्दैवेनादितो हृतम्।
लताया पूर्वलूनाया प्रसूनस्यागम कुत।

मे नाटक के समान घटना से दो गाने वाले जोडले भाई, जो 'कुशीलव' कहलाते थे, रगमच पर आते हैं और रामचद्र और अयोध्यावासी उन्हे अपना मान लेते है। इस समय कुशीलव का और कोई अर्थ नही है, यह उन दोनो भाइयो का जुडा हुआ नाम है। अब हाट-बाट मे घर-घर मे कुशीलवो की चर्चा फैल गई—"देखो, ये कुशीलव कितना अच्छा गाते है कि मुनते-सुनते हमारे राजा को अश्रु आ गये! क्यो भई, पहले भी कभी ऐसे कुशीलव सुने गए थे? अपनी अयोध्या मे ऐसे कितने कुशीलव है? जो, अयोध्या की गिनती क्या आर्यावर्त मे इन जैसे कुशीलव नही हैं।" वाल्मीकि को आता देखकर लोग अगुली उठा-उठा कर कहने लगते, "हाँ, देखो यह कुशीलवो का गुरु आया! क्या यह और भी कुशीलव तैयार कर रहा है?" शायद नायिकाओ ने अपने विदग्ध नायको से कहा हो कि 'हमे रिझाना हो तो कुशीलव बनकर आओ'। और किसी पिता ने जब देखा हो कि बेटा दूकान को न सम्हाल कर दिन भर ताना रीरी मे लगा रहता है तो उमने उसे सिर घुनता हुआ देखकर झिडक कर कहा हो—"कुशीलवो की दुम बना आता है! तेरे जैसे जब कुशीलव हो जायगे तब अयोध्या भर मे किसी को नीद नही लेने देंगे।"

यो होते-होते यदृच्छा शब्द कुशीलव का अर्थ गवैया बजवैया मात्र हो गया। जैसे बुड्ढे वसिष्ठ के कारण हर एक आदरणीय वृद्ध को वसिष्ठ कहते हैं (खालक बारी का बसीठ=पैगम्बर) वैसे उन सुचतुर गवैयो के कारण सभी गाने-बजाने वाले कुशीलव कहलाने लगे। पीछे कई सौ वर्षों बाद जब इस शब्द की असली उत्पत्ति को लोग भूल गये थे किसी अक्षरकीट पडित ने अपने समय की गवैयो की घृणा को देखकर 'कुत्सित शील' वाली भानमती के कुनबे की-सी व्युत्पत्ति गढ दी।" वश दो तरह चलता है विद्या से और जन्म से, तो क्यो कुशीलवो के जन्म-वशज अपने वशकर्ताओ की विद्या से घृणा करते हैं?[1]

यदि यह कहा जाए कि गवैयो का नाम कुशीलव रामचद्र के पुत्र लव और कुश से पुराना है तो प्रमाण न होने पर भी इसमे इष्टापत्ति है। तो यो हुआ होगा कि दो चतुर बालक कुशीलव (=गवैये) अयोध्या मे आए और पहचान होने पर राजपुत्र मान लिये गये। उनका नाम किसी को नही मालूम था। 'कुशीलवो

१. एक और विनोद की बात है, सस्कृत भाषा के व्याकरण के अनुसार गोत्र के सब अपत्यियो का नाम गोत्रकार के नाम से चलता है। कुशिक के वश के लोग कुशिका कहलाएगे ('एप व कुशिका वीरो'—ऐतरेय ब्राह्मण) और भरत के वश के लोग भरता (एष वो राजा भरता—कृष्ण यजु०)। इस प्रकार से चन्द्रवशी दुष्यन्त के पुत्र शकुन्तला गर्भज भरत वश के लोग भरता कहलाएगे और कुशीलवो के वश के कुशीलवा। और सस्कृत साहित्य म 'भरता' और 'कुशीलवा' यह नाचने गाने-बजाने मे चतुर लोगो का नाम है!!!

मात्र का साधारण नाम कादम्बरी हो गया है। एक भगीरथ के हिमालय पर्वत से समुद्र तक गङ्गा नदी को लाने के परिश्रम को देखकर बड़े हिम्मत के कामों में भगीरथ प्रयत्न कहने लग गये हैं। हिंदी में एक प्रसिद्ध अंधा सूरदास नामक हो गया है जिसके पीछे अंधे अंधे सभी सूरदास जी कहलाते हैं। एक जसवंतराव होलकर कान के पीछे सभी कान जसवंतराव हो गए हैं। नव्वाबी, सिखाशाही आदि शब्द भी एक विशेष प्रकार की शासन प्रणाली के वाचक होकर वैसे गुणों वाली सभी प्रणालियों के लिए लाए जाते हैं। आजकल भी एक पायोनियर अखबार की प्रसिद्धि से लोगों ने पायनियर को अखबार मात्र का सर्वनाम बना लिया है जैसे आपके हाथ में कौनसा पायनियर है? ढोला नाम का एक ऐसा प्रेमिक हो गया है जिसे अपनी प्रेयसी से वियोग क्षण भर भी इष्ट न था इसलिए अब राजपूताना में प्रेमी मात्र को ढोला कहने लग गए हैं और चकवा चकवी की तरह साथ रहने वाले प्रेमियों को ढोला मारू। पीछे वैयाकरणों ने इस प्रेममय शब्द को प्राकृत के दुल्लहो और संस्कृत दुर्लभ और हिंदी दूलह से मिलाकर अपना काम किया है। इसमें संदेह नहीं कि ढोला राय को दुर्लभराय का विकृत रूप मानना पड़ेगा परंतु अत्यासक्त प्रेमी का अर्थ न दुर्लभ में है न दूलह में है ढोला में जो वह आया है वह उस विशेष व्यक्ति के गुणों का जाति मात्र में आरोप होने से हुआ।

ऐसे उदाहरण पचासों दिए जा सकते हैं। भाषा विज्ञान के आचार्यों ने यह उदाहरण दिया है। किसी वस्तु का नाम हरा था और उसका यह डित्थ कपित्थ की तरह अनर्थक नाम था। उसमें हरा (हरित) गुण भी था। अब लोगों को जो चीज हरित दिखाई पड़ती उसे वे सादृश्य के कारण हरा! हरा!! चिल्लाने लगे। होते होते हरित गुण की वस्तु मात्र का साधारण नाम हरा हो गया जो एक विशेष अनर्थक नाम से निकल कर गुणवाचक हो गया।

यही कुशीलव के साथ हुआ होगा। अयोध्यावासियों के इतिहास में अपने राजा की खोई हुई रानी और पुत्रों का मिलना बड़ी भारी हलचल पैदा करने वाली घटना हुई होगी। राम ने लोक एव जानाति किमपि कहकर सारा पुण्य पाप का भार प्रजा पर रख दिया था। राम के छोटे भाई अपने अग्रज की निःसंतानता पर दुःखी थे जैसा भवभूति ने चन्द्रकेतु और सुमंत के मुंह से कहलाया है।[1] प्रजा भी अपने भविष्यशून्य सिंहासन को देखकर दुखी थी। इसी अवसर

१ अप्रतिष्ठ रघु ज्येष्ठ का प्रतिष्ठा कुलस्य न।
इति दुःखेन पीड्यन्ते त्रयो न पितरोऽपरे।
मनोरथस्य यद्बीज तद्दैवेनादितो हृतम्।
लतायां पूर्वलूनायां प्रसूनस्यागमः कुतः।

मे नाटक के समान घटना से दो गाने वाले जोडले भाई, जो 'कुशीलव' कहलाते थे, रगमच पर आते है और रामचद्र और अयोध्यावासी उन्हे अपना मान लेते हैं। इस समय कुशीलव का और कोई अर्थ नही है, यह उन दोनों भाइयो का जुडा हुआ नाम है। अब हाट-बाट मे घर-घर मे कुशीलवो की चर्चा फैल गई—"देखो, ये कुशीलव कितना अच्छा गाते हैं कि सुनते-सुनते हमारे राजा को अश्रु आ गये ! क्यो भई, पहले भी कभी ऐसे कुशीलव सुने गए थे ? अपनी अयोध्या मे ऐसे कितने कुशीलव है ? जी, अयोध्या की गिनती क्या आर्यावर्त मे इन जैसे कुशीलव नही हैं।" वाल्मीकि को आता देखकर लोग अगुली उठा-उठा कर कहने लगते, "हाँ, देखो यह कुशीलवो का गुरु आया ! क्या यह और भी कुशीलव तैयार कर रहा है ?" शायद नायिकाओ ने अपने विदग्ध नायकों से कहा हो कि 'हमे रिझाना हो तो कुशीलव बनकर आओ'। और किसी पिता ने जब देखा हो कि बेटा दूकान को न सम्हाल कर दिन भर ताना रीरी में लगा रहता है तो उसने उसे सिर धुनता हुआ देखकर झिडक कर कहा हो – "कुशीलवो की दुम बना आता है ! तेरे जैसे जब कुशीलव हो जायगे तब अयोध्या भर म किसी को नीद नहीं लेने देंगे।"

यो होते-होते यदृच्छा शब्द कुशीलव का अर्थ गवैया बजवैया मात्र हो गया। जैसे बुड्ढे वसिष्ठ के कारण हर एक आदरणीय वृद्ध को वसिष्ठ कहते हैं (खालक बारी का वसीठ=पैगम्बर) वैसे उन सुचतुर गवैयों के कारण सभी गाने-बजाने वाले कुशीलव कहलाने लगे। पीछे कई सौ वर्षों बाद जब इस शब्द की असली उत्पत्ति को लोग भूल गये थे किसी अक्षरकीट पडित ने अपने समय की गवैयो की घृणा को देखकर 'कुत्सित शील' वाली भानमती के कुनबे की सी व्युत्पत्ति गढ दी।" वश दो तरह चलता है विद्या से और जन्म से, तो क्यों कुशीलवो के जन्म-वशज अपने वशकर्ताओं की विद्या से घृणा करते है ?[1]

यदि यह कहा जाए कि गवैयो का नाम कुशीलव रामचद्र के पुत्र लव और कुश से पुराना है तो प्रमाण न होने पर भी इसमे इष्टापत्ति है। तो यो हुआ होगा कि दो चतुर बालक कुशीलव (=गवैये) अयोध्या मे आए और पहचान होने पर राजपुत्र मान लिय गये। उनका नाम किसी को नही मालूम था। 'कुशीलवो

१. एक और विनोद की बात है, सस्कृत भाषा के व्याकरण के अनुसार गोत्र के सब व्यक्तियो का नाम गोत्रकार के नाम से चलता है। कुशिक के वश के लोग कुशिका कहलाएगे ('एष व कुशिका वीरो'—ऐतरेय ब्राह्मण) और भरत के वश के लोग भरता ('एष वो राजा भरता—कृष्ण यजु॰)। इस प्रकार से चन्द्रवशी दुष्यन्त के पुत्र शकुन्तला गमज भरत वश के लोग भरता कहलाएगे और कुशीलवो के वश के कुशीलवा। और सस्कृत-साहित्य म 'भरता' और 'कुशीलवा' यह नाचने गाने-बजाने मे चतुर लोगो का नाम है !!!

को राजा ने अपना पुत्र पहचान लिया'—'अब कुशीलव हमारे राजा बनेंगे'—इस प्रकार की बातें अयोध्या में होते-होते लोग उन्हे कुशीलव ही कहने लग गए। जैसे बडे पहलवान या पडित का नाम कोई नही जानता या लेता वरन् उन्हे पहलवान जी या पण्डित जी कहता है वैसे ये दोनो भाई कुशीलव ही कहे गये। पीछे उसी नाम को फाड कर उनके नाम लोगो ने कुश और लव रख लिये। क्योकि पहले कहा जा चुका है कि ये निराले से नाम है और सस्कृत साहित्य मे शायद और कही पाए नही जाते। और इनके निरालेपन ही को देख कर और कुशीलव से इनका निकलना न सोच कर कई सौ वर्षों पीछे (और उस समय गानविद्या और उसके प्रचारको से गर्हा उत्पन्न हो गई हो) यह द्रविड प्राणायाम से बादरायण सबध निकाला गया कि वाल्मीकि ने उनके गर्भक्लेशो को कुश और लव (= गोपुच्छ) से मिटाया था इससे उनके नाम कुश और लव रक्खे गये। जिस एक गर्भ मे जोडले भाई है उसके क्लेश मिटाने के लिए न्यारे-न्यारे उपकरण कैसे लिये गये यह जैसे विचारणीय है वैसे यह अप्रमाण कथा भी विचारणीय है कि एक दिन लव को खो कर सीता व्याकुल हो रही थी तो मुनि ने कुश पर छीटा मारकर एक दूसरा बालक बना दिया! इससे एक पुत्र वाली सीता के दो पुत्र हो गये!! और यह बात ही न्यारी है कि ज्येष्ठ कुश उस कथा मे कनिष्ठ हो जाता है!!!

चाहे जो हो, चाहे उन दो राजकुमारो के पीछे गवैये कुशीलव कहलाए हो और चाहे गवैया होने के कारण वे दोनो कुशीलव कहलाए हो—इसमे सदेह नही कि वे शब्दब्रह्म के नए विवर्त आदिकाव्य रामायण के चतुर गाने वाले थे। उनके गानवक्ता होने मे कोई सदेह नही। यदि रामचद्र की ऐतिहासिकता मे किसी को सदेह हो तो यह तो मानना ही पडेगा कि रामचरित आदिकवि की कल्पना है। यह बात भी हमारे काम की है क्योकि पुराने—अति पुराने—समय के कवि की दृष्टि मे एक चक्रवर्ती राजा के पुत्र और भविष्य चक्रवर्तियो को गानवक्ता कहने मे कोई सकोच न जान पडा या लज्जा नही आई। उस समय के पाठक भी चक्रवर्ती के लडको को गाता हुआ देख कर 'अब्रह्मण्य, अब्रह्मण्य' नही पुकारते होगे।

यह माना कि आजकल सगीत नीच सङ्ग से कुरुचिकारक हो गया है, पर कुसङ्ग से कौन चीज नही बिगड जाती? और उत्तम विद्या को नीच से, स्वर्ण को अपवित्र जगह से, अमृत को विष से, स्त्रीरत्न को दुष्कुल से लेने के विषय मे भी तो नीति का एक श्लोक है न?

[प्रथम प्रकाशन मर्यादा . मार्च, १९११ ई०]

साँप के काटने का विलक्षण उपाय

ग्वालियर राज्य मे एक मकसूदनगढ या नया किला नाम का एक छोटा-सा स्थान है। वह, रेल के रास्ते से, राघोगढ से, अथवा भोपाल के पास पडता है। वहाँ जाने के लिए कौनसा रेलवे स्टेशन है यह ठीक पता नही चला, पर हाँ, यह तो जान पडा है कि मक्सूदनगढ अपने आप रेल का स्टेशन नही है। इस ठिकाने की ठाकुर की गद्दी मे यह करामात सुनी गई है कि साँप के काटने का इलाज एक अद्भुत रीति से वहाँ पर होता है। जो गद्दी पर बैठना है उसी मे यह शक्ति रहती है, छोटे भाइयों या कुमारो मे नही। राजपूताने के पूर्व-दक्षिण हिस्से और मालवा के बडे भारी भाग मे सब इस बात को जानते हैं, सैकडो नही तो पचासो स्त्री-पुरुष अवश्य वहाँ जाकर प्रतिवर्ष अच्छे हो आते हैं।

क्या होता है

जिस किसीको साँप काटे वह उसी समय दश की जगह पर एक डोरा बाँधकर कह देव—"यह महाराज धीरजसिंह जी की ताँती (ततु, तागा) है, साँप को धीरजसिंह जी की आण (शपथ) है यदि मुझ पर विष चढा तो। मैं एक महीने (दो महीना या छ महीना, कोई निर्दिष्ट समय बताना चाहिए) नए किले की गद्दी पर हाजिर हो जाऊँगा। सिर्फ कहने का तात्पर्य ऐसा होना चाहिए। कुछ यह जरूरी नही है कि भाषा यह की यही हो। साथ ही, यह भी निश्चय नहीं हुआ है कि राजपूताना की देहाती भाषाओ को छोडकर अरबी, फारसी, सस्कृत या अगरेजी मे यही बात कही जाए तो उसका प्रभाव क्या होता है। खैर, यह कहते ही साँप का विष नही चढेगा। काटा हुआ मनुष्य अपना काम करने लगता है। किन्तु यदि निर्दिष्ट समय के अन्दर वह नए किले नही जावे तो अवधि का दिन पूरा होते ही उसे विष चढता है और वह मर जाता है। नए किले मे जाते ही उसे बाहर मन्दिर के पण्डे से मिलकर सूचना देनी चाहिए कि एक साँप का काटा आया है। वह ठाकुर साहब को सूचना देता है। वहाँ पर आने वाले स्त्री या पुरुष जैसा हो, उसके लिए वैसा ही खाने-पीने, रहने का प्रबन्ध किया

जाता है। क्याकि लोक विश्वास और चाल के अनुसार धीरजसिंह जी गद्दी वाले न सिफ साप के काटे का मौत के मुँह से बचाते है बल्कि उसे सब तरह का सुख और खच देकर घर भजते हैं। देहली पर जाते ही काटे हुए का विप चढता है वह हाथ पाँव पछाड्ता है (कभी कभी मुह से झाग निकालता है) और बेहोश हो गिर पडता है। वह उठाया जाकर ठाकुर साहब के सामने लाया जाता है। वे उससे पूछते है कि तू कहा रहता है। वह अर्थात उस काटने वाला साप उत्तर देता है कि मै अमुक पेड की जड म या फलाने कुएँ की चिनाई म (या और किसी जगह) रहता हूँ। मानो उस मनुष्य के शरीर म विप के रूप से सांप ने प्रवेश कर लिया है। अक्सर साप के काटे हुए लोग ३/४ कोस की दूरी से ही आते हैं क्योंकि करामाती स्याना की बडाई या तो बहुत छोटे घरे म रहती है या बहुत ही दूर तक अपने किरण छोडती ह। एसे पास के लोगो के प्रमाण पर जब बताए हुए पते पर साप खोजा गया है तब लोग कहते है कि वही मिला है। पीछे पूछा जाता है कि तूने इस क्या काटा? उत्तर मे साँप काटने का कारण कहता है। जसे इसने मरी दुम को कुचला या मरे लाठी मारी या मेरे जोड को मार डाला। (यह भी काटे हुए म ष्य से पूछा जाता है तो ठीक निकलता है।) तब ठाकुर साहब आज्ञा देते है कि तुम इस मनुष्य को छोडकर चले जाओ। साप यदि भला होता है तो मान लेता है और वह मनुष्य नीद से उठने वाले की तरह चौककर जाग पडता है। यदि साप दुष्ट जाति का होता है तो वह कह देता है कि म नही छोडूगा। तब ठाकुर साहब अपने जेब म से एक रूमाल निकालकर उस बटना शुरू करते हैं। ज्यो ज्या वे उसम बल देते हैं त्यों त्या ऐसा मानते हैं कि साँप क शरीर मे बट लगते जा रहे हैं। एक दो या तीन बल म ही वह मनुष्य हा हा खाता है और कहता है— माफ कीजिए मैं जाता हू और होश म आ जाता है। पीछे खच आदि लेकर ठाकुर साहब का गुण गाना हुआ अपने घर लौट जाता है।

वैज्ञानिक विचार

विप के रूप से साप ही काटे हुए के शरीर म घुस जाता है ऐसा कई लोग मानते हैं। और जगह भी साँप के काटे हुए को बकराकर (बकना शुरू कराकर) प्रश्न पूछे जाते हैं और यह माना जाता है कि साँप उत्तर द रहा है। यह बकराना म त्र से या मेस्मरिज्म के से पास करने से होता है। धीरजसिंह के नाम स विप का जोर न करना नाम के म त्रबल स हो सकता है अथवा नाम लेने क मन पर दृढ विश्वास के प्रभाव से हो सकता है। ऐसे ही निर्दिष्ट समय पर मकसूदनगढ न पहुँच सकने वाल का मर जाना भी इसी दृढ विश्वास के हट जाने की शिथिलता का फल हो सकता है। दो मनुष्य पास-पास सो रहे थे। एक

को सांप ने काटा, दूसरे को चूहे ने। चूहे के काटे हुए ने समझा मुझे सांप ने काटा है और उसे जहर चढने लगा, मुंह मे फेन आ गए, आंख चढ गई और सांप का काटा हुआ यह समझकर कि मुझे चूहे ने काटा है खेलता-कूदता रहा। एक दंश पहचानने वाले ने दांत का निशान पहचानकर जब पहले को कहा कि तुम्हे चूहे ने काटा है तो वह भला-चगा हो गया और दूसरा उसीसे यह सुनकर कि उसे सांप ने काटा है मूर्छित हुआ और मर गया। यह सहानुभूतियुक्त कल्पना (Sympathetic Imagination) का फल हो सकता है। झाड फूंक के द्वारा, मन्त्रो के द्वारा, जो सांप का जहर उतारने का दावा किया जाता है वह भी मानसिक बल से काटे हुए की मनोवृत्तिया को विश्वास की भित्ति पर जमाकर, दूसरी तरफ लगान से होता होगा। पहला मानसिक जादू काटने वाले और काटे हुए की एकता है, दूसरी मानसिक करामात रूमाल और अपराधी की एकता है जो पहले के कान ऐंठने से दूसरे के कान ऐंठवा देती है।

नामो को महिमा

कुछ नामो के विषय मे भी यह होता है कि उन नामों से सांपो का विष हटता हुआ बताया जाता है। हैदराबाद भूतपूर्व निज़ाम महमूदअली बेग मे भी यह सामर्थ्य कहा जाता था। केवल इतना ही आवश्यक था कि सांप के काटते ही निज़ाम महमूदअली वेग का नाम ले लिया जाय। बस, धीरजसिंह जी की गद्दी की तरह हैदराबाद जाने की जरूरत न थी, केवल तार या चिट्ठी से दक्षिण के निज़ामुलमुल्क को यह सूचना देनी होती थी कि आपके नाम से यह आराम हुआ। नही जानते कि वर्तमान और भविष्य निज़ामो मे भी यह शक्ति रहेगी या नही। पजाब मे 'गूगा छत्री' के नाम की ऐसी ही महिमा है,—यहां तक कि सांप मात्र को लोग 'गूगा' कहने लग गए हैं। गूगा जी के विषय मे कुछ और भी कहना है। सांप के विष के बारे मे आस्तिक लोग एक श्लोक पढा करते हैं जिसका अर्थ यह है कि "नर्मदा को सुबह को प्रणाम और नर्मदा को रात को प्रणाम। नर्मदे, तुमको प्रणाम, मुझे सर्प विष से बचा।" यो लिया जाने वाला नाम किसी प्रबल पराक्रमी या सांपो के परिचित किसी उनके उपकारी का होना चाहिए जिसके नाम से सांप दबते हो। 'महाभारत' के पढने वाले यायावर कुल के जरत्कारु ऋषि और नाग-कुल की जरत्कारी के पुत्र आस्तीक का नाम जानते होंगे जिसने अपने वैदिक ज्ञान के बल से परीक्षित जनमजय के सर्पसत्र को बन्द कराकर अपने मामा के कुल की रक्षा की थी। उसके नाम के प्रभाव से सांप को दूर रखने के लिए कहा जाता है—"सांप, हट जा, तेरा भला हो, महाविष, दूर हट जा। जनमजय के यज्ञ के अन्त मे आस्तीक का वचन याद कर। आस्तीक का वचन सुनकर जो सांप नहीं

हटता उसका सिर भी टुकड़ो मे फट जाता है जैसे शिश वृक्ष का फल।" ये दोनो श्लोक 'महाभारत' मे हैं और (हँसिए मत) ऋग्वेद-परिशिष्ट मे भी पहुँचा दिए गए है। तो जैसे 'ओ आस्तीकाय नम' कहने से सॉप का भय नही रहता, वैसे ही धीरजसिह जी की भी आण देने से भी साँप का विष नही चढता, माना जाता है।

धीरजसिह जी कौन थे ? सॉपो के कुल से उनका ऐसा कौनसा सम्बन्ध था कि सॉप अब तक उनका आदर करते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर मे धीरजसिह जी का रोचक उपाख्यान सुनिए—"धीरजसिह जी, कई पीढियाँ पहले, इसी वश म हुए है। कितनी पीढियाँ उनसे मक्सूदनगढ के वर्तमान अधिकारी तक हुई यह नही जाना जाता। सभव है कि वर्तमान ठाकुर के पास अपना वशवृक्ष हो। अस्तु, एक दिन वे जगल मे जा रहे थ। देखा कि उच्चकुल की सर्पिणी एक नीचकुल के सर्प के साथ सहवास कर रही है। सॉपो की जाति पहचानना पुराने लोगो की एक विद्या थी। महाभारत मे सॉपो की ब्राह्मण, क्षत्रिय, आदि कई जातियाँ लिखी है। राजा को यह अनाचार बुरा लगा, उसने बैत की चोट मारकर उन दोनो को अलग किया और अपना रास्ता लिया। कहते है कि सॉप अपना मैथुन देखने वाले को क्षमा नही करता। अवश्य ही जारिणी सर्पिणी ने अपने प्रेमी को उसकाया* होगा कि बदला ले, किन्तु उस कापुरुष ने दुम दबाकर अपनी बहकाई हुई प्रेयसी को बैत की चोट का स्मरण करने के लिए छोड दिया। स्त्री ने अपने पति नाग से जाकर कहा कि राजा धीरजसिह ने मुझ निरपराध स्त्री पर प्रमाद से आघात किया है आप मेरा बदला लीजिए। सर्प फुफकारता हुआ राजमहल मे पहुँचा और एक मोरी मे अवसर ताकता हुआ छिप रहा। इसी समय राजा भीतर अपनी रानी से कह रहे थे कि देखो कलियुग का प्रवेश हम मनुष्यो मे ही नही, सर्पों मे भी हो गया है। आज मैंने एक नीच जाति के सर्प के साथ एक उच्चकुल की नागिनी को देखा। हा! हन्त! समय न मालूम और क्या-क्या दिखाएगा ?

पनाले मे से यह सुनकर नाग राजा के सामने आया और (अवश्य ही यह उस समय की बात होगी जब सॉप मनुष्यो की भाषा बोल सकते थे!!) धीरजसिह से सच्चा हाल सुनकर बोला—"मैं उस छलिनी के वचनो से मोहित होकर आपको मारने आया था परन्तु अब मेरी आंखो पर से परदा हट गया है। आप जो चाहे, वर मागिए।" बार-बार पूछने पर राजा न यह वर मागा कि मुझमे और मेरे वशधरो मे यह शक्ति हो कि वे सॉप के काटे हुए को अच्छा कर सके और सब सॉप उन मनुष्यो को छोड दें जो मेरा नाम लें। सॉप

* उकसाया।

'तथास्तु' कहकर चला गया। पीछे उसन अपनी कुलटा स्त्री को क्या दण्ड दिया और उस क्षुद्र साँप की क्या दशा की जो न केवल परदाराभिमर्षण म शूर था परन्तु अपना तथा अपनी विश्वसिनी प्रिया के अपमान को देखकर कायरपन की प्रतिमूर्ति बनकर भाग गया था, इसका साँप क गार्हस्थ्य सुख स सम्बन्ध होते हुए भी हमारी कथा से कुछ सम्बन्ध नही है।

ऊपर का लिखा हुआ वृत्तात एक प्रामाणिक व्यक्ति से सुना हुआ है, कई मनुष्यो ने इसके सत्य होने की साखी भरी है। यदि यह सत्य हो तो इस विषय की जाँच होनी चाहिए। जब मकमूदनगढ के ठाकुर साहब प्रत्येक साँप के काटे को भला-चगा करके उसे वस्त्र देकर भी सत्कार करते है तब अवश्य ही वे अपने यहाँ एक रजिस्टर रख सकते है। उसम लिखा जाना चाहिए – अमुक दिन साँप का काटा अमुक व्यक्ति यहाँ आया, उसक कथन के अनुसार उसे साप ने अमुक स्थान म इतन दिन पहले काटा था, और वह चगा होकर चला गया। यदि १० वर्ष तक भी ऐसा नकशा रखा जाय तो यह गवाही ऐसी प्रबल हो जाएगी कि कट्टर से कट्टर नास्तिक भी इसे नही हिला सकता। और अब अगरजी राज्य और रेल की कृपा से हिन्दुस्तान का कोई भी भाग मकमूदगढ से इतना दूर नही रहा है कि एक एक सप्ताह म वहाँ न पहुँचा जा सके। यदि दस वप का लेखा सही सही रखा जाय तो मकसूदनगढ तक रेल भी बनाई जा सकती है और जो सरकार पागल कुत्ता क काटे हुए दीनो को बिना किराया लिए कसौली के 'पाश्चूर इन्स्टिट्यूट' म भेजती है उसस यह भी आशा की जा सकती है कि हर थाने हर पुलिस चौकी म यह ढिंढोरा पिटवा दे कि साप के काटते ही राजा धीरजसिह जी की शपथ खाओ। इस देश म प्रतिवप सहस्रा मनुष्य गाँवो म साँप क काटन स मरत हैं। उनके बचन का ऐसा सुलभ उपाय होने स राजा प्रजा म मकसूदनगढ के ठाकुर साहब का कितना मान होगा ?

किन्तु

एक बात विचारने की है। यह भय है कि सर्वसाधारण म प्रकाशित करने स धीरजसिह जी के नाममन्त्र की महिमा कही घट न जाय। कभी कभी करामातो के विषय म यह सुना गया है कि उन्हे बहुत ही तग हद म रखना चाहिए जिससे अवज्ञा न उत्पन्न हो। सवसाधारण की जानकारी की उगली के सामन करामात की लजवन्ती मुँह छिपा लिया करती है। चाहे जो हो, यह विषय खोजन और विचारने योग्य अवश्य है।

[प्रथम प्रकाशन इन्दु जनवरी, १९१३ ई०]

संस्कृत की 'टिपरारी'

[१]

योरोप के वर्तमान युद्ध में टिपरारी ने खूब नाम पाया। आयरलैंड के एक कोने में टिपरारी नामक एक न-जाना सुना गाँव है। किसी दिलचले कवि ने उसे एक गीत में अमर कर दिया है। गीत में टिपरारी निवासी किसी कल्पित ग्रामीण का भोलापन और देश-प्रेम दिखाया गया है। परन्तु जैसे तुलसीदासजी ने सावर-मन्त्रों के लिए कहा है कि 'अनमिल आखर अर्थ न जापू। प्रकट प्रभाव महेस प्रतापू' वैसे ही अँगरेज सिपाही लाम में इस व्यग्यमय गीत को गाकर बहुत आश्वासन पाते है। जहाँ थकावट और घबराहट के बादल उनके प्रसन्न मुखों पर छाये कि टिपरारी की धुन ने उन्हें चौगुना चमका दिया। इस युद्ध में टिपरारी पर और भी शान चढ़ी,—फ्रेंच मे, जर्मन मे, हिन्दी मे, उर्दू में उसके अनुवाद हुए। हमारे जवान भी 'वद्दू मजेदार' और 'बलूची जालमा' की जगह उसे अलापने लगे। अँगरेज सिपाही किस प्रकार हँसता-खेलता मृत्यु के मुख में घँस जाता है, किस प्रकार कमर-कमर भर कीच मे वह ठट्ठा करता रहता है, इसका मानो टिपरारी विज्ञापन हो गया, मन्त्र हो गया। टिपरारी के शब्द और अर्थ का विचार करके आज यह दिखाना है कि इससे मिलता हुआ भावमय काव्य हमारे यहाँ भी है।

टिपरारी का गीत यह है—

१ Up to mighty London came
    An Irishman one day,
As the streets were paved with gold
    Sure everyone was gay
Singing songs of Piccadilly
    Strand and Leister—square

Till Paddy got excited
Then he shouted to them there
It's a long way to Tipperary
It's a long way to go
(टेक) It's a long way to Tipperary
To the sweetest girl I know
Goodbye Piccadilly
Farewell, Leister—square
It's a long long way to Tipperary
But my heart's right there
२ Paddy wrote a letter to
his Irish Molly o
Saying should you not receive it
Write and let me know
If I make mistakes in spelling
Molly dear, said he
Remember it's the pen that's bad
Don't lay the blame on me
(टेक) It's a long way etc
३ Molly wrote a neat reply
To Irish Paddy o
Saying Mawklin wants
to marry me and so
Leave the Strand and Piccadilly
Or you will be to blame
For love has fairly drove me silly
Hoping you are the same
(टेक) It's a long way

जरा इसके भाव को देखिए। जैसे हमारे यहाँ शिकारपुर के या भौगाँव के या बदायूँ के भोंदू सरदार प्रसिद्ध हैं, वैसे अँगरेज़ी साहित्य में आयरलैंड के निवासी 'पैडी' के उपनाम से बनाये जाते हैं। एक दिन पैडी लन्दन-महानगर मे आया। कलकत्ते मे एकदम पहुँचनेवाले भोजपुरिये और बम्बई मे अचानक आ धमकनेवाले मारवाडी की तरह वह भौचक रह गया। वहाँ की सड़कें मानो सोने

से मढी हुई थी, सब लोग प्रसन्न थे और पिकाडिली में जौहरी बाजार, स्ट्रैंड के मोती-कटरे और लीस्टर-स्क्वायर के मानिक चौक में सब गीत गा रहे थे। पैडी साहब को भी जोश आ गया और आप चिल्ला उठे—"मेरी टिपरारी बहुत-बहुत दूर है, बहुत ही दूर है। मेरी प्रियतमा के पास टिपरारी जाना यहाँ से बहुत ही दूर पडता है। पिकाडिली, सलाम और लीस्टर स्क्वायर, नमस्कार। टिपरारी बहुत ही दूर है पर मेरा हृदय वही है।"

चमत्कार यह है कि लन्दन के ऐश्वर्य के आगे भी वह अपने छोटे-से गाँव और वहाँ पर अपनी परिचिता सुन्दरी की धुन में रमा हुआ कहता है कि मेरा हृदय वही है।

दूसरी कडी का विरोधात्मक हास्य देखिए। पैडी ने अपनी आयरलैंड-निवासिनी प्रेयसी मौली को पत्र लिखा कि यदि तुम्हें यह पत्र न मिले तो लिख कर मुझे सूचना देना। यदि मेरे लेख मे कोई अशुद्धि हो तो याद रखना कि कलम खराब है, (आँगन टेढा है) मुझे दोष न देना !!

तीसरी कडी मे मौली का उत्तर बडी सफाई से दिया गया है। वह कहती है कि तुम्हारे यहाँ से चले जाने पर दूसरो की बन आई है। माकलिन मुझसे विवाह करना चाहता है। इसलिए स्ट्रैंड और पिकाडली को छोड कर चल आओ, नही तो सब दोष तुम्हारे सिर रहेगा, क्योकि प्रेम ने मुझे पागल कर रक्खा है और (जैसे चिट्ठियो म कुशल-समाचार लिखते है) आशा है कि तुम भी वैसे ही होगे !!!

इसके पीछे क्या हुआ, यह गीत मे नही। मौली और टिपरारी का दोहरा आकर्षण पैडी को लन्दन की सुवर्ण-वीथिका (सोनागाछी नही) से खीच ले गया होगा और हिन्दी के एक पुराने भावमय गीत के अनुसार—

कब ऊगेगो सुक्र ? चले चालो।
गोरी ने डोला कसवायो रसिया ने सिकल क्यों भालो॥

[२]

महाभारत का युद्ध हो रहा है। भीष्म और द्रोण मर चुके हैं। कर्ण बड अभिमान के साथ सेनापति बन कर अर्जुन से लडने चले है। मद्रराज शल्य इस शर्त पर उनका सारथि बना है कि मै जो चाहूँ सो कर्ण को सुना दूँ। कर्ण न युद्ध-क्षेत्र म आते ही डीग मारना आरम्भ किया। कहता है कि अब अर्जुन और कृष्ण मरे। मुझे कोई अर्जुन को दिखा तो दे। मैं दिखानेवाले को छै हथिनियोवाला सोन का रथ दूँ, गले मे सोना पहने हुए दासियाँ दूँ, चौदह वैश्यग्राम—मारवाडी सेठों के गाँव (इसका स्वारस्य शेखावाटी के ठाकुरो से पूछना चाहिए)—दे दूँ। यो ही वह शेखी बघारता गया। शल्य ने उसे झिडकना शुरू किया। शल्य

कहता है कि जो तेरे पास इतना रुपया है तो यज्ञ क्यो नही करता ? क्या तुझे इस तरह मृत्युमुख मे जाने से रोकनेवाले मित्र नही ? माता की गोद मे पडा-पडा तू चन्दखिलौना मांगता है ! क्या कभी गीदड ने शेर को मारा है ? हंस की चाल चलनेवाले कौवे की तरह ही तेरी दुर्गति होगी !

कर्ण को क्रोध आ गया। एक तो ऐसी झिडक, दूसरे शाप की झिडक सुनते ही तू निस्तेज हो जाएगा। शल्य पहले यह प्रतीक्षा करा कर सारथि बना था कि जो चाहूँ सो कह लूँ। अब कर्ण ने जले दिल से शल्य को बुरा भला कहना आरम्भ किया। शल्य मद्रदेश का राजा था। मद्र पश्चिमी पजाब है, जहाँ उस समय वाहीक नामक अनार्य जाति आ बसी थी। पाणिनि के समय मे भी व्यास-नदी के उत्तर तट पर वाहीको के ग्राम और कूप बन गए थे। वाहीकों के रीति-रिवाज से कुरुक्षेत्र और आर्य्यावर्त के निवासी बहुत घिनाते थे। मद्र और वाहीक की उस समय वही प्रसिद्धि थी जो तुलसीदास और कबीर के समय मगह (मगध) की थी। कर्ण ने कई अध्यायो म वाहीकों की बुराई की है, उनका खाना, पहनावा, स्त्रियो का व्यभिचार, अधर्म सब कुछ बखान कर शल्य को गालियाँ दी हैं कि ऐसे पापियो का तू षष्ठाशभोगी राजा है ! शल्य मे चिढ कर उसके देश-वासियो को गाली देना कोई तर्क तो नही, पर क्रोधी कही तर्क की परवा करता है ? शल्य चुपचाप इन कुवाच्यो को पीता गया। उसने कर्ण के देश के लिए कुछ भी न कहा। पर कर्ण की वीरता पर वह गीला कम्बल डालता गया और उसे बकने दिया। उसका उद्देश सिद्ध हो रहा था। भर्त्सना से कर्ण की वीरता पानी-पानी हो रही थी और शाप का प्रभाव चढ रहा था। केवल अन्त मे शल्य ने कहा—"कर्ण, तुम्हारे अङ्गदेश मे भी आतुरो को मरने के लिए छोड देते हैं और स्त्रियो तथा पुत्रो को बेच दिया करते है, प्रत्येक देश मे सदाचार और दुराचार होते हैं। इससे क्या ?"

जो हो, अपनी जलन मे कर्ण ने जो वाहीकों के आचरण का चित्र खीचा है वह बडा ही ओजस्वी है और ऐतिहासिक मूल्य रखता है। समाज-वर्णन के ये तीन चार अध्याय महाभारत के समुद्र मे भी अनूठे रत्न हैं। जगह-जगह पर कर्ण ने कुरुराज धृतराष्ट्र के दरबार मे आये हुए प्रवासी ब्राह्मणो और वाहीको की गाथायें उद्धृत की हैं। ये गाथायें समाजचित्रण की दृष्टि से बडे महत्त्व की हैं। कुछ तो उनम इस ढँग की है जैसे—"रॉड सॉड सीढी सन्यासी। इनसे बचे तो सेवै कासी", "जाय कलकत्ते + + खाय अलबत्ते", "जाओ कुल्लू, हो जाओ उल्लू', "गये चम्बा, बडा अचम्भा"—इत्यादि। इन सक्षिप्त लोकोक्तियो मे जन समाज के मत का जो चित्रण है वह कितने स्वारस्य से भरा हुआ है। कर्ण की गाथाओ मे से कुछ गाथायें ये हैं—

१ मद्रदेश की स्त्री से यदि कांजी मांगो तो वह जाघें समेट कर कहती है कि मैं अपने बेटे को दे दूं, पति को दे दूं, पर कांजी न दूं।

२ युगन्धर (देश) मे जल पीकर, अच्युत स्थल मे रहकर और भूतलय मे नहाकर भला कही स्वर्ग को जा सकता है ?

३ गोवर्धन नामक बड और सुभाण्ड नामक शहर ये दोनो कलि के द्वार हैं, यह मैं लडकपन से सुनता आया हूं।

४ वाल्हीक पृथ्वी के मल हैं।

५ वाल्हीका और हीक विपाशा मे दो पिशाच थे। वाहीक उनके पुत्र हैं, प्रजापति की सृष्टि ही नही !

६ यहां ब्राह्मण क्षत्रिय हो जाता है, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र होकर नाई हो जाता है, नाई फिर ब्राह्मण हो जाता है !

७ बिच्छू का विष उतारने के लिए और राक्षस का आवेश मिटाने के लिए वाल्हीकों के पाप की दुहाई दी जाती है।

जिन गाथाओ मे वाल्हीक स्त्रियो के दुराचार का वर्णन है उनका अनुवाद करना उचित नही।

[३]

खैर, उन गाथाओ मे एक गाथा है—

[तासां किलावलिप्ताना निवसन् कुरुजाङ्गले।
कश्चिद् वाल्हीकदुष्टाना नातिहृष्टमना जगौ]
स नून बृहती गौरी सूक्ष्मकम्बलवासिनी
मामनुस्मरती शेते वाल्हीक कुरुवासिनम्।
शतद्रु नु कदा तीर्त्वा ता च रम्यामिरावतीम्
गत्वा स्वदेश द्रक्ष्यामि स्थूलजङ्घा शुभा स्त्रिय ?
मन शिलोज्ज्वलापाङ्ग्यो गौर्यस्ता काकुकूजिता
कम्बलाजिनसवीता रुदत्यः प्रियदर्शना ।
मृदङ्गानकशङ्खाना मर्दलानाञ्चनि स्वनै
खरोष्ट्राश्वतरैश्चैव मत्ता यास्यामहे सुखम्।
शमीपीलुकरीराणा वनेषु सुखवर्त्मसु
अपूपान् सक्तुपिण्डाश्च प्राश्नन्तो मथितान्वितान्।
पथिषु प्रबलो भूत्वा तथा सम्पततोऽध्वगान्
चेलापहार कुर्वाणास्ताडयिष्याम भूयस ।

कोई प्रवासी वाल्हीक कुरुक्षेत्र मे आया हुआ है। प्रवासी को आर्यभूमि का

चमत्कार लुभा नही सका। वह अपने देश की स्त्रियो की याद करके गा रहा है—हाय, अवश्य वह वृहदाकार और गौर शरीर वाली स्त्री, बारीक पश्मीना पहने हुए, मुझ कुरुदेश-प्रवासी वाल्हीक की याद करती हुई सो रही होगी (इधर की स्त्रियाँ ठिगनी और सांवली और सूती कपडे पहनने वाली, पेशावर की तरफ की स्त्रियां अब भी बृहती, गोरी और सूक्ष्म कम्बलवासिनी !) कब मैं सतलज को पार करके, और सुन्दर रावी को लांघकर स्वदेश पहुँचूँगा और कब सुन्दर, मोटी जांघोवाली, मन शिला की सी उज्ज्वल कनखियोवाली, गोरी सदा मोड के लटके से बोलनेवाली, कम्बल और मृगचर्म पहने हुए, मेरे वियोग मे रोती और प्रियदर्शन स्त्रियो को देखूंगा ? (इतने मे उसको अपनी प्यारी जन्मभूमि का स्मरण आ गया) ढोल, नगारे, शख और मर्दल बजते जायेंगे, और मतवाले होकर हम गधो, ऊँटो और खच्चरो पर चढे-चढे चले जायेंगे ! वहां शमी, पीलु और करीर के जगल हैं। हमारे लिए मार्ग बडा सुखदायक है ! वहां हम मट्ठे के साथ पूए और सत्तू के लड्डू खाते जायेंगे और राह चलते हुए मुसाफिरो के कपडे तक उतारकर उन्हे खूब लूटेंगे, मारेंगे !

कितना भावमय वर्णन है। अर्धसभ्य जाति के देश-प्रेम, भोजन, विहार और व्यवसाय का कितना अच्छा चित्र है ! इस गीत की अन्तिम दो कडियो को गाते समय प्रवासी वाहीक की आंखो मे वही ज्योति आ जाती होगी जो डूगजी जवाहरजी की धमाल सुनकर शेखावटी के सफेद दाढीवाले ठाकुरो की आंखो मे अब भी आ जाती है। चाहे उसकी पथरकला-बन्दूक की नाली मे अब मकडी के जाले लग गये हो और उसकी जगलगी तलवार नन्हे बच्चों के सिरहाने रहकर भूत-प्रेतो को टालने ही के काम की रह गई हो, पर उस समय के रायबहादुर सेठ करोडीमल, आनरेरी मजिस्ट्रेट की खैर न उस ऊँट चढे राजपूत से मिलने पर थी और न खच्चरो पर चलने वाले सत्तू खानेवाले इस वाहीक से !

इस गीत की समता का 'टिपरारी' से विचार पाठक ही करें।

[प्रथम प्रकाशन सरस्वती नवम्बर, सन् १६१८ ई०]

एक हस्ताक्षरित मौलाराम*

अनुवादक डा० मस्तराम कपूर

अज्ञातनामत्व भारतीय कला की एक अद्वितीय विशेषता है। कुछ अपवादों के साथ भारतीय चित्रकला और मूर्तिकला की कृतियों को नाम से नहीं पहचाना जा सकता। उनकी विशिष्टता इस बात में है कि वे वैयक्तिक कृतियां न होकर जातीय कृतियां हैं। यह कथन जितना कला के क्षेत्र में सही है उतना ही साहित्य के क्षेत्र में भी सार्थक है। शुरू शुरू के समस्त संस्कृत साहित्य में लेखक के आत्मपरिचय के रूप में कुछ विशेष नहीं मिलता और इतिहास भी बहुत कम नाममात्र को मिलता है। हालांकि बाद के लेखकों तथा टीकाकारों ने कभी कभी अपने तथा अपने आश्रयदाताओं के विषय में विस्तृत जानकारी दी है। महाकाव्यों तथा पुराणों के लेखकों के नामों पर रहस्य का पर्दा पड़ा हुआ है और अधिकतर इनके साथ छद्मनाम जुड़े हुए हैं।

बाद के लेखकों में अक्सर अपने नाम को छिपाने और अपनी रचनाओं को किसी पौराणिक लेखक या प्रसिद्ध कवि के नाम से प्रचारित करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। ऋग्वेद के कुछ मंत्रों के अंतिम छंद में लेखक का नाम दिया जाता था जो अधिकतर द्व्यर्थक होता है। यह प्रथा मध्ययुग के साहित्य में अचानक फिर प्रकट हुई जब लेखक का नाम छंद, गीत या मंत्र के अंत में दिया जाने लगा। जैसे— कहे कबीर या भूषण भनत। सूरदास, तुलसीदास या अन्य कवि अपना पूरा या आधा नाम छंद की अंतिम पंक्ति में देते थे।

सामाजिक अनुशासन के पुराने नियमों के अनुसार न देने का प्रयोजन होता था— व्यापक जातीय चेतना में अपने व्यक्तित्व को डुबो देना। इस प्रकार कला और साहित्य में अभिव्यक्ति वैयक्तिक न होकर मुख्यतया जातीय हुई। व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति को आध्यात्मिक जीवन की समरसता के लिए (जिसे

*रूपम अप्रैल १९२० ई० में छपे अंगरेजी लेख का हिंदी रूपांतर।

लेखक जातीय छाप के रूप मे प्राप्त करना चाहता था) हानिकारक माना जाता था। कलाकार संस्कृति के एक ऐसे रूप को जन्म देता था जिसमें व्यापक और सर्वमान्य गुण होते थे जिन्हें सभी अपना सकें और जो किसी के लिए अजनबी न हों। इस प्रकार भारतीय कला म कलाकार का व्यक्तित्व एक रहस्य बन जाता है और उसके मन को जानने तथा उसके व्यक्तित्व की झलक प्राप्त करने का एकमात्र साधन हमारे पास उसकी कृतिया रह जाती हैं। यूरोप म कलाकर की कृतियो की समीक्षा और अध्ययन मे उसके जीवन-सबधी विवरण और किस्से तथा अन्य बाह्य सामग्री बाधक होती है क्योंकि कलाकृति को समझने मे उनका निकट सबध नहीं होता। किंतु कलाकार के जीवन के इन बाह्य विवरणो से हम उस वातावरण को जान सकते हैं जिसमें कलाकार जीता और काम करता था। इन विवरणो से हमारा ध्यान उसकी कलाकृतियों से, उसके मन की निर्मितियों से हटकर उसके व्यक्तित्व पर चला जाता था।

वस्तुत कलाकार के मन और कलाकार में जो कुछ जानने योग्य होता है उसको सबसे अच्छे ढग से उसकी कृतियो से ही जाना जा सकता है। यह एक लोकप्रिय और कुछ हद तक क्षम्य कमजोरी है कि कलाकार के बारे म जितना उसकी कृतिया बताती हैं, हम उससे अधिक जानना चाहते हैं और इस लोकप्रिय जिज्ञासा के फलस्वरूप यूरोपीय देशो मे प्रसिद्ध चित्रकारो और मूर्तिकारो के जीवन और कृतियों के बारे में विशाल साहित्य की रचना हुई। सौभाग्य से, उन देशों म सामग्री इतनी उपलब्ध होती थी कि उसके आधार पर कलाकारो की कृतियो की सूची पर प्रकाश डालना तथा उनके आधार पर कलाकारों की शैली के विकास या मूल्याकन करना आसान होता था। भारत में और सामान्यतया एशियाई देशो मे इस प्रकार विवरण प्राप्त करना असभव होता था। और भारत मे तो मुग़लकाल तक हस्ताक्षरित कलाकृति अज्ञात घटना मानी जाती थी। मुगलकालीन और उत्तर मुगलकालीन चित्रो मे, तथा बाद के कागडा-शैली के चित्रो मे भी हस्ताक्षरित कलाकृति एक विरल वस्तु है। अत मौलाराम के जलरग-चित्र म जिसे सम्पादक के मूल सग्रह से उद्धृत किया गया है, कुछ असाधारण रुचि जगती है।

सन् १७६० ई० मे जब मुगल-इतिहास के महान् नाटक के पाँचवें अक का त्रासद अत हो रहा था, गढवाल जिले में भारत के प्राचीन दरबारी चित्रकारो के अतिम प्रतिनिधि का जन्म हुआ जिसके कधो पर भारत की प्राचीन चित्रकारी की परपरा की महान् ज्योति को कुछ वर्षों के लिए ज्योतित रखने का दायित्व आया क्योंकि कुछ वर्षों के बाद यह ज्योति उस राजनैतिक शक्ति के पतन के पश्चात्, जिसकी छत्रछाया म भारत की अनेक सास्कृतिक गतिविधिया पल्लवित पुष्पित हुईं, अतिम रूप से बुझ गई। मुग़ल साम्राज्य के विघटन से पूर्व भी

अराजकता मे पुरानी चित्रशैली के बहुत से जीवित कलाकारो ने हिमालय की कदराओ मे छोटे हिन्दू-राजाओ के सरक्षण मे शरण ली। जिस प्रकार बगाल मे मुसलमानो के प्रवेश के बाद मगध और गौड की पुरानी कला ने नेपाल की घाटी मे शरण खोजी, मुगल-दरबार के कलाकारो ने लगभग वैसी ही परिस्थियो मे पजाब के हिमालय क्षेत्र मे हिन्दू राजाओ की शरण ली, कलाकारो के *बहुत से परिवार धीरे-धीरे दिल्ली के दरबार से हटते गए।* इनमे *मौलाराम के* पूर्वजो का उदाहरण विशेष तौर पर उल्लेखनीय है।[1] जब औरगजेब के षड्यत्रो के कारण उनका भतीजा सलीम अपनी जान की रक्षा के लिए दिल्ली से भागा तो उसने गढवाल के राजा फतहसिह के यहा अस्थायी शरण ली। भगोडे राजकुमार के साथ श्रीनगर (गढवाल) मे दो कलाकार भी आए जिनके नाम शामदास और केहरदास थे। वे गढवाल के राजा के पास ही रहे जिसने कुछ समय बाद राजकुमार को धोखा देकर औरगजेब को सौप दिया। राजा ने उन दो कलाकारो मे बडी रुचि दिखाई। उन्हे दीवान बना दिया गया, साथ ही पचास गाव की जागीर और पाँच रुपये रोज का भत्ता भी दिया गया। उन्हें अपने नये आश्रयदाता के अधीन विकास का अच्छा अवसर मिला होगा। उन्होने अपनी पारिवारिक परम्परा का शिल्प और शैली मौलाराम को सौंपी, जो उस परिवार मे चौथी पीढी के तथा एक व्यापक सस्कृति के कलाकार थे। उनकी अनेक कलाकृतियो से पता चलता है कि वह एक प्रतिभाशाली कलाकार थे। लगता है वह हिंदी तथा फारसी मे कविता भी लिखते थे।

वह औरगजेबकालीन ऐतिहासिक घटनाओ पर कुछ पाडुलिपिया भी छोड गए हैं। सभवत उस काल की स्मृतिया उस परिवार मे सुरक्षित रही होगी क्योकि उनके पूर्वजो ने उन घटनाओ मे हिस्सा लिया था। इतिहासकार के रूप मे कलाकार मौलाराम की उपलब्धियो की छानबीन तो अभी नही हुई है किन्तु उनके द्वारा काव्य-रचना के प्रमाण मिलते हैं। डॉ॰ कुमार स्वामी ने अपने ग्रथ 'राजपूत पेंटिंग' (ऑक्सफोर्ड प्रेस, खण्ड-१ पृ० २३) पर एक दोहा या छद उद्धृत किया है जिसे मौलाराम ने अपने एक चित्र मे दिया है। इसका अभिप्राय है—**हजारों लाखों गांव और सोना क्या चीज है। मौलाराम का पुरस्कार तो सद्भाव और सुखी जीवन है। संवत् १८३२ वि० (सन् १७७५ ई०) फाल्गुन**

१. राजनैतिक इतिहास म अज्ञात अनक जागीरदारो और राजाओ को उनके दरबारी कलाकारो ने अमर बना दिया है। इसका प्रमाण हैं अठारहवीं तथा उन्नीसवी शताब्दी के अनेक पोर्टेट। उदाहरणार्थ नूरपुर (कागडा) के राजा वीरसिह और अनेक सिख राजाओ के पोर्टेट।

शुक्ल पंचमी तथास्तु।[1] यह बात उनके एक और चित्र से भी प्रकट होती है कि मौलाराम अपने चित्रो पर अपनी कविताए लिखा करते थे। चित्रो पर विवरणात्मक टिप्पणिया या कविताए उकेरने की प्रथा प्राचीन चीनी चित्रो मे आम बात थी और प्राचीन कलाकारो मे भी इसका काफी प्रचलन हो गया था। महाकाव्यो और पुराणो की घटनाओ से सबधित चित्रो तथा राग-रागनियो के चित्रो पर हमेशा कलाकार की हस्तलिपि मे कविताओ के उद्धरण, विषय पर प्रकाश डालने के लिए सामान्यतया चित्रो के ऊपर दिए जाते थे। ये उद्धरण अक्सर हिंदी या सस्कृत मे प्रचलित लोकप्रिय पाठो से लिए जाते थे। मौलाराम के कई चित्रो मे दिए गए दोहे, छद कलाकार की अपनी रचना होते थे क्योकि अतिम पक्ति मे हिंदी कविता की पुरानी परम्परा के अनुसार कवि का नाम दिया गया है।

दोनो छदो मे तिथि भी दी गई है जो कलाकार के समय को जानने के लिए स्वय कलाकार की हस्तलिपि मे लिखित महत्त्वपूर्ण साक्ष्य है। नि सदेह कम-से-कम इस (चर्चाधीन) चित्र मे उद्धृत कविता स्वय लेखक ने लिखी है। कविता बडी सावधानी के साथ मोटे अक्षरो मे लिखी गई है। चार पदो को लाल रेखाओ से अलग किया गया है। दुर्भाग्य से लिपि के कुछ अश खण्डित हो गए हैं किन्तु उनका भावार्थ लगाना कठिन नहीं है। लाल अक्षरो मे प्रथम शब्द सभवत 'शुभमस्तु' है। कविता की भाषा हिंदी है (व्रजभाषा—व्रज और मथुरा जिले की बोली) और कविता सुप्रसिद्ध 'सवैया' छद मे है। बीच के दो खण्डित शब्दो को छोड देन के बाद कविता इस प्रकार है—

बाग विलोकन कू नवला निकसी मुखचद्र दिखावत ही।
लखि सग च (कोरा)···सब्द कठोर सुनावत ही॥
उझकि-उझकि फिरकि सी फिरि चहु आशहि··
क (?) वि 'मौलाराम' चलो हटी के दुपटा पट वोट बचावत ही॥
—सवत् १८५२ (सन् १७६५ ई०)

मूल कविता के मधुर शब्दो के भावो को पकड पाना निश्चय ही कठिन होगा किंतु कवि के भाव को निम्नलिखित स्थूल अनुवाद मे रखा जा सकता है। "नव बाला बाग मे निकली। ज्योही उसने अपना मुखचद्र दिखाया, हठी चकोर उसके आसपास मडराने लगा जो कठोर शब्दों मे उसकी प्रताडना करना चाहता

१ "कहा हजार कहा लक्ष हैं, खरब खरब घन ग्राम।
समक्षे 'मौलाराम तो सरब सुदेह इनाम॥—स० १८३२ फागुन। सुदी
—गढ़वाल की दिवगत विभूतियां भक्त दर्शन पृ० ७४, द्वि० स० से उद्धृत।—सम्पा०

था। वह उचक-उचककर, फिरकी की तरह घूमकर हठी चकोर की नजरों से बचने का प्रयास करने लगी। मौलाराम कवि कहते हैं कि ठीक समय पर वह पीछे हटी और अपने आचल से चकोर पर प्रहार करने लगी।

नववाला के वस्त्र तथा आभूषण वही है जो आमतौर पर गढवाल और कागडा जिले के निचले इलाको म पाए जाते थे। चित्र और कविता दोनो ही सभवत कलाकार द्वारा अपनी प्रियतमा की प्रशस्ति हैं और सम्भवत वास्तविक घटना पर आधारित हैं। यद्यपि प्यासे चकोर का सुदरी के मुखचद्र पर झपटना एक सुपरिचित काव्य प्रौढोक्ति है जिसका लगभग सभी सस्कृत-कवियो ने बार बार प्रयोग किया है। भारतीय काव्य-परम्परा म चकोर चन्द्रमा को बहुत चाहता है। कहा जाता है कि यह चद्रकिरणो का पान करन या जलते कोयले को निगलने मे तुनुकमिजाज और अधीर होता है।[1]

छद की भाषा मे कवि मौलाराम मुखचद्र के प्यासे चकोर के रूप मे प्रस्तुत करता है, चूकि चित्र मे चकोर सुदरी के पीत अचल के प्रहार से बाल बाल बचता दिखाया गया है और छद की अन्तिम पक्ति मे भी इसका सकेत दिया गया है। यद्यपि कलाकार न अपनी प्रियतमा को बहुत सुदर मुद्रा मे चित्रित किया है तथापि यह चित्र उनकी सर्वोत्तम कला का नमूना नही कहा जा सकता। चित्र मे निर्णायकता और दृढता है जिससे उनकी शैली के उत्तर विकास का आभास मिलता है किंतु कई बातो मे चित्र कुछ अपरिष्कृत है, विशेषकर पडो के चित्रण

१ चद्रकिरणो के प्रति चकोर के मोह को दर्शाने वाले अनक उद्धरण सस्कृत-कवियो के दिए जा सकते हैं। चूकि प्रियतमा के मुख की उपमा चद्रमा से दी जाती है, कवि चकोर की निष्ठा को मुख पर स्थानातरित कर देता है। राजशेखर कृत विद्धशाल भजिका १ ३१ के निम्नलिखित छद म यह चित्र देखा जा सकता है—

उपप्राकाराग्र प्रहिणु नयने तकय मना-
गनाकाश कोऽय गलितहरिण शीतकिरण।
सुधाबद्धग्रासैरुपवनचकोरैरनुसृत
किरञ्ज्योत्स्नामच्छा नवलवलिपाकप्रणयिनीम ।१।३१।।

अर्थ (राजा ऊपर देखकर विदूषक स)—अरे! जरा उस चहारदीवारी पर अपनी दृष्टि फेंको और विचार करो कि जिसकी स्थिति आकाश मे नही है और न ही जिसके अक मे हरिण है, एसा यह अपूव चन्द्र कौनसा है। उपवन के चकोरगण अपने ग्रास को रोककर जिसकी चद्रिका का पान करने के लिए आकृष्ट हो रहे हैं और जो अपनी स्वच्छ एव निमल एसी ज्योत्स्ना छिटका रहा है जो नवीनवली के समान है।

—विद्धशालभञ्जिका-नाटिका सपा० श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री पृ० २९ से उद्धृत। प्र० चौखम्भा ओरियटालिया, वाराणसी, स० १९७६ ई० —सम्पादक

म। और सभवत यह कलाकार के जीवन की मध्यावधि की कृति है, जब उनकी शैली उतनी परिपक्व नही हुई थी। यह बात चित्र पर दी गई तिथि से भी स्पष्ट होती है अर्थात् सवत् १८७२ (सन् १७६५ ई०)। मौलाराम का जन्म सन् १७६० ई० म और निधन सन् १८३३ ई० मे हुआ था, साथ ही इस चित्र के बनाने के समय उनकी अवस्था ३५ वर्ष की रही होगी।

[प्रथम प्रकाशन रूपम अप्रेल, सन् १६२० ई०]

काव्य

एशिया की विजयादशमी

प्राचीन लोग, विजया दिन मे बतावें,
सीमा उलांघ अपनी रिपुधाम जावें।
जो शत्रु पास नहि हो, रिपु चित्र ही को
सग्राम मे हत करे, बल वृद्धि जो हो ॥ १ ॥

लकेश आज रघुनायक ने हराया,
अन्याय का परम नाशन यो सिखाया।
होती कही पर कही पर रामलीला
है पेट मे पर नही अब हा! वसीला ॥ २ ॥

दुर्भिक्ष वर्ष *प्रतिवर्ष यहा* पधारे,
न प्लेग भी अब कही भ्रम से सिधारे।
स्वाधीनता जब गई नव धर्म छाए,
प्राचीन धर्म कुल गौरव भी नसाए ॥ ३ ॥

त्योहार तो वह करे जिसके कुशूल[1],
हो अन्नपूर्ण बनते रिपु ले त्रिशूल।
हो पेट पूरित जभी, तब खेल सूझे,
रोगी, ऋणी विजित, क्यों कर मोद बूझे? ॥ ४ ॥

"मेरी विभूति नर मे नरनाथ ही है"
कृष्णोक्ति से हम सदा प्रभुभक्त ही है।
अग्रेज राज बल की जय हैं मनाते
यों ही रहें युग-युगान्तर लाभ पाते ॥ ५ ॥

१ कोठी, अन्न का भण्डार।

जापान ने शुभमयी विजया मनाई,
श्वेताग हार उसने अबके दिखाई।
पीताग के विजय की तुरही बजाई,
पौरस्स[1] कायर कलक कथा मिटाई॥ ६ ॥

है रूस दुष्ट अति ही उस के चरित्र,
अन्याय पूर्ण सुन के डरते विचित्र।
सेनाधिनाथ[2] उसका जब गप्प मारे,
लूं हिन् किचनर तभी डरते बिचारे॥ ७ ॥

जापान धन्य ! तुमने उसको पछाडा,
अत्युग्र शल्य अपने मन से निकाला।
जो एशिया विजित, भदय, बना हुआ था,
जेता बना, न पहिले वह सो रहा था॥ ८ ॥

बाल्टीक पोतचय एक नवीन आता,
हे टार्पिडो ! सब कही उसको दिखाता।
श्री कृष्ण चिन्तन किए पर कस जैसे,
निस्सार जय्य[3] ? उसको अब मान वैसे॥ ९ ॥

हैं हारते हम न चार शताब्दियों से ?
लोगे न वीर ! बदला तुम रूस ही से।
खाडा परवाल[4] ? अब बाल्टिक पोत मे तू,
पूर्वाधिकार रवि आज नया उगा तू॥१०॥

प्राची त्वदीय मुख देख खुशी मनाती,
आशीस आज तुमको अपनी सुनाती।
लाखों कुपुत्र उसके जब भार भूत,
हे वशरत्न ! जगमण्डन तू सपूत॥११॥

विद्या जरा प्रिय, हमे सिखाना,
धर्मादि देश निज भारत भूलना ना।
जीओ सदा युग-युगान्तर, बुद्ध जो थे,
भूमिष्ठ होकर यही कुछ सीखते थे॥१२॥

[प्रथम प्रकाशन समालोचक सन् १९०४ ई०]

१ पूर्वदेश वासी।
२ कुरुपेटीकन
३ जीतने लायक
४. शस्त्र को धो (युद्ध समाप्त होने पर)

(६)

"माता ! न रोको निज पुत्र आज,
संग्राम का स्वाद (मोद), उसे चखाओ,
तलवार-भाले भगिनि ! उठा ला,
उत्साह भाई निज को दिलाओ
तू सुंदरी ! ले प्रिय से बिदाई
स्वदेश मांगे उनकी सहाई।"
आगे गई धनुष के सँग व्योमवाणी,
है सत्य ही विजय, निश्चय बात जानो

"है जन्मभूमि जिनकी जननी समान,
स्वातंत्र्य है प्रिय जिन्हें शुभ स्वर्ग से भी।
अन्याय की जकड़ती कटु बेड़ियों को,
विद्वान वे कब समीप निवास देंगे?"

[प्रथम प्रकाशन समालोचक सन् १६०५ ई०]

विविध

उलूलु-ध्वनि=हुर्र

बङ्गाली समाचारपत्रों में प्राय पढते हैं कि अमुक नेता या अमुक महापुरुष का स्वागत स्त्रियों ने शङ्ख बजाकर, खीलें बरसाकर, फूल बरसाकर, और 'उलु'-ध्वनि से किया। यह उलु-उलु अथवा उलूलु-ध्वनि उस देश में स्त्रियों का हर्ष प्रकट करने के लिए प्रचलित है। इस अव्यक्त ध्वनि का उल्लेख श्रीहर्ष ने अपने 'नैषधचरित' में किया है—

> कापि प्रमोदास्फुटनिर्जिहान-
> वर्णेव या मङ्गलगीतिरासाम्।
> सैवाननेभ्य पुरसुन्दरीणा-
> मुच्चैरुलूलुध्वनिरुच्चचार ॥ सर्ग १४, श्लोक ५१

जब वैदर्भी ने नल को वरमाला पहना दी तब आनन्द से गद्गदकण्ठ स्त्रियाँ मङ्गलगीत गाने लगीं। वही मानो उलूलु-ध्वनि हुई। इस पर प्रकाश नामक टीका का कर्ता नारायण (दाक्षिणात्य) लिखता है—

विवाहाद्युत्सवे स्त्रीणा धवलादिमङ्गलगीतिविशेषा: गौडदेशे उलूलु इत्युच्यते (?)। सोप्यव्यक्तवर्णं उच्चार्यते। स्वदेशरीति. कविनोक्ता।

अर्थात्—विवाह आदि उत्सवों पर स्त्रियों के मङ्गलगीत गौड (बङ्गाल) देश में उलूलु कहलाते हैं और वे स्पष्टवर्ण (अनर्थक ध्वनिमात्र) होते हैं। कवि ने यह अपने देश की रीति कही है।

नारायण इस रीति को केवल बङ्गदेश की रीति समझता था, और आज-कल भी यह रीति केवल बङ्गाल में ही है। परन्तु अनुमान होता है कि स्त्रियों का मङ्गलशब्द और जगह भी उलूलु ही था और प्राचीन समय में बड़े कोलाहल—बड़े हल्ले-गुल्ले—के अर्थ में यह शब्द आता था।

गुजरात में जगड़शाह नामक एक प्रसिद्ध धनी हो गया है। वह अणहिल-

पट्टन के सोलङ्की राजा लवणप्रसाद (१२५६—१२८६ ईसवी) का समसामयिक था। धनप्रभसूरि के शिष्य सर्वानन्दसूरि नामक एक जैन कवि ने उसकी प्रशसा मे 'जगडू-चरित' नामक काव्य बनाया है। उसमे जगडू की तीर्थयात्रा का वर्णन इस प्रकार है—

हेषाभिस्तु तुरङ्गाणा वारणाना क्लिारवै ।
रथानामपि चीत्कारैर्भुजास्फोटैर्भुजाभृताम् ॥
नग्नाना षट्पदध्वानैरलूलैर्वामचक्षुषाम् ।
सघे चलति तस्याभूच्छब्दाद्वैतमय जगत् ॥

(मगनलाल दलपतराम खक्खर का सस्करण, बम्बई, सन् १८९६, पृष्ठ १६४, सर्ग ६, श्लोक ३६-३७)

अर्थात्—जब तीर्थयात्रा के लिए उसका सघ चला तब आकाश शब्दमय हो गया। घोडो की हिनहिनाहट, हाथियो की चिग्घार, रथो की घरघराहट, वीरो की खम ठोकने की ध्वनि, चारणो के छप्पय और स्त्रियो की उलूलुध्वनि से यह शब्दसमूह उत्पन्न हुआ था।

सम्भव है, श्रीहर्ष की कविता मे उलूलु शब्द और उसका अर्थ देखकर ही सर्वानन्दसूरि ने उसे इस अर्थ मे प्रयुक्त किया हो, पर यह भी हो सकता है कि बङ्ग को छोडकर और देशो की स्त्रियाँ भी यही ध्वनि, हर्ष प्रकट करने के लिए, करती हो।

अथर्ववेद (३।१९।६) मे एक मन्त्र है—

उद् हर्षन्ता मघवन् वाजिनानि
उद् वीराणा जयतामेतु घोष ।
पृथग्घोषा उलुलय केतुमन्त उदीरताम्
देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ॥

यहा पर उलुलय के पाठान्तर उलुलयः, उल्लुलय, उललय मिलते हैं। सायण ने बिचला पाठ मानकर इसे अनुकरण-शब्द माना है। तात्पर्य यह है—'हे दानशील देव! हमारी सना के पराक्रम बढ़ें, जयशील वीरो का शब्द गूँजता हुआ सुनाई दे, उच्च स्वर के विजय-शब्द न्यारे-न्यारे स्पष्ट उठें, इन्द्र की प्रधानता मे मरुत् देव सेना के साथ चलें।" यहा भी उलुलय (विशेषण) का अर्थ "ऊँचे स्वर से शब्द करने वाला" ही है।

छान्दोग्य-उपनिषद् के एक परिचित प्रकरण मे यह लिखा है—

अथ यत्तदजायत सोऽसावादित्यस्त जायमान घोषा उलूलवोऽनूदतिष्ठन्त सर्वाणि च भूतानि च सर्वे च कामास्तस्मात्तस्योदय प्रति प्रत्यायन प्रति घोषा

उलूलवोऽनूत्तिष्ठन्ति सर्वाणि च भूतानि सर्वे चैव वामा । (३।१६।३)

यहा पर भी सूर्योदय के समय होने वाले 'उलूलव घोषा' का अर्थ 'ऊँचे स्वर वाले शब्द' ही है ।

यह उलूलु-शब्द यदि अनुकरण-शब्द न माना जाय तो उरु+उरु (बहुत-बहुत) या उरु+रु (शब्द=रव) से बनाना पडेगा । 'र' का 'ल' मे परिवर्तन चाहे असुरो के देवताओ से हार जाने का कारण भले ही हो[1], परन्तु भाषा की निष्पत्ति का यह एक निश्चित नियम है । अतएव उलु या उलूलु ध्वनि और अर्थ दोनो म अँगरेजी 'हुर्रा' का भ्रातृत्व ज्ञात होता है ।

[प्रथम प्रकाशन सरस्वती जून, सन् १६१४ ई०]

विवाह की लाटरी

विवाह एक लाटरी है । 'गाय बजायकर', 'आँख मूँदकर', काठ म पाँव दिया जाता है । आगे चलकर किसी को वह काठ सोने का कंकण बन जाता है, किसी को काठ ही बना रहता है, किसी को लोहे की बेडी और किसी को जलते अगारो की माला बन जाता है । दो न्यारे दृश्यो को मिलाकर एक बनाने का काम है, तभी तो वेद कहता है कि एक पेट की जन्मी हुई बहन तो दूसरे की बनती है और नई न जानी सुनी और ही स्त्री बनकर भाई की हो जाती है । इस लाटरी मे कुछ समझ लगाने का जतन सभी करते हैं, करते आए हैं, करते रहेंगे । जैसे शब्दो से शब्दो का व्याख्यान होता है, प्रश्न से प्रश्न सुलझाता है और पहेली से पहेली, वैसे एक लाटरी मे दूसरी से परीक्षा की जाती है । पुरुष या स्त्री अपने होनहार जोडे को अपने ही आँख, कान या मन स परखना चाहता है । आप न कर सके तो मित्रो की सहायता लेता है । जैसे अर्जी देने वाले सार्टिफिकेट देखकर चुने जाते हैं वैसे जोडे के माता पिता, कुल, लक्षण और प्रसिद्धि जाँची जाती है । अपने सिर का भरोसा न हो तो माता-पिता पर लाटरी का टिकट डालना छोडा जाता है । नाई और पुरोहित भी

१ तेऽसुरा आत्तवचसो हेऽलवो हेऽलव इति वद त पराबभूवु
(शतपथ ब्राह्मण ३।२।१।२३)
ते सुरा हेलयो हेलय इति कुर्वन्त पराबभूवु । तस्माद्ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवैनापभाषितवै । म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्द । (पतञ्जलि, महाभाष्य, १।१।१)

इस जूए में मध्यस्थ बनते हैं। जमीन पर के सहायकों के भरोसे न रहकर तार और ग्रहों की सहायता भी ली जाती है कि इस फाटके या सट्टे का ठीक अंक वे ही बतला दें। वर्ण, वश्य, तारा, योनि, ग्रहमैत्री, भकूट, नाडी—क्या-क्या जाल बिछाये गए हैं कि जो मछली हम चाहते हैं, वह ही हाथ लगे! मनुष्य और अमनुष्य, पृथ्वी और ग्रह सबकी सहायता लेने पर भी लाटरी लाटरी ही बनी रही। वश्य होने पर भी वश नहीं रहती, ग्रहमैत्री होने पर भी गृह में दोष हो जाता है, भकूट के रहते भी बुटाई होती है और नाडी मिलने पर भी नारी अनाडी के हाथ लग जाती है।

[प्रथम प्रकाशन प्रतिभा अप्रैल, सन् १९२० ई०]

जोड़ा हुआ सोना

कहते हैं कि हिंदुस्तान बहुमूल्य धातुओं की समाधि (कब्र) है। धातु यहां खिंचकर चले आते हैं, फिर निकलते नहीं। और देशों में सोने के निकास को रोकने के लिए नियम बनते हैं, यहां निकास की कथा नहीं, आमद पर डॉट लगाना पड़ती है। जैसे वैद्य का बुभुक्षित पारद सोना चट कर जाता है और डकार तक नहीं लेता, वैसे यह देश भी सोना सोखता जाता है। यह अभी तक पता नहीं चला कि रेवती रमण कितनी स्वर्ण हाला पी सकता है, इस स्पंज या ब्लाटिंग पेपर में कितना सोना सोखा जा सकता है। कहते हैं कि बढ़िया दस्तकारी का माल बाहर भेज-भेजकर बदले में सोने के सिक्के खेंचकर हिन्दुस्तान ने ही रोम के साम्राज्य का दिवाला निकाल दिया था। कुछ अर्थशास्त्रियों के मन में प्रति चूल्हे की परिधि में और प्रति खटिया की तल में कुछ-न कुछ सोना अवश्य है उसका लेखा करोड़ों पर जा लगता है, यहां की चाल भी सोने का प्रेम सिखाती है। जनमते बालक को जीभ पर सोने की सलाई से शहद और घी चटाना 'गृह्यसूत्र' कहते हैं और मरते दम तुलसी, सोना मुंह में डाला जाता है, यों जीवन-मरण सोने के प्रेम में बीतता है।

सोना जोड़ने का एक अद्भुत उपाय इस देश ने निकाला है। वह है, चलती-फिरती तिजोरियां, घूमती-फिरती पेटियां, दौड़ते खेलते बक! जहां सोना पास हुआ गले में या सिर में टांक दीजिए। बक प्रसन्न हो जाएँगे। बंकिम कटाक्षों को धन्यवाद देंगे, अठलाते दिखलाते फिरेंगे, सम्भाल रखेंगे, काम पड़ने पर

जीती-जागती सोने की बेल से एक-आध नग उतारकर काम चला लीजिए फिर सुविधा होने पर चढा लीजिए। इन चलते-फिरते बको के गलो तथा नाको और जांघो और हाथो मे कितना कनक लदा हुआ है, इसका अन्दाज करते हुए अक-शास्त्री भी हारते हैं। पिछले वर्षों से इनकी माना बढी है। जहाँ पीतल थी, वहाँ चाँदी चमकती है। जहाँ चाँदी थी, वहाँ सुवर्ण का वर्ण दमकता है।

इन खूँटियो से लदने वाले कभी सोना खरीदने मे थकते नही। लोग कहते हैं कि देश गरीब है, सोने की खपत के अको को देखें तो यह मानने का साहस नही होता। सोना ३४ का था, तब भी लेने वालो ने लिया, लेना बद न हुआ। आजकल सरासर देख रहे हैं कि सोने का असली भाव १३ का है, पर सरकार २०।२१ मे बेचती है और लोग चट किये जाते हैं, फिर बाजार मे २३।२४ मे बिकता है पर मिलता नही, पखवाडे के पखवाडे एक लाख कई हजार तोल बिकता है, पता नही कहा घुस जाता है। इस बडवाग्नि मे कितना सुवर्ण सागर खप जाता है, यह कौन कहे?

सोने की खानें अमेरिका मे बहुत अधिक हैं। अमेरिका को पहले-पहल सन् १४९३ से कोलम्बस ने पाया। इसका यह अर्थ नहीं है कि पहले अमेरिका था ही नही, देश था, किन्तु योरोपियन जातियाँ बाईबल के अनुसार मानती थी कि जमीन चपटी है और आकाश उस पर तम्बू की तरह तना हुआ है।

अमेरिका का होना उसने दिखाया और आना-जाना चलाया। सोने की खानें आस्ट्रेलिया मे है, एफ्रीका मे है, कुछ भारत मे भी है। अच्छा, तो सन् १४९३ मे ससार की खानो से तीन अरब पचास करोड पाउड का सोना निकल चुका है। इसमे से एक अरब पचास लाख का तो पिछले साल मे निकला है। सन् १४९३ से पहले भी ससार मे बहुत कुछ सोना था ही। सोना कभी नष्ट नही होता। वैद्य लोग पारद मे मिलाकर या खाक करके कुछ खिला डालें, या शौकीन लोग पान के साथ वरकों के रूप मे चट जाय, नही तो सोने का नाश नही होता। गीता के आत्मा की तरह न इसे शस्त्र काटते हैं, न आग जलाती है, न पानी गीला करता है, न वायु सुखाता है तो भी पिछले सोने की बात जाने दीजिए। तीन अरब पचास लाख पौंड सोना तो कम-से-कम दुनिया मे है और पचीस साल पहले इससे लगभग आधा था। इन पचीस साल मे हिंदुस्तान मे इक्कीस करोड पचास लाख पौंड मूल्य का सोना आया। इसी मे नौ करोड चालीस लाख पाउड के सिक्के भी हैं जो सन् १९०१ से यहा आये, एक अकविद्या-विशारद की कूत है कि आजकल हिंदुस्तान मे ३७ करोड १० लाख पौंड का सोना है जो ससार के सोने के लगभग दशमाश के बराबर है। लड़ाई के पहले के पाँच वर्ष मे यहा पर दस करोड पचास लाख पाउड खप गये थे, यह भी ससार की सुवर्ण-मुद्रा पूँजी का दसवा हिस्सा है।

यह सोना दिखाई तो बहुत देता है पर यह भी याद रहे कि यहां पर जनसंख्या साढ़े इकत्तीस करोड़ है, इससे इतना सोना भी प्रति मनुष्य एक पाउंड से कुछ ही ऊपर पड़ा। इंगलैंड में बैंकों में इतना सोना जमा है कि प्रति मनुष्य तीन पौंड से अधिक पड़ता है और वहां भी चलती-फिरती बैंकों में भी आभूषणों के रूप में बहुत कुछ सोना होगा ही। अमेरिका में बैंकों और चलते-फिरते बैंकों में सिक्कों और आभूषणों के रूप में एक अरब सोना रखा हुआ है जो प्रति मनुष्य दस पौंड पड़ता है। अब क्या बात ठहरी? यदि भारतवासी सोना जोड़ने में दक्ष हैं तो इंगलैंड वाले तिगुने दक्ष और अमेरिका वाले दस गुने दक्ष हैं—बानी का काजल भी खटकता है, नहीं तो जोड़ने में ये सभ्य देश भी इस गंवार किसानों की भूमि से पीछे नहीं हैं। हां, अन्तर यह है कि उनकी निधि बैंकों में एकत्रित है जहां से व्यापार आदि का काम चलता है और इकट्ठी निधि का दबाव दूसरे देशों पर पड़ता है और हमारी निधि छल्लों, कंगनों और कर्णफूलों में बिखरी पड़ी है, जो दिखाई देती है, पर काम नहीं आ सकती।

[प्रथम प्रकाशन : प्रतिभा : जून, सन् १९२० ई०]

हलवाई

कोई पूछे कि संस्कृत में रसोईदार को सूपकार कहते हैं, क्या वह केवल सूप (दाल) ही बनाता है, या पुराने हिन्दू पतली दाल के खाने वाले ही थे, तो उससे पूछिए कि हलवाई क्या हलुआ ही बनाता है और आजकल जैंटलमैनों के दांत टूट गये हैं कि वे हलुआ ही खाते हैं।

[प्रथम प्रकाशन : प्रतिभा : दिसम्बर, सन् १९२० ई०]

झख मारना

महाविरा पुराना है। काम भी अच्छा है। बड़े-बड़े करते हैं। पर अर्थ क्या है? *बीरबल की कथा में तो झख=झष=मछली अर्थ किया गया है पर यह 'ष' को*

'ख' बनाने की मैथिली चाल है। और काम भी निष्फल नहीं। राजपूताने के एक पुराने शिकारी ने यह अर्थ बताया कि पहले जमाने में एक पन्ना मोर होता था। पन्ना मोर इसलिए कहलाता था कि नर के गले में पन्ना निकलता था। मादीन 'झख' कहलाती थी, नर के सदृश ही होती थी पर उसके गले में पन्ना निकलता न था। जो जल्दबाज शिकारी इन गजमुक्ताओं के भाई पन्नों को पाने की उतावली में मादीन को मार बैठता और फिर पछताता उसने निष्फल प्रयत्न से अक्षरत और उचार से 'झख मारी'। यों यह वाक्य चल पडा।

[प्रथम प्रकाशन प्रतिभा दिसम्बर, सन् १९२० ई०]

बनारसी ठग

काशी (बनारस) ठगों के लिए कब से प्रसिद्ध है ? (१) कुमारपाल प्रतिबोध (सं० १२४१) में नल दमयन्ती की कथा में प्रतिहारी ने स्वयंवर के समय दमयंती से 'कासिनयरीनरेस' का परिचय दिया है तो दमयन्ती कहती है—'पर वचवसणि-णोमुव्वति'। (२) 'हेमचन्द्र के प्राकृत द्वयाश्रय काव्य कुमारपालचरित में फूलों को 'कामदेव रूपी ठग के वाराणसी प्रदेश' कहा है (मर-ठग-वाणारसि-पएसा'''कुरवया, ३।५६-६०, पूर्णकलशगणि की टीका—यथा वाराणसी ठकाना स्थान तथा एते दपरयोरत्कठादिजननात समरस्येति भाव)। यहा प्राकृत या देशी ठग का सस्कृत रूप 'ठक' दिया है। मख ने श्री कठचरित में भी 'ठक' का इसी अर्थ में व्यवहार किया है (उद्घूर्णुना वरस्य न नाम यात्रा वसतनाम्ना रुरुधे ठकेन ६।३३, जान राज की टीका—ठकेन हठमोपकेन)। ठग से ठक बना या ठक से ठग यह विचारणीय है। जब सस्कृत भाषा जीवित थी तब वह और भाषाओं से शब्द बडी स्वतन्त्रता और उदारता से ले लिया करती थी।

झूठी शब्दानुसारिणी व्युत्पत्ति ने बहुत गडबड किया है। सीसोदा गाँव से सीसोदिय कहलाए किन्तु सीसो+दिया शब्द देखकर लोगों ने व्युत्पत्तियाँ गढ ली कि (१) मद्यपान के प्रायश्चित्त में जलता हुआ सीसा पीने से और (२) देश-सवा में सीस देने से यह नाम चला। मरहटा शब्द 'महाराष्ट्र' (=बडा देश) से बना है किन्तु 'मरहटा' देखकर लोगों ने व्युत्पत्ति कर ली कि लडाई से मरकर ही हटने थे, इसलिए 'मरहटे' कहलाए। वाराणसी का अर्थ वर+अनस् 'अच्छे रथोंवाली' होना है किन्तु उसके वरणा+असी नदियों के बीच होने से यह

नाम बनने की कल्पना की गई और 'बनारस' नाम पर 'रस बना' होने की हिन्दी कवियों की वाचोयुक्ति कही-कही निर्वचन मान ली गई है। हेमचन्द्र ने प्राकृत व्याकरण मे वाराणसी, वाणारसी, अलचपुर, अचलपुर, मरहट्ठ, महरट्ठ; को केवल व्यत्यय माना है (८।२।११६-६)। यह व्यत्यय बोलने में हो जाता है जैसे पजाबी चाकू का काचू, गवारी चिलम का चिमल। इस पर नए निर्वचन करना पाडित्य का अजीर्ण मात्र है।

[प्रथम प्रकाशन नागरी प्रचारिणी पत्रिका : सन् १९२१ ई०]

छट्ट

पजाबी मे भारवाहक पशुओ पर माल लादने की गोन को 'छट्ट' कहते है। *हिन्दी मे गोन, गोन, गूण ही प्रचलित है, छट्ट केवल पजाबी मे आता है।* गणरत्नमहोदधि मे गोणी शब्द के अर्थ मे वर्धमान ने इस शब्द का प्रयोग किया है (एगलिग् का सस्करण, पृ० ६१)। वहा सम्पादक ने मूल पाठ यह रक्खा है—'धान्याधारे गोणी। यस्याश्छाटीति प्रसिद्धि। और उसे 'मराठी छाटी (सस्कृत शाटी)=कपडे का टुकडा' से मिलाया है किन्तु 'छाटी' पाठ सपादक ने एक ही प्रति के पाठ पर कल्पित किया है। टिप्पणियो मे जो पाठान्तर दिए हैं उससे यह शब्द 'छट्ट' ही जान पडता है (धान्याधारे गोणे यस्याश्छहेति, यस्या. छट्टीति C, यस्यास्त्वट्टेतिD, यस्या छाटीति E)। गणरत्न महोदधि की रचना वि० स० ११६७ मे हुई। उस समय गुजरात मे यह शब्द प्रचलित था। यह उस समय की 'हिन्दी' का शब्द है क्योकि उन दिनो तक प्रादेशिक भाषाए इतनी पृथक् और रूढ नही हुई थी।

[प्रथम प्रकाशन . नागरी प्रचारिणी पत्रिका : सन् १९२२ ई०]

यंत्रक

संस्कृत यन्त्र वा यन्त्रक के अपभ्रंश 'जदरा' का पंजाबी में अर्थ ताला है और तुलसीदास जी के रामचरितमानस में—

> नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
> लोचन निज पद जन्त्रित, प्राण जाहिं केहि बाट।।

इस दोहे में भी जन्त्रित का अर्थ 'ताले से बन्द' ही है। 'जदर' की खाती के उस यन्त्र के लिए भी रुढ़ि हो गई है जो छत की कड़ी को ऊँचा करने में काम आता है। संस्कृत में 'यन्त्रक' चरखे के अर्थ में आता है। एक पुराना श्लोक है—

> रे रे यन्त्रक मा रोदीः क क न भ्रमयन्त्यमूः।
> कटाक्षाक्षेपमात्रेण कराकृष्टस्य का कथा।।

रे चरखे! चूँ चूँ क्यों करता है? क्यों रोता है? स्त्रियाँ केवल कटाक्ष ही डालकर किस-किस को नहीं घुमा देतीं? (तेरी तरह) जिसे हाथ पकड़कर खैंचें उसका तो कहना ही क्या? प्रबंधचिंतामणि में यह श्लोक मुंज से उस समय कहा हुआ कहा गया है जिस समय वह तैलप की राजधानी में गली-गली घुमाया गया था और जिस अवसर पर उसने 'घर-घर तिम्म नचावइ' और 'हिंडइ डोरी बधियउ' वाला दोहा कहा था। टानी ने यहाँ पर यन्त्रक का अर्थ लेकर जेलर किया है कि हे जेलर, मत रो इत्यादि। यन्त्र की रूढ़ि कहीं-कहीं अरहट के अर्थ में भी हो गई है। महाभारत आदि में 'यन्त्र' एक तरह की गोफन या तोप के अर्थ में आता है जिससे शत्रुओं पर बड़े-बड़े पत्थर फेंके जाते थे। और वही 'यन्त्र' का अर्थ वह घिरियों वाली डोरियों का समावेश भी है जिससे इन्द्रध्वज पूजा के लिए *ऊँचा उठाया जाकर फिर धीरे से गिराया जाता था* (यन्त्रोत्सृष्ट इव ध्वज)। हिन्दी में 'जतर' भूतप्रेतादि से बचाने वाले लिखित वर्ण या रेखा निवेश पर नियमित हो गया है और बंगला में 'जाता' आटा पीसने की चक्की ही रह गई है।

[प्रथम प्रकाशन : नागरी प्रचारिणी पत्रिका : सन् १९२२ ई०]

परिशिष्ट

बुद्धू का कांटा

सार्थक अनुभव की हिस्सेदारी*

डॉ० ओमप्रकाश सारस्वत

हिंदी-साहित्य के आधुनिककाल का प्रथम दशक अगर हिंदी कहानी का आविर्भावकाल है तो द्वितीय दशक कहानी का ऐसा विकासकाल है, जिसने प० श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जैसे विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न विद्वान को जन्म दिया। उन्होंने एक ओर विविध विषयों पर शताधिक लेख लिखकर अपनी विद्वत्ता तथा बहुज्ञता की धाक जमाई तो दूसरी ओर मात्र तीन कहानियां लिखकर ही 'श्रेष्ठ कहानीकार' का स्थान सुनिश्चित कर लिया।

हिंदी कहानी का विश्लेषण तथा उसकी पहचान कायम करने में लगे हुए आलोचक जब गुलेरी जी को छोड़ तुरन्त प्रसाद अथवा प्रेमचन्द युग और प्रेमचन्दोत्तर युग या प्रेमचन्दपूर्व युग, आदि यह अविवेकपूर्ण अविचारित मोटा विभाजन करते हैं तब उनके ज्ञान की निर्मलता पर विस्मय होता है। हमारे यहां लिख लिखकर 'बोझे' से मारने वाले 'लिखाड़ियों' को महान मान लेने की परम्परा चल निकली है। मैं यह नहीं कहता कि प्रसाद और प्रेमचन्द का साहित्य मात्रा में अधिक होने पर भी श्रेष्ठ नहीं है किन्तु इनसे पूर्व गुलेरी जी ने जिस अपूर्वशैली, नवीन विचारधारा तथा समर्थ सार्थक कहानी के शिल्प को प्रस्तुत करके कहानी के क्षेत्र में जो कीर्तिमान स्थापित किया है। उससे उन्हें कहानी-कला के विकासक्रम में युगप्रवर्तक न मानकर केवल परवर्ती साहित्यकारों को ही आधुनिक कहानी के प्रवर्तन का श्रेय देना गुलेरी जी के साथ सरासर अन्याय करना है। गुलेरी जी की कहानियां कथ्य, शैली, बोध और आधुनिक कहानी-कला की 'टेकनीक' से युक्त हैं। परवर्ती कहानीकारों ने जिन तत्त्वों, मूल्यों, चेतना तथा शिल्प को अपनाकर कहानी विधा में अपने कृतित्व का श्रेष्ठ योग दिया है, उसके

* लेख समय से न मिल पाने के कारण यथास्थान नहीं दिया जा सका। इसे पृष्ठ १३० के बाद पढ़ा जा सकता है।

बीज गुलेरी जी की कहानियों में विद्यमान हैं । अत आधुनिक कहानी की पहचान कायम करने के क्रम में गुलेरी जी का नाम अग्रगण्य होना चाहिए न कि प्रसाद और प्रेमचन्द का । स्मरण रहे, प्रसाद मुख्यत कवि है और प्रेमचन्द उपन्यासकार । 'बुद्धू का काटा' कहानी की पहचान के आयामों पर विचार करते समय निम्नलिखित मुद्दों पर ध्यान सहज ही आकर्षित हो जाता है—

घटनाक्रम

सात हिस्सों में विभाजित 'बुद्धू का काटा' एक सशक्त रचना है । लेखन के विकासक्रम में यह गुलेरी जी की द्वितीय रचना मालूम पड़ती है क्योंकि 'सुखमय जीवन' से इसका शिल्प प्रौढ़तर और 'उसने कहा था' से कुछ अप्रौढ़ लक्षित होता है । कहानी की शुरूआत हिंदी के उच्चारण और लेखन में विरोधाभास को लेकर उपजी खीझ से होती है जिसमें हिंदी के 'कर्णधारों के अविगत शिष्टाचार' पर टिप्पणी है कि —"जब हिंदी साहित्य-सम्मेलन के सभापति अपने व्याकरणकषायित कण्ठ से कह, 'पर्सोत्तमदास' और 'हर्किसनलाल' और उनके पिट्ठू छापें ऐसी तरह कि पढा जाए—पुरुषोत्तम अ दास अ और 'हरिकृष्ण लाल अ ।" वास्तव में इसमें विद्वान श्रीचन्द्रधर ने हिन्दी के उन तथाकथित धुरन्धरों द्वारा उच्चारण पर ध्यान न दिए जाने तथा भ्रष्ट-उच्चारण को सुनकर उत्पन्न अपनी पीड़ा का सकेत दिया है । समझदार सकेत ही दे सकता है, लट्ठ नही चला सकता । फलत सुधार की हिमाकत में बडे-बडे बह गए—तो फिर । परिणामस्वरूप अपने दिल के फफोले ही फोड़े जा सकते हैं दूसरों के दिल नही बदले जा सकते । इसके पश्चात् कथा के मुख्य चरित्र—रघुनाथ के पिता (जो दारसूरी के पहाड़ के रहने वाले और आगरा म बुझौतिया बैंक के मैनेजर हैं) का परिचय है । रघुनाथ के पिता अपनी पत्नी के नित्यप्रति के वाग्बाणो, पड़ोसिनो के उलाहना तथा बडे भाई की चिट्ठी के निर्देशानुसार रघुनाथ की शादी का फैसला कर लते हैं । प्रसग पत्नी की इस खीझ के साथ समाप्त होता है कि पाच सालो से बराबर कहती चले जाने पर भी रघुनाथ की शादी का फैसला अन्तत भैया (रघुनाथ के ताया) के कहने पर किया, उसके कहने पर नहीं । इस कहानी के पहले हिस्से म मा बाप की चिन्ता, भाई का भाई से बिछुडकर लगभग परदेशी होने जान का दु ख और पड़ोसिनो द्वारा दूसरो की बेमतलब चर्चा से उत्पन्न खीझ व्यक्त है जिसे दिल के फफोले फोड़ना ही कहना चाहिए ।

इलाही के साथ पनघट

कहानी के दूसरे हिस्से मे पहले, इलाही की हज-यात्रा के वर्णन मे जहाज के चट्टान से टकराकर तीन सौ हाजियो की मृत्यु का समाचार है । फिर इलाही का

साढे सात महीने के प्रवास के कष्ट-भोग के बाद गृहागमन, नवाब के अत्याचार (इलाही का घर जलना, जमीन का खुसना, इलाही की बीबी का अँगूठी चोरी के इल्जाम मे मार-पीट द्वारा घर से निष्कासन) चित्रित हैं। इस खण्ड मे इलाही के साथ अपने घर गाव आता रघुनाथ, इलाही की कथा सुनता-सुनता रास्ते मे पडते एक पनघट पर पहुचता है। जहा इलाही, अपने मोती (घोडे) के लिए विश्राम करने का प्रस्ताव करता है। फिर 'रघुनाथ को भी टागें सीधी करने मे कोई उज्र न था।' उसे प्यास भी लग रही थी, अत बवस से, लोटा-डोर निकाल-कर वह कुए की ओर चल देता है और इलाही, पास के पेड के नीचे घोडे समेत आराम करने लगता है।

भागवन्ती से वास्ता

इस खण्ड मे गुलेरी जी ने, रघुनाथ का कुए पर पानी भरने आई गाव की स्त्रियो से साक्षात्कार तथा भागवन्ती से वास्ता पडते दिखाया है। प्रारम्भ मे ग्रामीण नारियो के स्वभाव तथा उनके शील-मर्यादा का जिक्र है और बाद मे रघुनाथ के पानी निकालने की तरकीब म बार-बार 'फेल' होने तथा ग्रामीण-महिलाओ के आगे बुद्धू बनने का चित्रण है। इस प्रसग मे भागवन्ती के वाक्प्रहारो के आगे रघुनाथ का सारा ज्ञान, सारा शहरीपन ऐसे काफूर हो जाता है जैसे—सूरदास की गोपियो के आग उद्धव का ज्ञान। यहा भागवन्ती का जो चरित्र उभरा है वह सम्पूर्ण हिन्दी कथा-साहित्य म उल्लेख्य है, अद्वितीय है। रघुनाथ की दशा यहा -- 'लौट के बुद्धू घर को आए' जैसी है क्योकि उसकी समस्त चतुरता एव व्यवहार-विवेक, परास्त होकर, उस चुपचाप, घर की राह लेने को ही मजबूर करते हैं।

प्रेम की अनुभूति

कथा के चौथे खण्ड मे, तीसरे खण्ड के परिहास मखौल वाले प्रेम को छेड-छाड और अन्तत प्रेम की अनुभूति (मानसिक और शारीरिक दोनो) मे परिवर्तित होते दिखाया गया है। रघुनाथ का गाव पहुचन के तीसरे दिन घूमने निकलना, नदी (खड्ड) पर भागवन्ती का मिलना, उसका दाढी बनाने की नक्ल उतारना, ककरियों के रूप मे एक-दूसरे के ऊपर प्रेमास्त्र का प्रयोग, छेडछाड मे रघुनाथ का नदी मे फिसलना और भागवन्ती द्वारा निकाला जाना आदि प्रेम के विकास की घटनाओ का पूर्वार्द्ध है। उत्तरार्द्ध मे लडकी का भागना, रघुनाथ का उसे पकडने दौडना, लडकी का काटा चुभन से चीखकर लडखडाना, रघुनाथ का उसे दोनो बाहो मे भरना, लडकी के तेज चुटकी काटने मे लडके का उसके नाक पर मुक्का मारना और बाद म नाक और पांव से निकला खून देखकर पश्चात्ताप

करना, फिर "वाह, पिराग जी मे खूब इलम पढ़ा। स्त्रियो पर हाथ उठने होंगे ?...." रघुनाथ का एक बार फिर परास्त होकर, परन्तु प्रेम की अनुभूति पाकर घर लौटना दिखाया है। लडकी भी पाव मे गडे काटे को लेकर खेतों को फांदती हुई घर की राह लेती है।

रघुनाथ का मनोमन्थन

इस प्रसग मे रघुनाथ के हृदय मे स्त्री जाति की अज्ञानता का भाव और उससे पृथक् रहने का कुहरा तो था ही, अब उसके स्थान पर उद्वेगपूर्ण ग्लानि का धूम भी इकट्ठा हो गया। रघुनाथ का हृदय धुए से घुट रहा था। एक ओर वह विवाह की चिन्ता से अभिभूत था तो दूसरी ओर भागवन्ती के प्रति अज्ञानता मे हुए अत्याचार से उन्मथित। इसी खण्ड मे, हण्डीपुर मे रघुनाथ की सगाई तय हो जाती है जहा 'बीस दिन के पीछे' उसकी बारात चढेगी।

काटे की खलिश

इस प्रसग मे रघुनाथ की शादी, रघुनाथ का दोपहर के समय रास्ते मे विश्राम करने रुकी बारात के साथ रुकने पर अपने पुराने अपमान और तिरस्कार का बदला लेने की 'गरज' से डोली मे बैठी, घर की डार से विछुडी दु खितमना भागवन्ती से असामयिक और अविचारित छेड़छाड और लडकी का दु ख और अनुत्साह से न छेड़न का आग्रह कथित है। यद्यपि इस प्रसग मे रघुनाथ का सिर उठाता दर्प या अह और भागवन्ती का अनुत्साह चित्रित है, तथापि प्रेम के काटे की खलिश भी उन दोनो के हृदयो मे विद्यमान है जो एक (रघुनाथ) को अति उत्साही और दूसरी (भागवन्ती) को स्वजन-वियोग के कारण अनुत्साही बना रही है।

मान-निराकरण

अन्तिम खण्ड मे प्रेम के काटे की खलिश इतनी तीव्र हो जाती है कि रघुनाथ अब 'हॉस्टल' मे चैन से रह नही पाता। वह दशहरे की छुट्टियो मे घर आया परन्तु भागवन्ती उससे ठीक से बोली नही। वह उसकी आहटो पर ध्यान देती, छिप छिपकर उसे देखती परन्तु ज्योही वह आगे बढता, वह लोप हो जाती। वह हॉस्टल लौट गया। होली की छुट्टियो मे उसन पहले तो घर आना नही चाहा परन्तु लोकलाज के कारण वह आ गया। अब वह थोड़ा—बलपूर्वक उसे मनाने—उससे बतियाने मे दृढ हो गया। फिर कुछ तर्क-वितर्क के पश्चात् 'काटे से काटे की खलिश' दूर करने के सवादावसर स वार्ता का क्रम बढा रघुनाथ ने अपनी गलती, अक्खड़पन, बुद्धूपन के प्रति पश्चात्ताप प्रकट किया और उस मानवती को अपने व्यवहार-प्यार-मनुहार से प्रेमवती नारी बना लिया।

रचना-विधान

सामाजिक प्रेमकहानी 'बुद्धू का काटा' नयी-नयी वय के पहले-पहले प्रेम का चित्रण है। रघुनाथ शहर मे रहकर भी प्रेम के मामले मे बुद्धू है जबकि लडकी गाव मे रहकर भी प्रेम की 'शिक्षिका' है।

इस कहानी का प्रारम्भ निबन्ध की तरह भूमिका बाधकर आगे बढ़ने की शैली मे हुआ है। कहानी के प्रारम्भिक अश का कहानी के मूल कथ्य से भी कोई सीधा सरोकार नही है सिवाय इसके कि गुलेरी जी हिन्दी के तथाकथित पडितो की भाषा-उच्चारण मे अनवधानता को लजित करना चाहते हैं। पहले खण्ड मे गुलेरी जी ने मुख्य रूप से पिता की दूरदर्शिता और माता की भावुकता का चित्रण करना चाहा है कि पिता लडके की छोटी आयु मे विवाह का विरोधी है—वह जहा तक हो, टालने के पक्ष मे है, जबकि मा-बेटे की रुचि इसमे है कि कब शादी हो जाए! इसी प्रसग मे पडोसिन के द्वारा, यह कहलवाना कि—'पति ने चारो बेटो के विवाह मे मकान और जमीन गिरवी रख दिए थे, और कम से कम अपने जीवन-भर के लिए कगाली का कम्बल ओढ लिया था।'—कर्ज लेकर विवाह करने का विरोध भी व्यक्त किया है। इस प्रसग मे नारी-मनोविज्ञान का प्रकाशन हुआ है। इस खण्ड मे, कहानी के बदले निबन्ध की शैली प्रधान हो गई है।

दूसरे खण्ड का इलाही वाला प्रसग समीक्षको को निरर्थक जान पडता है जबकि मेरे विचार से इसमे कुछ विस्तार है। इसके होने से कहानी कही बैठी नही है, आगे ही बढी है। गुलेरी जी इलाही के माध्यम से एक तो, एक विपन्न व्यक्ति की दयनीय दशा के चित्रण के साथ-साथ अप्रत्यक्ष रूप म हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द का चित्र भी दर्शाना चाहते थे। उन्हे इसम सफलता भी मिली है। इस प्रसग की योजना इसलिए भी सार्थक है कि रघुनाथ जिस 'घराठनी' से ३० मील पैदल चलकर घर पहुचना है, जिसके पास सामान भी होगा—क्या अकेला ही उस वीरान पहाडी रास्ते पर चलता हुआ घर पहुचेगा? जो लोग पहाडो के परिवेश से परिचित हैं व इस प्रसग को कदापि निरर्थक नही कह सकते। यहा इसका होना अनिवार्य है, महत्त्वपूर्ण भले न हो।

तीसरा खण्ड इस कहानी का प्राण है। कहानी का शीर्षक इसी खण्ड मे घटी घटना पर आधारित है। रघुनाथ, 'बुद्धू' यही पर बनता है यद्यपि उसे प्रेम का काटा' चौथे प्रकरण मे चुभता है। इस खण्ड म ग्रामीण नारियो की स्वाभाविक बातचीत, प्रखर व्यग्यदृष्टि तथा प्रत्युत्पन्नमतित्व का स्वाभाविक वर्णन प्रस्तुत है। यहा कहानी सवाद हो जाती है। कथा प्रश्नोत्तर मे बढती जाती है और शैली नाटकीयता म। यह अतिशयोक्ति नही है कि इस खण्ड

जैसा सहज कथा-प्रसग, भागवन्ती जैसा चचल चरित्र तथा इसकी व्यग्य-परिहास जैसी मार्मिक शैली सम्पूर्ण हिन्दी कथा-साहित्य मे नही है। गुलेरी जी ने यहां अपनी वाक्चातुरी तथा प्रस्तुतीकरण की सम्पूर्ण क्षमता का अद्भुत परिचय दिया है। इस प्रसग के चित्रण द्वारा पडित गुलेरी जी ने सस्कृत के एक श्लोक[1] के एक अश से बताया है कि नारियो मे बुद्धि पुरुषो से आठगुणा अधिक होती है (अगर प्रयोग करें तो!) इसका उन्होंने प्रत्यक्ष उदाहरण ही मानो प्रस्तुत कर दिया है।

कवारे-कवारियो का हास-परिहास अन्तत विवाह के बिन्दु पर ही आकर केन्द्रित होता है। अत ग्रामीण नारी का 'लहँगा पसारने' वाला वाक्य लाक्षणिक होता हुआ भी किसीको (?) अगर अभिधात्मक लगे तो यह उसके मस्तिष्क के 'लैंस' का ही परिणाम है, नारी की वचनवक्रता का नही।

कहानी का चौथा खण्ड तीसरे खण्ड की विकासयात्रा सा है। इसमे रघुनाथ के मन म छिपे प्रेमीरूप तथा भागवन्ती के मन मे छिपे प्रेमिकारूप का उद्घाटन है जो कथा-विकास और प्रेम के परमप्राप्य का साक्षी है। रघुनाथ और भागवन्ती यहीं पर 'विपरीत सैक्स' की स्पर्शानुभूति से परिचित होत हैं। घटनाक्रम की जैसी गति यहां विकसित की गई है वह पूर्वनिर्धारित-सी लगती हुई स्वाभाविकता लिए हुए है। यहा घटना-विकास मे कथाकार चतुर-चितेरा लगता है। यह प्रसग कथा का चरमोत्कर्ष है।

पाचवा खण्ड कथा को अधिक गति नही देता। इसमे अल्पायु मे कन्या के विवाह का शास्त्रजड लोगो द्वारा समर्थन का जिक्र है परन्तु हिन्दू समाज मे, व्याप्त इस कुरीति के प्रति गुलेरी जी का उक्त कथन निश्चय ही पाठको का ध्यान खीचने वाला है। इस प्रसग म रघुनाथ के मनोमन्थन को सुन्दर अभिव्यक्ति मिली है।

छठा खण्ड कथा के विकास को निगति देने वाला है—यहां रघुनाथ के यद्यपि उद्धत अक्खड बदलाकामी रूप का चित्रण है तथापि कथानक समापन की ओर बढने लग पडा है—ऐसा आभास हो जाता है।

सातवें खण्ड मे गुलरी जो न भागवन्ती के व्यक्तित्व को प्रकारान्तर से फिर ऊँचा चित्रित कर दिया है। इसम घटनाओ का क्रम यद्यपि सूच्य अधिक है तथापि प्रसगान्त मे रघुनाथ और भागवन्ती के वार्तालाप द्वारा कहानी को ताजगी प्रदान की गई है। यहा आकर कहानी म फिर नाटकीयता उभरी है जो कथा की सपाटबयानी को नाटकीयता म बदल देती है। कथा का अन्तिम वाक्य

१ आहारो द्विगुणस्तासा बुद्धिस्तासा चतुर्गुणा।
षड्गुणो व्यवसायश्च कामस्त्वष्टगुण स्मृता ॥

—उसका मुह बद करने का एक ही उपाय था। रघुनाथ ने वही किया।— गुलेरी जी कथनशैली और वचनवक्रता का उत्तम उदाहरण है जो 'मौन मधि पुकार' का द्योतक है। कथा का अन्त बहुत ही स्वाभाविक है।

सामाजिक चेतना

गुलेरी जी की तीनो कहानिया सामाजिक हैं। इनमे सामाजिक चेतना की अन्त सलिला प्रवाहित है। यह बात लक्ष्य करने की है कि उस समय जबकि साहित्य मे या तो रीतिकाल की नखशिखवर्णन पद्धति या परम्परानुगामिता थी अथवा समाजसुधार की प्रचारात्मक पद्धति, तब समय से आगे निकलकर, एकदम परम्परामुक्त रचना करके, कहानी विधा की यह नयी लीक डालना आश्चर्यकर है। गुलेरी जी ने कहानियो मे ही नहीं, अपने निबन्धो मे भी उस 'नवचिन्तन' का प्रयास किया है। सामाजिक प्रबुद्धता का जैसा रचनात्मक रूप उनकी कहानियो मे अनुस्यूत है वैसा उस काल के साहित्यकारो म कम ही प्राप्य है। तत्कालीन समाज बाल-विवाह, अनमेल विवाह, विवाह मे फिजूलखर्ची, दहेज-प्रथा, सामन्ती प्रथा तथा छूआछूत आदि अनेक बुराइयो से ग्रस्त था। गुलेरी जी ने उनका प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप मे आदर्शोन्मुखी यथार्थ चित्रण किया है।

समाज कभी-कभी और कही कही तो बडा दुष्ट है। यह अगर कोई गिर जाए तो उसे उठने नही देता और कोई उठ जाए ता उसे कधो से नही उतारता। गुलेरी-काल मे भी ऐसा सामाजिक वैषम्य था। सामाजिक वैषम्य वस्तुत हर समाज की बुराई है। गुलेरी का काल ऐसा ही काल था जहा, अमीर-गरीब मे अन्तर, गरीब-गरीब मे अन्तर, स्तरीकरण तथा पैसे की होड विद्यमान थी। गुलेरी जी ने इन बुराइयो का चित्रण इलाही के प्रसग द्वारा घोषित कराया है। इलाही का सारा प्रसग गुलेरी जी की सामाजिक चेतना की वाणी है। इसमे गुलेरी जी की जनचेतना मुखरित है। सामाजिक सरोकार की दृष्टि से यह कहानी श्रेष्ठ भी है। इलाही का (दूसरा खण्ड) सामाजिक चेतना का उत्तम प्रसग कचहरियो मे होने वाले अन्याय पर—'कचहरिया गरीबो के लिए नही है' यह टिप्पणी आज भी कचहरियो मे हो रहे न्याय (?) पर प्रकाश डालने को पर्याप्त है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दा मे—"पर्दे की अस्वस्थप्रथा, उस समय बढती हुई सभ्यता की दाम्भिक चेतना, विवाह से सम्बद्ध दहेज, मुहूर्त आदि प्रथाओ पर वे बीच बीच मे छीटे छोडते हुए चले हैं।"

आंचलिक परिवेश

व्यक्ति जिस अचल का हो, जिस स्थान, प्रदेश अथवा देश के उसके माता-पिता हो, स्वजन हो वहा मे उसे स्वत ही प्रेम हो जाता है। गुलेरी जी भले ही

अपने-आप गुलेर (कांगड़ा) में पैदा न हुए हों परन्तु वहां के उनके मां-बाप थे, उनके पूर्वज थे। फिर वह अवसर मिलने पर अपनी पैतृक जन्मभूमि में आते भी रहते थे। अत उस स्थान के प्रति प्रेम का होना, स्वाभाविक है। फिर दूसरा स्थान भले ही कितना ही कनकोपम हो, जननी और जन्मभूमि के प्रेम के आगे वह नगण्य है। रामचन्द्र ने इसीलिए शायद लक्ष्मण से कहा था कि—'अपि स्वर्णमयी लका न मे रोचते लक्ष्मण ! जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'

गुलेरी जी के साहित्य में कांगड़ा के रीति-रिवाजों, सामाजिक-धार्मिक प्रथाओं, नदी नालों, बेल-बूटों तथा वहां की बोली भाषा के प्रति अनन्य मोह तथा अन्यतम प्यार के प्रमाण मिलते हैं। 'बुद्धू का कांटा' में 'पराठनी' से घर को आते समय का सारा परिवेश, वहां का अत्र-सकुचित रास्ता, अढाई सौ फुट गहरी खड्ड, टट्टू, टट्टूवाला, पनघट, घूघट, स्त्रियों से 'बिनमरजादा' बात न करना, बुद्धू बन जाना पर निर्लज्ज न होना, यह सब लोक-चेतना में विद्यमान है। रघुनाथ और भागवन्ती को डुबाने-मिलाने वाली नदी (?) गुलेर की 'बडेर खड्ड' ही तो है जिसे 'उसने कहा था' में 'कुलेल की खड्ड' कहा गया है। कथा के चौथे प्रसग में गाव के परिवेश का बडा ही मोहक वर्णन है। और यहां पर वर्णित चूने का पहाड—'धौलाधार' ही तो है।

भाषिक सरचना

गुलेरी जी भाषाविद् थे। वह भाषा की बारीकियों, त्रुटियों तथा उसके सहजरूप के प्रति सतर्क थे। होते भी क्यों न। भाषा के, बल्कि भाषाओं के जिन अनेक रूपों का अध्ययन, प्रयोग उन्होंने किया था वैसा उस काल के लेखकों में शायद ही किसी ने किया हो। व्यापक अध्ययन भी लेखन में गुणात्मक अन्तर लाता है। अत गुलेरी जी की भाषा, भाषिक सरचना की दृष्टि से तो श्रेष्ठ है। वह अपने काल की भाषा से भी आगे के युग की भाषा थी जो आज भी प्रासगिक है, आधुनिक है। डॉ० नगेन्द्र का यह कथन बडा सटीक है—"सबसे अधिक आश्चर्यजनक है गुलेरी जी की भाषा। ऐसी प्रौढ भाषा उस समय तो कोई लिख ही क्या सकता था, गद्य के समुन्नत युग में भी कोई लिख सका है, इसमें मुझे सदेह है। प्रेमचन्द की भाषा में इतनी प्रौढि और शक्ति कहा है, और शुक्ल जी की भाषा में जीवन की इतनी स्फूर्ति और यथार्थता कहा है ?"

वास्तव में भाषा ही किसी कृति को उत्तम, मध्यम अथवा अधम बनाती है। असमर्थ अशक्त भाषा रचना को दुर्बल बनाती है। गुलेरी जी की भाषा म अन्यान्य बोलियों-भाषाओं के शब्दों का सुन्दर प्रयोग है। सस्कृत के, व्याकरण-कषायित कण्ठ, कौतुकनयनोत्सव आदि तत्सम शब्द, जेठ, ब्याह भौचक्का (भ्रमित-चक्र) आदि तद्भव शब्द, लादा, पाधा, मजडी, टका, गलसुड आदि कांगडी

बोली के शब्द, उज्र, अल्लाह, तोबा आदि अरबी-फारसी शब्द तथा, लैजरबुक, बोर्डिंग, पासपोर्ट आदि अगरेजी शब्द 'बुद्धू का काटा' के समर्थ शब्द-प्रयोग हैं। गुलेरी जी ने भाषा को मुहावरो से भी अर्थवती बनाया है। कौतुक नयनोत्सव, आखों का पानी होकर बहना, लोटमलोट होना, लहँगा पसारना, कैंची बन्द न होना, दूध पिलाना, पानी पिलाना तथा लल्लो-चप्पो करना आदि कितने ही मुहावरे हैं जो कथ्य को लाक्षणिक तथा अर्थ को आशयगर्भित बनाते हैं। गुलेरी जी मे एक दूसरी भाषा के शब्दो को परस्पर जोडकर नूतन शब्द निर्माण की भी आश्चर्यकर क्षमता थी। 'उसूलघन' 'बाबूजी', आदि ऐसे ही मिश्रित शब्द हैं। गुलेरी जी ने 'उसने कहा था' की तरह पजाबी का पुट भी दिया ही है। इलाही वाले सारे वार्तालाप मे उर्दू-शब्दावली का बाहुल्य होते हुए भी उसकी सारी टोन पजाबी लहजा लिए है। अनेक क्रियाओ वाले वाक्यों का निर्माण भी उनकी भाषावाक्य सरचना का उत्तम कौशल है—"गाव की लडकिया हड्डियों और गहनों का बडल नही होती। वहा वे दौडती हैं, कूदती हैं, हँसती हैं, गाती है, खाती हैं और पचाती हैं। नगरों मे आकर वे खूटे से बधकर कुम्हलाती हैं, पीली पड जाती हैं, भूखी रहती हैं, सोती हैं, रोती है और मर जाती हैं।"

गुलेरी जी की भाषा की मुख्य विशेषता उसकी नाटकीयता है। वाक्या मे नाट्यतत्त्व, पदे-पदे विराजित है। अगर इस कहानी का ठीक-सा नाट्यरूपान्तर हो तो इसमे सफल 'नाटक' होने की अपार क्षमता है।

हास्य-व्यग्य

'बुद्धू का काटा' में मधुर हास्य-व्यग्य का पैनापन विद्यमान है। यद्यपि हास्य-व्यग्य की सृष्टि तो गुलेरी जी के सम्पूर्ण साहित्य मे है तथापि विवेच्य कहानी मे उसकी सत्ता अनुपम है। पनघट-प्रसग मे रघुनाथ भागवन्ती की मामी से गाव का रास्ता पूछ रहा है—

रघु०—"रास्ता सीधा ही है न ?"

लडकी—"नहीं तो, बायें हाथ को मुडकर चीड के पेड के नीचे दाहिने हाथ को मुडने के पीछे सातवें पत्थर पर फिर बायें मुड जाना, आगे सीधे जाकर कहीं न मुडना, उसके आगे एक गीदड की गुफा है, उससे उत्तर को बाड उलाँघ कर चले जाना।"

स्त्री—"छोकरी, तू बहुत सिर चढ़ गई है, चिकर-चिकर करती ही जाती है। नही जी, एक ही रास्ता है, सामने नदी आवेगी, परले-पार बायें हाथ को गांव है।"

लडकी—"नदी मे भी यों ही पाँसा लगाकर पानी निकालना।"

स्त्री—"क्या उस गाव मे डाकबाबू होकर आए हो ?"

रघु०—"नही, मैं तो प्रयाग मे पढता हू।"
लडकी—"ओ हो, पिरागजी मे पढते हैं! कुए से पानी निकालना पढते होंगे ?"

इस प्रकार अनेक स्थलों पर हास्य की सृष्टि व्यग्य की विनोदप्रियता मे उभरी है। वस्तुत गुलेरी जी हास्य व्यग्य को अलग से नही रचते है अपितु उसकी रचना इनकी शैली का अग बनकर उभरती है। व्यग्य मे विनोदप्रियता और हास्य मे व्यग्य का पुट सबके वश की वात नही होती। गुलेरी जी के पात्र स्वय भी हँसते हैं और औरो को हँसाने की शक्ति भी रखते हैं। 'उसने कहा था' मे इक्के-तागे वालो की भाषा अपने स्वाभाविक प्रयोग मे भी विनोदपूर्ण है। भाषा मे, तागेवालो का व्यक्तित्व जीवन्त हो उठता है।

चरित्र-सृष्टि

गुलेरी जी के पात्र 'टाइप' नही, अपितु व्यक्तिगत दायरो मे रहते हुए भी वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। 'बुद्धू का काटा' का रघुनाथ, इलाही और भागवन्ती व्यक्ति होते हुए भी क्रमश गाव के युवको, मजदूर वर्ग तथा गाव की चचल युवतियो के प्रतिनिधि हैं। व्यक्तिगत तौर पर रघुनाथ मा-बाप की आज्ञा मे रहने वाला, सदाचारी, शिष्ट, भोला तथा बदलाकामी होता हुआ भी अन्तत दयालुता, सहानुभूति तथा विनम्रता आदि गुणो का धनी है। गरीबो के प्रति उसके चरित्र का उज्ज्वल पक्ष है। उसका चरित्र मानवीय धरातल पर अधिक प्रतिष्ठित है। वह बुद्धू तो बन सकता है परन्तु निर्लज्ज नही हो सकता। जो लोग रघुनाथ को हीनग्रन्थि से ग्रस्त बताते हैं वास्तव मे वे उसकी कठोर चारित्रिक शिक्षा को भूल जाते है। सस्कारो और विद्या से सयमी होना हीन ग्रन्थियुक्त होना नही होना। हमारे यहा लज्जा और सयम भी गुण है। भागवन्ती के प्रति प्रेम उसके जीवन की महती घटना है। वह नारी को सम्मान तथा आदर की पात्र समझता है। गलती पर पश्चात्ताप उसके व्यक्तित्व का उदात्त गुण है। इलाही खुदा को मानने वाला, धार्मिक तथा मजदूरवृत्ति का पात्र है। वह परिश्रमी तथा उदाराशय लोगो का वश्य है। भागवन्ती गुलेरी जी की अद्भुत नारी-सृष्टि है। वह चुलबुली, चचल, मुँहफट के अतिरिक्त उत्साहशील, विनोदकुशला, व्यग्यदक्षा, प्रेमपरायणा, प्रत्युत्पन्नमति तथा निश्छल ग्रामबाला है। वह उदार लोकव्यवहार मे निपुण तथा स्वाभिमानिनी भी है। रघुनाथ के क्षमा मागने पर वह उसकी अशिष्टता को भी क्षमा करती है। गुलेरी जी के पात्रो मे मानवीय गुणावगुण तो होते है परन्तु स्वभाव की परिवर्तनशीलता नही होती।

इन सबके अतिरिक्त भी गुलेरी जी ने पौराणिक प्रसगो तथा ज्योतिष ज्ञान को भी कथा के निर्णायक सूत्रो मे पिरोया है। जैसे—राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ मे वलि के खूटे से बधे हुए शुन.शेप[1] की तरह बाबू अलमारियो की ओर देखने लगे।[2] गुलेरी जी ने इसमे ज्योतिष-ज्ञान का भी उपयोग किया है कि 'बडे-से-बडा महाराजा भी थैलियों के मुँह खुलवाकर भी शास्त्रजड लोगो से यह नही कहला सकता कि—अष्टवर्षा भवेद् गौरी[3] पर हरताल लगा द। उल्टा अष्ट का अर्थ गर्भाष्टम करके, सात वर्ष तीन महीने की आयु निकाल बैठेंगे। परन्तु कभी शुक्र का छिपना और कभी बृहस्पति का भगना, कभी घर का न मिलना और कभी पल्ले पैसा न होना, कभी-कभी नाडी-विरोध और कभी कुछ। समझदार आदमी चाहे तो कन्या को चौदह-पन्द्रह वर्ष की करके काशीनाथ से लेकर आजकल के महामहोपाध्यायो तक को अँगूठा दिखा सकता है।" इसी प्रकार बिहारी के एक दोहे[4] द्वारा पितृमारक योग[5] और जारज योगों[6] की चर्चा भी की गई है जो गुलेरी जी के ज्योतिष-प्रेम की नही अपितु ज्योतिष-ज्ञान का ।रिचायक है।

उद्देश्य

कोई भी मननशील, चिन्तक साहित्यकार निरुद्देश्य नही लिखता। गुलेरी जी की सामाजिक समस्या मूलक कहानिया प्रेम से सम्पुटित तथा सामाजिक चेतना सम्पन्न है। उनमे एक जागरूक रचनाकार का मर्म बोल रहा है। 'बुद्धू का काटा' प्रेम और कर्म क मन्त्र को सहज रीति से व्याख्यायित करने वाली सामाजिक सरोकार की कहानी है। 'बुद्धू का काटा' घटनाप्रधान होती हुई भी सूक्ष्म सवेदना से युक्त व्यजनापूर्ण कहानी है।

१. शुन शेप की कथा ऐतरेय ब्राह्मण मे आती है। इसमे राजा हरिश्चन्द्र ने अपन पुत्र रोहिताश्व के स्थान पर ऋषि अजीगर्त के पुत्र शुन शेप को यज्ञ के यूप से बाधकर वरुण की प्रसन्नता के लिए उसका बलिदान करना चाहा था। तब आत्मरक्षा के लिए शुन शेप ने वरुण की प्रार्थना की।

२ देखें प्रस्तुत ग्रथ . पृ० २०२

३. अष्टवर्षा भवेद् गौरी, नववर्षा तु रोहिणी।
दशवर्षा भवेद् कन्या, अत ऊर्ध्वं रजस्वला।—शीघ्रबोध

४. सुतपितु मारक जोग लखि, उपज्यो हिय अति सोग।
पुनि विहँस्यो गुन जोयसी, सुत लखि जारज जोग॥

५. जैमिनी के अनुसार पितृकारक ग्रह, सूर्यरहित पाप ग्रह से देखा जाए तो पिता की बालक की बारह बरस की अवस्था स पूर्व ही मृत्यु हो जाती है।—जैमिनी सूत्रम्, अध्याय-२

६. 'स्वांशेकेवलपापसम्बन्धे परजात।' अर्थात् यदि आत्मकारक के नवांश म केवल पापग्रह का सम्बन्ध हो तो जारपुरुष से पुत्र उत्पन्न होता है।—जैमिनीसूत्रम्, अध्याय १/४

सम्मतियां

अज्ञेय

गुलेरी जी ने कुल तीन ही कहानिया लिखी, पर उन तीनो मे से भी एक ऐसी सर्वांग सुन्दर रचना हुई कि कोई भी कहानी संग्रह उसे लिए बिना प्रतिनिधित्व का दावा नही कर सकता।

अमरनाथ झा

गुलेरी जी की कहानिया इस योग्य हैं कि इनकी तुलना और भाषाओं की कहानियों से की जाय। बोलचाल की भाषा जैसी होनी चाहिए, वैसी ही है, कृत्रिमता कही नही है। मानवचरित्र का प्रत्येक कहानी मे विलक्षण वर्णन है।

कृष्णानंद

गुलेरी जी की कृतिया सस्कृत, हिंदी और अगरजी इन तीनो मे हैं, परन्तु इनकी अधिकाश कृतिया हिंदी मे ही है। नागरी-हिंदी के प्रति इन्हे सहज ममता थी और इसकी उन्नति के लिए इन्होंने जो किया है वह बहुत ही उत्कृष्ट और विशिष्ट है।

गुलेरी जी अनोखे प्रतिभामय पुरुष थे।·· गुलेरी जी की हिंदी-सेवा की उत्कृष्टता और विशिष्टता इनकी कृतियो की पुष्टता तथा विविधता के साथ विषयो की तत्त्वज्ञता और शैली की विशेषता मे है। पौरस्त्य पाश्चात्य, प्राचीन-अर्वाचीन साहित्य तथा विज्ञान, रचना एव आलोचना के ये समान अधिकारी थे और इन सब मे सजीव मुहावरेदारी तथा सकेतमयता एव वक्रता तथा व्यजना की इनकी मार्मिक शैली सिद्ध थी। एक-दो कृतियो से ही अमर आदर्श स्थापित कर देने वाले ये अमर और आदर्श कृती हो गए हैं। 'उसने कहा था' की अमरता तो सर्वप्रसिद्ध है। इनकी और कृतियो, विशेषत निबधो की अमरता वैसी ही प्रसिद्ध होगी।

नवदुलारे वाजपेयी

गुलेरी जी की 'उसने कहा था' कहानी बहुत ही अधिक स्थान और समय घेरती है और कहानी के नवीन प्रतिमानों को देखते हुए विराट या महाकाव्यात्मक कहानी (एपिक स्टोरी) कही जा सकती है। लम्बी कहानिया प्रसाद जी ने भी लिखी हैं और प्रेमचद जी ने भी। इन दोनो की कहानियों मे 'उसने कहा था' की-सी बोझिल विशालता नही है।

पुरुषोत्तमदास टण्डन

चद्रधर जी सस्कृत और हिन्दी के प्रचड विद्वान थे। इसका पता उनके गवेषणापूर्ण लेखों से चलता है। उनके हृदय मे हिन्दी भाषा के प्रति अनुराग था। उनकी उत्कट इच्छा रहती थी कि हिन्दी का आधुनिक साहित्य सर्वांग सुन्दर होकर ससार के उच्च कोटि के साहित्य से समानता करे।

बाबूराम सक्सेना

'उसने कहा था' कहानी हिंदी-साहित्य की अमूल्य थाती है। उसे पढकर जो रस मिलता है, वह सचमुच अद्वितीय है। कितनी ही अन्य कहानियां उसकी छाया मन पटल से नही मिटा सकती। कहानीकार की प्रतिभा की झलक 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का कांटा' मे भी मौजूद है। सचित्र और ब्योरेवार वातावरण और भारतीय परिस्थितियो के साथ अप्रत्यक्ष सहृदयता प्रत्येक पृष्ठ पर अंकित है।

राजेन्द्र यादव

हिन्दी की पहली मौलिक और कलापूर्ण कहानी 'उसने कहा था' है। गुलेरी जी ने कथाशिल्प की दृष्टि से कथानक को जिस साकेतिक ढग से सयोगों और घटनाओं के माध्यम से बुना है, वह कहानी को प्रौढ स्तर पर ही प्राप्त होता है। सजीव वातावरण तथा स्मृति चित्रो से इसकी पूर्ण दीप्ति, सभी बातें कहानी-कला मे गुलेरी जी की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां हैं। कहानियो मे मानवीय और यथार्थ पात्रो की अवतारणा के कारण स्वातंत्र्योत्तर कथा-साहित्य गुलेरी जी का ऋणी है।

रामचन्द्र शुक्ल

सस्कृत के प्रकाड प्रतिभाशाली विद्वान, हिन्दी के अनन्य आराधक श्री चद्रधर शर्मा गुलेरी जी की अद्वितीय कहानी 'उसने कहा था' मे पक्के यथार्थवाद के बीच, सुरुचि की चरम मर्यादा के भीतर, भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यंत निपुणता के साथ सपुटित है। घटना इसकी ऐसी है जैसी बराबर हुआ करती है, पर उसके भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाक रहा है—केवल झाक रहा है, *निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है।* कहानी भर में कहीं प्रेम की निर्लज्ज प्रगल्भता, वेदना की बीभत्स विवृति नहीं है। सुरुचि के सुकुमार से सुकुमार स्वरूप पर कहीं आघात नही पहुंचता। इसकी घटनाएं ही बोल रही हैं, पात्रों के बोलने की अपेक्षा नहीं।'' गुलेरी जी एक बहुत ही अनूठी लेख शैली लेकर साहित्य-क्षेत्र मे उतरे थे। ऐसा गम्भीर और पाण्डित्यपूर्ण हास, जैसा इनके

लेखो मे रहता था, और कही देखने मे न आया। अनेक गूढ शास्त्रीय विषयो तथा कथा-प्रसगो की ओर विनोदपूर्ण सकेत करती हुई इनकी वाणी चलती थी। इसी प्रसगगर्भत्व (एल्यूसिवनेस) के कारण इनकी चुटकियो का आनद अनेक विषयो की जानकारी रखने वाले पाठको को ही विशेष मिलता था। इनके व्याकरण ऐसे रूखे विषय के लेख भी मजाक से खाली नही होते थे। यह बेधडक कहा जा सकता है कि शैली की जो विशिष्टता और अर्थगर्भित वक्रता गुलेरी जी मे मिलती है, वह और किसी लेखक मे नही। इनके स्मित हास की सामग्री ज्ञान के विविध क्षेत्रो से ली गई है। अत इनके लेखो का पूरा आनद उन्ही को मिल सकता है जो बहुज्ञ या कम-से-कम बहुश्रुत हैं।

शिवदानसिंह चौहान

'उसने कहा था' हिन्दी-साहित्य मे एक बेजोड रचना है। उनके निबन्ध भी अनूठे हैं। उनमे केवल लेखक की प्रगतिशील चेतना की ही छाप नही है, बल्कि शैली भी अत्यधिक सुष्ठु और परिमार्जित है। उनका व्यग्य भी अधिक परिष्कृत और शक्तिशाली है। 'मारेसि मोहि कुठाऊ', 'कछुआ धरम' और 'सगीत' आदि निबधो मे समाज की रूढिवादिता आदि पर तीखे या शिष्ट व्यग्यो से प्रहार किया गया है। इनकी शैली का चमत्कार अनुभव करने की वस्तु है।

श्यामसुन्दर दास

गुलेरी जी भाषा-विज्ञान के बडे अच्छे विद्वान थे ''पण्डित जी ने वैदिक साहित्य, भाषातत्त्व, दर्शन और पुरातत्त्व का अनुशीलन किया है और अगरेजी और सस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत, पाली, बगला, मराठी आदि भाषाओ से भी य परिचित हैं। ''जो कार्य ये करते हैं वह प्राय. चुपचाप ही करते है, क्योकि नाम की इन्हे उतनी इच्छा नही रहती। औरो का शिक्षक बनने की अपेक्षा ये स्वय विद्यार्थी बनना अधिक पसद करते हैं, इसीलिए इनके समय का अधिकाश पुस्तकावलोकन मे बीतता है। कदाचित् यही कारण है कि अब तक हिंदी पाठको को इनके द्वारा यथेष्ट लाभ नही पहुच सका है।

श्रीकृष्णलाल

'सुखमय जीवन' साधारण स्थिति को लेकर मनोरजक और उच्च कोटि की कहानी है। इसमे यथार्थ चित्रण बड़े सुन्दर और स्वाभाविक है जिनसे यथार्थ-वादी वातावरण की सृष्टि होती है। 'उसने कहा था' मे लहनासिंह के अपूर्व त्याग और बलिदान का बडा ही सुन्दर चित्रण है।

श्रद्धांजलियां

[१]

शोक ! महाशोक !! आज हिन्दी ससार का एक उज्ज्वल नक्षत्र सदा के लिए अस्त हो गया। ··पण्डित श्रीयुत चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी आज इस ससार मे नही हैं।···आपके स्वर्गवासी होने मे हिन्दी ससार की जो क्षति हुई है वह वर्णनातीत है। [अभ्युदय कुवार वदी १०, स० १९७९ वि०]

[२]

हिन्दी ! हतभाग्य है। सस्कृतभाषे ! तेरे दिन बुरे हैं। विकराल काल ! तू क्रूर है। क्या यह सच है कि पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी अब ससार म नही रहे ! सहसा विश्वास नहीं होता। हा हन्त !! यह कैसा दु सवाद है। हिन्दी-साहित्य पर वज्रपात हो गया। हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी पर विपत्ति का पहाड फट पडा। अजमेर के मेयो कॉलेज के गौरव की ध्वजा टूट गई। देश की पण्डित-मण्डली मे से एक मेधावी विद्वद्वरिष्ठ का स्थान सदा के लिए रिक्त हो गया। प्राच्य और प्रतीच्य उभय ज्ञानगरिमा का एक वन्दनीय केन्द्र उठ गया।

[कलकत्ता समाचार १५ सितबर, १९२२ ई०]

[३]

हमे यह सुनकर अत्यत दु ख हुआ कि केवल ३९ वर्ष की अवस्था मे प्रतिष्ठित हिन्दी-साहित्य सेवी प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी बी० ए० का स्वर्गवास हो गया। हिन्दी ने अपना एक रत्न खो दिया है। आप हिन्दी के उन इने-गिने विद्वान महारथियो मे से थे जिन पर हिन्दी समुचित गर्व कर सकती है। आप सस्कृत, प्राकृत और हिन्दी के असाधारण विद्वान थे और अग्रेजी, पाली, बगला यथा मराठी आदि भाषाओ मे भी परिचित थे। पुरातत्व, दर्शन, इतिहास आदि विषयो म आपकी विशेष गति थी। व्यग्यपूर्ण समालोचना लिखने वालो म आपका विशेष स्थान था। · ऐसे महानुभाव की अकालमृत्यु स किसका हृदय दुखित न होगा। [प्रताप १८ सितबर, १९२२ वि०]

[४]

गुलेरी जी हिन्दू विश्वविद्यालय मे ओरिअण्टल कॉलेज मे प्रिंसिपल थे। आप वैदिक साहित्य तथा सस्कृत और प्राकृत के अच्छे विद्वान थे। हिन्दी की तो आपने बडी सेवा की है। सन् १९०० मे आपन जयपुर मे 'नागरी भवन' स्थापित किया। कई वर्षों तक 'समालोचक' नामक पत्र का सम्पादन किया। इसके सिवा हिन्दी के कई पत्रों मे आप बराबर लेख लिखते रहे। काशी की 'नागरी प्रचारिणी सभा' की पत्रिका का सम्पादन आप ही कर रहे थे। 'सूर्यकुमारी पुस्तकमाला' का प्रकाशन भी आप ही के योग्य सम्पादकत्व मे होता था। आपकी मृत्यु से हिन्दी-साहित्य की जो हानि हुई है उसका अनुभव हिन्दी के सभी प्रेमी कर रहे हैं। [सरस्वती . अक्तूबर, १९२२ ई०]

गुलेरी जी की रचनाएं

अक्ल बनाम नस्ल (टिप्पणी) 'प्रतिभा' —अप्रेल, १९२० ई०

अत्र तत्र सर्वत्र (टिप्पणी) 'समालोचक' —१९०३, ०४, ०५, ०६ ई०

अधिक सन्तति होने पर स्त्री का पुनर्विवाह (टिप्पणी) 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'— १९२० ई०

अनुवादों की बाढ़ (टिप्पणी) 'प्रतिभा' —मई, १९२० ई०

अमंगल के स्थान में मंगल शब्द (निबंध) 'सरस्वती'—नवम्बर, १९११ ई०

अमल की तारीफ (राजस्थानी कविता) —१ मार्च, १९०५ ई०

अयोध्याप्रसाद के संस्मरण (लेख) 'समालोचक'—अगस्त, सन् १९०५ ईस्वी

अवन्ति सुन्दरी (लेख) 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'—१९२१ ई०

अशोक की धर्मलिपियां (सम्पादित शोध ग्रंथ) 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'—१९२० से १९२२ ई०

अशोक शास्त्री (टिप्पणी) 'प्रतिभा'— मई, १९२० ई०

अश्वमेध (लेख) 'मर्यादा'—दिसम्बर-जनवरी, १९११-१२ ई०

असूर्यम्पश्या राजदारा (टिप्पणी) 'प्रतिभा'—अप्रेल, १९२० ई०

आँख (वैज्ञानिक निबंध) 'सरस्वती'— १९०५ ई०

आचार्य सत्यव्रत सामश्रमी (जीवनचरित) 'मर्यादा'—फरवरी, १९१२ ई०

आत्मघात (लेख) 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'—१९२० ई०

'आन शिवा-भागवता इन पातंजलिज महाभाष्या' (अंग्रेजी-लेख) 'दि इण्डियन एण्टीक्वरी'—नवम्बर, १९१३ ई०

आर्ष हिन्दी (टिप्पणी) 'प्रतिभा'— मई, १९२० ई०

आहिताग्निका (कविता) 'समालोचक' —अक्तूबर, १९०५ ई०

इण्डियन नेशनल कांग्रेस (लेख) 'समालोचक'—जनवरी - फरवरी, १९०४ ई०

उलूलु ध्वनि=हुर्रा (टिप्पणी) 'सरस्वती'—जून, १९१४ ई०

उसने कहा था (कहानी) 'सरस्वती'— जून, १९१५ ई०

ए पोयम बाई भास (अंगरेजी लेख) 'दि इण्डियन एण्टीक्वरी'—नवम्बर, १९१२ ई०

एक प्रसिद्ध मंत्र (टिप्पणी) 'प्रतिभा'— मई, १९२० ई०

एशिया की विजयादशमी (कविता) 'समालोचक'—सितम्बर, १९०४ ई०

ए साइन्ड मौलाराम (अंग्रेजी लेख) 'रूपम'—अप्रेल, १९२० ई०

ककातिका मार्क्स (अंग्रेजी लेख) 'द इण्डियन एण्टीक्वरी' —जनवरी, १९१३ ई०

कछुआ धरम (निबन्ध) 'प्रतिभा'— नवम्बर, १९१९ ई०
कलकत्ते का अशोकारिष्ट (टिप्पणी) 'प्रतिभा'—मई, १९२० ई०
कस्तूरी मृग (टिप्पणी) 'प्रतिभा'— नवम्बर, १९२० ई०
काकपद (टिप्पणी) 'सरस्वती'— जुलाई, १९१३ ई०
कादम्बरी के उत्तरार्द्ध का कर्त्ता (टिप्पणी) 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'—१९२० ई०
कादम्बरी और दशकुमारचरित के उत्तरार्द्ध (टिप्पणी) 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'—१९२१ ई०
कालिदास के समय मे हूण (लेख) 'सरस्वती'— सितम्बर, १९१३ ई०
काशी (निबन्ध) 'समालोचक'—जून-जुलाई, १९०६ ई०
काशी नागरी प्रचारिणी के कार्यकर्त्ता (लेख) 'समालोचक'—१९०४ ई०
क्रियाहीन हिन्दी (टिप्पणी) 'प्रतिभा'— जनवरी, १९२० ई०
कुछ पुराने रिवाज और विनोद (टिप्पणी) 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'—१९२२ ई०
कुछ लोगो के नाम (लेख) 'समालोचक' —१९०४ ई०
कुसुमाजलि (कविता)—१ जनवरी, १९०२ ई०
खरे सज्जनो को खरी चिट्ठिया (लेख) 'समालोचक'—१९०४ ई०
खसो के हाथ मे ध्रुवस्वामिनी (टिप्पणी) 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'—१९२० ई०
खुली चिट्ठी (लेख) 'समालोचक'— १९०३, ०४, ०५ ई०
खूब तमाशा (टिप्पणी) 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'—१९२२ ई०
खेल भी शिक्षा है (लेख) 'समालोचक' —१९०३-०४ ई०
खोज की खाज (टिप्पणी) 'प्रतिभा'— मई, १९२० ई०
गुलेरी जी अपने शब्दो मे (आत्म-परिचय)—८ जुलाई, १९१७ ई०
गोदानम् (अज्ञात)
घडी के पुर्जे (लेख) 'प्रतिभा'— अक्तूबर, १९२० ई०
घण्टाघर (लेख) 'वैश्योपकारक'— १९०४ ई०
चाणूर अध्र (टिप्पणी) 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'—१९२० ई०
चारण (लेख) 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'—१९२० ई०
चारणो और भाटो का झगडा बारहट्ट लक्खा का परवाना (लेख) 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'—१९२० ई०
छट्टू (टिप्पणी) 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'—१९२२ ई०
जय जमुना मैया जी की (लेख) 'समालोचक'—मई, १९०४ ई०
जयसिंह प्रकाश (लेख) 'सरस्वती'— सितम्बर, १९१० ई०
जालहस की सुभाषित मुक्तावली और चद की पद्भाषा (टिप्पणी) 'प्रतिभा' —नवम्बर, १९१८ ई०
जोडा हुआ सोना (लेख) 'प्रतिभा'— जून, १९२० ई०
झख मारना (टिप्पणी) 'प्रतिभा'—

लेखक-परिचय

* डॉ० ओम्प्रकाश सारस्वत : अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, पत्राचार पाठ्यक्रम-निदेशालय, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला
* श्री इब्बार रब्बी सम्पादकीय विभाग, नवभारत टाइम्स, ७, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली
* डॉ० कमला रजत प्राध्यापक, श्री अरविन्द महिला कॉलेज, पटना
* श्री कृष्ण विकल लेखक, बी-४२-४३, लाजपत नगर-१, नयी दिल्ली
* डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया प्रोफेसर, हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाएं, राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी (उ. प्र.)
* डॉ० नगेन्द्र प्रसिद्ध आलोचक, ४/१८, माडल टाउन, दिल्ली
* डॉ० पीयूष गुलेरी हिन्दी-विभाग, राजकीय कॉलेज, धर्मशाला, कांगडा
* श्री प्रभाकर माचवे प्रसिद्ध साहित्यकार, भारतीय भाषा परिषद्, ३६-ए, शेक्सपीयर सरणी, कलकत्ता
* श्री प्रेमनाथ चतुर्वेदी पत्रकार ब-४, अर्जुन मोहल्ला मोजपुर, दिल्ली
* डॉ० ब्रजनारायण सिंह प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, किरोडीमल कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
* डॉ० मस्तराम कपूर लेखक ७६-बी, पॉकेट-३, मयूर विहार, दिल्ली
* श्री मुकुटधर पाण्डेय छायावाद के प्रवर्तक, बैकुण्ठपुरा, रायगढ (म प्र)
* रघुनदनप्रसाद शर्मा (स्वर्गीय) गुलरी जी के समकालीन, पैतृक स्थान—[नूरपुर, कागडा (हि. प्र)]
* प० रत्नलाल रत्नाम्बर ज्योतिष-सम्पादक, नवभारत टाइम्स, ७, बहादुर शाह जफर मार्ग नयी दिल्ली
* श्री राय कृष्णदास (स्वर्गीय) [प्रसिद्ध कला-समीक्षक, भारत कला भवन, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी स सम्बद्ध रहे।]
* डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल प्रसिद्ध नाटककार एव कथाकार, ५४-ए, एम० आई० जी० फ्लैटस, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली
* डॉ० लक्ष्मीशङ्कर गुप्त हिन्दी विभाग, काशी विद्यापीठ, काशी
* डॉ० विजयेन्द्र स्नातक प्रसिद्ध साहित्यकार एव समीक्षक, ए,५/३, राणा प्रताप बाग, दिल्ली
* आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र (स्वर्गीय) प्रसिद्ध साहित्यकार एव आलोचक ([वशज का आवास—वाणी वितान भवन, ब्रह्मनाल, वाराणसी]
* श्री सतराम वत्स्य लेखक एव पत्रकार, के-४७, नवीन शाहदरा, दिल्ली
* श्री सुरेश शर्मा जनसत्ता, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली
* डॉ० सुशीलकुमार फुल्ल प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर, कागडा (हि प्र)
* डॉ० हरदयाल हिन्दी-विभाग, श्यामलाल कॉलेज, शाहदरा, दिल्ली